शूल निदान चिकित्सा

पूर्वकालीन पद—

- महामन्त्री—सौराष्ट्र प्रदेश बी. एस. ए. एम. ग्रेजुएट्स एसोसियेशन।
- व्यवस्थापक सदस्य—सौराष्ट्र प्रदेश युवक अभिनन्दन समिति।
- व्यवस्थापक सदस्य—अमरेली जिला वैद्य सभा।
- स्वागत समिति सदस्य—अखिल गुजरात वैद्य मंडल।

गुजरात के अनेक मासिक पत्रों जैसे—स्वामी नारायण धर्म सिद्धान्त, जन मंगल, सुश्रुत, आयु० डायजेस्ट, आरोग्य प्रदीप, स्पन्दन, तपस्या, धन्य सौराष्ट्र धरणी, बीरहाक, शरद पूनम, हमसफर, सेतु धर्म एवं चिकित्सा चन्द्रोदय तथा बालमूर्ति एवं अभिषेक इत्यादि मासिकों एवं साप्ताहिक पत्रों में आपके लेख प्रकाशित हुए हैं और होते रहते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर आप धन्वन्तरि, आयुर्वेद विकास, आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, शुचि, आरोग्य सखा, प्राच्य ज्ञान दर्पण, वेदांग ज्योति एवं निरोगधाम आदि मासिकों के मान्य लेखक हैं और इन आयुर्वेदीय हिन्दी पत्रिकाओं में आप निरन्तर लिखते हैं। आपने सन् १९८७ में धन्वन्तरि के 'पुरुष रोग चिकित्सांक' का सफलता से सम्पादन किया एवं १९८७ में ही आपने आयुर्वेद गुप्त रहस्यांक (धन्वन्तरि) तैयार किया। इन दोनों अंकों के लिए समग्र भारत से प्रशस्ति-पत्र प्राप्त हुए।

आपको १९७५ में हिम्मत नगर (गुजरात) में शुद्ध आयुर्वेद मंडल के अधिवेशन में राजवैद्य श्री रसिक भाई पारिख द्वारा सुवर्ण चन्द्रक से सम्मानित किया गया था।

आप शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधर हैं। चिकित्सा व्यवसाय में आप वैज्ञानिक दृष्टि रखकर संशोधनात्मक शास्त्रीय चिकित्सा करते हैं। आप त्वक् रोग, अम्लपित्त, श्वास वृद्धि एवं जटिल रोगों के निष्णात हैं।

मुझे आयुर्वेद के विद्वान श्री वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज का सहयोग व सेवा धन्वन्तरि को मिली है। मैं तलाविया जी के उत्साहवर्धक एवं सफलतापूर्वक कार्य को देखकर अति प्रसन्न हूं।

अन्त में मैं आशा करूंगा कि इसी तरह तलाविया जी की सेवा धन्वन्तरि को बार-बार मिलेगी। वर्तमान में आपके पास उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा एवं बिहार में से अनेकों पत्र आते रहते हैं और प्रश्नोत्तरी सेवा के माध्यम से निःशुल्क मार्गदर्शन देते ही हैं।

मैं श्री अशोक भाई को धन्यवाद देता हूँ और भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना करता हूं कि आप आजीवन स्वस्थ रहकर अपने हाथों से निरन्तर आयुर्वेद की सेवा करते रहें।

—डा० दाऊदयाल गर्ग
सम्पादक व प्रकाशक—"धन्वन्तरि" मासिक पत्र
निर्मल आयु० संस्थान, डी/७८ औद्योगिक नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)



भी कुछ पर सौंपा गया। मेरे प्र[illegible] आयुर्वेद के प्रचार [illegible]। मे भाग लेकर न्यारी ऋण अदा करने मे निमित्त बन सका। धन्वन्तरि कार्यालय [illegible] का यह लक्ष्य (उद्देश्य) है कि कुछ भी हो आयुर्वेद का विकास-प्रचार एव प्रसार संशोधनात्मक ढंग से होना चाहिए। अत इस बक्त एकदम नवीन विषय चयन कर मुझे दिया गया। मै इस महाकार्यमे कितना सफल हुआ, वो तो देश के विद्वानो के मत पर ही निर्भर है।

आभार—

'धन्वन्तरि' माध्यम से मुझे विविध क्षेत्रो के विद्वानो का सम्पर्क होता रहता है,एव भारत प्रसिद्ध प्रतिभा-सम्पन्न पत्रिका मे मुझे स्थान दिया गया, अत म उा महोदय श्री दाऊदयाल गर्ग का विशेष आभारी हूँ।

इस ग्रन्थ मे भारत के विभिन्न क्षेत्रो के विद्वानो ने मुझे योग्य समझकर लेख भेजकर सहयोग दिया— मै उन सभी परमादरणीय विद्वानो का विशेष आभार प्रकट करता हूँ और मै नम्र निवेदन करता हूँ कि जहा भी मेरी भूल हुई हो निर्देश देकर ज्ञात कराये। म भारत के सभी [illegible] करके 'धन्वन्तरि' के मान्य विद्वानो का आशीर्वचन चाहता हूँ।

समर्पण —

माता-पिता देव से भी अधिक है। जन्म से लेकर आज तक मुझे माता-पिता द्वारा आयुर्वेद का ज्ञान होता रहा नमस्कारपूर्वक लघु बुद्धि से युक्त मैं यह "शूल निदान चिकित्सा" पूजनीय माता पिता के चरण कमलो मे सादर समर्पित कर कृतार्थ की भावना प्रकट करता हूँ।

— जय धन्वन्तरि

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद मार्तण्ड, बी एम ए एस.

विशेष सम्पादक—'शूल निदान चिकित्सा'

भारद्वाज औषधालय, स्वामी नारायण मन्दिर

मावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात—३६४५१५

विजया दशमी (गांधी जयन्ती)

दिनाक २-१०-१९८७



* मंगलाचरण *

— अथर्व वेद पृथ्वी सूक्त का पद्यांश —

जो पृथ्वी मंगल पथवाली, श्रेष्ठ धनो से है भरपूर।
मङ्गलमयी वह वरण योग्य है, नृत्तित जिस पर रहे मयूर॥

घर, जंगल मे मंगलमय हो वेद करें जिसका गायन।
इस पृथ्वी पर वास करें सब, करें शूल दुःख का मोचन॥

—वैद्य वेदव्रत आर्य शास्त्री

सदर गेट, गागगज (एटा)

शूल-निदान चिकित्सा

वैद्य धीरेन्द्र वी० त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य
सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात

श्री तलाविया जी शुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सक एवं सशक्त लेखक हैं। आपके द्वारा समग्र भारत में गुजरात के लेखकों का समन्वय हो रहा है। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ तथा 'शूल निदान चिकित्सा' के भव्य प्रकाशन की कामना करता हूँ।

वैद्य शोभन वसाणी आयुर्वेद सेण्टर,
२१२-सर्वोदय कामर्शियल सेण्टर, सलापस रोड, अहमदाबाद-१

'धन्वन्तरि' द्वारा "शूल निदान चिकित्सा" प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर प्रसन्नता है। यह कृति आयुर्वेद को यश देने में, ज्ञान का आदान-प्रदान करने में, वैद्य लोग अपना ज्ञान छुपाते हैं ऐसी मान्यता को निर्मूल करने में सक्षम होगी। आयुर्वेद में 'इमरजेंसी चिकित्सा' नहीं है यह धारणा भी निर्मूल होगी। मैं शुभ-कामना प्रकट करता हूँ।

वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तूरे
निदेशक-भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होमियोपैथी, गान्धी नगर

'शूल निदान चिकित्सा' आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर प्रसन्नता है। आपके प्रयासों की मैं हार्दिक सफलता की कामना करता हूँ।

वैद्य पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य, आयु० चक्र०
फीडर रोड, अरियादह, कलकत्ता-५७

प्रसन्नता है कि 'शूल निदान चिकित्सा' प्रकाशित होने जा रहा है। आपको आशीर्वाद गुरुजनों का सहयोग सदा आपकी सफलता की मैं हृदय से कामना करता हूँ।

डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र बी ए एम एस, एम डी (आयु०)
राजकीय आयु० महाविद्यालय, हण्डिया (इलाहाबाद)

आशा ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास है कि आपकी यह कृति भी पूर्व के समान उपयोगी होगी। आयुर्वेद में "व्याधि विनिश्चय" पर कोई पुस्तक नहीं है। अतः 'शूल निदान चिकित्सा' चिकित्सकों तथा छात्रों के लिये विशेष हितकारी होगा।

डा० मिथिलाल गुप्त आयु० चक्र०
आष्टा (सीहोर) म० प्र०

'शूल निदान चिकित्सा' के विशेष सम्पादकत्व पर अनेक साधुवाद ... शुभ-कामना स्वीकार ईश्वर आपको पूर्ण सफलता प्रदान करे।

डा० बी० एन० गिरि ए एम बी एस (शिशु रोग विशेषज्ञ)
टिकारी (गया) बिहार

यह जानकर प्रसन्नता है कि 'शूल निदान चिकित्सा' आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित होने जा रहा है। सभी प्रकार के शूलों पर एक स्वतन्त्र पुस्तक की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके सम्पादन का गुरुतर भार आपने ग्रहण कर चिकित्सा जगत का बड़ा ही उपकार किया है। सफलता की कामना करता हूँ।

शूल निदान चिकित्सा

डा० रामचन्द्र शाकल्य
प्रभारी–शास० आयु० औषधालय, रुपादेह (होशंगाबाद) म० प्र०

श्री वैद्य अशोक भाई तलाविया के सम्पादकत्व में 'शूल निदान चिकित्सा' प्रकाशित हो रहा है, प्रसन्नता है। आशा है आप जैसे विद्वान द्वारा आयुर्वेद का यह आन्दोलन भारत ही नहीं विश्व में एक दिन अपना चमत्कार दिखायेगा। मेरी शुभकामना है कि भगवान 'धन्वन्तरि' आपको सफलता प्रदान करे।

वैद्य रत्न द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य,
ओडो (नवादा) बिहार

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विद्वान वैद्य अशोक भाई तलाविया के सम्पादकत्व में 'शूल निदान चिकित्सा' प्रकाशित होगा। विद्वान वैद्य के सम्पादकत्व से यह समस्त पाठक वर्ग के लिये सराहनीय कदम होगा। यह समस्त वैद्यों के लिये संग्रहणीय होगा।

वैद्य प० नन्दकिशोर शर्मा वैद्य रत्न, आगर (मालवा) म० प्र०

आपने आयुर्वेद की उन्नति के लिये जो कदम उठाया है वह सराहनीय है। आद्य शक्ति से प्रार्थना है कि वह आपकी लोह लेखनी को पूर्ण शक्ति प्रदान करे।



⁕ शूल निदान चिकित्सा हरे रुग्ण जन शूल ⁕



आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा रोग होय निर्मूल ।
त्रिदोष ज्ञानसह करे चिकित्सा पडे सदा अनुकूल ॥
बिन सिद्धान्त चिकित्सा प्रायः होती है प्रतिकूल ।
आयुर्वेद के ज्ञाता बनकर चुने सुगन्धित फूल ॥

रोगों के छेदन करने को सिद्ध होय शिव सम त्रिशूल ।
आयुर्वेद की उत्पत्ति के वेद शास्त्र हैं मूल ॥
फिर क्यों हो सकती है इसमें लेशमात्र भी भूल ।
होय कामना पूर्ण हमारी हे शिव मंगलमूल ॥

पंच निदान से करे चिकित्सा व्यर्थ बढ़े ना तूल ।
सर्व चिकित्साओं की जननी आयुर्वेद मत भूल ॥
शूल निदान चिकित्सा पाठक हरे रुग्ण जन शूल ।
आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा रोग होय निर्मूल ॥

—आचार्य प० शिवकुमार वैद्य शास्त्री
श्री शिव चिकित्सालय, रावतपाडा, आगरा

शूल निदान चिकित्सा

विषय-सूची

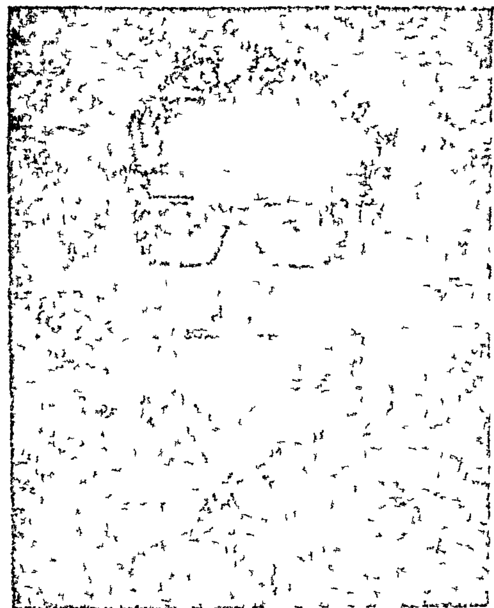
[illegible]

शूल निदान चिकित्सा

※ शूल एक लक्षण है ? ※

प्रो वेणीमाधव अश्विनीकुमार शास्त्री
प्रोफेसर एव विभागाध्यक्ष काय चिकित्सा विभाग
शासकीय आयु० महाविद्यालय एव चिकित्सालय, ग्वालियर
मानसेवी आयु० चिकित्सक राज्यपाल–म प्र

—★※★—



श्री वेणीमाधव अश्विनी कुमार जी शास्त्री आयुर्वेद जगत के प्रकाण्ड विद्वान हैं। सम्प्रति शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय ग्वालियर मे आचार्य पद पर आसीन है तथा म प्र. के राज्यपाल के निजी मानद चिकित्सक हैं। आप राजस्थान के मूल निवासी हैं। आपको 'धन्वन्तरि' से विशेष लगाव है और प्रत्येक विशेषांक मे आप अपना लेख भेज कर अपना योगदान देते है। मेरे आग्रह पर आपने 'शूल एक लक्षण है' नामक लेख भेज कर आयुर्वेद सिद्धात का प्रतिपादन किया है। आयुर्वेद जगत को आपसे विशेष अपेक्षायें हैं।

—दाऊदयाल गर्ग

आयुर्वेदीय रोग निदान के अनुमार शूल रोग न हो कर एक लक्षण है। अत लक्षण की चिकित्मा मे हेतु विपरीत चिकित्सा सद्य लाभकर नही, अत सर्वदा व्याधि विपरीत चिकित्मा अथवा उभय विपरीत चिकित्मा क्रम श्रेष्ठ होता है।

आयुर्वेदीय विकृति विज्ञान के अनुसार वातदोप की दुष्टि विशेप के कारण रुजा उत्पन्न होती है। पित्त से पाक और कफ मे पूय उत्पन्न होता हे। "वाताहते नास्ति रुजा" वचन की सूक्ष्म विचारणा करने पर यह ज्ञात होता है कि वातकृत रुजा का ही विकसित एक रूप शूल लक्षण है।

वात की विकृति के अनेको रूप स्थान–कर्म–अवयव अधिष्ठान धातु-संचार मार्ग-स्रोतस् तथा प्रकोपक हेतु के अनुमार होते है। किन्तु इन सभी मे शूल लक्षण सर्वाधिक शीर्षस्थ एव रोगी एव चिकित्सक दोनो का ध्यान आकृष्ट करता है।

शूल की सम्प्राप्ति—

वातवाहिनी (तन्त्रिका) मचार मार्ग मे जब कभी अवरोध उत्पन्न होता है तभी शूल उत्पन्न होता है। आयुर्वेदीय विकृति विज्ञान (Pathology) के अनुसार विकृति का स्वरूप शरीर के सभी स्रोतस् (Systems) मे निम्न चार प्रकार का अवेक्षण किया गया है—

(१) अतिप्रवृत्ति।
(२) सग।
(३) विमार्ग गमन।
(४) ग्रन्थि।

इन चारो प्रकार की विकृतियो मे से सग विकृति अवरोध उत्पन्न कर शूल का प्राथमिक कारण वनती हे। अन्य दूरगामी प्रकारो मे वातवाहिनी रचना पर आघात दवाव-तत्स्थान के रक्त सवहन मे अवरोध–स्थानिक शोथ–विजातीय पदार्थो द्वारा अवरोध (obstruction due to foreign body) भी अवरोध उत्पन्न कर शूल उत्पत्ति करता है।

शूल उत्पत्ति के लिये वातवाहिनी मे अवरोध जहा रचनात्मक दृष्टि से प्राथमिक महत्व की घटना होती हे वही वातवाहिनी मे सचरण करने वाले वायु दोप का

क्रियात्मक, प्रकोप भी समान रूप से शूल का उत्पादक व्यंजक कारण होता है। उक्त दोनो रचनात्मक एव क्रियात्मक घटनाओं के लिये भी वातदोष का प्रकोप ही उत्तरदायी है। वात का प्रकोप ध्रुव सत्य के रूप मे धातुक्षय से कर्षित शरीर रचनाओ मे एक साथ या किसी एक अवयव मे मुख्य रूप से होता है। धातुक्षय की भूमिका मे अप्राकृतिक और अनियमित-अति मात्रा मे शरीर से निस्सरणशील मलो की प्रवृत्ति, आघात-व्याधि-औषधि विभ्रम से रसक्षय-रक्तक्षय, अल्पहीन प्रमिताशन से अपोषण, वेगावरोध से विमार्गीकृत क्रियाओ से अपोषण प्रमुख कारण बनते हैं।

इनके अतिरिक्त मार्गावरण के कारण भी वात प्रकोप होता है। मार्गावरण स्वयं मे बडी सूक्ष्म एव गम्भीर घटना है। वात प्रकोप के उक्त दो कारण धातुक्षय और आवरण साधारण कारण माने जाते है। किन्तु इनके द्वारा उत्पन्न विकृति को अनुमान करने के लिए प्रत्येक शूल रोगी की रुजा प्रकृति स्थान-काल-अवस्था-तीव्रता-धातु सम्बन्ध-अवयव सम्बन्ध-स्रोतस् सम्बन्ध का सूक्ष्मतम रचना क्रियात्मक तथा वैकारिक चिन्तन करना अपेक्षित होता है।

वातप्रकोप धातुक्षयजन्य होने पर उत्पन्न शूल मे सार्वदैहिक प्रभाव अधिक होता है तथा मार्गावरण जन्यशूल मे स्थानिक प्रभाव अधिक पाया जाता है।

सार्वदैहिक प्रभाव को देखकर शूल की सप्राप्ति मे धातु क्षय की कल्पना चिकित्सक के विचार मे सर्व प्रथम आनी चाहिए।

शूल और वायु भेद—

शूल की उत्पत्ति मे हेतु (धातुक्षय-मार्गावरोध) के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण स्थान वायु के स्थान का भी है। यही स्थापना सैद्धान्तिक भी है कि 'वायु हेतु स्थान विशेषाच्च सर्वरोग विशेषकृत्' होता है। वायु के पचात्मभेद प्राण-उदान-समान व्यान और अपान है। उक्त पाच भेदो के अन्तर्गत समग्र शरीर की रचना और क्रियाओ का विभाजन होता है। प्राण के क्षेत्र मे मस्तिष्क, सुषुम्नाशीर्ष, इन्द्रियाधिष्ठान, इन्द्रिया, हृदय, श्वसनकर्म, अन्नाहरणकर्म तथा तत्सम्बन्धित चिन्तनादि स्मृति पर्यन्त क्रियाये परिगणित होती है। इन स्थानो पर उत्पन्न शूल मे प्राण के प्रकोप, वृद्धि, क्षय लक्षण प्राप्त होते है। प्राणजन्य शूल के उदाहरण—हृच्छूल, वक्षशूल, अनन्तवात, अर्द्धावभेदक, शखक कटिशूल, अक्षिशूल माने जा सकते है तथा तदनुसार आशुकारी सुगन्धयुक्त औषधि का चिकित्सार्थ प्रयोग होता है। उदान के क्षेत्र मे श्वसनतत्र, कट, शब्दसामर्थ्य, ऊर्जा, उत्साहकर्म आते है। इसकी चिकित्सा मे ऊर्ध्वानुलोमन कर्म और औषधि हितकर होते है। पार्श्वशूल, स्वरभेद-इनके उदाहरण है।

समान क्षेत्र मे समग्र अन्नवह स्रोतस् अग्नि, पित्तधरा या अग्निधरा कला का समावेश होता है। इसे अग्निवत् दीपनानुलोमन चिकित्सा कर्म द्वारा शमित किया जाता है। समान जन्य शूल मे अन्नद्रव शूल, पित्ताश्मरीशूल, अजीर्ण की अवस्था का शूल समाविष्ट होते है। आन्त्रशूल, यकृत्शूल भी इसी वर्ग मे आते है।

व्यान क्षेत्र मे सवहनकर्म दृष्टि मे समग्र धमनीशिरा सतानयुक्त सावयव शरीर मासधातु के पेशीकण्डरारज्जु आदि प्रतीक सम्बलित होते है। रस रक्त लसीका स्वेद सवहन, लालापित्तादि अन्त स्राव पेशी आकुचन प्रसारण वर्तन आयाम आदि कर्म व्यान के विशेष कर्म है। व्यान जन्यशूल मे दण्टकज्वरशूल, वातकफ ज्वर का शूल, अङ्गमर्द, अस्थिशूल, गृध्रसी, सधिशूल, विश्वाची, कटिशूल, पृष्ठशूल, पेशीशूल, आघातजशूल समाविष्ट होते है। चिकित्सा मे हेतुविपरीत उष्ण स्निग्ध पिण्ड स्वेद, धारास्वेद, वाष्प आदि स्वेद विधान सद्य लाभकारी होता है।

अपान क्षेत्र मे वस्ति, मूत्र प्रणाली, वृक्क, गर्भाशय अन्त फल, गुद, बृहदन्त्र + क्षुद्रान्त्र = पक्वाशय, कटि, योनि, मेढ्र, मुष्क तथा बहिर्मुख पुरीषशुक्रार्त्तववातमूत्रगर्भार्त्तव स्राव प्रमुख है। अपानजन्यशूलो मे वस्तिशूल, गवीनीशूल, वृक्कशूल, आन्त्रशूल, गर्भाशयशूल, अश्मरीशूल, कटिशूल, योनिशूल, मुष्कशूल, मेढ्रशूल, गुदशूल, आदि शूल समाविष्ट होते है। इनमे अनुलोमन सहित उष्ण स्निग्ध सेकादि कर्म त्वरित लाभकारी होते है।

यहा स्मरणीय है कि वातदोष के पाचभेद होते हुए परस्पर सहकार की दृष्टि से अपान स्थान पक्वाशय सभी वातभेदो का पोषण और वातकर्म द्वारा अनुग्रह करता है।

ठीक उसी प्रकार सभी वात भेदों के स्थानिक और सार्वदैहिक-स्थूल और सूक्ष्म अवयव कोपागन कर्म का नियमन प्राण वायु शीर्षस्थ होकर शीर्षण्य नाड़ीतन्त्र (Cerebral Nervous System) तथा सौषुम्निक नाड़ीतन्त्र (Spinal Nervous System) तथा स्वतन्त्र और परिसरीय नाड़िका तन्त्र के विस्तार और रचना क्षेत्र के द्वारा सपादित करता है। इसीलिए वात दोष की महत्वपूर्ण विकृति शूल लक्षण की चिकित्सा में जहा प्राण शमनार्थ आशुकारी कस्तूरी, केशर, हिंगु, पुष्करमूल, कर्पूर, अहिफेनादि, कुचिला जैसे द्रव्यों का प्रयोग होता है। वही अपान शमनार्थ उष्ण स्निग्ध स्वेदन सहित अनुलोमन कर्म भी स्वय फलप्रद होता है।

शूल और अङ्ग अवयव —

यद्यपि आयुर्वेदज्ञों ने शूल को रोग मानकर दोषानुसार निरूपण किया है। दोषों की रचना क्रिया और वैकारिकी के अनुसार ही शूल रोग का वर्णन भी किया है।

किन्तु आज प्रचलित माडर्न मेडिसिन में शूल का विकार अङ्ग अवयवों के साथ किया जाता है। इसी आधार पर बिलियरी कालिक, एब्डोमिनल कालिक, इन्टेस्टिनल कालिक, रीनल कालिक, यूटराइन कालिक नाम से शूल का उल्लेख किया जाता है। चिकित्सा का प्रयोग विधान भी सभी के लिए कारण के विचार को छोड़कर वेदनाशामक मनोहर शैथिल्यकर द्रव्यों के प्रयोग तक सीमित है।

शूल और वायुभेद विचार में वर्णित पद्धति के अनुसार अङ्गावयवों का सम्बन्ध वायु भेदों से होता है तदनुसार ही शूल का प्रथम और मुख्य कारक वायु होता है। वायु सामान्य की अपेक्षा स्थान और अङ्गावयव के अनुसार प्राणक्षेत्र में हृदय, फुफ्फुस, स्वर प्रणाली, शिर, कर्ण, नेत्र, नासा, कंठ, पार्श्व समाविष्ट होते हैं। अत उक्त अवयवों के शूल की चिकित्सा प्राण वायु प्रसादन, शमन, अनुलोमन तथा शूलघ्न द्रव्यों द्वारा सपादित करनी होगी।

उदानक्षेत्र में स्वर कंठ प्रणाली फुफ्फुस का समावेश होता है। वक्ष की मांसपेशिया अंसस्कन्धगत पेशियां विश्वाची शूल की चिकित्सा शूलघ्न द्रव्यों के साथ उदान प्रसादन, शमन, अनुलोमन द्रव्यों से सम्पन्न होगी।

समान क्षेत्र में पित्त प्रणाली समग्र पाचन सस्थान और उसके अङ्गावयव समाविष्ट होते हैं। अत समानक्षेत्र के शूल रोगों में शूलघ्न चिकित्सा के साथ समान प्रसादन शमन-अनुलोमन द्रव्यों द्वारा सपादित होगी।

व्यानक्षेत्र में हृदय, रक्तवाहिनियों, पेशियों का आक्षेप, सकोच, जाड्यसहित अङ्गावयवों का समावेश होता है। अत आक्षेप, कम्प, सकोच, जाड्य सहित शूल के लिए शूलघ्न चिकित्सा के साथ-साथ व्यान प्रसादन, शमन, अनुलोमन द्रव्यों का प्रयोग अपेक्षित है।

अपानक्षेत्र में वस्ति, गर्भाशय, गवीनी, वृक्क, मूत्राशय, पुरीषाशय, गुद, मेढ्र-मुष्क, वंक्षण का ग्रहण होता है। अपानज शूल में शूलघ्न चिकित्सा के साथ अपान प्रसादन, शमन, अनुलोमन औषधि प्रयोज्य है।

उक्त क्रमानुसार यदि शूल के प्रत्येक रोगी का विचार कर आयुर्वेदीय चिकित्सा और वैकारिकी का निर्धारण करने का अभ्यास करें तो कोई कारण नहीं कि शूल रोग या लक्षण सम्बन्धी किसी भी आत्ययिक दशा की उपस्थिति में हम आयुर्वेदीय विधियों से प्रत्येक रोगी को त्वरित और निरापद लाभ पहुचाने तथा रोग और विकृति विज्ञान की आयुर्वेदिक परम्परा को प्रतिसंस्कृत करने की ओर अग्रसर न हो सकें।

— पृष्ठ ५० का शेषांश —

वातज वेदना—तोदादयश्च वातज वेदना विशेषा भवन्ति।

सूचिभिरिव निस्तुद्यते, दश्यत इव पिपिलिकाभि, ताभिश्च समर्प्यत इव, छिद्यते इव शस्त्रेण, भिद्यते इव शक्तिभि, ताड्यते इव दण्डेन, पीड्यते इव पाणिना, घट्टयते इव नाराचया इति। सु सू १७

पित्तज वेदना—ओषदयाश्चात्र वेदना विशेषा भवन्ति।

दह्यते पच्यते इव चाग्निक्षाराभ्याम्, ओष चोष परिदाहाश्च भवन्ति, वृश्चिक विद्ध इव स्थानागता शयनेपु न शान्तिमुपैति इति॥ सु सू १७

कफज वेदना—कण्डवादयश्चात्र वेदना विशेषा भवन्ति॥

त्वक्परिपुटनम्, वर्त्ताविवोदक सचरण, गौरवम्, मुहुर्मुहुस्नोद, कण्डू मन्दवेदनता इति। —सु सू १७

इस प्रकार तीनों दोषों से अलग-२ प्रकार से वेदनाएं उत्पन्न होती हैं। शूल की परिभाषा हमने तीव्र वेदना से की है। अत तीनों दोषों की इन वेदनाओं में से जो भी वेदना तीव्र, अत्यधिक, असह्य होगी उसे शूल कह सकते हैं।

❀ शूल की शास्त्रीय व्याख्या एवं विवेचन ❀

वैद्यराज डा० रणवीर सिह शास्त्री आयुर्वेदाचार्य एम ए ,पी एच-डी , विद्या भास्कर, शास्त्री
व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, उत्तमा, वेदाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, विद्यावाचस्पति
सावित्री सस्थान, इन्द्रभवन, १/१३ पचकुइया मार्ग,, आगरा ।

—०★★★०—

वैद्य श्री रणवीरसिह जी शास्त्री अनेकों विषयो के ज्ञाता हैं। आ जिस विषय पर लेखनी उठाते हे उस पर सम्पूर्ण सफलता के साथ विषय की सा गी देते हे। यही तो आपकी विद्वता का द्योतक है। 'धन्वन्तरि' पत्रिका पर सदैव ही आपकी कृपादृष्टि रही है। आप जैसे परम विद्वानो द्वारा 'धन्वन्तरि' आपका कर्तृत्व पूरी जिम्मेदारी से उठाता है और जन समाज, वैद्य समाज को आप जैसे विद्वान आयुर्वेदज्ञ का मार्गदर्शन उपयोगी होता है। आपने यहा अनुकम्पा से 'शूल' पर सुन्दर विवेचन किया है। एव हमने आपका दूसरा लेख भी यहा सम्बद्ध किया है। मै आपका विशेष आभारी हू। इसी तरह आप भविष्य मे धन्वन्तरि की सहायता करेंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज



शूल रोग पर विहङ्गम विवेचन—

भारतीय दृष्टि मे साधारण विचार विमर्श के पश्चात् आत्मीय विचारो को शूल रोग पर प्रकट करना उचित प्रतीत होता है।

यह तो सर्व मान्यता हे कि आयुर्वेद (अष्टाङ्ग) का उदय वेदो के प्राकट्य के साथ ही हुआ। आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद हो अथवा ऋग्वेद का दोनो ही वेदो मे आयुर्वेद के मूल सूत्र पर्याप्त मात्रा मे मन्त्रो के रूप मे मिलते है। मानवी सृष्टि के उत्पन्न होने पर ज्वर शूल आदि रोग भी पाञ्चभौतिक देहो मे प्रविष्ट हो गये, यथा—

"स्वाभाविकागन्तुक कायिकान्तरा रोगाभवेयु किल यम दोषजा" शारीरिक और मानसिक व्याधियो की आधारभूमि प्राणिमात्र की पाञ्चभौतिक देह है।

आलङ्कारिक रूप—पौराणिक गाथाओ के आधार पर विषय प्रतिपादन को रोचक बनाने के लिये अथवा गम्भीर वैज्ञानिक विवेचना करते हुए आयुर्वेद महर्षियो ने रोगो की उत्पत्ति व सम्प्राप्ति मे पूर्व कथा प्रसङ्गो का उल्लेख किया हे यथा—ज्वर,यक्ष्मा, कुष्ठ, लूता विष, शूल आदि मे कथाओ का सन्निवेश हे।

शूल रोग का विवेचन—

सृष्टि की उत्पत्ति पालन व विनाश को करने वाले आदिदेवो के साथ शूल रोग का सम्बन्ध जोडना रोग की प्राचीनता व देवाधिदेव महादेव के त्रिशूल से उत्पत्ति दिखाकर शूल की उग्रता को प्रदर्शित करना है। कामदेव को नष्ट करने के लिए त्रिशूल का प्रयोग आसुरी या रजोगुणी व तमोगुणी शक्तियो पर दैवी शक्तियो की विजय दिखाना मात्र है। रजस्तमोमय विचारो व भावनाओ से अभिभूत प्राणी इन्द्रियवशग होकर मिथ्याहार विहार करता है। कल्याणकारी शिव मानव के दुर्विचारो पर अकुश रखते हुए दुर्भावनाओ व इच्छाओ का निवारण करते है। इस सतोगुणी प्रेरणा से वासनाये नष्ट होने की अपेक्षा देह के पालक रजोगुण समन्वित वैष्णवी विचारो ने ओत

प्रेरित होकर मिथ्याहार विहार करने में प्रवृत्त करती है, परन्तु जीवनधारी का पालक व पाचन केन्द्र उदर उस अपथ्य को पचाने व आत्मसात् करने में असमर्थ होकर अनिच्छा व प्रतिरोध की क्रियायें प्रस्तुत करता है।

अन्ततः वैष्णवी शक्तियों से बहिष्कृत मिथ्याहार विहाररूपी अपथ्यों से शूलरोग को उत्पन्न करता है, जिसमें पाचभौतिक देह पीडित होते हैं। इस प्रकार प्राणिसृष्टि के साथ शूलरोग का नित्य सम्बन्ध है। थोड़ी सी असावधानी से हृदय, पार्श्व, वस्ति, उदर, पृष्ठ और त्रिक प्रदेश में शूल प्रकट हो जाता है। इसमें दूषित वातदोष की प्रधानता है, अतः दोषों की विषमता से बचने के लिए मिथ्याहार विहार का परित्याग करें।

शूल शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है, शूल, पीडा, कण्टक, शंकु (खूंटा), त्रिशूल, कुन्त (भाला) शूली आदि। ये सारी वस्तुएं या उपकरण असह्य पीडादायक होने से शूल कहलाते हैं। सभी का स्वरूप और गुण तथा परिणाम भी समान होने से शूल संज्ञा सार्थक है।

शूल शब्द की निरुक्ति—

'शृणाति शूलयति वा रुजयति देहं, मानसं वा मानवानां प्राणिनां वा' जो शरीर व मन को व जीवधारियों को अत्यधिक पीडित करे उसे शूल कहते हैं।" "शूल रुजायां सघोषेच" भ्वादिगणी धातु पर समैपदी से पचाद्यच (आकृतिगण) अच् प्रत्यय होने पर शूलरूप निष्पन्न होता है। महर्षि पाणिनि के लिङ्गानुशासन के अनुसार (लोपध) और (नपुंसकम्) सूत्र के अनुसार लकारोपध शूल-मूल-फूल आदि शब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं।

आयुर्वेद में शूल शब्द—

शूल शब्द रोग विशेष के लिए आयुर्वेद शास्त्रों में अभिहित है जैसे शूल निदान परिणामशूल, मस्तकशूल, अन्नद्रवशूल, हृच्छूल, बस्तिशूल, शिरःशूल आदि।

शूल रोग की पूर्व सृष्टि—

हारीत संहिता, माधव निदान, योग रत्नाकर आदि वैद्यक ग्रन्थों में आलङ्कारिक रूप में शूलरोग की प्रथम उत्पत्ति दर्शायी गई है। हारीत संहिता आर्षकृत होने से मान्य व प्रामाण्य कोटि में है, वह गाथा निम्न है—

अनङ्गनाशाय हरस्त्रिशूलं मुमोचकोपान्मकरध्वजश्च।
तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य
भयार्दितो विष्णुतनं प्रविष्टः ॥१॥
स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा
प्रपात भूमौप्रथितः स शूलः।
स पंचभूतानुगतं शरीरं
प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥२॥

भावार्थ—शिवजी ने कामदेव को नष्ट करने के लिये बड़े कोप से त्रिशूल फेंका। उसको अपने ऊपर सहसा आते देख कामदेव विष्णु जी के शरीर में प्रविष्ट हो गया। विष्णु की हुंकार से मूर्छित होकर वह भूमि पर गिर गया और सर्वत्र प्रसरण पाकर पाचभौतिक प्राणदेहों में प्रविष्ट होकर देहों को दूषित करता है। यहां महर्षि ने शूल शब्द को पुल्लिङ्ग प्रयुक्त किया है, आर्षत्वात् समाधेय है।

इसी संहिता को आधार मान कर माधव निदान योग रत्नाकर आदि ग्रन्थों में उक्त श्लोकों का अवतरण किया है। महर्षि सुश्रुत ने भी शूल प्रकरण में शूल की निरुक्ति निम्न प्रकार लिखी है—

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्रा हि वेदना।
शूलासक्तस्यभवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥

अर्थात् खूंटे से फाड़ने के समान तीव्र पीडाएं जिस रोग में हों वह रोग शूल कहाता है।

शूल रोग आठ प्रकार का है—

(१) वातिक (२) पैत्तिक (३) श्लैष्मिक (४) सन्निपातिक अर्थात् त्रिदोषज (५) आमजन्य शूल (६) वातपित्तज शूल (७) वात कफज शूल (८) और पित्तकफज शूल। सभी निदान ग्रन्थों एवं चिकित्सा ग्रन्थों में उक्त आठ प्रकार का शूल रोग लिखा है। आठ प्रकार के शूलों में वायु की प्रधानता होती है।

अन्य शूल रोग—

स्थान व काल भेद से परिणाम शूल को उससे पृथक लिखा है। उसी प्रकार अन्नद्रव शूल भी पृथक् पठित है। चिकित्सा की सुविधा के लिए इनका अलग उल्लेख करना ही उचित प्रतीत होता है। वैसे वातपित्त कफ दोषों से उत्पन्न शूलरोगों में सभी शूल रोगों का अन्तर्भाव होता है। आधुनिक चिकित्सा पुस्तकों में प्राचीन परिपाटी अपनायी गई है।

शूल रोगो मे वायु की प्रधानता—

श्री माधवकार ने 'सर्वष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवन प्रभु' अर्थात समस्त शूल रोगो मे वायु की प्राय प्रधानता होती है। इस दोष का प्रकोप ही शूल की तीव्रता को बढा देता है। पित्तज और कफजशूल दोषो के कुपित होने पर भी बलवत्ता धारण नही करते है। वात दोष के संसर्ग और सहायता से ही दोनो प्रकार के शूल तीव्र हो जाते है। शास्त्रकारो ने पित्त और कफ को पगु बताया है वात के द्वारा ही इनका सर्व शरीर मे सचरण होता है यथा—

पित्त पगु कफ पगु पगवोमलधातव ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत ॥

इसके साथ साथ "रुजा नास्ति विना वातात्" वात दोष के प्रकोप के बिना देह मे पीडा नही होती, वेदना उत्पन्न करना प्रकुपित वात का स्वभाव है। शूल मे रुजाओ (वेदनाओ) का होना आवश्यक है।

आचार्य सुश्रुत ने सहिता के शारीर स्थान मे वातादि के गुणो का विशद विवेचन करते हुए पवन को देह का कर्ता, धर्ता, सचालक नियन्ता, अङ्ग प्रत्यङ्ग सचालक, सब धातुओ का पोषक, जीवन तत्वो का रक्षक आदि अनेक गुणगणो से युक्त देह का प्रभु ही सिद्ध किया है। जहा जहा शरीर के निर्माण मे वात धातु की प्रमुखता है उसी प्रकार सञ्चालन मे भी अप्रकुपित वात धातु की अनिवार्यता है।

वातज शूल का कारण एव स्वरूप—

शीतल पदार्थो, व्यायाम, व्यवाय, अध्वगमन, रात्रिजागरण, विरुद्ध अन्नपान का सेवन, शुष्क शाक मास आदि के अतियोग और मिथ्या योग से, मलमूत्रादि के वेगो के रोकने से, अधिक हसने और बोलने आदि वात प्रकोपी कारणो से प्रकुपित हुआ वातदोष हृदय, पार्श्वदेश, पृष्ठ, त्रिक व वस्ति देश मे शूल उत्पन्न करता है।

इसका प्रकोप—सायकाल वर्षाऋतु तथा अन्नपान के जीर्ण होने पर वायु के प्रकोप से होता है।

वातिक शूल मे—अपानवायु, मूत्र और मल का अवरोध होता है और इसमे सूचीविद्धवत् पीडाये व भेदन होता है। वातजशूल कभी शान्त होता है कभी प्रतीत होता है। इसमे स्नेहन स्वेदन तथा उष्ण स्निग्ध पदार्थो के सेवन से लाभ होता है।

पित्तजशूल मे—पित्तवर्धक अन्नपानो मिथ्या आहार विहार, क्षारादि तीक्ष्ण पदार्थो का उपयोग, मद्य सेवन, क्रोध-आतप-अग्नि सेवन आदि के अतियोग से पित्त का प्रकोप होकर नाभि प्रदेश मे भयङ्कर शूल प्राय दोपहर आधी रात और शरद मे उत्पन्न होता है। इसमे शीतोपचार तथा शीतल आहार विहार से शाति होती है। पित्त प्रकोप के कारण मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तृषा आदि पैत्तिक उपद्रव भी रोग के आक्रमण काल मे हो जाते है।

कफजशूल मे—आनूपमास, दूध के बने पदार्थ खोआ आदि कफवर्धक पदार्थो के सेवन से श्लेष्मा दूषित होकर आमाशय मे असह्य पीडा होती है। इसमे अरुचि, शिर का गुरुत्व, पेट मे भारीपन, आध्मान आदि उपद्रव होते है। इसका प्रकोप सूर्योदय, भोजन करने पर, शिशिर और वसत मे होता है।

त्रिदोषज शूल मे—विष सेवन व वज्राघात सम असह्य शूल सर्वदोष प्रकोप के कारण होता है। विद्वान वैद्य इसकी चिकित्सा न करे अथवा निषेध करके करे।

आमजशूल—अधिक गरिष्ठ व मीठे पदार्थो के सेवन से उदर मे आम दोष का सचय होकर आमजशूल उत्पन्न होता है। इसमे ऐंठन, वमन, अरुचि, अफरा आदि कफज शूल के जैसे लक्षण व उपद्रव उत्पन्न होते है।

द्वन्द्वज शूलो मे—उक्त दोष प्रकोप के अनुसार दो-२ दोषो के लक्षणो से युक्त जो शूल उत्पन्न होता है उसे द्विदोषज शूल कहते है। इसमे लक्षण व उपद्रव भी मिश्रित होते है।

आगे शूल रोगो का विवरण देते हुए शूल रोग की साध्यासाध्यता भी स्पष्ट की जा रही है—

एकदोषोत्थित साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते।
सर्वदोषोत्थितोघोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रव ॥ माधव ॥

अर्थ—एक दोष से उत्पन्न शूल साध्य, दो दोषो के प्रयोग से उत्पन्न कष्टसाध्य या याप्य और त्रिदोष से उत्पन्न अधिक उपद्रवो वाला शूलरोग असाध्य होता है।

शूल रोग के उपद्रव—

वेदना च तृषा मूर्च्छाद्यानाहो गौरवारुची।
कास श्वासश्च हिक्काच शूलस्योपद्रवा स्मृता ॥

अर्थ—देह के किसी भाग मे वा सर्वाङ्ग मे पीडा,

प्यास बेहोशी अफारा, गुरुता अरुचि, खासी, ग्वास और हिचकी ये शूल रोग मे उपद्रव होते है।

शूल रोग के साथ ही अन्य दो शूल रोगो का वर्णन–

(१) परिणाम शूल (२) अन्नद्रवशूल

शास्त्रकारो एव चिकित्सको ने चिकित्सा सौकर्य्य के लिये उक्त वातादि दोषो के न्यूनाधिक प्रकोप, काल, स्थान वेगो की भिन्नता से शूलरोगो को अनेक भेदो मे दर्शाया है। चिकित्सको की सुविधा व निदान सौकर्य के लिए दोनो शूलो के लक्षण भी सक्षेप मे दिये जा रहे है–

परिणाम शूल—वातकारक आहार विहार से प्रकुपित हुआ वलवान वायु कफ और पित्त को ढक कर परिणाम शूल रोग को उत्पन्न कर देता है।

जो वेदना भोजन के पच जाने पर उत्पन्न होती है उसे परिणामशूल कहते है, इस रोग मे वातादि अनुवन्धन से (१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) त्रिदोषज (५) वातपित्तज (६) वातकफज (७) पित्त कफज इन भेदो मे सात प्रकार का होता है। वातादि दोषो के प्रकोप के लक्षणो के समान ही उक्तभेदो के लक्षण भी मिलते है।

अन्नद्रव शूल—अन्न (भोजन) के पच जाने पर अथवा अजीर्ण रहने पर जो शूल उत्पन्न होता है तथा पथ्य और अपथ्य प्रयोग से भी एव उपवास करने पर तथा भोजन करने पर भी जो शान्त न हो वह अन्नद्रव शूल नामक रोग होता है। अन्नद्रव शूल मे तब तक रोग निवृत्ति नही होती, जब तक विकृत पित्त की वमन न हो जाय।

शूल रोगो के भेदो की सक्षिप्त चिकित्सा—

वातजशूल की स्नेहन स्वेदन से तथा स्निग्ध-अन्नपान और औषधि से चिकित्सा करनी चाहिए।

करञ्जादि चूर्ण—करञ्ज मज्जा, काला नमक, सोठ और हीग इनको समभाग मिलाकर चूर्ण वनावे और ४ माशे से ६ माशे तक उष्ण जल से रोग के बलावल को देख कर ३ या ४ मात्राये दे। इससे वातिक शूल शात होता है। इसके अतिरिक्त 'राजिकादि लेप' और 'हिग्वादि लेप' का प्रयोग भी शीघ्र लाभ करता है। हीग, काला नमक ४, १२ रत्ती शुद्ध अडी के तेल २ तोले मे मिलाकर दशमूल के क्वाथ से पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

पित्तज शूल चिकित्सा—इसमे गन्ने का स्वरस, परवल का पानी पिलाकर वमन करानी चाहिए। पश्चात शीतल रेचक औषधो से रेचन कराना चाहिए।

पित्तजशूल मे शतावरी स्वरस को (२॥ तोला) मधु शुद्ध १ तोला मिलाकर प्रात पीने से रोग नष्ट होता है।

आमले का स्वरस अथवा विदारीकन्द का स्वरस २॥ तोले, अगूरो का स्वरस २॥ तोले मिलाकर पीने से पित्तजशूल शात होता है। आमलकी रसायन ६-६ माशे नारियल का जल २-२ छटाक के साथ लेने से शीघ्र शाति मिलती है।

कफज शूल चिकित्सा—

त्रिलवणादि चूर्ण—पचकोल चूर्ण १ तोले हीग शुद्ध १ माशे, सेधा, काला और विड नमक २-२ माशे मिला कर दो वार ४-४ घटे के अन्तर से कदुष्ण जल से ले।

कफज शूल मे—कुमार्यासव, पिप्पल्यासव व शृङ्गवेरासव को २-२ तोले ३-३ घण्टे वाद पीवे।

त्रिदोषज शूल चिकित्सा—

शङ्ख भस्म तीव्र १ माशे, काला नमक ३ माशे, हीग १ माशे त्रिकटु चूर्ण ६ माशे मिलाकर उष्ण जल से पीने से त्रिदोष से उत्पन्न शूल भी शात होते है। यह शङ्खादि चूर्ण है। प्रत्याख्याय चिकित्सा करनी चाहिए।

आमज शूल प्रतिकार—इस शूल मे सर्व प्रथम आम निस्सारण कराकर कफज शूल की चिकित्सा करनी चाहिए। चित्रकादि क्वाथ, एरण्डादि क्वाथ (योगरत्नाकर शूलाधिकार) का प्रयोग करे।

द्वन्दज शूलो मे—विजौरे नीबू का स्वरस २॥ तोले, मधु १ तोले, यवक्षार ४ रत्ती मिलाकर पीने से द्विदोषज शूल शात होते है।

वडे नीबू का स्वरस ३ तोले, शुद्ध घृत २ तोले, हीग ४ रत्ती, काला नमक २ माशे मिलाकर कुनकुना पिलाने से शूल शात होते है।

सभी प्रकार के शूलो को नष्ट करने के लिए—

निम्न शास्त्रीय योगो का चिकित्सक के निर्देशन मे प्रयोग करे–हिग्वादिचूर्ण, क्षारादिचूर्ण, शङ्खवटी, सूर्यप्रभा वटी, शूलगजकेशरी रस, महाशखवटी, शखद्राव, क्रव्यादि रस, नारायण चूर्ण, हिग्वाष्टक चूर्ण, मातुलुङ्गादि घृत,

अग्निकुमार रस, राजवल्लभ रस आदि शूलनाशक योगों का यथासमय प्रयोग करे।

परिणामशूल चिकित्सा—

शम्बूक भस्म १-१ माशे उष्ण जल में दें, तत्काल लाभ होता है।

शम्बूकादि गुटिका—तारामण्डूर, शतावरी मण्डूर, शूलदावानल रस आदि औषधियों का प्रयोग करे।

अन्नद्रव शूल चिकित्सा—

इस शूल में पैत्तिक विकारों को वमन द्वारा निर्हरण कर तथा आमलकी त्रिवृत से कोष्ठ शुद्धि करके आमले का चूर्ण ६ माशे, तारामण्डूर अथवा धात्रीलोह १-१ माशे मिलाकर आमलकी स्वरस या क्वाथ में शहद १॥-१॥ तोले मिलाकर सेवन करना चाहिए।

भैषज्य रत्नावली प्रतिपादित औषधियों के प्रयोग—

सूक्ष्मैलारिष्ट, वृहदविद्याधराभ्र, शूलराजलोह, त्रिपुरभैरवरस, शूल वज्रिणी वटी, सप्तामृत लोह, नारिकेल लवण आदि योग सभी प्रकार के शूलरोगों को नष्ट करते हैं।

सिद्ध भेषज मणिमाला में—सोमनाथ रस, एरण्ड मेथिकागुडनिर्गुह, हल्दी, अजवायन ६-६ माशे, नमक ३ माशे इनके चूर्ण को ४ तोले घृत में पकाकर लें। दो या तीन करजफल की मिगी, काला नमक २ माशे मिला कर उष्ण जल से लें। काली मिर्च और शुद्ध कुचला की चना प्रमाण गोली सेवन करने से शूल नष्ट होता है।

रसतन्त्रसार में—धात्रीलोह, पार्श्वशूल हरयोग, पित्ताशय शूलहर योग तथा उदर शूल हर योग द्वारा शूल रोगों की चिकित्सा विहित है।

वैद्यक शिक्षा नामक ग्रन्थ में—शूल निर्वाण चूर्ण ३ माशे से ६ माशे तक उष्ण जल में सेवन करने से सभी प्रकार के शूल रोग नष्ट होते हैं। अन्नद्रव शूल में अम्ल पित्तवत् चिकित्सा करनी चाहिए।

शूलरोगी के लिये पथ्यापथ्य—

परवल, करेला, बथुआ, सजना, लशुन, एक वर्ष पुराना शालि चावल, अण्डी का तेल, गोमूत्र, उष्ण जल, बिजौरा नीबू का स्वरस, कूठ, समुद्रनमक और क्षार ये सब शूल रोग में हितकारी हैं।

उड़द आदि शिम्बीधान्य, मद्य, मैथुन, शीतलपदार्थ, धूप, जागना, क्रोध, शोक, अम्लपदार्थ, विरुद्ध अन्नपान, असमय भोजन व अध्यशन, रूक्ष, गुरु, कषैले पदार्थ, व्यायाम, मलमूत्रादि का वेग रोकना, इन सभी प्रकार के अपथ्यों को शूलरोगी को छोड़ देना चाहिए। वैद्यक शिक्षा (कविराज नगेन्द्रनाथ सेन संकलित) में अपथ्य—गुरुपाक द्रव्य, अधिक भोजन, सभी प्रकार की दाल, शाक, वटी मछली, दही, रूक्ष, कषाय, शीतल द्रव्य, अम्लपदार्थ, लालमिर्च, वेगावरोध एवं रात्रि जागरण शूलरोगी के लिये अपथ्य है। देशभेद से या प्रकृति और काल भेद से पथ्यापथ्य में परिवर्तन करना हितावह है।

आधुनिक शूलशामक औषधियों का दुष्प्रभाव—

वेदना शामक गोली या कैपशूल अथवा इंजेक्शन के प्रयोग से शूल तत्काल शांत हो जाता है। नहीं होता तो 'रोगी शूलार्त' दुगुनी या तिगुनी मात्राएं भी निःसंकोच ले लेते हैं और दुष्परिणाम की परवाह किये बिना ही शूल शामक औषधों को अमृत समझ कर रात दिन सेवन करते हैं। यहां तक कि इन आधुनिक औषधियों का बहुतों को व्यसन हो गया है जिसके बिना शूलार्त रोगी थोड़े समय तक भी चैन से नहीं बैठ सकता।

नशे के रूप में प्रयोग—

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक उन्नतिशील युग में—शिक्षित समाज विशेष कर शिक्षित छात्र छात्राओं में नशे की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। पूर्वकाल से चले आ रहे मदिरा, अफीम, गाजा, भाग, मदक, सुल्फा आदि नशीली चीजों से इनकी तृप्ति व सन्तोष नहीं हो रहा है। हिरोइन जैसी कैमिकल व कोकीन परिवार की नशीली वस्तुओं को सेवन करते हुए नहीं सन्तुष्ट हुए। पश्चात् कालान्तर में नशेबाजों की दृष्टि निद्राकारक वेदनाहर औषधों की ओर गई। इन व्यसनियों ने दयनीय परिस्थितियों में अपने बहुमूल्य जीवन को नये उल्लासमय और मिथ्या रंगरेलियों वाला बनाने को नया मार्ग अपनाया, जिसका अनुसरण शिक्षित समाज विशेष रूप से कर रहा है। जिनके वशीभूत होकर देश के होनहार युवावर्ग अपने जीवन के स्वर्णिम प्रकाश को अन्धतमस्का निशा में परिवर्तित कर

रहे है। आजकल भिन्न-२ कम्पनियो की अनेक प्रकार की वेदना नाशक औषधि बाजार मे उपलब्ध हो रही है।

वेदनाहर औषधो का जिनका प्रचलन सार्वजनिक हो गया है पान तम्बाखू के समान बिना विशेषज्ञ की सम्मति के हर कोई दूकान से मोल लेकर खा लेता है। इनका दिन प्रतिदिन प्रचार बढता ही जा रहा है। जनता उक्त वेदनानाशक औषधो को जीवनदायिनी औषधि समझने लगी है। परिणाम कालान्तर मे कुछ भी हो।

शूलशामक औषधो का दुष्प्रभाव—

शिर दर्द, कर्णशूल, दन्तशूल, मन्याशूल, प्रतिश्याय, ज्वर-सर्वाङ्ग, पीडा आदि मे क्रोसीन, ओवसाल्जिन, एना-सिन, एस्प्रो, प्रोविसवन, हेक्साबुटारिन, मेन्ट्रिडीन, सन्डौल आदि शूलहर औषधों के सेवन से थोडे समय मे तत्काल का शूल शात हो जाता है और दो चार घटे बाद पुन शूल ज्वर सर्वाङ्ग वेदना आदि उद्भूत हो जाती है। रोगी को पुन उत्थितशूल आदि की शाति के लिए शूल हर औषधि का कई बार अधिक मात्रा मे प्रयोग करना पडता है और शूलहर औषधो के प्रयोग के बिना रोगी को शान्ति नही मिलती।

१ शूलहर दवाओ के अति प्रयोग से हृदय दौर्बल्य, दिल की धडकन बढ जाना, घबराहट, कम्पन और हृदय शूल उत्पन्न होता है।

२ दोनो वृक्कों (गुर्दो) मे कार्य क्षमता नही रहती, कमजोरी, वृद्धि शोथ, फैलाव, व पीडा युक्त होकर अपना कार्य करना छोड देते है। गुर्दे खराब होने व फेल होने का कारण प्राय. उक्त दवाएं है।

३ शूलहर औषधियो के सेवन से मन्दाग्नि, दाह, विष्टम्भ, उदर शूल, गैस, आमजशूल, यकृच्छूल और अजीर्ण होजाता है। उष्णता और रूक्षता बढने से शिर शूल और भ्रम उत्पन्न होता है।

४ ये सभी दवाइया रक्ताणुओ की न्यूनताकर पाडुरोग पैदा करती है तथा एलर्जिक विकारो तथा उदर्द व शीतपित्त रोग उत्पन्न करती है। रक्तविकार भी उत्पन्न होता है। कण्डू स्फोट, दाह आदि चर्म रोग भी होजाते है।

५ वीर्य विकार, प्रमेह, निर्बलता, उत्साहहीनता, प्रस्वेद-श्वासातिरेक प्रदर गर्भपात, गर्भस्राव अनिद्रा आदि व्याधिया उत्पन्न हो जाती है। इन उपद्रवो को शूलहर दवाओ का दुष्परिणाम माना जाता है। जबकि रोगी शूलशामक औषधियो का सेवन कर रहा हो।

सावधानिया—

(अ) आपत्तिकाल मे असह्य शूल होने पर शूलशामक मेरिडीन जैसी दवाओं का प्रयोग किसी चिकित्सक या अनुभवी व्यक्ति की सम्मति से १ या २ गोली तक करे।

(आ) रोग शान्ति के बाद रोग के कारणो का परीक्षण करके रोग के उन्मूलन का उपाय औषधोपचार से करना चाहिए।

(इ) किसी नीम हकीम या केमिस्ट की सलाह पर शूलहर औषधियो का सेवन कभी नही करे।

(ई) शूलनाशक गोलियो के सेवन से यदि उष्णता रूक्षता जलन या चक्कर आवे तो तुरन्त दवा बन्द कर देनी चाहिए और दूध, मौसमी स्वरस, ग्लुकोज आदि का कई बार प्रयोग करना चाहिए।

(उ) किसी भी शूलहर का व्यसन नही होना चाहिए, अन्यथा वह आपके कीमती जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देगी।

(ऊ) स्वय चिकित्सक न बन कर किसी अभिज्ञ चिकित्सक से अवश्य सलाह लेकर दवा की मात्रा लेवे।

आवश्यक—शूलहर औषधि की मात्रा सभी को एक सी नही देनी चाहिए, आयु देश काल व रोग का बलाबल देखकर मात्रा निश्चित करनी चाहिए।

दुष्प्रभावो का निवारण—

एलोपैथिक मेडीसन के कुप्रभाव से पीडित रोगी जब कभी वैद्य के पास आता है तो वैद्य को उसके उपद्रवो को और कष्टो को त्रिदोष सिद्धान्त के आधार समझ कर उत्तम शीघ्र प्रभावकारी चिकित्सा करनी चाहिए, जिससे उपद्रव शात हो।

[१] शूलहर दवाओ का हृदय पर दुष्प्रभाव हो तो रोगी को मुक्तापिष्टी, प्रवालपञ्चामृत, प्रवाल पिष्टी, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, जहरमोहरा पिष्टी १ रत्ती से २ रत्ती तक कई बार छोटी इलायची व मधु मे चटावे। सिद्धौषधो मे मुक्तावलेह, जवाहर मोहरा, खमीरा मरवारीद खास को चटावे, हृदय पर पुराने शुद्ध घृत व कर्पूर की मालिश करे।

[२] यदि प्रदर दाह वृक्कविकार, मन्दाग्नि, मूत्र-विकार व रूक्षोष्णता हो तो आमलकी रसायन ३-३ माशे,

—शेषाश पृष्ठ ५७ पर देखे।

※ आयुर्वेदोक्त "शूल" → सामान्य विवेचन ※

आयुर्वेदाचार्य वैद्य प. ग. आठवले, भूतपूर्व प्राचार्य—आयुर्वेद महाविद्यालय नागपुर तथा बम्बई
B Sc., A M M, S, Dip. S M, D. Sc. Ay, राष्ट्र भाषा कोविद,
पद्मालय, ११६ दामोदर सोसायटी, बजाज नगर, नागपुर–१० (महा)

—✿—

वैद्य श्री आठवले जी महाराष्ट्र के विद्वान वैद्य है। आप बम्बई एवं नागपुर के आयुर्वेद महाविद्यालयो के भूतपूर्व प्राचार्य है। वर्तमान मे आयुर्वेद महाविद्यालय नागपुर मे M. D एव Ph D (Ayu) के मार्गदर्शक एव सचालक हैं। यहां आपने शूल' विषय पर सक्षिप्त मे विद्वता से सुन्दर विवेचन किया है। मै आपसे आशा करता हूँ कि इस तरह आप बार-बार 'धन्वन्तरि' माध्यम से वैद्य समाज को मार्गदर्शन देते रहेगे। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शूल की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे हारीत संहिता मे एक पौराणिक कथा वर्णित है। शंकर जी ने अपनी समाधि भंग होने से कुपित होकर कामदेव पर त्रिशूल फेका। वह जब पृथ्वी पर गिरा तब 'शूल' व्याधी की उत्पत्ति हुई। अतः त्रिशूल से उत्पत्ति होने के कारण ही इसे शूल कहा जाता है। वृद्ध सुश्रुत ने इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की है—

शंकु स्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राहि वेदना।
शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते॥

और वह जिस स्थान पर या स्थानगत हो उसके अनुसार व्याधि का नाम भी उदरशूल, पार्श्वशूल, हृत्शूल, अस्थि, कर्णशूल, वृक्कशूल, गवीनी शूल, वस्ति शूल इस प्रकार रखा जाना चाहिए। जिससे व्याधि निदान का स्पष्ट रूप से सामान्य जन को भी बोध हो सके। क्योंकि शरीरान्तर्गत विभिन्न सस्थान जैसे अन्नवह, प्राणवह, मूत्रवह, रसरक्तवह इसमे भी शूल नाम से अन्यान्य व्याधियो का बोध किया जाता है।

मनुष्य शरीर मे कार्यरत तीन दोषो मे से वात को ही शूल का जनकत्व प्रदान किया जाता है।

सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवन प्रभु। मा नि
वाताहते नास्ति रुजा, न पाक ······॥ सु सू १७-७
नर्ते रुजा वातमृते च पित्त पाक ···॥ ताडपत्र पाठ

गणनाथ सेन जी ने इसी वातजनित शूलोत्पत्ति का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया है—

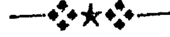
रसादिवहाना नाडीना प्रतानोद्वेजनोद्भवा।
सर्वेऽपि शूलास्तेनाहु शूलानामनिल प्रभु॥ गणनाथ सेन

इन पर से वातदोष ही शूल का कारण माना जाना चाहिए। फिर भी एक प्रश्न मन मे वह आता ही है कि क्या वात के अलावा अन्य दोष वेदना या पीडा को उत्पन्न नहीं कर सकते? सुश्रुताचार्य कहते है कि वातादि तीनो दोषो से अलग-अलग प्रकार की वेदनाये विशेष उत्पन्न होती है? जैसे—

—शेषांश पृष्ठ ४३ पर देखें।

शूल रोग विवेचन

आचार्य वेदव्रत शास्त्री वैद्य, कासगंज (एटा) उ० प्र०



लेखक महोदय 'धन्वन्तरि' के जाने माने वयोवृद्ध विद्वान वैद्य है। आप वर्षो से 'धन्वन्तरि' को अपनी पत्रिका मानकर निरन्तर सहाय प्रदान करते आ रहे है। आपने यहा कुछ शूलो का विवेचन देकर अनुभूत चिकित्सा का वर्णन किया है जो उपयोगी एव मार्गदर्शन सिद्ध होगा। इसी तरह आप अपना अमूल्य अनुभव देकर आयुर्वेद समाज को मार्गदर्शक देते रहेंगे— भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि आप सदा स्वस्थ रहें और आपको शतायु बनावें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

प्राचीन आर्य वैद्यक मे शूल रोग नाम से पृथक रोग का उल्लेख नहीं है। आचार्य चरक ने निदान चिकित्सा प्रकरण मे शूलरोग की पृथक सत्ता स्वीकार नहीं की है। इसी प्रकार सुश्रुत ने भी 'विना गुल्मेन यच्छूल गुल्मस्थानेषु जायते। निदान तस्य वक्ष्यामि रूपञ्च स चिकित्सितम्।" गुल्म स्थानजन्य शूल का विवेचन किया है। इसी प्रकार आचार्य वाग्भट ने भी गुल्म प्रकरण मे—

शूलानाहविबंधेषु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्।
निर्यूह चूर्ण वटिका· प्रयोज्याघृतभेषजै·॥

शूल के सम्बन्ध मे एतन्मात्र ही उल्लेख किया है।

माधवकार ने विस्तारपूर्वक शूल निदान का विश्लेषण सर्वप्रथम आयुर्वेद मे लिखा है। हारीत संहिताकार ने अनङ्ग नाश के लिए हरि के त्रिशूल प्रक्षेपण मे शूलोत्पत्ति का वर्णन किया है। परन्तु पाणिनि धातुपाठ के अनुसार "शूल रुजायां संघोषेच" धातु के अनुसार शूलति लोकान् (जनान्) क्योकि लोकस्तुभुञ्ने जने' के अनुसार अच् प्रत्यय करने पर शूल शब्द की निष्पत्ति होती है। इससे शारीरिक किसी भी अङ्ग की पीडा को शूल नाम का निर्देश प्राप्त होता रहा था।

माधवकार ने आमवात के उपरात शूल का उल्लेख किया है। मधुकोषकार ने प्रारम्भ मे लिखा है कि आमवातेऽपि शूलं भवति इत्यतः तदनन्तर शूल निदानम्। आमवात के विशिष्ट लक्षणो मे 'कुक्षौ कठिनता शूलं' का उल्लेख है। इससे पूर्व वात व्याधि से भी सन्धिगत कुपित वात के लक्षणो मे 'शूलाक्षेपौ करोतिच' का उल्लेख है।

इस प्रकार विवेचन करने पर विभिन्न प्रकार के शूलो की संख्या अधिक होती है। परन्तु यह सब रुजाकर होने के कारण शूल निदानान्तर्गत न होकर तत्तद् रोगो की विशेष अवस्था मे होने वाले शूल हैं। 'धन्वन्तरि' के सुयोग्य सम्पादक महोदय की प्रस्तावित सूची मे शरीरान्तर्गत विविध भागो मे होने वाले शूलों की एक सूची दी गई है। जिसमें विभिन्न रोगो मे होने वाले शूलो के अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियजन्य शूल एव प्रजनन संस्थान, मूत्र संस्थान तथा अन्त्र जन्य शूलो का भी उल्लेख है। इस तरह विद्वान सम्पादक ने शूल रोग को व्यापक अर्थ मे ग्रहण किया है। अत विभिन्न शूलो पर स्वीय चिकित्सानुभव का उल्लेख यहा करना आवश्यक समझ कर सर्व प्रथम शिरः शूल का उल्लेख किया जाता है।

शिर.शूल — ग्रीष्मऋतु मे आतप दग्ध पुरुष शिर.शूल से भयङ्कर रूप से परेशान होता है। उस समय केवल मुचकुन्द के फूलो को पीसकर मस्तिष्क पर चन्दन की तरह लेप लगाने से आराम हो जाता है। ग्रीष्म ऋतुजन्य शिर शूलो मे यह हमारी अनुभवजन्य चिकित्सा है। शास्त्रीय निर्देश भी है।

'शिरोऽर्ति नाशयत्याशुपुष्पवामुचुकुन्दजम्' कभी-कभी इसमे काली मिर्च मिलवा कर भी लेप कराते हैं। निशा शूल हो तो इसमे कूठ भी मिलवा देते हैं।

शरद ऋतुजन्य शूलो मे बादाम पेया अधिक लाभकारी है। यथा—बादाम ३ नग, मुनक्का ६ नग, कालीमिर्च ११ नग, बडी इलायची १ नग, दाना पोस्त २५-३०

दाना सबको भिगोकर स्वच्छ कर चकला पर पीस कर ५० ग्राम पानी मे चाय की चलनी मे छान लो। इसमे १२ ग्रा घृत, १२ग्रा चीनी मिलाकर आच पर गर्म करो। जब जलांश जल जाय तब रोगी को पिला दो और ऊपर से दूध पिला दो। यदि अधिक दिन का हो तो रक्तमुक्ता चतु पिष्टी १ ग्राम चटाकर इसे पिलाओ। नाक मे घी एव केशर घिसकर भी टपकाना हितकर है।

आमाशय शूल—

पीपल छोटी, पीपलामूल, चव्य, चीते की छाल, सोठ ५-५ ग्राम लेकर १५० ग्राम पानी मे पकाओ। जब ५० ग्राम शेष रहे तब उतार कर यदि पित्ताधिक्य हो तो चीनी, कफाधिक्य मे मधु, वाताधिक्य मे सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर पिला दो। निश्चय लाभ होगा। बहुत से रोते हुए रोगी इसे पीकर स्वस्थ हुए है। यथा—

पिप्पली चव्य विश्वाह्वपिप्पलीमूल चित्रकैः।
पचकोलमितिख्यात रुच्य पाचन दीपनम्।
आनाह प्लीहगुल्मघ्न शूल श्लेष्मोदरापहम्॥

इतना लिखने के बाद स्मरण मे आया कि ऐसा कोई रोग नही है जिसमे शूल (रुजा पीडा) न होता हो। अत चिकित्सको के लाभार्थ कुछ रोगो का भी वर्णन किया जाता है।

वात ज्वर—

शूलाध्मानेजृम्भण च भवन्त्यनिलजे ज्वरे।

अर्थात् शूल, आध्मान, जमाई वातज्वर मे होता है।

अन्तर्वेग ज्वर मे—

सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोष वर्चोविनिग्रह।

अन्तर्वेग ज्वर मे सन्धि,अस्थि मे शूल, पसीना न आना और पाखाना पेशाब का रुकना होता है।

असाध्य ज्वर मे—

हृदि सघात शूलवन्—अर्थात् हृदय मे सघातवत शूल हो तो रोगी असाध्य है।

आमातिसार मे—

शूलोपेत षष्ठमेन वदन्ति।

छठवा अतिसार शूल युक्त होता है।

असाध्य अतिसार मे—

तृष्णा दाहतम श्वास हिक्का पार्श्वास्थि शूलिनम्।

अर्थात् तृष्णा दाह, अन्धकार श्वास, हिक्का और पार्श्व अस्थि मे शूल हो तो अतिसारी त्याज्य है।

वृद्ध पुरुष मे अतिसार के साथ निम्न लक्षण हो तो वह असाध्य है।

श्वास शूल पिपासार्ति क्षीण ज्वर निपीडितम्।
विशेषण नर वृद्धमतीसारो विनाशयेत्॥

अर्थात् श्वास शूलादियुक्त नर को अतिसार विनाश करता है।

प्रवाहिका मे भी—

प्रवाहिका वातकृता सशूला।

वातकृत प्रवाहिका शूलसहित होती है।

घटीयन्त्र रोग मे भी—

स्वपतः पार्श्वयोर्शूल गलज्जलघटध्वनि
त वदन्ति घटीयन्त्रम्।

सोते समय घडे में से गिराये जाने वाले जल की ध्वनि के साथ पार्श्व मे शूल हो तो वह असाध्य ग्रहणी रोग के अन्तर्गत घटी यन्त्र रोग होता है।

रक्तार्श मे—

कट्युरुगुद शूलं च दौर्बल्य यदि चाधिकम्। तत्रानुबन्धो वातस्य॥ यदि रक्तार्श मे कटि, उरु, गुदा मे शूल हो तो वात का अनुबन्ध समझ कर चिकित्सा करनी चाहिए।

अर्श के असाध्य लक्षणो मे—

शोथो हृत्पार्श्व शूलं चॉयस्यासाध्योर्शसोहि स.।

जिसके—हृदय, पार्श्व मे शूल हो वह अर्श रोगी असाध्य है। इसके साथ ही तृष्णा, अरोचक शूल वाला भी असाध्य है।

अजीर्ण मे—

विष्टब्धे शूलमाध्मान विविधा वात वेदना।

विष्टब्धाजीर्ण मे शूल और आध्मान के साथ अनेक प्रकार की वातजन्य वेदनायें होती हैं।

विसूची मे—

मूर्च्छाऽतिसारो वमथु. पिपासा, शूलोभ्रमोद्वेष्टनजृम्भ दाहा

विशूचि मे मूर्च्छा, अतिसार, वमन, पिपासा, शूल, भ्रम, ऐंठन, दाह होता है।

क्रिमि—

ज्वरो विवर्णता शूल—कृमिरोग में ज्वर, विवर्णता और शूल का होना आवश्यक है।

क्षय रोग में—

स्वरभेदोऽनिलात् शूल—स्वरभेद वायु से शूल राजयक्ष्मा रोग में होता है।

वातिक कास में—

हृच्छाव मूर्धोदर पार्श्वशूली—हृत्प्रदेश में शंख स्थान में मूर्धा में उदर में और पार्श्व में कास रोग में शूल होता है।

कास के असाध्य लक्षणों में भी—

स गात्र शूल ज्वर दाह मोहान् प्राणक्षय चापि लभेत कामी। वाला रोगी त्याज्य है।

श्वासरोग में—

प्राग्रूप तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेवच।

श्वास रोग के प्रारम्भ में ही हृत्पीडा और शूल आध्मान होता है।

त्रिदोपज अरोचक में—

हृच्छूल पीडनयुतं—कहा है।

त्रिदोषज छर्दि में भी—

शूलाविपाका—शूल एवं अविपाक होते हैं।

क्रिमिज छर्दि में —

शूलं हृल्लास बहुला—अर्थात् शूल और मुख में बार बार पानी भर आना क्रिमिज छर्दि में होता है।

आमवात में —

कुक्षौ कठिनता शूलम्—होता है। इसी आमवात निदान के पश्चात् माधवकार ने शूल निदान नामक निदान का विवेचन किया है।

शूल विध्वंसक कुछ रस—

(१) शुद्ध सुहागा, शु० पारद, शु० गन्धक, त्रिफला त्रिकटु, रस माणिक्य, शु० वत्सनाभ, ताम्र भस्म और शु० जयपाल सबको समभाग लेकर कज्जली कर उसके साथ भांगरे के रस में ३ दिन मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बनावें। मात्रा १ गोली अनुपान आर्द्रक स्वरस—उपयोग सर्व शूलों पर।

(२) शूल गजकेसरी—शु० कुचला का चूर्ण २० ग्राम उसमें पीपल छोटी, पीपरामूल, मिर्चकाली, सोंठ, वच, वेलगिरी, हर्र का छिलका, कंजा की मींग, सज्जीखार जवाखार, पाचों नमक, शु० गन्धक प्रत्येक १०-१० ग्राम भुनी हींग, सुहागा, शु०, अजवायन २०-२० ग्राम लेकर पीसकर अदरख के रस में घोटकर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। मात्रा १ गोली गर्म जल या दूध से। उपयोग सर्व शूलों पर।

(३) पथ्यादि वटी—बड़ी हरड का छिलका, भुना सुहागा, सोंठ, भुनी हींग, कालीमिर्च, चित्रक की छाल, विडनमक, शु० गन्धक, सैंधव सब बराबर लेकर कूट पीस कर रखे और सबके बराबर शु० कुचला का चूर्ण मिलाकर अदरख और नीबू के रस की २-२ भावनायें देकर २ रत्ती की मात्रा में गोलियां बनालें। मात्रा १ गोली अनुपान उष्णोदक से, उपयोग—शूल, आध्मान, विबन्ध। गुल्म आदि को नष्ट करती है।

(४) पक्ति शूलहर योग—भुना सुहागा, रससिंदूर यवक्षार सबको समान भाग लेकर आर्द्रक स्वरस से तीन दिन मर्दन कर २ रत्ती की गोलियां बनाकर रखें। मात्रा २ रत्ती। अनुपान मधु से। पक्तिशूल को विनष्ट करता है।

(५) लौह गुटिका—लौह भस्म ३६ ग्राम, त्रिफला मिलित ३६ ग्राम को कूट पीसकर रखे। आधा किलो गोमूत्र में १५० ग्राम गुड डालकर चाशनी बनायें। जब चाशनी ३ तार की बन जाय तब चूर्ण उसमें डालकर ३ ग्राम की मात्रा में गोलियां बनायें। मात्रा ३ ग्राम उष्णोदक या दुग्ध। उपयोग—परिणामशूल में लाभकारी है। मण्डूर को डालकर मण्डूर वटिका का निर्माण किया गया है। वह भी लाभ करती है।

(६) भीम मण्डूर—यवक्षार, पीपल छोटी, सोंठ, वेर की मज्जा, पीपरामूल, चीते की छाल ५०-५० ग्राम लेकर पीसकर तैयार रखो। फिर कडाई में मण्डूर १ प्रस्थ और गोमूत्र ८ प्रस्थ लेकर चूल्हे पर चढा दो। जब आधा गोमूत्र जल जाय तब इस चूर्ण को डालकर मन्द-२ अग्नि से पकाओ। जब गाढ़ा होने लगे तब ५-५ ग्राम की वटिका बना कर रखलो। मात्रा ५ ग्राम, बच्चे को १ ग्राम अनुपान मधु। उपयोग—परिणाम शूल को नष्ट करने में अच्छा एवं सरल योग है।

—❖❖❖—

※ शूल–रोगानुसार शूल लक्षण पर विहङ्गावलोकन ※

एवं विशिष्ट अध्ययन

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, बी०ए०एम०एस०
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, गावर कुण्डला (भावनगर) गुज

—*❖*—

शूल के अनेक नाम व पर्याय है। संहिता ग्रन्थों मे रोगानुसार शूल के अलग-२ नाम दिये हैं, जो आश्चर्यजनक है। मैंने यहाँ रोगानुसार "शूल" का विश्लेषण किया है, इसमे क्रमानुसार रोग मे अलग-२ प्रकार के शूल देने जाते है। इनके नाम व पर्याय देना उचित मान कर वर्णन किया है। शूल के अनेक पर्याय मे ऐसा तात्पर्य होता है कि व्याधि विनिश्चय मे स्पष्टता से निदान हो सके, इसका विचार ऋषि-मुनियों के मन मे होगा। कर्तनवत पीडा, चमिचिमान्विता, अधिकव्यथा, पिडयते, शूल, रुजा, दुःख व्यथा तोद, भेदन, विदिर्यते, परिकर्तिका, अङ्गमाद, अङ्गमर्द, कृच्छ, उद्वेष्टन, मदनम्, अवसाद, जडता, भिद्यते, रुक्, वलम्, श्रम, सूचिवत्, वृश्चिकवत्, पिपिलिकावत्, अर्दित, आर्त्ति, ग्रह इत्यादि अनेक नाम शूल के माने गये है। अलग-२ व्याधि मे अलग-२ नाम व पर्याय मिलते हैं। मैंने यहा सिर्फ भाव प्रकाश मध्यम खण्ड का सन्दर्भ लिया है। इस पर विद्वानो का, मार्गदर्शन मान्य होगा।

१ ज्वर—	सन्ताप, सर्वाङ्ग ग्रहण, अङ्गमर्द
आगन्तुक ज्वर—	तोद
विषम ज्वर—	शिरोरुक
काम ज्वर—	हृदय वेदना, अङ्गमर्द
विषम ज्वर—	त्रिकग्रह, शिरो ग्रह, सर्वाङ्ग ग्रह
धातुगत ज्वर—	सदन, पिण्टकोद्वेष्टन, भेदोस्थनाम्
जीर्ण ज्वर—	स्तब्धाङ्ग
२ अतिसार—	हृन्नाभिपाश्र्वोदरकुक्षितोद, सरुक्, मन्दवेदनम्
३ प्रवाहिका—	सशूला
४ ग्रहणी	सरुजम्, दुःख, पार्श्वोरूवक्षणग्रीवारुगभीक्ष्ण, हृत्पीडा, परिकर्त्तिका, हृदय-मन्यते, स्तब्धमुदर, सकटिवेदनम्, मन्द वेदनम् पार्श्वशूल
५. अर्श—	सदियसाद, पार्श्वार्त्ति प्रसक्त्या-चोदरस्य
	कटिवङ्क्षगुदशूल, चिमिचिमा-न्विता, अधिकव्यथा पिडयते द्रुमे कर्षणवत्पीडा, कृच्छ, शिरो-जाडय हृत्पार्श्वशूल, अङ्गाग्ग् तोद
६ अजीर्ण—	शूल, वातवेदना अङ्गपीडनम्
विसूचिका	सूचीभिरिव गात्राणि तुदनम्, शूल उद्वेष्टन, हृदयेरुज, शिरसश्चभेद
७ कृमि—	शूल, मदनम्
८ पाण्डु—	गात्रसाद, तोद वलम, अङ्गमर्द
९ रक्तपित्त—	मदनम्, हृत्पीडा, कोष्ठस्यभेद
१० अम्लपित्त—	वलम्, शिरोरुजा, चिमिचिमि गात्रावसाद शूलानि, जडता
११ क्षय—	अङ्गसाद, अङ्ग-पार्श्वशूल, शूल, मेढ्रवृषणवेदना,
१२ उरःक्षत—	उरोविरुज्यते, भिद्यते, प्रपीडयते, उरोरुक्
१३ कास—	कण्ठव्यथा, हृच्छखपार्श्वोदरमूर्द्ध-शूली शिरोरुजा, विमग्नेनेवचो-रसा, सूचीवत् शूलिना, भेदनवत् पीडा, पर्वभेद, गात्रशूल
१४ हिक्का—	मर्माणि पीडयन्ती
१५. श्वास—	हृत्पीड़ा, शूल, शखनिस्तोदे अर्दित मर्मच्छेदरुजार्दित, पार्श्वशूल, अरति
१६ अरोचक—	हृत्शूल
१७ छर्दि—	अङ्गमञ्जन, हृत्पार्श्वपीडा शीर्षनाभ्यर्ति, तोद
१८ तृषा—	सन्ताप, शख शिरस् तोद, रुक् हृत्पीडा, हृच्छूल

१९ मूर्छा— हृत्पीडा, अङ्गमर्द, हृत्पीड़ा श्रम-क्लम

२० मदात्यय— शरीर दुःख, हृदयव्यथा, शिर पार्श्वास्थिसन्धाना-वेदना, श्रम, उरोविबन्ध, त्रिकग्रह, पार्श्वशूल हृद्गात्रतोद, शिरोरुज,

२१ शिरोग्रह— सवेदना

२२ अर्दित— ग्रीवाचिबुकदन्ताना पार्श्वे वेदना, व्यथा, शूल

२३ बाहुशोष— सवेदन

२४ प्रत्यष्ठीला— रुजायुक्ता,

२५ तूनी— वेदना, भिन्दती

२६ प्रतितूनी— वेदना

२७. त्रिकशूल— पीडा

२८ गृध्रसी— रुक्, तोद

२९. क्रोष्टुकशीर्ष— महारुज

३० वातकटक— रुक्पाक

३१ अपतन्त्रक— हृदयम् पीडयन, शिर शंखौ पीडयन

३२ सर्वाङ्गवात— वेदना

३३ धातुगतवात — तीव्ररुजा, सरुक्, मन्दरुजा, सन्धि शूल दण्डमुष्टिहतरुज, रुक्, पीडा

३४. कोष्ठगतवात— पार्श्वशूल,

३५. आमाशयगतवात— हृत्पार्श्वोदरनाभीरुग्

३६ पक्वाशयगतवात— शूल, त्रिक्वेदना

३७ गुदागतवात— शूल,जघोरुत्रिकपार्श्वासिपृष्ठवेदना

३८ शिरागतवात— शूल

३९ स्नायुगतवात— शूल

४० सन्धिगतवात— शूल

४१. उरुस्तम्भ— जघा, ऊरु सदनम्, पाद सदनम् दाहवेदना, पादव्यथा, अरति तोद

४२ आमवात— स्तब्ध गात्रता,सरुज शोथ,वृश्चिक दंशवत् वेदना, शूल, हृद्ग्रहम्

४३. वातरक्त— क्षतेऽतिरुक्,सदनम्, तोद, सन्धिरुक् शूल, शिथोऽतिरुक्, पीडा,

४४ शूल रोग— शूल, तोद

हृदयशूल— हृच्छूल

पार्श्वशूल— सूचीवत् तोद

मूत्राशयशूल— शूल

पित्तशूल— शूलम्

कफशूल— सदनम्, भुक्ते रुजम्

सूर्योदयेऽथशिशिरेकुसुमागमे अनिमात्र रुजा

सान्निपातिकशूल— मुक्राष्टम् शूल, विषवज्रकल्प,

आमशूल— शूल,अतिवेदना

परिणाम शूल— अरति, पक्तिशूल

अन्नद्रवशूल— जीर्णेजीर्यतिचाप्यन्न-शूलम्

४५. उदावर्त—

अपानवेग— क्लम्, रुजा

पुरीष वेग— आटोपशूल, परिकर्तिका,

मूत्रवेग— शूल, शिरोरुजा, विनाम (व्यथा)

जृम्भावेग— तीव्र शूल

अश्रुवेग— शिरोगुरुत्वम्

क्षवथु वेग— मन्या-शिर शूल

उद्गारवेग— तोद

मूत्रवेग— रुजा

क्षुधा वेग— अङ्गमर्द

तृष्णावेग— हृदये व्यथा

निद्रावेग— अङ्गमर्द

श्वास वेग— हृदय शूल

४६ आनाह— आमाशयशूलम्, पुरीषमूत्रेशूल

४७ गुल्म— पक्तिशूल, स्थान सस्थानरुजाम् जीर्णेऽत्यधिक शूलम्, जीर्यते शूलम् स्पर्शासहम्

४८. यकृत्प्लीहावृद्धि— क्लम् मन्दव्यथा, उदावर्तपीडा वेदना

४९ हृदयरोग— हृदि बाधा, आयम्यते, तुद्यते, निर्मथ्यते, स्फोटयते, पाट्यते, तोद, शूलम्

५० मूत्रकृच्छ्र— मूत्रस्य मार्गे परिपीडयन्ति, नीरुग् वातशूलम्, वङ्क्षणमेहनशूल-हृत्पीडा, शूल

५१. मूत्राघात—

वातकुण्डलिका— सवेदन, सरुजम्,

वातवस्ति— निपीडित
मूत्रजठर— तीव्रवेदनम्
मूत्रोत्सङ्गा— प्रवाहत सरुज
मूत्रक्षय— सरुग्दाहम्
वस्तिकुण्डल— शूल, दाहार्ता, उद्वेष्टणार्त्तिमान्
५२ अश्मरी— अतिरुक्, रुग्, अरति, वस्ति निस्तुद्यत, वस्तिरुजक् हृत्पीडनम्, रुजा
५३ प्रमेह— तोद, मुष्कावदरण, हृदयग्रह, शूल
५४ मेदवृद्धि— क्रथन
५५ उदररोग— सदनमङ्गानाम्, रुक्, पर्वभेद, अङ्गमर्द, तोदभेदउदरम्, सरुक-शब्दो अङ्गसदनम्, दारयति
५६ शोथ— आर्ति ,बहुरुजाकर
५७ वृद्धि— रुक्, अल्परुक्, सरुक् मुष्कपीडा, शूल
५८ गलगण्ड— तोदान्वित , मन्दरुज , रुज
५९ अपची— पार्श्वशूल
६० ग्रन्थि— आयम्यते, वृश्चति, तुद्यते, प्रभज्यते, मन्थति, भिद्यते, अल्परुज, सरुज,
६१ अर्बुद— मन्दरुजम्,
६२ श्लीपद— आर्तिशोथो, तीव्रवेदनम्, अनिमित्त रुज, अल्पवेदनम्
६३ विद्रधि— रुजा, अतिवेदनम्, अल्पवेदनम्
६४ व्रणशोथ— मन्दवेदनता, पिपीलिकागणेनेवदश्यते, छिद्यते, भिद्यते, ताड्यते, पीड्यते तुद्यते (सूचीवत्) अगुल्येवावपीड्यते, वृश्चिकविद्धवत्
६५ भग्न— तीक्ष्णपीडा, रात्रिभवा रुजा, नित्यरुजा, पार्श्वरुजा, तीव्ररुजा, अतिशूलम्, विषम रुज, रुजातिवृद्धि, व्यथावृद्धि, स्पर्शासहम् तोदशूला
६६ नाडव्रण— सशूला, सरुजा, नित्यरुजाम्
६७, भगन्दर— तोद, रुजा, आर्ति, मन्दवेदन
६८, उपदंश— सतोदभेदास्फुरणं रुजा
६९ लिङ्गार्श सवेदना
७० शूक दोष— वेदना, रुज
७१ कुष्ठ— तोद, अधिक शूल, तीव्रवेदनम् सवेदनम्, सशूलम् स्पर्शासहनम्, आर्ति सदाहार्ति
७२ शीतपित्त— देहसाद, तोद
७३ विसर्प— वातज्वरसमव्यथ , निस्तोद, भेद आयाम, आर्ति, कफज्वरसमानरुक्, व्ययेनाङ्ग, तीव्ररुक्, अङ्गभङ्ग,अग्निसदन, शिरोरुजा,अङ्गावसाद, अवदीर्यते, शोथज्वररुजा
७४ विस्फोटक — शिरोरुक्शूलभूयिष्ठम्,पर्वभेदनम्, रुजा, अङ्गमर्द, हृत्पीडा
७५ फिरङ्ग— अल्परुक्, आमवात इव व्यथाम्
७६ मसूरिका— गात्रभङ्ग, तीव्रवेदनया, पर्वभेद, अङ्गमर्द, मन्दवेदना, महारुज गात्रशूला, सवेदना, सन्तापा
७७ शीतला— व्यथायुक्ता
७८ क्षुद्ररोग— उग्ररुजानाम्, उग्रवेदनाम्, मन्दरुज तोद, सवेदनाम्, रुक्, तीव्रवेदनम् सरुजाम्,
७९ शिरोरोग— शिरसोरुजम्, शिरसोभिताप उग्ररुजा, गात्रावसाद, तुद्येत् निस्तुद्यते शिरोऽतिमात्रम्, सूर्योदय प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवोरुक्, सम्पाद्य गाढ स्वरुजा सुतीव्रम् तीव्ररुग्, वेदनाम्,शस्त्राशनिनिभा
८० नेत्र रोग— रुजावगाढा, शिरोऽभितापात्, विदीर्यते, रुजावान्, भिद्यन्ते, रुजावत्य, मन्दवेदना, तोदवमी, मन्दरुजा, अल्पवेदनम्, सवेदनम् रुज निस्तोद, शिरोभिताप, तीव्रवेदनम् उत्पद्यत, निर्मथ्यते, रुजाभिरुग्रा, रुजोऽति, सवेदना
८१ कर्ण रोग— कर्णशूल , वेदनम्,रुक्तीव्रा, तोद, अतिरुक्, स्वल्परुज, सरुज , रुजान्वित , रुजा

८२ नासा रोग— शिरसोऽभिपूर्णता, अङ्गमर्द, तोद, उरोघात प्रपीडित

८३ मुख रोग— तीव्ररुक्, सरुजा, वेदना, विदीर्यते, पीड्यते, रुजावान् परिपीड्यते, मन्दवेदनम्, तीव्रवेदन, महारुज, सदाहरुक्, दीर्घमाणेषु रुजा, रुजो, अनिमित्तरुजा, तोद तीव्ररुक्, मन्दवेदना, दीर्यते, भृशवेदना, मर्मच्छिदम्, अल्परुक्, सर्वरुज मुकष्टा, सदाहतोदम् सतोद,

८४ विषरोग— उद्वेष्टन, शिरोरुक्, हृत्पीडनम्, अङ्गमर्द, मर्मप्रधमन, वेदना, शूलम्, भृशार्तिमान्, सरुज, तोद, रुज, मन्दवेदना

८५ स्त्रीरोग— अङ्गमर्द सवेदनम्,

८६. योनिरोग— कृच्छ्रेण, ग्राम्यधर्मे रुजाभृशम्, शूल, निस्तोदपीडिता, वेदना

८७ गर्भस्राव, गर्भपात— सशूलम् पार्श्वशूल, पृष्ठरुक्,

८८ मूढगर्भ— शूलम्

८९. मक्कल— शूलम्

९०. सूतिकारोग— अंगमर्द, शूलम्

९१ बालरोग— कण्ठास्यरुजा, सरुजमनेत्रम् नाभि सरुजा, शिरोरुजाम्



— आधुनिक शूलशामक औषधियों का दुष्प्रभाव पृष्ठ ४९ का शेषांश

गोक्षुर चूर्ण १॥ माशे, प्रवालपिष्टी २-२ रत्ती मिलाकर अर्क सौंफ से तीन चार बार दे। इस प्रकार शूलहर दवाओं का दर्प शांत होता है।

[३] शूलशामक औषधों के प्रयोग मे यदि उदरशूल आमज शूल, यकृच्छूल वमन और अजीर्ण होता है तो अर्क पोदीना, अर्क सौंफ, अर्क अजवायन और अर्क गाजवान मिलाकर (चौरका) २॥-२॥ तो ३-३ घंटे बाद पिलायें।

[४] यदि पाडुरोग, शीतपित्त, उदर्द और रक्तविकार शूलहर दवा के दुष्प्रभाव से रोगी को पीड़ित करते हो तो अर्क उसवा महामजिष्ठादि अर्क मे चोपचीनी चूर्ण ३-३ माशे ले, मधु मण्डूर और सितामण्डूर ४-४ रत्ती झाऊ व फरास के अर्क से पीवे।

[५] यदि शूलघ्न दवाओ के प्रयोग से प्रमेह प्रदर निर्बलता, गर्भस्राव आदि की आशका हो तो शखपुष्पी व ब्राह्मी का शर्बत, गुडहल शर्बत, शर्बत अनार से रजतभस्म प्रवाल पिष्टी १-१ रत्ती दे तथा सत गिलोय ४-४ रत्ती दे। साथ ही मुसम्मी, सन्तरा, अनार, अनन्नास और सेव का स्वरस पिलावे।

[६] शूलहर औषधों का दुष्प्रभाव जिस देहाङ्ग पर हुआ हो और उसके उपद्रव उत्पन्न हो गये हो तो वैद्य को चाहिए कि ऐसे रोगी का तत्काल उपचार करे और देहाग पर दुष्प्रभाव को शीघ्र दूर करे। सबसे पूर्व हृदय और मस्तिष्क की रक्षा करे। ऊपर लिखे मोतीपिष्टी आदि योगों का सेवन करावे और शिर मे चन्दनादि तैल, गुल-रोगन, काहू और कद्दू का तेल, और कर्पूरादि तैल की कई बार मालिश करें।

[७] पथ्य सेवन—भोजन मे सुपाच्य—मूङ्ग की दाल, गेहूँ का दलिया, लौकी का साग, तोरई, टिंडे, परवल, पालक आदि का सेवन करावे, दूध, दही ताजा, नीबू की शिकञ्जी, दूध दही की लस्सी, देशी खाड का शर्बत, गुलाब खस, केवडा, ब्राह्मी, शखाहूली, गुडहल आदि का शर्बत, आमला, सेव का मुरब्बा उचित मात्रा मे वैद्य के परामर्श से दिलाते रहे। इस प्रकार आधुनिक शूलहर दवाइयों का दुष्प्रभाव शीघ्र ही दूर होकर रोगी शीघ्र स्वस्थ हो जाता है।



शूल → सामान्य परिचयात्मक विवेचन

वैद्या हरनीता ओझा आयुर्वेद भिषक्, तन्त्री–जन आरोग्य
जन आरोग्य क्लिनिक, पारकर वाडा, दाडिया बाजार, बड़ौदा (गुजरात)

-★❀★-



श्रीमती वैद्या हरनीता बहन ओझा गुजरात के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य श्री नवीन भाई ओझा की धर्मपत्नी हे। आप जन आरोग्य आयुर्वेदीय गुजराती मासिक पत्रिका की संचालिका व सम्पादिका हे। आप स्त्री रोग विशेषज्ञ हैं। आपके अनेको लेख 'धन्वन्तरि' एवं आयुर्वेद विकास मे प्रकाशित हुए है। यहा आपने 'शूल' विषय पर विशिष्ट निबन्ध दिया है, जो उपयोगी एवं मार्गदर्शक है। मैं आपसे नम्र निवेदन करता हूँ कि आप अपने व्यापक ज्ञान का लाभ 'धन्वन्तरि' द्वारा आयुर्वेद समाज को दें, साथ साथ 'धन्वन्तरि' की सर्वाङ्गीण मदद करें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य

विविध वेदना—

शूल अर्थात वेदना यह बात निश्चित होने पर भी यह वेदना एक प्रकार की नही होती। आयुर्वेद मे निम्न प्रकार से कई वेदनाओ का वर्णन किया गया हे—

१ काटा चुभने से जो वेदना होती हे।

२ काटने से जो वेदना होती हे।

३ करवती से वहुरने की जो वेदना होती है।

४ कोई दवाव डालने से जो वेदना होती है।

५ कोई पीसता हो और जो वेदना हो ऐसी वेदना।

६ कीडा काटकर खाता हो (कीटदश) ऐमी वेदना।

७ कोई चीज को छीला जाय ओर जैसी वेदना हो ऐसी वेदना।

८ कोई फाड कर चीर डालता हो और जैसी वेदना हो ऐमी वेदना।

६. खिसटने मे जो वेदना होनी है।

१० पछाड लगने से जो वेदना होती हे।

इस तरह अलग-२ प्रकार की वेदना का अनुभव व्यक्ति को होता हे। उसको आयुर्वेद की परिभाषा मे अलग अलग नाम दिये गये हे जैसे रुक्, तोद, भेद आदि।

शूल के अलग-२ दृष्टिकोण मे कई प्रकार हो सकते है। सबसे प्रथम दो प्रकार शारीरिक एव मानसिक हो सकते है। शरीर के किसी भी भाग मे वेदना हो उसे शारीरिक शूल कहते है। उसमे शिर शूल, उदरशूल, दन्त शूल आदि वेदना का समावेश होता है। किन्तु मानसिक शूल का ख्याल बहुत कम लोगो को होता हे। कोई दुःख कर घटना घटती हे तब हमको अमुख होता हे। यह घटना हमे शूलवत् चुभती है। उसे हम मानसिक शूल कहते ह। यह मानव को अस्वस्थ कर देता ह।

पाचनतन्त्र के आधार—हमारे उदर मे जो वेदना होती हे उसको दोष की प्रबलता के अनुसार वातज, पित्तज और कफज शूल ऐसे भेद होते है। यह तीनो शूलो मे वायु होता ही हे। साथ मे दूसरे दोष भी सलग्न होते हे। उपरात पाचनतन्त्र सम्बन्धित अन्य दो शूलो की गणना भी की गई है—अन्नद्रव शूल एव परिणाम शूल।

अ ग विशेष की दृष्टि से वेदना के दो प्रकार होते है—एकाग शूल ओर सर्वाङ्गशूल। शरीर के एक ही अङ्ग मे जो शूल होता है इसे एकाग शूल कहते हे। जैसे शिर शूल, दन्तशूल आदि। किन्तु जो वेदना सर्व शरीर मे एक साथ होती हे उसे सर्वाङ्गशूल कहते हे।

शूल के अन्य दो प्रकार भी है, निजशूल एव आगन्तु शूल। निज शूल अर्थात शरीर के अन्दर वातादि दोष प्रकुपित होने से जो होता है। जैसे उदर शूल कटिशूल

आदि। किन्तु बाहर के कारण जो वेदना होती है उसे आगन्तु शूल कहते हैं। गिर जाने से, मार पड़ने से, अकस्मात होने से जो पीडा होती है उसे आगन्तुशूल कहते हैं।

इसके अतिरिक्त कई रोगो के लक्षण स्वरूप भी शूल होता है जैसे ज्वर मे शिर शूल, अतिसार मे उदर शूल, कष्टार्तव मे पेडू का शूल आदि। यह शूल मूल व्याधि के शमन के साथ शान्त हो जाता है। इसे परतन्त्र शूल भी कहते है। ऐसे शूल की अलग से चिकित्सा नही करनी चाहिए। दूसरा शूल स्वतन्त्र भी होता है जैसे संधि शूल।

आयुर्वेद मे साम निराम तो होता ही है। आम के कारण जो वेदना होती है उसे सामशूल कहते है और दोष निराम होने पर भी रुकावट के कारण वेदना होती है तो उसे निराम शूल कहते है।

सामान्य चिकित्सा—

शूल एकदम होता है तब रोगी को अधिक परेशानी होती है। शूल से छुटकारा पाने के लिये आत्ययिक चिकित्सा मे काफी अर्थ, समय और शाति की बरबादी होती है। इस समय यहा बताई हुई चिकित्सा की जाय तो काफी लाभ होगा। आन्त्रपुच्छशोथ (एपेन्डिक्स की वेदना) की चिकित्सा इससे अलग होती है।

हम आगे देख आये है कि शूल का कारण वायु होता है। वात शीत अर्थात ठडा है। शीत के कारण वायु बढता है और जैसे वायु बढता है वैसे वेदना भी बढती है। इस वायु को नियन्त्रण मे रखने के लिए उष्णोपचार करे।

तैलाभ्यङ्ग–आयुर्वेद मे तीन दोषो का निरूपण किया है। उसमे वायु के शमन के लिए तेल का निर्देश किया है। क्योकि तैल उष्ण है। वायु की शीतलता को हटाता है। तैल सूक्ष्म भी है। वायु सूक्ष्म स्थानो मे जाकर बैठा हो उसका पीछा तैल कर सकता है। अत वातशमन के लिये तैल सर्वश्रेष्ठ है। जहा भी वेदना होती हो वहा तैलाभ्यङ्ग से फायदा होता है।

स्वेदन—

अकेले तैलाभ्यङ्ग से लाभ नही होगा जितना स्वेदन के साथ होगा। स्वेदन उष्णोपचार है। वह स्रोतसो को विस्तृत करता है। जिससे तैल अधिक दूर तक जा सके। तैलाभ्यङ्ग के बाद स्वेदन अवश्य करना चाहिए। स्वेदन निम्न तरीके से किया जाना चाहिए—

१ कपड़े के गोटे को अग्नि पर उष्ण करके उससे सेक किया जाता है।

२ बालुका को अग्नि पर गरम करके उसकी पोटली बनाकर सेक किया जाता है।

३ ईट को गरम करके उससे स्वेदन करना चाहिए।

४ हाटवाटर बेग मे उष्णोदक भरकर स्वेदन कर सकते है।

५ इलेक्ट्रिक बल्ब, हीटर आदि से भी सेक किया जाता है।

६ उष्ण जल की धारा से स्वेदन हो सकता है।

७ बाष्प से स्वेदन करने का अच्छा तरीका है। उसके विविध प्रकार है।

८ उष्णोदक मे वेदनाग्रस्त भाग को रखकर स्वेदन कर्म हो सकता है।

९ टब बाथ से भी स्वेदन हो सकता है।

१० धूप मे बैठकर भी स्वेदन होता है।

११ हवा न लगे ऐसे बन्द कमरे मे बैठकर भी स्वेदन हो सकता है।

लेप उपनाह—लेप और उपनाह एक प्रकार का सेक ही है। वेदनाग्रस्त स्थान पर लेप लगाकर वेदना कम की जा सकती है। उसमे से कई लेप एव उपनाह निम्न प्रकार है–

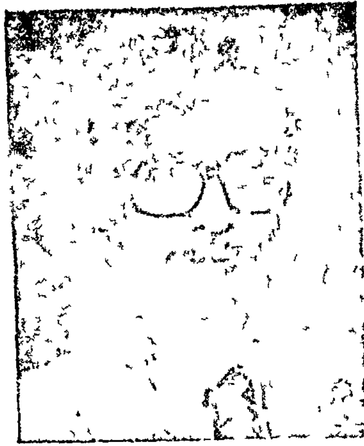
१ राजिका को पीस कर लेप किया जाता है।

२ दशांग लेप, वातघ्न लेप, अस्थि-सधानक लेप आदि प्रचलित शास्त्रोक्त लेप उपयोगी है।

३ माष सैंधव जैसे उपनाह भी शूल मे लाभकर सिद्ध हुए है।

अग्नितुण्डी वटी–वेदना मे अधिक कारगर औषधि अग्नितुण्डी वटी है। रोगानुसार उसकी मात्रा कम ज्यादा कर सकते है। सामान्यत २-२ गोली ३ बार पानी के साथ दे सकते है। वेदना अधिक हो तो दिन मे ३ से अधिक बार भी अग्नितुण्डी दे सकते है। अग्नितुण्डीवटी मे कुचला अर्थात विषतिन्दुक होता है। आधुनिक विज्ञान मे इसे नक्स वोमिका कहते हैं। अग्नितुण्डी जैसी कुचले के अन्य दो औषधिया नवजीवन रस और विषतिन्दुक वटी लाभकर है।

—शेषांश पृष्ठ ७० पर देखें



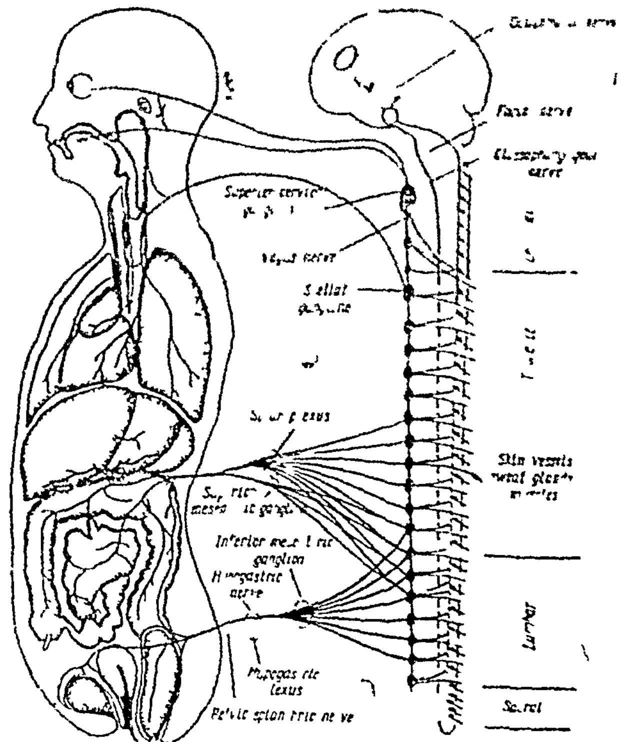
विभिन्न वेदनाओं का उद्भव, ग्रहण, एवं नैदानिक महत्व

डा० शिवनारायण गुप्ता एम डी (आयु०)
रीडर—जे० एस० आयुर्वेद महाविद्यालय,
नडियाद (खेडा) गुज०



वेदना नाडी तन्त्र के संज्ञावह तन्त्र का कार्य है। वेदना के ग्राहक (रिसेप्टर्स) त्वचा और आन्तरिक अवयवों में उपस्थित होते हैं इन्हें नोसीसेप्टर्स कहा जाता है। ये विशिष्ट संज्ञावह (सेन्सरी) नाडी सूत्रों की शाखायें प्रशाखायें होती हैं। ये वेदनाग्राही संज्ञावह नाडी सूत्र सोमेटिक एवं विसरल नाडियों के साथ गमन करते हैं। सेन्सरी फाइबर्स सुषुम्ना के पश्चामूल (पोस्टीरियर रूट्स) से से प्राय प्रवेश करते हैं। कुछ अग्रमूल से प्रविष्ट होकर फिर पश्चमूल की ओर जाते हैं। शिर के सूत्र कुछ शीर्षण्य नाडियों द्वारा ब्रेन स्टेम में पहुचते हैं। वेदना ग्राही सूत्र (पेन फाइबर्स) दैर्ध्यानुसार दो प्रकार के होते हैं।(१) लघु तथा अनमाइलीनेटेड—इनकी संचार गति अल्प होती है। इन्हें 'सी' सूत्र कहते हैं। (२) दीर्घ सूत्र जो अधिक संचार गति वाले होते हैं 'ए—डेल्टा' सूत्र कहलाते हैं।

पश्चमूल सुषुम्ना में पहुचते ही मीडियल तथा लेटरल दो भागों में विभाजित हो जाती है। मीडियल प्रभाग या तो अन्य दीर्घ सूत्रों से साइनेप्स करता है या अग्रशृङ्ग कोषों (एन्टीरियर हार्न सेल्स) से साइनेप्स करता है या पोस्टिरियर कालम में ऊपर की ओर गमन कर मेडुला में पहुंचता है। लेटरल प्रभाग लिसोरमार्ग से गमन कर सब्सटेन्सिया जिलेटिनोसा में पहुचता है जहा ये कई छोटे न्यूरान्स से साइनेप्स करता है जिनके एक्सॉन उसी या निकटस्थ सेग्मेन्ट के पश्च या अग्र शृङ्गों में पहुचकर रिफलेक्स सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं। या उन दीर्घ संज्ञाग्राही सूत्रों से साइनेप्स करता है जिनमें से कुछ लेटरल स्पाइनोथेलमिक ट्रैक्ट बनाते हैं। सुषुम्ना से दो वेदनाग्राही स्रोतस् सक्रिय होते हैं। प्रथम, निओस्पाइनोथेलमिक स्रोतस् जिसकी सेल बाडीज पश्च शृङ्ग में होती है, यह स्रोतस् वेदना की तीव्रता तथा वेदना स्थल का ज्ञान वहन करता है। दूसरा, पेलीओ स्पाइनोथेलमिक स्रोतस् जो लेटरल कार्ड के अग्रभाग में स्थित होता है। यह वेदना के भावनात्मक एवं उत्तेजनात्मक भावों के लिए जिम्मेदार है। निओस्पाइनोथेलमिक ट्रैक्ट ब्रेन स्टेम में ट्राइजेमीनोथेलमिक ट्रैक्ट से मिलकर मेडुला, पोन्स तथा मध्य मस्तिष्क के पार्श्वभाग से गमन करती है तथा थेलेमस में समाप्त होती है।



पेलीओ स्पाइनो थेलमिक ट्रेक्ट, ब्रेनस्टेम के रेटीकुलर फॉरमेशन के साथ सम्बन्ध बनाता है तथा थेलमस के इन्ट्रालेमीनर और पेरा मीकुलर नाडीपुंजो (न्यूक्लाई) के साथ सम्बन्ध बनाता है जोकि लिम्बक सिस्टम से सयुक्त होते है। स्पाइनोथेलमिक एव ट्राइजेमीनो थैलमिक स्रोतस् (ट्रेक्ट्स) थेलमस मे तृतीयक सज्ञावह सूत्रो (टरशरी सेन्सरी फाइवर्स) के साथ साइनेप्स कहते है जो सूत्र सेरेवल कॉरटेक्स मे पहुचते हे।

थेलेमस मे वेदना का आभास अवश्य होता है परन्तु उसके स्थान आदि का ज्ञान कॉरटेक्स द्वारा ही होता हे। वेदना उत्पन्न करने वाले उद्दीपक हरेक टिश्यू के लिए पृथक पृथक होता हे। त्वचा के लिए वेधन, भेदन, शीत, दहन ही पर्याप्त उद्दीपक है जबकि यही उद्दीपन आमाशय एव आन्त्र मे अल्प प्रभावशाली होते है। मास मे छेदन एव भेदन तथा वेधन से वेदना नही होती है, वहा रसायनिक क्षोभक या दवाव वेदना उत्पन्न करता हे। महास्रोतस मे शोथयुक्त म्यूकोसा पर आघात, मासपेशीओ मे सकोच-विस्फार या मिसेन्ट्री सविस्थन पर तनाव आदि भाव वेदना उत्पन्न करते हे। पेशिओ मे रक्ताल्पता (इस्कीमिया) भी वेदनाकारक होता हे। सधिया वेधन, भेदन या दहन के प्रति सहिष्णु (इन्सेंसिटिव) हे परन्तु साइनोवियल मेम्ब्रेन मे शोथ या हाइपरटोनिक लवण जल की उपस्थिति वेदना उत्पन्न कर सकती है। उपरोक्त उद्दीपक शरीर धातुओं मे (टिश्यूज मे) कुछ रसायनों का स्राव कराते ह जैसे—हिस्टामिन, ब्रेडी काइनिन, प्रोस्टाग्लेण्डिन आदि। रसायन ही वेदना मे कारणभूत होते ह।

वेदना के प्रति प्रतिक्रिया भी व्यक्तिश वदलती है। प्रतिक्रिया के लिए वेदना की मात्रा व्यक्तिश वदलती रहती हे। वेदना के कारण प्रत्यावर्त्ती (रिफ्लेक्स) तथा मानसिक दोनो प्रतिक्रियाऐ होती हे। कुछ प्रत्यावर्त्ती क्रियाये मात्र सुषुम्ना के स्तर पर ही होती है। ये प्रत्यावर्त्ती क्रियाऐ वेदना के कारक भाव को शरीर से दूर हटाने के लिये होती ह। मानस प्रतिक्रियाऐ प्राय अस्पष्ट है, इनमे व्यथा, उद्वेग, रुदन, अवसाद आदि का समावेश किया जा सकता हे।

सामान्य अनुभव हे कि नर्वस सिस्टम के अन्य भागो से आने वाले अन्य सिग्नल, सुषुम्ना द्वारा वेदना सचार की गति को तथा सचार को प्रभावित कर सकते है। किसी क्षेत्र विशेष के दीर्घ सज्ञासूत्रो का उत्तेजन उसी क्षेत्र के वेदना सदेश (सिग्नल) या अन्त्र क्षेत्रो के वेदना सदेशो के सचार को रोक देता हे। वेदना ग्राहीसूत्रो के अतिरिक्त अन्य सूत्र भी सब्सटेन्सिया जिलेटिनोसा मे प्रवेश करते हे। इन सूत्रो के सिग्नल वेदना सूत्रो के सिग्नल्स को अवसन्न कर देते हे। इसीलिए पेरीफेरल सज्ञावह नाडियो के दीर्घसूत्रो का अत्यल्प विद्युत उत्तेजन (इलेक्ट्रिक स्टीमुलेशन) या सुषुम्ना के पश्च स्तभ (पोस्टिरियर कॉलम) के दीर्घ सूत्रो का उत्तेजन वेदना का शमन करता हे। इस प्रक्रिया को काउन्टर स्टीमुलेशन कहा जाता हे तथा इस सिद्धात का चिकित्सा मे वहुत प्रयोग होता हे। मालिश या सेक के कारण वेदना का शमन होने के पीछे यही कारण मुख्य हे। एक्यूपक्चर मे वेदना का शमन होने के पीछे एक कारण यह भी है कि वेदनारहित सज्ञा सूत्रो (मेकानोरिसेप्टर) का उत्तेजन वेदना सादेशो को अवसन्न एव अवरुद्ध कर देते ह।

प्रेषित वेदना (रिफर्ड पेन)—प्राय व्यक्ति को ऐसे अङ्गो मे भी वेदना होती हे जो उस भाग से जहा वेदना का कारण उपस्थित हे पृथक होता हे। इस प्रकार की वेदना को रिफर्ड पेन कहा जाता है। कभी-कभी यह वेदना शरीर की सतह के एक क्षेत्र से अन्य क्षेत्र को प्रेषित (रिफर) होती है। परन्तु प्राय विसरल अवयवो (कोष्ठागो) से प्रारम्भ कर शरीर सतह के किसी क्षेत्र को प्रेषित होती हे। कभी-२ एक कोष्ठाग से दूसरे कोष्ठाग को भी रिफर होती है। इस प्रकार की वेदना का कारण यह है कि कोष्ठागो से आने वाले पेन फाइवर्स (वेदना सूत्र) सुषुम्ना मे द्वितीयक न्यूरॉन्स (सेकन्डरी) से साइनेप्स करते हे वही त्वचा से आरहे पेनफाइवर्स भी साइनेप्स करते ह। जब कोष्ठागो के पेन फाइवर्स उत्तेजित होते है तब पेन सेन्सेशन उन न्यूरॉन्स मे भी फैलता है जोकि त्वचा से आने वाले वेदना सन्देशो को वहन करने वाले थे। अत व्यक्ति को ऐसा आभास होता हे कि वेदना का उद्भव त्वचा के उस भाग से भी हो रहा हे।



सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः

डा० गिरेन्द्र सिह तोमर बी ए एम एस (गोल्ड मेडलिस्ट), एम डी (आयु)
डी वाय, पी-एच डी (काय चिकित्सा) (बी एच यू)
लेक्चरर—काय चिकित्सा एव परामर्शदाता–चिकित्सक श्री लाल बहादुर शास्त्री
स्मारक राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय एव चिकित्सालय
हण्डिया, इलाहाबाद उ प्र—२११५०४
डा० गिरीश कुमार सिह बी एम-सी, बी ए एम एस डी वाय, (बी एच यू) डिमास्ट्रेटर–शरीर क्रिया
श्री लाल बहादुर शास्त्री स्मारक राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, हण्डिया, इलाहाबाद–उ०प्र०

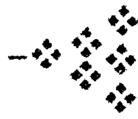


आचार्य सुश्रुत तथा माधव दोनो ने ही यद्यपि दोषो के आधार पर एव दोषज, ससगज, सन्निपातज, शूल भेदो को स्वीकार किया हे। तथापि दोनो ने ही प्राय सभी शूलो मे वात प्राधान्य स्वीकार एकमत से किया ह। आचार्यो के मत से वात दोष के बिना किसी भी प्रकार का शूल सम्भव ही नही हे। (नर्तेऽनिलाद्रुक) यह युक्ति आधुनिक चिकित्सा शास्त्र एव आयुर्वेद दोनो ही की कसौटी पर खरी उतरती हे। आयुर्वेदीय मत से पित्त तथा कफ दोनो दोष, सभी मल तथा सातो धातुये पगु (गति हीन) होती हे। इनमे गति प्रदान करना स्वाभाविक धर्म होता है। शूल रोग की अनुभूति इन्द्रियायतन(मस्तिष्क) से होनी है एव वात को सर्वेन्द्रिय-उद्योजक कहा गया हे। अत वात दोष के अभाव मे शूलानुभूति कदापि सम्भव नही है। इस प्रकार यह युक्ति तर्कसगत हे कि प्राय 'सभी शूलो मे वात प्राधान्य होता है। कविराज गणनाथ सेन ने भी कहा हे कि किसी स्थल विशेष (अङ्ग विशेष) मे सज्ञावाही नाडियो के सूत्रो मे स्थानीय क्षोभ उत्पन्न होने से ही शूल का अनुभव होता हे। अत प्रत्येक शूल मे वायु की प्रधानता रहती हे। प्राय शब्द का आशय यह हे कि यद्यपि शूल अन्य दोषज भी हो सकता है। परन्तु वेदनानुभूति उन स्थितियो मे भी वात द्वारा ही सम्भव हे, अत वात प्राधान्य युक्ति-युक्ति है।

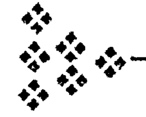
आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से भी यह तथ्य इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हे—शूल एक आधारभूत सवेदना हे। यह हमेशा रक्षात्मक प्रतिक्रिया युक्त होता हे। यह सभी जीवधारियो की स्वाभाविक प्रकृति होती ह। यह किसी अङ्ग या स्थान विशेष मे क्षोभ का परिचायक ह। शरीर क्रियात्मक दृष्टिकोण मे विचार करने पर यह स्पष्ट होना हे कि अङ्ग प्रत्यङ्गजन्य शूल को मस्तिष्क तभी ग्रहण करता है कि वेदना जनक क्षोभ समुचित परिमाण मे हो। शरीर रचनात्मक दृष्टि मे प्रत्येक अङ्ग मे नाड्यग्र (Nerve terminals) समुचित 'रूप से विकीर्णित रहते ह। अत स्थानीय क्षोभ की उपस्थिति मे इन्ही के द्वारा यह सवेदना सज्ञावाही नाडियो द्वारा मस्तिष्क स्थित कार्टेक्स मे पहुचती ह। तथा प्रतिक्रिया स्वरूप चालक नाडिया (Moter Nerves) आदेश सवहन करने लगती हे। सक्षिप्त रूप से यह कहा जा सकता हे कि इस सम्पूर्ण प्रतिक्रिया का सम्पादन नाडी सस्थान द्वारा ही होता हे।

आधुनिक क्रिया शारीर के अनुसार जेसे नाडी सस्थान शरीर की समस्त क्रियाओ के लिए जिम्मेवार ह इसी प्रकार आयुर्वद शास्त्रोक्त वात भी शरीर रूपी तन्त्र यत्र को धारण करने वाला कहा जाता है। (वायुस्तन्त्र यन्त्र धर) (च० सू० १२) अर्थात वायु के स्वभाविक कर्म, नाडी, सस्थान के स्वाभाविक कर्मो से अत्यन्त साधर्म्य रखते हे। यह तथ्य स्वय सिद्ध है कि बिना नाडी सस्थान के योगदान के शूल का होना नितान्त असम्भव हे। अत आधुनिक चिकित्सा शास्त्र भी इस युक्ति की पुष्टि करता है कि सभी शूलो मे वात दोष प्राधान्य हे। यहा यह बात ओर स्मरणीय

—शेषाश पृष्ठ ६३ पर देखे।



शूल सम्प्राप्ति



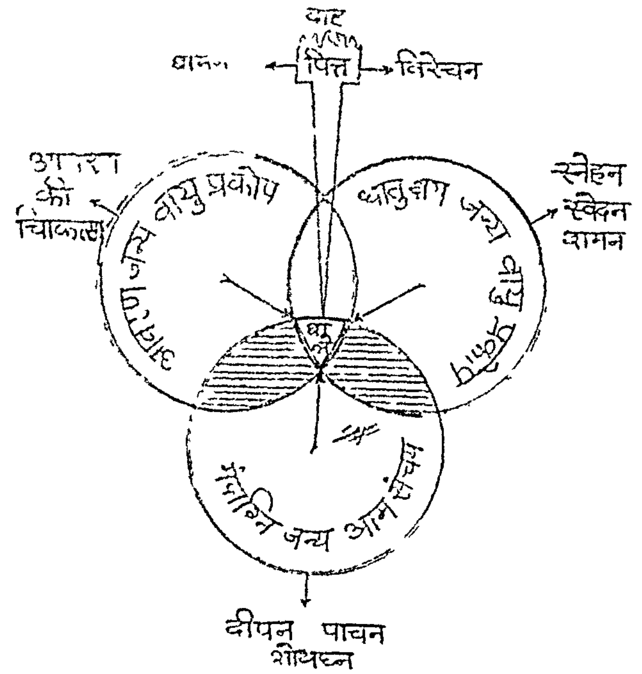
डा० पी० एम० श्रीवास्तव एम डी. (आयुर्वेद) प्रवक्ता—पैथालाजी
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, हण्डिया (इलाहाबाद)



शूल वेदनवत अनुभूति ही शूल है। सुश्रुत की इस परिभाषा से अच्छी और उचित परिभाषा आज तक कोई वैज्ञानिक नहीं दे पाया है। शूल क्योंकि एक प्रकार का संकेतक है इसलिए वास्तव में शूल का होना लाभप्रद ही है—रोगी के हित में और चिकित्सक के हित में भी किन्तु शूल जब लगातार हो या अत्यधिक हो और रोगी की दिनचर्या को बाधित करता हो तो उससे छुटकारा पाना ही प्रथम अभीष्ट हो जाता है। विभिन्न अङ्गों के विभिन्न रोगों में उत्पन्न शूल की सम्प्राप्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है। यदि इन अगाग रोगानुसार शूल सम्प्राप्ति को जान लिया जाय तो रोग निदान तथा शूल एव रोग के शमन के उपक्रम में सुविधा हो जाती है। आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार शूल के दो हेतु होते हैं—

१ वायु के प्रकोप और/अथवा २ आम का सचय।
तथा वायु का प्रकोप भी दो कारणों से सभव है—

१ धातुक्षय से अथवा २ मार्ग के आवरण से। जब ये क्रियाएं एकैकश शूल का कारण होती है तब तो निदान और चिकित्सा दोनों सरल होती है। किन्तु जब ये क्रियाएं एक साथ हो जाती हैं या अन्योन्याश्रित होकर शूलोत्पादक होती हैं, तब शूल का निदान एव चिकित्सा एक दुरूह कार्य हो जाता है। यही नहीं जब वायु के साथ पित्त का समावेश हो तो दाहयुक्त पीडा विशेष कष्ट-दायक हो जाती हैं। जैसाकि वातरक्त मे देखने को मिलता है। या व्रण विद्रधि मे शूल कष्टसाध्य हो जाता है। वायु के प्रमुख स्थानों पर भी शूल अधिक अनुभूत होता है, जैसे नाभि के नीचे एव अस्थियों में। आम का सचय मदाग्नि के कारण होता है चाहे वह जाठराग्नि के स्तर पर हो, धात्वग्नि के स्तर पर हो अथवा भूताग्नि के स्तर पर हो। अग्निसम होने पर आम का पाचन हो जाता है और आमजन्य शूल भी समाप्त हो जाता है। आम और वात जहां दोनों एक साथ हों वहां तो भयकर एव दीर्घकालिक शूल होता ही है। इसी बात को दिये गये चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा रहा है। ✶



केन्द्र स्थित शूल की ओर इंगित हेतुओं से शूल की वृद्धि एव विपरीत दिशाओं के इंगित हेतुओं से शमन होता है।

— पृष्ठ ६२ का शेषांश —

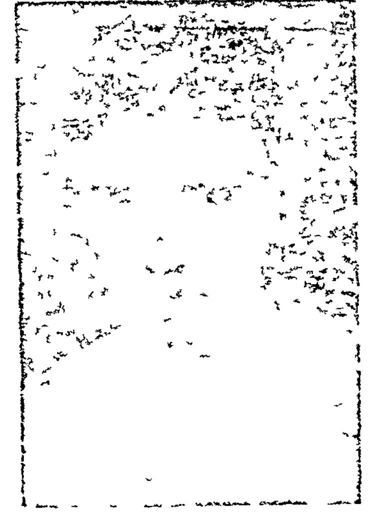
है कि शूल चिकित्सा की दृष्टि से प्रयुक्त आयुर्वेदीय एव आधुनिक प्राय सभी औषधियां मुख्यतया वातहर होती है।

उपर्युक्त विवरण पर विहङ्गम दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि माधवकार का यह कथन आज भी अपनी वैज्ञानिक कसौटी पर खरा उतर कर आयुर्वेद शास्त्र की वैज्ञानिकता को प्रकट कर रहा है। ★

शूल–कारण और निवारण

वैद्य चन्द्रशेखर व्यास आयुर्वेद विशारद, चूरू–331001 (राजस्थान)

—★—



राजस्थान की आयुर्वेद परम्परा महान है। इस महानता यश राजस्थान के वैद्यो का है। उनमे श्री वैद्य चन्द्रशेखर जी व्यास का स्थान अग्रिम स्तर पर है। श्री व्यास महोदय महान विद्वान् वैद्य एव पीयूषपाणि चिकित्सक है। आप वर्षो से आयुर्वेद की सेवा मे लगे हुए हैं। अनेको मासिक पत्रिकाओ मे आपके सारगर्भित लेख प्रकाशित होते रहते है। आपके लेखो से वैद्यो को मार्गदर्शन मिलता है। आप 'धन्वन्तरि' के स्थायी आधार, स्तम्भ लेखक एव मार्गदर्शक है। वर्तमान से वृद्धावस्था मे भी धन्वन्तरि' की स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी विभाग के सम्पादक है और प्रश्नकर्त्ताओ के उत्तर देते हैं। सारे देश मे इस स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी की प्रशंसा की जाती है। आपका परिश्रम ही सफल कार्य का द्योतक है। यहा आपने हमारे विशेष आग्रह से शूल की विविध चिकित्सा का निरूपण किया है, जो समग्र जनता को सदैव उपयोगी है। मैं आपके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शूलस्य सन्निकृष्ट निदानमाह–

दोषै पृथक्समस्ताश्च द्वन्द्वै शूलोऽष्टधा भवेत्।
सर्वेस्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवन प्रभु ॥

वात, पित्त, कफ, त्रिदोषज, आम, वातपित्त, वात-कफ, तथा (वातरक्त) अथवा रक्तपित्त उत्पन्न हुआ इस भाति शूल आठ प्रकार का होता है। इन समस्त शूलो मे प्राय वायु प्रमुख होती है।

वातोत्पन्न शूल के लक्षण

व्यायाम यानादति मैथुना,
प्रजागराच्छीतजलातिपानात्।
कलाय मृद्गाढकि कोरदूषादत्यर्थ
रूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥
कषाय तिक्ताति विरूढजान्न विरुद्ध
वल्लूरक शुष्क शाकै।
विट्शुक्र मूत्रानिल सन्निरोधाच्छो-
कोपवासादति हास्यभाषात् ॥
वायु प्रवृद्धो जनयेद्धि शूल
हृत्पृष्ठपार्श्व त्रिकवस्तिदेशे।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च
शीते च कोप समुपैति गाढम्।
मुहुर्मुहुश्चोपशम प्रकोपो विण्मूत्र
स स्तम्भ न तोद भेदै ॥
सस्वेदनाभ्यंजनमर्दनाद्यै स्निग्धोष्ण
भोज्यैश्च शम प्रयाति।

व्यायाम (मल्लयुद्ध इत्यादि) घोडे रथ इत्यादि की सवारी, अत्यन्त मैथुन, रात्रिजागरण, इनके अत्यन्त सेवन से, शीतल जल के अत्यन्त पान से, मटर, मूग, अरहर, कोदो तथा रूक्ष पदार्थो के भोजन से, भोजन के ऊपर भोजन करने से, अभिघात से, कषैले तथा तिक्त रसो के सेवन से, अत्यन्त अकुरित मटर, चना इत्यादि अन्नो को खाने से, मछली, दूध इत्यादि विरुद्ध पदार्थो के सेवन से, सूखे हुए शाको को खाने से, मल-मूत्र तथा अपानवायु के वेगो को रोकने से, शोक, उपवास, अत्यन्त हसने तथा भाषण करने से वायु बढकर हृदय, पीठ, पार्श्व त्रिक स्थान तथा वस्ति मे शूल उत्पन्न कर देता है। अन्न के जीर्ण हो जाने पर, सायकाल, वर्षा ऋतु एव मेघा उदय

होने पर तथा शीतकाल मे वायु के कुपित होने पर शूल अधिक कोप करता है। बारम्बार शान्त तथा कुपित होता है। इस शूल मे मल तथा मूत्र स्तब्ध हो जाते हैं और सुई चुभने के समान तथा भेदनवत् पीडा होती है। स्वेदन अभ्यग तथा मर्दन से और स्निग्ध तथा उष्ण भोजन से शान्त होता है। कुछ ग्रन्थकार हृदय इत्यादि के शूलो का पृथक् वर्णन भी करते है।

हृद् शूल—रस से बढा हुआ और कफ-पित्त से अवरुद्ध वायु श्वास को रोकने वाले हृदय स्थित शूल को उत्पन्न कर देता है। रस तथा वायु से उत्पन्न होने वाला वह हृच्छूल कहलाता है।

पार्श्वशूल—वायु कफ को पकडकर सुई से चुभने के समान पसलियो मे आध्मानयुक्त शूल को उत्पन्न कर देता है। इस शूल के कारण मनुष्य मुह से ऊची श्वास लेता है। अन्न की इच्छा नही करता। नीद भी नही आती। इस शूल को पार्श्वशूल कहते है।

वस्तिशूल—वेगो के अवरोध से कुपित वायु मूत्राशय मे भरी रहती रहती है। इससे मूत्राशय के मार्ग की नाडियो मे शूल उत्पन्न होता है और मल-मूत्र तथा अपान वायु अवरुद्ध हो जाते हैं। यह वस्तिशूल कहलाता है।

पित्तशूल के निदान, सम्प्राप्ति, पूर्वक लक्षण

यवक्षार इत्यादि क्षार, अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण तथा दाहकारक पदार्थो के सेवन से, तेल, खली तथा कुलथी के यूप से, कडवे अम्ल पदार्थो के सेवन से सौवीर काजी, सुरा विकार, क्रोध, अग्नि, अधिक परिश्रम तथा धूप के अत्यन्त सेवन से, अधिक मैथुन करने से और विदाही आहार के सेवन करने से पित्त कुपित होकर नाभि प्रदेश मे शूल उत्पन्न करता है। इस शूल मे पिपासा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम तथा शोष ये उपद्रव होते है। यह शूल मध्याह्न काल, अर्धरात्रि, ग्रीष्म ऋतु तथा शरद् ऋतु मे कुपित होता है। शीतकाल मे शीतल वायु इत्यादि के स्पर्श से और अत्यन्त मधुर तथा शीतल भोजनो के करने से शान्त होता है।

कफज शूल के लक्षण

आनूपदेश (जलाशय प्रदेश) मे उत्पन्न भक्ष पदार्थो के सेवन करने से, जल मे उत्पन्न होने वाले शलूक इत्यादि के खाने से, किलाट (फटे हुए दूध का खोवा), दुग्धविकार (पायस इत्यादि), मास, ईख का रस, उडद इत्यादि की पीठी, खिचडी, तिल, पूडी तथा अन्य कफजनक कारणो से कोप को प्राप्त कर कफ आमाशय मे शूल को उत्पन्न करता है। इस शूल मे हृल्लास, कास, ग्लानि, अरुचि तथा मुख प्रसेक होता है। उदर तथा शिर आर्द्र वस्त्र से लपेटा हुआ सा और भारी होता है। भोजनोपरान्त सर्वदा यह शूल अत्यन्त पीडा उत्पन्न करता है। दिन के पूर्व तृतीयाग मे (दिन के १० बजे तक) शिशिर ऋतु मे (कफ के अत्यन्त सचय के कारण) यथा वसन्त ऋतु मे यह शूल तीव्र पीडा उत्पन्न करता है। दही के साथ दूध को पकाने से जो पदार्थ बनता है उसे 'दधिकूर्चिका' समझना चाहिए। तक्र के साथ दूध को पकाने से कूर्चक बनता है। दधिकूर्चिका तथा कूर्चक इन दोनो के पिण्ड को 'किलाट' कहते हैं।

द्विदोषज शूल—उपर्युक्त दो दोषो के लक्षणो युक्त शूल को 'द्विदोषज शूल' जानना चाहिए।

त्रिदोषोत्पन्न शूल—जो शूल हृदय, पीठ, पार्श्वभाग, त्रिक स्थान, मूत्राशय, नाभि, आमाशय इन सम्पूर्ण स्थानो मे होता है और तीनो दोषो के लक्षणो से युक्त होता है उसको वैद्य 'त्रिदोषज शूल' समझे। यह शूल महाकष्टकारक है, विष और वज्र के समान है। 'विवर्जनीय प्रवदन्ति तज्ज्ञा' इसकी चिकित्सा नही करनी चाहिए।

आमोत्पन्न शूल

जिस शूल मे आध्मान, हृल्लास, वमन, गुरुता, आर्द्रता, आनाह तथा कफ का स्राव होता है और कफज शूल के समान जिसमे लक्षण होते है, वैद्य लोग उसे 'आम शूल' कहते है।

आमशूल दोषविशेष देशविशेष लक्षण—आमशूल यदि वात से सम्बन्धित हो तो मूत्राशय मे, यदि पित्त से सम्बन्धित हो तो नाभि मे, यदि कफ से सम्बन्धित हो तो हृदय, पार्श्व सहित कुक्षि मे और यदि तीनो दोषो से सम्बन्धित हो, तो सम्पूर्ण स्थानो मे शूल होता है।

आम शूल यदि कफ तथा वात से सम्बन्धित हो तो वस्ति, हृदय, कटि प्रदेश तथा पार्श्व मे और कफ तथा पित्त से सम्बन्धित होने पर कुक्षि, हृदय तथा नाभि के बीच मे शूल होता है। यदि दाह तथा ज्वर को उत्पन्न करने वाला महादारुण शूल हो तो उस आमशूल को वात तथा पित्त से सम्बन्धित समझना चाहिए।

उपद्रव

व्यथा अत्यन्त तृष्णा, मूर्च्छा, आनाह, गुरुता, अरुचि, कास, श्वा, वमन तथा हिक्का—शूल के ये दश उपद्रव कहे गये है।

साध्यासाध्य लक्षण

एक दोष से उत्पन्न होने वाला शूल साध्य, दो दोपो से उत्पन्न शूल कृच्छ्साध्य तथा तीनो दोपो से युक्त और अधिक उपद्रवो वाला शूल महादारुण तथा असाध्य होता है।

अरिष्ट लक्षण

वेदना, अत्यन्त पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, गुरुता, ज्वर, भ्रम, अरुचि, कृशता तथा वल की हानि ये दश उपद्रव जिस रोगी के शूल मे होते है, उसे जीवित नहीं समझना चाहिए।

शूल का ही भेद परिणामशूल

अपने प्रकोपक कारणो से प्रकुपित प्रवल वायु कफ और पित्त को आवृत करके शूल उत्पन्न करता है। यह शूल भोजन के पचने के समय मे होता है, इसे परिणाम शूल कहते है। अव इसके लक्षणो को संक्षेप मे कहते है।

जो शूल आध्मान, पेट मे गुडगुड शब्द का होना, मल तथा मूत्र का अवरोध, वेचैनी तथा कम्प, इन लक्षणो से युक्त है और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थो से शान्त हो जाता हो उसे वैद्य वातिक परिणाम शूल कहते है। तृष्णा, दाह, ग्लानि तथा स्वेद, इन उपद्रवो से युक्त, कटु अम्ल तथा लवण पदार्थो से उत्पन्न होने वाले और शीतल द्रव्यो से शान्त होने वाले शूल को बुद्धिमान् मनुष्य पैत्तिक परिणामशूल समझे।

जिसमे वमन, हृल्लास, मोह तथा अल्पवेदना हो, जो वहुत समय तक रहता हो और कटु तथा तिक्त द्रव्यो के सेवन से शान्त हो जाता हो उसे कफज परिणाम शूल कहते है। उपर्युक्त दो लक्षणो से युक्त जानकर द्विदोपज परिणाम शूल की कल्पना करनी चाहिए। उपर्युक्त तीनो लक्षणो से युक्त त्रिदोपज परिणाम शूल कहलाता है। यदि यह शूल जिस मनुष्य का मास, वल तथा जठराग्नि क्षीण हो गया हो, ऐसे मनुष्य को उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य समझना चाहिए।

अन्नद्रव नामक शूल

भोजन के पचने पर अथवा पचने के समय जो शूल [illegible] होता है और पथ्य तथा अपथ्य के प्रयोग से भोजन करने से या न करने से जो नियम से शान्त नही होता उसे 'अन्नद्रव शूल' कहते है। यह शूल असाध्य नही होता क्योकि वैद्यो ने इसकी चिकित्सा का विधान किया है।

शूल रोग चिकित्सा

धात्र्यादि क्वाथ (व० से०)—आमला, वहेडा, हर्र, हल्दी, गिलोय, चिरायता, नीम की छाल सव समान भाग लेकर क्वाथ वनावे। मात्रा—१॥ तोला २५० ग्राम पानी मे औटाकर ६० ग्राम शेप रहने पर उतार कर छानकर पीने से भी, शख (कनपटी) कान, आख और आधे शिर मे होने वाला शूल, सूर्यावर्त, रात्र्यन्धता, काच, पटल, नेत्रशुक्र, नेत्रपाक, अश्रुस्राव, तिमिर, पक्ष्मप्रकोपादि, शिर तथा नेत्रो के रोग नष्ट होते है।

धात्र्यादि प्रयोग (वृ० मा०, ग० नि०)—त्रायमाणा और मुनक्का के क्वाथ मे अथवा आवले या विदारीकन्द के स्वरस मे खॉड और शराव मिलाकर पिलाने से पित्तजशूल नष्ट होता है।

नागरादि कल्क (व० से०, वृ० मा०, यो० र०, च० द०, ग० नि०)—सोठ, तिल और गुड के कल्क को दूध के साथ पकाकर सेवन करने से सात दिन मे भयकर परिणामशूल नष्ट होता है।

नागरादि क्वाथ (वै० म० र०/पटल ६)—सोठ और सहजने की छाल के या श्योनाक (अरलु) की छाल के क्वाथ मे हीग और सेधानमक मिलाकर निरन्तर तीन दिन पिलाने से शूल नष्ट होता है। निरन्तर का अर्थ वारम्वार नही करना चाहिए, सुवह-शाम ही समझे।

नागरादि क्वाथ (यो० र०)—सोठ और एरण्ड मूल के या इन्द्र जौ के क्वाथ मे हीग और सचर नमक (काला नमक) मिलाकर पीने से वातज शूल नष्ट होता है।

निदग्धिकादि क्वाथ (ग० नि०)—छोटी कटेली, वडी कटेली, पोखर मूल, विजौरे की जड, वेल की जड की ताजी छाल, पापाणभेद, गोखरू और कुडा की जड की छाल, इनके क्वाथ मे जवाखार और हीग मिलाकर पीने से शूल नष्ट होता है।

दार्व्यादि क्वाथ (हा० स०/स्था० ३, अ० ७)—देवदार, सोठ और वासा के क्वाथ मे हीग तथा काला नमक मिलाकर पीने से वात कफज शूल, आमाजीर्ण और मलवन्ध नष्ट होता है।

दुरालभादि कल्क (हा० सं०/स्था० ३, अ० ७)—— धमासा, पित्तपापड़ा, सोंठ, पटोलपत्र, नीम की छाल, नागरमोथा और तिन्तडीक के कल्क (पानी के साथ पत्थर पर पीसी हुई चटनी) के साथ खाँड मिलाकर सेवन करना चाहिए। मात्रा—सब चीजें समान भाग मिली हुई १० ग्राम और खांड सबके बराबर लेनी चाहिए।

द्राक्षादि क्वाथ (वृ० नि० र०)—मुनक्का (दाख) और बांसे का क्वाथ पीने से पित्त कफज शूल शान्त होता है।

नोट—पित्त कफज शूल में विरेचन और वमन कराना चाहिए।

पथ्यादि क्वाथ (वृ० नि० र०, यो० र०/शूल)—हर्र, इन्द्र यव और पोखर मूल के मन्दोष्ण क्वाथ में हींग, पीपल और अतीस का चूर्ण मिलाकर पीने से वातज शूल, आम शूल और कफज शूल शीघ्र ही नष्ट होता है।

बलादि क्वाथ (वृ० यो० त०/त० ६४, व० से०, यो० र०)—खरैटी, पुनर्नवा, अरण्ड की जड़, दोनों प्रकार की कटेली और गोखरू के क्वाथ में सेंधानमक और हींग मिलाकर पीने से वातज शूल नष्ट होता है।

बिल्वादि क्वाथ (हा० सं०)—बेल की छाल, अरणी, वागा, निसोथ, सोंठ, अरण्ड की जड़, हींग और सेंधा नमक मिलाकर क्वाथ पीने से कफज शूल शीघ्र ही नष्ट होता है तथा अग्नि दीप्त होती है।

नोट—जहां-जहां हींग का प्रयोग है, हींग घी में भूनकर डालनी चाहिए।

बीजपूर रस योग (ग० नि०)—बिजौरे नीबू के रस में सेंधा नमक मिलाकर पीने और पथ्य पालन करने से दारुण हृच्छूल भी नष्ट हो जाता है।

बीजपूर स्वरस योग (शा० ध०/ख० २ अ० १, यो० र०)—बिजौरे नीबू के रस में शहद और जवाखार मिलाकर पीने से पसली, हृदय और वस्ति का शूल तथा कोठे की दुस्साध्य वायु का नाश होता है।

बृहत्यादि क्वाथ (यो० र०)—छोटी और बड़ी कटेली, गोखरू, अरण्ड की जड़, कुश, कास और तालमखाना समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने से भयंकर पित्तज शूल भी तुरन्त नष्ट हो जाता है।

पुनर्नवादि स्वेद (व० से०)—पुनर्नवा (साठी) अरण्ड की जड़, जौ, अलसी, कपास के बीज (बिनौले) की गिरी को कांजी में पकाकर उसकी भाप देने से वातज शूल नष्ट होता है।

मातुलुङ्ग रसादि योग (व० से०, वृ० नि० र०)—बिजौरे का रस, घी २-२ तोले लेकर दोनों को एकत्र मिलाकर उसमें जरा-सी हींग और सेंधा नमक मिलाकर मन्दोष्ण करके पिलाने से मलावरोध नष्ट होता है, वायु खुलता है और कोख, हृदय तथा पसली की पीडा शान्त होती है।

मातुलुङ्ग रसादि योग (यो० र०, वृ० नि० र०)—बिजौरे के रस में अथवा सहजने की छाल के क्वाथ में जवाखार और शहद मिलाकर पीने से पसली, हृदय और वस्ति का शूल नष्ट हो जाता है।

मातुलुङ्ग रसादि योग (हा० सं०/स्था० ३, अ० ७)—बिजौरे नीबू का रस, आमले का रस और सहजने की जड़ की छाल का रस समान भाग १०-१० ग्राम लेकर सबको एकत्र मिलाकर उसमें सेंधा नमक, कालीमिर्च और जवाखार तथा शहद मिलाकर पीने से कफज शूल और क्षयजन्य यकृत् शूल तुरन्त नष्ट होता है।

विश्वादि कषाय (च० द०, र० र०)—सोंठ, अरण्ड मूल, दशमूल और इन्द्र जौ के क्वाथ में जवाखार सज्जीखार, हींग, सेंधा नमक, काला नमक, बिड नमक और पोखरमूल का चूर्ण मिलाकर पीने से हृदय और पसली का शूल, कटिग्रह, आमाशय शूल, पक्वाशय शूल, ज्वर और गुल्म का नाश होता है।

चित्रकादि क्वाथ (वा० भ०, व० से०, वृ० नि० र०)—चित्रक, पीपलामूल, अरण्ड की जड़, सोंठ, धनिया और सुगन्धवाला, समान भाग लेकर क्वाथ करके उसमें हींग, सेंधा नमक और खारी नमक मिलाकर पीने से आम शूल नष्ट होता है।

छिन्नादि क्वाथ (भा० प्र०/म० ख०)—गिलोय, चिरायता, हर्र, बहेड़ा, आंवला, हल्दी और कुटकी के क्वाथ में गुड़ मिलाकर पीने से शिर शूल, आधाशीशी, नेत्रों की पीडा, कर्णशूल, दांत का दर्द, कनपटी का दर्द शीघ्र ही नष्ट होता है।

त्रिफलादि क्वाथ (वृ० नि० र०)—त्रिफला, नीम की छाल, मुलहठी, कुटकी और अमलतास के क्वाथ में

शहद डालकर पीने से दाह और शिर का शूल शान्त होता है।

त्रिकट्वादि क्वाथ (यो० र०)—त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) कमरगट्टे, करज की गिरी, रास्ना और असगध का क्वाथ नासिका द्वारा पीने से शिर शूल नष्ट होता है।

त्रिफलादि कल्क (वा० भ०/चि० स्था० अ० १२)—त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंसलोचन, चित्रक, दालचीनी, वायविडग, पीपल, जटामासी, अडूसा, वच, ऋद्धि, कलिहारी, चव्य समान भाग लेकर पानी मे पीसकर प्रात काल लोहे की कटोरी मे लेप कर दीजिए और दोपहर को शहद मे मिलाकर चाट लीजिए। इसके सेवन से सवदोपज वातरक्त और शूल नष्ट होता है।

त्रिफलादि क्वाथ (वृ० नि० र०, शा० स०/ख० २ अ० २)—त्रिफला और अमलतास के क्वाथ मे खाड, शहद मिलाकर पीने से रक्तपित्त, दाह और पित्तज शूल नष्ट होता है।

देवदार्वादि क्वाथ (वृ० नि० र०, व० से०, यो० र०)—देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल, मोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हर्र, गजपीपल, धमासा, गोखरू, जवासा, कटेली, अतीस, गिलोय, काकडासिगी और काला जीरा, सब चीजे समान भाग एकत्र मिलाकर अधकुटी कर ले। इसमे से प्रतिदिन २ तोले लेकर ३२ तोले पानी मे पकाकर ४ तोले शेष रहने पर छानकर उसमे २ रत्ती हीग और १॥ माशा सेंधा नमक मिलाकर पिलाने से प्रसूता स्त्री का शूल, खासी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, शरीर कापना, शिर पीडा, प्रलाप, तृष्णा, दाह, तन्द्रा, अतिसार, वमनयुक्त प्रसूत रोग नष्ट होता है।

द्वात्रिंशदाख्य क्वाथ (तो० र०, वृ० नि० र०)—भारगी, चिरायता, नीम की छाल, नागरमोथा, कुटकी, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल, वासा, इन्द्रायण की जड, रास्ना, अनन्तमूल, पटोलपत्र, देवदारु, हल्दी, पाढल की छाल, अरलु (श्योनाक की छाल), ब्राह्मी, दारुहल्दी, गिलोय, निसोत, अतीस, पोखरमूल, त्रायमाण, कटेली दोनो, इन्द्र जौ, हर्र, बहेडा, आवला, कचूर सब चीजें समान भाग। यह बत्तीसा क्वाथ है। यह १३ प्रकार के सन्निपात, शूल, खासी, हिचकी, बवासीर, अफरा, उरुस्तम्भ, अन्त्र-वृद्धि, गलरोग, अर्दित, गठिया को नष्ट करता है।

पञ्चमूली कषाय (व० से०)—पञ्चमूल (बेल, अरलु, खम्भारी, पाढल, अरणी की छाल) के क्वाथ मे अरण्ड का तेल और निशोथ का चूर्ण मिलाकर पीने से गृध्रसी, गुल्म और शूल रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। [क्वाथ १० तो०, अरण्ड तैल २ तो०, निसोत ३ माशा]

पथ्यादि क्वाथ (वृ० नि० र०, व० से०, हा० स०)—हर्र, देवदारु, वच, मोथा, सोंठ और अतीस का क्वाथ आमातिसार और शूल को नष्ट करता है।

अथ चूर्ण प्रकरण

शर्कराद्य चूर्णम् (ग० नि०)—खाड, शुद्ध हीग, काली मिर्च समान भाग लेकर चूर्ण करे। इसे मन्दोष्ण जल के साथ पीने से शूल अत्यन्त शीघ्र नष्ट होता है। शूल के लिए यह अमृततुल्य गुणकारी है।

शार्दूल चूर्ण (ग० नि०)—शुद्ध हीग १ भाग, वच २ भाग, विड नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हर्र ६ भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे मस्तु आदि के साथ सेवन करने से विबन्ध, आनाह, शूल, अर्श, श्वास और उदर रोगो का नाश होता है।

शार्दूल चूर्ण (ग० नि०)—शुद्ध हीग १ भाग, वच २ भाग, विड नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, भाग ६ भाग, पोखर मूल ७ भाग, कूठ ८ भाग, निसोत ९ भाग, दन्तीमूल १० भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसके सेवन से कोष्ठरुजा, गुल्म, उदरादि रोगो का अवश्य नाश होता है। मात्रा १॥–२ माशे।

शिवादि चूर्ण (यो० र०)—हर्र, वच, शुद्ध हीग, अतीस, इन्द्र जौ और काला नमक समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे उष्ण जल के साथ सेवन करने से शूल नष्ट होता है। मात्रा १॥ माशे।

सौवर्चलादि योग (ग० नि०, वृ० नि० र०)—सचर नमक, जीरा, अम्लवेत १-१ भाग, कालीमिर्च २ भाग लेकर चूर्ण बनावे और उसे जम्बीरी नीबू के रस मे खरल करके सुखा ले। इसे जल के साथ पीने से वातज शूल नष्ट होता है। मात्रा १॥–२ माशे।

सोवर्चलादि योग (ग० नि०, वृ० नि० र०)—सचर नमक, हर्र, हीग, अजमोद, सेंधा नमक, सज्जीखार, जवाखार समान भाग लेकर चूर्ण बना ले। इसे पानी के साथ सेवन करने से शूल नष्ट होता है। मात्रा १–१॥ माशे।

सैंधवादि चूर्ण (वै० म० र०)—सैंधा नमक के चूर्ण को स्नुही (थूहर) के डंडे के भीतर भर कर उस पर कपड़मिट्टी करके अङ्गारों की अग्नि में जलावे और ठण्डा हो जाने पर उसे थूहर समेत पीस ले। उसे मन्दोष्ण जल में पीने से शूल नष्ट होता है। मात्रा १-१॥ माशे।

सैन्धवादि चूर्ण (हा० स०)—सेंधा नमक, शुद्ध हींग, सचर नमक, अजवायन, हर्र और जवाखार समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे मन्दोष्ण जल के साथ सेवन करने से वातज शूल तुरन्त नष्ट हो जाता है। मात्रा २-४ माशे।

सौवर्चलाद्य चूर्णम् (वृ० नि० र०)—सचर नमक, अम्लवेत, विड नमक, सेंधा नमक, अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे बिजौरे नीबू के रस मे मिलाकर सेवन करने से गुल्मशूल का नाश होता है। मात्रा २ माशे।

हिंग्वादि चूर्ण (भै० र०, ग० नि०)—शुद्ध हींग, सचर नमक, हर्र, विड नमक, सैंधव नमक, नेपाली धनिया, पोहकर मूल समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे दशमूल के क्वाथ या जौ के क्वाथ के साथ सेवन करने से पार्श्व, हृदय, कमर, पीठ के शूल, तन्द्रा, अपतानक, शोथ, आनाह और कर्ण रोगों का नाश होता है। मात्रा १ माशा।

हिंग्वादि चूर्ण (हा० स०)—शुद्ध हींग, सचर नमक, हर्र, अजवायन, पुनर्नवा, सुगन्धवाला, अरण्ड मूल, दोनों कटाई, तुम्बरु, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण वातज शूल और विशूचिका को तुरन्त नष्ट करता है। मात्रा २ माशे।

हिंग्वादि चूर्ण (वृ० यो० त०, भै० र०)—शुद्ध हींग, अतीस, सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, सचर नमक और हर्र समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे प्रातःकाल खाली पेट गर्म पानी के साथ पीने से शूल नष्ट होता है। मात्रा १ माशा।

करञ्जादि चूर्ण (यो० र०)—करंज बीज, सचर नमक, सोंठ, शुद्ध हींग समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे मन्दोष्ण जल के साथ सेवन करने से वातज शूल नष्ट होता है। मात्रा ४ रत्ती से १ माशा।

कुबेराक्ष योग (हा० स०/स्था० ३, अ० ७)—लता करंज की मीगी अकेली ही समस्त प्रकार के शूलों को नष्ट कर देती है। यदि उसके साथ हर्र, काला नमक और शुद्ध हींग मिला दी जाय तो कहना ही क्या है। करंज की मीगी ४-६ रत्ती मिलित चूर्ण १॥-२ माशे।

दाडिमादि चूर्ण (हा० स०/स्था० ३, अ० ७)—अनारदाना, हर्र, आमला प्रत्येक १-१ तोला लेकर चूर्ण बनावे। और उसे एक दिन बिजौरे नीबू के रस में घोटे। इसके सेवन से पित्तज शूल नष्ट होता है। मात्रा ३ माशे, अनुपान उष्ण जल।

दीप्यकादि चूर्ण (ग० नि०)—अजवायन, सेंधा नमक, हर्र और सोंठ का चूर्ण ५-५ तोले लेकर एकत्र मिलावे। यह चूर्ण शूल को नष्ट करता है और मन्दाग्नि को दीप्त करता है। मात्रा ३ माशे, अनुपान गर्म पानी या कांजी।

पथ्यादि चूर्ण (वृ० यो० त०/त० ६४)—हर्र, इन्द्र जौ, पोहकर मूल, शुद्ध हींग, बालछड़ और अतीस समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसके सेवन से वातज, आमजन्य और कफज शूल नष्ट होता है। अनुपान उष्ण जल, मात्रा १ माशा।

पथ्यादि चूर्ण (वृ० मा०)—हर्र, सचर नमक, जवाखार, शुद्ध हींग, सेंधा नमक, अजवायन समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे सुरा इत्यादि के साथ सेवन करने से वातज शूल नष्ट होता है। मात्रा २-३ ग्राम।

बिल्वादि चूर्ण (व० से०)—बेल की जड, अरण्ड की जड, चित्रकमूल, सोंठ, शुद्ध हींग और सेंधा नमक के चूर्ण को गर्म पानी से सेवन करने से शूल तुरन्त ही नष्ट हो जाता है।

बीजपूर चूर्ण (धन्व०)—बिजौरे नीबू की जड के १ तोले चूर्ण को घृत में मिलाकर खिलाने से शूल नष्ट होता है। व्यवहारिक मात्रा ३-४ माशे।

दन्त्यादि चूर्ण (व० से०)—दन्ती, निसोत और काली निसोत, सेवती, गुलाब के फूल, कुटकी, नील का पञ्चाङ्ग और सोंठ, इनके चूर्ण को अरण्ड के तेल में मिलाकर देने से विरेचन होकर परिणामशूल तुरन्त नष्ट हो जाता है। बलवान पुरुष के लिए ४ तोला तेल, चूर्ण ६ माशे।

शूल नाशक और भी अनेक कषाय हैं परन्तु लेख बड़ा होने के भय से नहीं लिखे जा रहे हैं। कर्णशूल, शिरःशूल, नेत्रशूल, वस्तिशूल, प्रभृति अनेक शूलों पर प्रयोग लिखे हैं। आशा है पाठकगण लाभान्वित होंगे।

गुटिका प्रकरण

सुवर्चलादि गुटिका (च० द०/शूल २६, वृ० नि० र०/शूल, भै० र०, ग० नि०)—सचर नमक १ भाग, इमली २ भाग, जीरा ४ भाग और मिर्च ८ भाग लेकर चूर्ण योग्य चीजो का चूर्ण बनावे और इमली को पत्थर पर बारीक पीसकर उसमे चूर्ण मिलाकर सबको बिजौरे नीबू के रस मे खरल करके १-१ माशे की गोलिया बनावे। इसके सेवन से वातज शूल नष्ट होता है। मात्रा १ से ३ गोली तक, अनुपान—गर्म जल।

हिग्वादि गुटिका (धन्व०)—शुद्ध हीग, अम्लवेत, कालीमिर्च, पीपल, अजवायन, सेधा नमक, विड नमक, सचर नमक इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर बिजौरे नीबू के रस मे घोटकर गोलिया बना ले। इनके सेवन से वातज शूल नष्ट होता है। मात्रा १-१॥ माशे, अनुपान उष्ण जल।

हिग्वाद्य वटक (वृ० यो० त०/त० ९४)—शुद्ध हीग, काला नमक, पाठा, जवाखार, सज्जीखार, सेधा नमक, विड नमक इनका चूर्ण समान भाग लेकर लहसुन के रस मे खरल करके गोलिया बना ले। इसके सेवन से हृच्छूल, पार्श्वशूल, मन्यास्तम्भ और कुक्षि शूल का नाश होता है। मात्रा १ से १॥ माशे, अनुपान उष्ण जल।

विडङ्गादि मोदक (ग० नि०, वृ० नि० र०)—वाय-विडङ्ग के चावल, सोठ, मिर्च, पीपल, निसोत, दन्तीमूल, चित्रक इनके समान भाग चूर्ण को सबके बराबर गुड मिलाकर ६-६ माशे के मोदक बनावे। इनके सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है और त्रिदोषज परिणामशूल नष्ट होता है।

विश्वादि वटी—सोठ, वच, शुद्ध हीग, काली मिर्च, जीरा, गिलोय, तालीसपत्र इन सबका समान भाग चूर्ण लेकर सबको एकत्र मिलाकर भागरे के रस मे घोटकर चने के बराबर गोलिया बनावे। इसके सेवन से शूल, अग्निमाद्य और वातज रोगो का नाश होता है।

वचादि वटी (वृ० नि० र०)—वच, सोठ, जीरा, काली मिर्च, शुद्ध वच्छनाग, शुद्ध हीग, चित्रक, दालचीनी इनके समान भाग चूर्ण को एकत्र करके भागरे के रस मे घोटकर चने के बराबर गोलिया बनाले। इसके सेवन से शूल, वायु और अग्निमाद्य का नाश होता है। ●●

शूल—सामान्य परिचयात्मक विवेचन | पृष्ठ ५९ का शेषांश —

सामान्यत शूल के रोगी के लिए निम्नोक्त आहार द्रव्य पथ्य है। अत उनका अधिक सेवन करना चाहिए—

रसोन, आर्द्रक, शुण्ठी, कालीमिर्च, पिप्पली, अजवायन, हीग, राजिका, मेथिका, सोया, तिल का तैल, सरसो का तैल, एरण्ड तैल, गुड, घृत, अलसी, पुदीना, प्याज इनके अतिरिक्त सब्जी मे बैगन, मूली, सूरण, सरगम, मैथी की भाजी, परवल एव गेहूँ, चावल, मुद्ग, उडद, अरहर आदि।

अरहर के उपरान्त निम्नोक्त विहार भी शूल के रोगी के लिये लाभकर है—

१ चर्या, २ उष्णोदक, ३ आराम, ४ निद्रा, ५ मन की शान्ति, ६ वेदना की जगह को ऊनी वस्त्रो से ढाकने की प्रक्रिया।

अपथ्य —

शूल के रोगी के लिये निम्नोक्त आहार अपथ्य है अत इन्हे नही लेना चाहिए—

१ शीत आहार, २. वासी भोजन, ३ वातल द्रव्य, ४ रूक्ष द्रव्य, ५ अल्पाहार, ६ लघु आहार, ७ उपवास।

ऐसे आहार मे निम्न आहारो का समावेश किया जाता है —

१ बर्फ (आइस) २ शीत जल,

३ शीत द्रव्य आइसक्रीम, सोफ्ट ड्रिंक आदि।

४ द्विदल धान्य

५ गुवार, गोबी पलावर, कारवेल्लक, दुधी, वृद्ध मूलक, वटाटा, सक्करिया, टमाटर आदि सब्जी।

६ जामुन, आम्र, शिगाडा, इक्षु आदि फल।

७ कोद्रव, सामो आदि कुधान्य

विहार के सम्बन्धित अपथ्य देखा जाय तो—

१ शीतल पवन २ शीतोदक से स्नान ३ ठडी मे घूमना ४ शीतल जल की शिरोधारा ५ व्यायाम ६ प्रवास ७ परिश्रम ८ उपवास ९ जागरण १० पखे की हवा ११ चिन्ता, भय आदि मानसिक कारण। इस तरह शूल से सम्बन्धित सामान्य विवेचन किया गया है। ✶✶

* शूल में आयुर्वेदीय तात्कालिक चिकित्सा *

आयुर्वेद चक्रवर्ती (श्रीलंका), आयुर्वेद वाचस्पति कविराज गिरिधारी लाल मिश्र
प्रधान चिकित्सक—केदारमल आयुर्वेदिक होस्पिटल, तेजपुर (असम)



आयुर्वेद चक्रवर्ती श्रीयुत मिश्र जी एक प्राणाभिसर के व्यापक मूल्यों के संवाहक हैं। शालीनता, विनम्रता एवं कर्तव्य के प्रति समर्पण आपके चरित्र के ऐसे गुण हैं जिससे भारत के ही विद्वान नहीं अपितु भारतेतर मनीषी भी आपसे प्रभावित हैं। आपके भाषण, लेख सरस होते हैं। सरस कृति का आदि मध्य अन्त सरस होता है—

मरसो विपरीतश्चेत् सरसत्वं न मुञ्चति।

आपने सदैव सृजनशील समर्पित सेवा को अपनाया है, जिसके लिए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था—'मुझे मुक्ति या भुक्ति' की परवाह नहीं। वसन्त की भांति मौन दूसरों की सेवा करना मेरा धर्म है।

मेरे आग्रह पर आपने 'शूल मे आयुर्वेदीय तात्कालिक चिकित्सा' विषयक लेख प्रेषित कर कृतार्थ किया है। —दाऊदयाल गर्ग।

आयुर्वेदीय शूलहर तात्कालिक उपचार विधियां—

आयुर्वेदीय आशुभुवकारी औषधिया तथा उपचार विधिया शूल शमनार्थ उल्लिखित हैं—

स्वेदन—विभिन्न शूलों के प्रशमन मे स्वेदन का आशुकार्यकारी महत्त्व है। इसका वेदनाहर प्रभाव तो सर्वविदित है, प्राय सभी प्रकार की वेदनाओ मे स्वेदन है। आमवात के रोगियो मे वालुका स्वेद अत्यन्त लाभप्रद है। दूधिया तैल की मालिश करा कर नमक व वालुका गर्म करा कर पोटली द्वारा स्वेदन देने से तत्काल वेदना और शोथ का शमन होता है। आवश्यकतानुसार दिन मे २-३ बार कर सकते हैं। श्वास रोगियो मे सलवण तैलाभ्यङ्ग कर नाडी, प्रस्तर व शकर स्वेद व होटवाटर वेग (Hot water Bag) का स्वेदन तत्काल फलप्रद है। अर्श भगन्दर के रोगियो को Hip Bath उष्णोदक के टब मे बैठ कर स्वेदन कराना वेदनाशामक है।

मूत्रावरोध मे भी वस्ति प्रदेश पर होटवाटर बाथ से स्वेदन देने पर तत्काल मूत्र प्रवृत्ति होकर वेदना का शमन होता है। प्लुरसी, उर शूल मे भी होटवाटर बाथ से स्वेदन देना हितकर है।

दन्त शूल और कर्ण शूल मे भी गर्म नमक की पोटली का सेक अत्यन्त लाभदायक है। सक्षेप मे स्वेदन सभी प्रकार की वेदना मे लाभप्रद है।

अभ्यङ्ग—अभ्यङ्ग द्वारा भी वेदनाओ का प्रशमन होता है। गधाविरोजा का तैल उदरशूल और मासपेशियो की वेदना मे तत्काल फलप्रद है। अनिद्रा मे शिरोभ्यङ्ग अथवा घृत द्वारा पादाभ्यङ्ग निद्राप्रद है। हस्त पादतल दाह मे शतधौत घृत का अभ्यङ्ग शतशोऽनुभूत है।

वमन—वमन क्रिया द्वारा शीघ्र दोषो का शमन होता है। अम्लपित्त विदग्धाजीर्ण के कारण अम्लोद्गार, उरोदाह एव तीव्र उदरशूल होता है जिसमे सुखोष्ण लवण जल का प्रयोग कराकर वमन कराने से तत्काल विदग्ध पित्त का निर्हरण होकर वेदना शात होती है। कई बार जब औषधि से भी वेदना शात न हो तो वमन आशुफलप्रद और निराहार एव कष्ट निवारक प्रक्रिया के रूप मे व्यवहृत होती है।

वस्ति—गुदविदर (एनल फिशर्स) के रोगियो मे जात्यादि तैल की वस्ति तत्काल वेदनाशामक है। मूत्र मार्ग मे शोथ या क्षत हो जाने से मूत्र मार्ग मे दाह और

तीव्र वेदना होती है जिसमे जात्यादि तैल की उत्तर वस्ति देने मे वेदना और दाह का तत्काल प्रशमन होता है।

नस्य—अर्धावभेदक व तीव्र शिर शूल मे नस्य मे तुरन्त लाभ मिलता है। यष्टिमधु और मधु का या मन शिल और मधु का अवपीडन नस्य तत्काल फलप्रद है। शिर शूल मे षड्बिन्दु तैल का नस्य तो आशुफलप्रद है।

रक्तमोक्षण—गृध्रसी और विश्वाची की तीव्र वेदना को तत्काल प्रशमन के लिए सिरावेध विधि द्वारा रक्त-मोक्षण करना अत्यन्त लाभदायक है। नवीन शोथ मे भी स्थानिक रक्तमोक्षण कर देने मे शोथ कम होकर वेदना भी तत्काल शात होती है।

उपरोक्त विधियो का प्रचलन आजकल बहुत कम होता जा रहा है पर ये आयुर्वेद की निरापद एव तत्काल फलप्रद विधिया है जिनका प्रयोग रोगी के बलाबल को देखते हुए करना चाहिए। ऊपर जो प्रयोग आये है सहस्त्रो रोगियो पर परीक्षित है और हास्पिटल के अन्तरङ्ग विभाग मे निरन्तर आवश्यकतानुसार प्रयुक्त होते रहते है।

शूलहर स्वानुभूत १५ योगरत्न—

(१) अम्लपित्तान्तक कैपसूल—बड़ी इलायची के बीज, इमली छाल का कोयला, सोठ, जवाहरड ५-५ ग्राम, शख भस्म ४० ग्राम, सोडाबाई कार्ब १०० ग्राम को खरल मे घोटकर न० म बरले साइज के कैपसूल भरले। १-१ कैप-सूल पानी से ले। तीव्र उदरशूल और वृक्कशूल एव अम्लपित्त की सभी अवस्थाओ मे आशुफलकारी अव्यर्थ योग है। यह अपने तीव्र प्रभाव से तत्काल शूल शात करता है। गरिष्ठ भोजन को हजम करने मे एव शराबियो की प्रात कालीन छाती की जलन मे यही कैपसूल रामबाण है। असह्य और तीव्रतम उदरशूल मे इसे कनकासव व अहि-फेनासव के अनुपान से देना तत्काल फलप्रद है।

(२) शिवाग्नि वटी—हिग्वाष्टक चूर्ण, एरण्डभृष्ट जवाहरड, शुद्ध कुचला, शख भस्म, सोडाबाईकार्ब १००-१०० ग्राम, सहजने या गोद ५० ग्राम पानी के छीटे देकर मशीन मे २०० मि ग्रा की गोलिया बना ले व घृत कुमारी की एक भावना देकर हाथ से चणकमान गोलिया बनाले। उदरशूल एव उदरवात मे लक्षानुभूत योग है। हास्पिटल का बहुप्रचलित योग जो लाखो उदर रोगियो पर बहुपरीक्षित है, तीव्र उदरशूल को तत्काल शमन करता है। उष्ण जल व महाशख द्राव व सुधासुद्राव से भी दे सकते है।

(३) सुधासुद्राव (वैद्य सहचर)—अत्यन्त सरल पर अतीव आशुफलप्रद योग है। सोडाबाईकार्ब ४०० ग्राम, स्फटिका १००ग्रा को लोहे की कडाही मे डालकर जल होने पर जलीयाश को जलाकर आधा भाग सैंधव नमक मिला कर रखले। १ लिटर पानी मे १०० ग्राम मिलाकर द्राव (मिक्चर) बनाले। तीव्र उदर शूल मे किसी भी औषधि के साथ अनुपान रूप मे प्रयोग करे। तीव्र उदरशूल मे तत्काल फलप्रद योग है।

(४) वेदनान्तक रस—शुद्ध अहिफेन, कपूर, खुरासानी अजवायन १०-१० ग्राम, रससिंदूर २० ग्राम, भाग स्वरस की भावना देकर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले। १-१ गोली आवश्यकतानुसार उष्ण जल, दूध व सोठ के क्वाथ मे दे। यह योग यथा नाम तथा गुण है। वेदना कही भी कैसी भी हो उसका अन्त करने मे अद्वितीय है। इस रस का प्रभाव विशेषतया वात नाडियो पर पडता है जिससे यह भयङ्कर और सर्व व्यापी दर्द मे जब रोगी दर्द के मारे छटपटा रहा हो तत्काल दर्द को शात करता है। शिर दर्द,पेट दर्द,कमर दर्द रोगी को शात निद्रा मे पहुचाता है।

(५) निद्रोदय रस—रससिन्दूर, वशलोचन, शुद्ध अहि-फेन १०-१० ग्राम, धातकी पुष्प, आमलकी ४०-४० ग्राम को भाग के स्वरस की तीन भावना देकर बीज रहित मुनक्का २४० ग्राम मिलाकर अच्छी तरह घुटाई कर १-१ रत्ती की गोलिया बना छाया मे सुखा ले। १-२ गोली आवश्यकतानुसार दूध मे दे।

यह हानिरहित निद्राप्रद औषधि है। जब रोगी आघा-तज वेदना, शिर शूल, कर्णशूल, अग्निदग्धशूल, व्रणशूल, वृक्कशूल के कारण छटपटा रहा हो दर्द के कारण नीद नही आ रही हो तो इसकी पहली ही मात्रा रोगी को शात निद्रा मे ले जाती है। मानसिक चिन्ता के कारण निद्रा न आरही हो व उच्च रक्तचाप की अनिद्रा मे भी तत्काल फलप्रद उत्तम निद्राप्रद है।

विशेष—वेदनान्तक रस और निद्रोदय रस दोनो ही अहिफेन प्रधान योग है अत अधिक मात्रा मे व निरन्तर प्रयोग नही करना चाहिए। आवश्यकतानुसार ही प्रयोग करना चाहिए।

(६) विष गुटिकादि वटी–शुद्ध कुचला, कालीमिर्च, सुपारी, रूमनी बीज समभाग को पानी मे घोटकर चणकमान गोलिया बना ले । शास्त्रीय योग मे कुचला की मात्रा अधिक ली गयी है पर हम सब द्रव्यो को समभाग लेकर ही बनाते है जिससे यह बालक-वृद्ध रोगी पर मात्रानुसार निर्भय प्रयोग किया जाता है । हास्पिटल का बहुप्रचलित योग है जो दन्त, शख कर्ण शूल, आघातज वेदना, कटिशूल व सभी प्रकार के तीव्र शूलो मे प्रयोग किया जाता है । सर्दी-जुखाम के साथ शिर शूल मे भी यह तत्काल फलप्रद है । निर्माण मे सरल और सुलभ औषधि योग होते पर भी दर्द नाशक योग मे अग्रगण्य एव बहुश परीक्षित है ।

(७) अस्थि सन्धानक कैपशूल—लाक्षादि गुग्गुल, मजिष्ठ, मधुयष्टि, हडजोड, हरिद्रा, शुद्ध कुचला, प्रवाल भस्म, कुक्कुटाण्डत्वक भस्म, पीपल लाख, अश्वगन्धा ये १० द्रव्य प्रत्येक १०-१० ग्राम को खरल कर ०० न (बडे साइज) के कैपशूल भरे या हडजोड स्वरस की भावना देकर गोली बना ले । सुबह शाम दूध से दे । ४० दिन का पूरा कोर्स है १० दिन मे ही अस्थिसधान हो जाता है । ऐसे अनेक रोगियो पर भी परीक्षित है जिनको १ महिना प्लास्टर लगा रहने पर भी अस्थि सन्धान नही हुआ था मात्र १० कैपसूल के प्रयोग से अस्थिसन्धान हो गया । अभिघातज शूल, अस्थिभग्न शूल मे अत्यन्त गुणकारी अनुभूत योग है ।

(८) अस्थिसन्धान लेप–हडजोड, एलुआ, लाख, मालकागनी के बीज, गुग्गुल ५-५ ग्राम, हल्दी-दारहल्दी, फिटकरी १०-१० ग्राम, सबका चूर्ण बनाकर रखले । अस्थिभग्न स्थान पर–पानी मे पकाकर या पानी + पचगुण तैल मे पकाकर लेप कर पट्टी बाध दे । अस्थि का सन्धान होगा, वेदना का तत्काल हरण होगा, शोथ का भी शमन होगा । बहुश परीक्षित योग है ।

(९) वृक्कशूलान्तक वटी–काला नमक, सोडाबाईकार्ब नौसादर, यवक्षार, टकण भस्म, शुद्ध हीग, अकरकरा, पीपरमेंट के फूल समभाग पानी के छीटे देकर धूप मे सुखाकर २०० मि ग्रा की मशीन से बडी सुन्दर गोलिया बनती है । मशीन के अभाव मे घृतकुमारी की १ भावना देकर चणकमान गोलिया बनाकर सोडाबाई कार्ब के पाउडर मे डालते जाये । सोडा लगने से गोलिया सूख जाती है अन्यथा सूखती नही । १-२ गोली गर्म जल से दे । यह यथानाम तथा गुण है । वृक्क की असह्य वेदना को तत्काल शात करती है । सामान्य औषधि होते हुए भी आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाती है । अश्मरीजन्य शूल को शात कर अश्मरी को तोड कर मूत्र द्वारा निष्कासन मे सहायक है। मूत्रावरोधजन्य तीव्रशूल मे वृक्कशूलान्तकवटी + शिवाग्नि १-१ गोली शूल को शात करने मे चमत्कारिक लाभ प्रदर्शित करती है ।

(१०) शखगुडम्–शख भस्म और गुड समान भाग लेकर पानी के छीटे देकर चणकमान गोलिया बनाले । गुड शुष्क हो तो न ०० साइज के कैपसूल भी भर सकते है । १ मात्रा १ ग्राम की हो दिन मे ३ मात्रा पर्याप्त है। रज कृच्छ्रताजन्यशूल मे यह तत्काल फलप्रद है । कष्टार्त्तव के कष्ट का तत्काल निवारण करती है । नवयुवतियो को रज श्राव के समय तीव्र शूल की आम शिकायत रहती है व जिन युवतियो व लडकियो को मासिक स्राव के समय प्रारम्भ मे तीव्र शूल होता है दर्द के समय व प्रति मासिक स्राव के समय १-१ गोली दिन मे ३ बार मट्ठे (छाछ) के अनुपान मे दे तो तत्काल वेदना का शमन होता है । मासिक स्राव के ३ दिन ही इसका प्रयोग पर्याप्त है पर ३ मासिक स्राव चक्र मे अर्थात ३ माह मासिकस्राव के समय प्रयोग करने मे हमेशा के लिए रोग शात हो जाता है ।

(११) हृदय राज वटी—लहसुन एकपुथिया १०० ग्राम, इन्द्र जौ ५० ग्राम, करज बीज गिरी ५० ग्राम, सांचर नमक, मण्डूर भस्म, शुद्ध कुचला, शुद्ध हीग, भुनी जवाहरड २०-२० ग्राम, भावना–घृतकुमारी, चणकमान गोली बनाले । हृदय शूल मे तत्काल फलप्रद है। दिल की कमजोरी, घबराहट मे लाभप्रद है । शृङ्ग भस्म २ रत्ती, तथा 'खमीरा गाजवा अम्बरी जवाहरवाला खास' ३ ग्राम के साथ २ गोली अर्क वेदमुश्क ३० मि लि मे घोल कर पिलाने मे रोगी यदि गतायुष न हो तो हृदय निपात (**Heart Failure**) का रोगी भी निश्चित रूप मे जीवनदान पाता है तथा हृदय शूल, दिल का दौरा, धडकन मे अत्यन्त गुणकारी आशुफलप्रद है ।

(१२) योगराज फोर्ट—महायोगराज गुग्गुल २०० ग्राम, शुद्ध कुचला १०० ग्राम, अश्वगन्धा, सोठ, शुद्ध हीग,

—शेषाश पृष्ठ ७७ पर देखे ।

❁ विविध शूल चिकित्सा ❁

कविराज हरिवल्लभ मन्नूलाल द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य
स्वामी निरंजन निवास, चकराघाट, सागर (म० प्र०)

★—★

मध्य प्रदेश के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं वयोवृद्ध वैद्य महानुभाव श्री कविराज हरिवल्लभ सिलाकारी शास्त्री 'धन्वन्तरि' मासिक के आधार स्तम्भ स्थायी लेखक हैं। शास्त्री जी अष्टाङ्ग आयुर्वेद के ज्ञाता, सिद्ध-हस्त वैद्य एवं समाज सेवक हैं। आपने जटिल विषयों पर संशोधन कर ग्रन्थ लिखे हैं। आप म० प्र० आयुर्वेद मंडल के पदाधिकारी हैं। आयुर्वेद की अनेक मासिक पत्रिकाओं में आप वर्षों से आयुर्वेद के विविध विषयों पर लेख लिखते हैं। यहां आपने ६५ वर्ष की अपनी चिकित्सा विविध प्रकार के शूलों पर दी है—जो अनुभूत सारगर्भित एवं वैद्य समाज को मार्गदर्शक है। वयोवृद्धावस्था में 'धन्वन्तरि' पर अतीव प्रेम के कारण विशेष आग्रह से लेख भेजकर उपकृत किया है। भगवान धन्वन्तरि आपको सदा स्वस्थ रखें। आपसे आशा की जाती है कि आप इसी तरह 'धन्वन्तरि द्वारा बार-बार मार्गदर्शन देते रहेंगे। —वैद्य अशोक भाई तनाविया भारद्वाज

रोग और रोगी की अवस्थानुसार प्रथम स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वस्ति द्वारा शोधन के पश्चात् [illegible] आरम्भ करना चाहिए—

[illegible] स्नेहैरुपाचरेत् ।
[illegible] विरेचनम् ॥
—चरक चि०

यदि उदर रोगी बलवान् हो तो प्रथम स्नेहन करना चाहिए। स्निग्ध तथा स्वेदन के पश्चात् स्नेह सहित विरेचन देना चाहिए। विरेचन द्वारा दोष निष्कासन से [illegible] देना चाहिए। इस क्रिया [illegible] चाहिए।

उदर-शूल

[illegible] शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध [illegible], [illegible] हिंग, [illegible], [illegible], [illegible] अजवायन, सज्जिका क्षार, यव क्षार, चित्रक मूल छाल, सेंधा नमक, काला नमक, वायविडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला, [illegible] १८ तोला, कागजी नीबू का रस ७० तोला।

विधि—प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर लेना। शेष औषधियों को कूट कपड़छान कर चूर्ण कर लेना। फिर सबको मिलाकर नीबू के रस से खूब मर्दन कर काली मिर्च के प्रमाण वटी बनाकर शीशी में रख लें।

मात्रा—१ से २ वटी तक। अनुपान—उष्णोदक।

समय—दिन में तीन बार तक अथवा आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

उपयोग—उदरशूल, अग्निमांद्य, आध्मान, यकृत्-प्लीहा वृद्धि, गुल्म आदि उदर-विकार विनाशक है।

शूल प्रहार वटी—सोंठ, हरड़, हींग, सांभर नमक चारों समान भाग। इन चारों के बराबर गुड़ मिलाकर बेर के बराबर गुटिका बनाकर रख लेना।

मात्रा—१ से २ गुटिका तक। अनुपान—उष्णजल। समय—दिन में २ बार।

उपयोग—शूल, विशेषकर परिणाम शूल शीघ्र शमन होता है।

शूलघ्न योग—सोठ, एरण्डमूल इनके क्वाथ मे अल्प हींग मिलाकर देने से वातज शूल शान्त होता है।

शूलहर लेप—देवदारु, श्वेत वच, कूठ, सौंफ वडी, अजवायन, हींग, सेधा नमक समान भाग लेकर काजी के साथ महीन पीसकर कुछ कवोष्ण पेट पर लेप करने से वातज शूल शान्त हो जाता है।

आमशूल पर—चित्रकमूल, पीपरामूल, एरण्डमूल, सोठ, धनिया इनके क्वाथ मे हींग तथा सेधा नमक मिलाकर पिलाने से आमज शूल शमन होता है।

शम्बूकादि गुटिका—शख भस्म, त्रिकटु, सेधा नमक, काला नमक, समुद्र नमक, कासिया नमक, विड नमक सब द्रव्य समान भाग लेकर कूट-छान चूर्ण कर लेना।

विधि—इस चूर्ण को कलम्बी शाक (नाडी की भाजी) के रस मे खरल करके ३-३ माशे वजन की गुटिका वनाकर रख लेना। मात्रा—१ से २ गुटिका तक। अनुपान—उष्णोदक। समय—भोजनोपरान्त दिन मे ३ वार तक, आवश्यकतानुसार। उपयोग—परिणाम शूल मे लाभप्रदायक है।

शूलगजकेसरी—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक १२-१२ तोला, शतपुटी ताम्र भस्म (वान्ति-भ्रान्तिनाशक) २० तोला, शख भस्म, लौह भस्म ८-८ तोला, सोठ, काली मिर्च, पीपल, यवक्षार, सेधा नमक, काला नमक, निशोथ, हरड, मौथा प्रत्येक ८-८ तोला लेकर कूट छानकर चूर्ण तैयार कर लेना।

विधि—प्रथम पारद ओर गन्धक की कज्जली कर लेना। कज्जली से लौह भस्म पर्यन्त चारो द्रव्यो को नीबू के रस मे मर्दन कर एक गोला वनाकर लवण यन्त्र सम्पुट मे रख कपडमिट्टी कर गजपुट मे रख ६ घटे की जगली कण्डो की अग्नि मे पकाना। जब स्वागशीतल हो जाय तव यन्त्र मे रखे हुए गोले के साथ कपडछन किये चूर्ण को मिला खरल कर रख लेना। मात्रा—३ से ६ रत्ती तक। अनुपान—उष्णोदक अथवा आर्द्रक रस-मधु। उपयोग—सम्पूर्ण शूलो पर अत्यन्त लाभप्रद है।

इनके अतिरिक्त शास्त्रीय आयुर्वेदोक्त मेरे पैंसठ वर्षीय चिकित्सा काल मे प्रयुक्त शतशोनुभूत प्रयोग अत्यन्त उपयोगी हैं। यथा—शूलवर्जिणी वटी, महाशख वटी, हिंग्वाष्टक चूर्ण, नारायण चूर्ण, यवानीखाण्डव चूर्ण, कुमार्यासव, अग्न्यासव।

शिरःशूल

शिरोर्तिवल्लभ वटी—जायफल, जायपत्री, गगेरन की छाल, अपामार्ग, कूठ कडुवा, धवई पुष्प, अफीम, शुद्ध हिंगुल सब समभाग।

विधि—सवको कूट छानकर रख लेना चाहिए। इसको श्वेत कनेर के पुष्प के रस मे मर्दन कर मूग प्रमाण की वटी वनाकर शीशी मे भर रखें।

मात्रा—१ से २ वटी तक। अनुपान—गोदुग्ध अथवा सोठ की चाय से। उपयोग—शिर शूल, शिरोरोग नाशक।

नस्य—सोठ तथा गुड को जल मे घोल-छानकर नस्य लेना हितावह है। अथवा—

कायफल चूर्ण और श्वासकुठार रस दोनो समभाग मिलाकर नस्य देने से शिर शूल शमन होता है।

अफीम और जायफल दोनो को दूध मे घिसकर मस्तक पर लेप लगाना।

शिर शूल मे—बादाम का तैल शिर मे मर्दन करना। शिर शूलादिवज्र रस खिलाना।

कर्णशूल

हींग, लहसुन, अजवायन, बिल्वगिरी, उडद समान भाग। इन पाचो द्रव्यो से चोगुना सरसो का तैल।

विधि—सब द्रव्यो को सरसो के तैल मे डालकर पात्र को अग्नि पर चढाकर द्रव्यो को तैल मे कोयला समान होने पर छानकर शीशी मे भरकर रख लेना चाहिए।

उपयोग—कान मे ४-५ बूद डालने से कर्णशूल शान्त होता है।

शास्त्रोक्त दशमूल तैल, महानारायण तैल, बिल्व तैल कान मे डालने से लाभ होता है।

नेत्रशूल

केशर २ तोला, अफीम २ तोला, रसौत ३ तोला, फिटकरी ४ तोला, गुलाबजल १ सेर।

विधि—चारों द्रव्यो को महीन पीसकर १ सेर गुलाबजल मे डालकर एक सप्ताह अच्छा काग लगाकर नीले रग की शीशी मे भरकर रख छोडें। पश्चात् मलमल के कपडे से छानकर शीशी मे भरकर रख लीजिये।

उपयोग—प्रातर मे २-२ बूंद नेत्रो मे दिन मे ३-४ बार डालना चाहिए। इससे नेत्रशूल, सर्व प्रकार के नेत्र अभिष्यन्द २-३ दिन मे ही नष्ट हो जाते है। स्वस्थ नेत्रों मे डालने से दृष्टिदौर्बल्य दूर होकर दृष्टि बलवान बनती है।

नेत्रशूलहर पोटली—दारुहल्दी, हल्दी, रसौत, पठानी लोध्र, फिटकरी, अफीम सब समान भाग लेकर कूटकर कपडे की पोटली मे बाधकर शुद्ध गोघृत तवे या कटोरी मे डालकर पोटली मे नेत्रो की सामान्य सेक से नेत्रशूल शान्त होता है।

लेप—अफीम, रसौत, हरड, लोध्र, आमाहल्दी को समान भाग लेकर गोदुग्ध या बकरी या स्त्री के दूध मे घोलकर कुछ कवोष्ण लेप नेत्रो के पलको के ऊपर करने से नेत्रशूल नष्ट हो जाता है।

दन्तशूल

[१] वल्लभ अमृतधारा—कपूर देशी, पिपरमेण्ट, अजवायन का सत, लौंग का तेल चारो समान भाग।

विधि—एक शीशी मे भरकर काग लगाकर कुछ समय तक रख देना, यह द्रव्य द्रवीभूत हो जायगा। इसको फुरैरी मे दन्तशूल पर लगाना या तर कर फाहे को दात के नीचे दबाना चाहिए। दन्तशूल शान्त हो जाता है। मात्रा—५ से १० बूंद तक। अनुपान—अर्क सौंफ, बताशा, शर्करा, जल। समय—दिन मे अनेक बार आवश्यकतानुसार प्रयुक्त करना चाहिए। उपयोग—विसूचिका, वमन, अतिसार, अपचन, शूल शामक।

[२] केवल लौंग का तेल लगाने से दन्तशूल मे लाभ होता है।

[३] अकरकरा, सोठ, कालीमिर्च, पीपल चारो समान भाग लेकर कूट कपडछन कर चूर्ण तैयार कर रखे। उसका दन्तशूल पर मर्दन अथवा मजन करने से दन्तशूल शीघ्र शान्त होता है।

विशेष—उक्त वल्लभ अमृतधारा को शुद्ध घृत या वैसलीन मे मिलाकर मस्तक पर लगाने मे शिर शूल शमन होता है। इसी को सरसों के गुनगुने तैल मे कुछ बूंद मिलाकर कर्ण मे डालने से कर्णशूल शान्त हो जाता है।

वातारिवल्लभ वटी—शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध कुचला, कालीमिर्च प्रत्येक आधा-आधा तोला, अफीम ३ माशा। पान के रस मे महीन पीसकर चने प्रमाण वटी बनाकर सुखाकर शीशी मे रख लीजिये।

मात्रा—१ से २ वटी तक अवस्थानुसार। अनुपान—दूध, घृत, जल।

उपयोग—वातव्याधियो के शूल पर अत्यन्त लाभप्रद। कटिशूल, गृध्रसी शूल, सर्वाङ्ग शूल शामक, अनिद्रा नाशक।

शूलारि तैल—सरसो का तैल, तारपीन का तैल, मालकागनी का तेल, रोसा का तैल चारो ५-५ तोला, देशी कपूर १ तोला पीसकर मिलाकर रखे।

उपयोग—वातव्याधि विनाशक एव तज्जन्य शूल शामक है।

पार्श्वशूल

शुद्ध कुचला १ तोला, कालीमिर्च १॥ माशा, शृङ्ग भस्म १ तोला।

विधि—तीनो को जल मे महीन पीसकर मूंग प्रमाण वटी बनाकर रख लेना।

मात्रा—१ से २ वटी तक अवस्थानुसार। अनुपान—घृत, गोदुग्ध उबाला हुआ।

उपयोग—पार्श्वशूल, हृच्छूल नाशक। श्वास, कास, वातहर।

ऋतुशूल

शख भस्म २ रत्ती, मुक्ताशुक्ति भस्म २ रत्ती, हिंग्वष्टक चूर्ण ३ माशा। यह एक मात्रा है।

अनुपान—पचकोल के क्वाथ मे गुड मिलाकर लेना।

समय—रजोधर्म मे, ऋतुशूल की दशा मे हुए शूल को नष्ट करता है। भोजनोपरान्त कुमार्यासव १ चम्मच, दशमूलारिष्ट १ चम्मच दोनो को समभाग जल मिलाकर दिन मे ३ बार या आवश्यकतानुसार रज प्रवर्तनी वटी, महाशख वटी, शूलवज्रिणी वटी इनका प्रयोग हितावह है।

स्तन्यशूल

महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती, महावातविध्वस रस २ रत्ती, अश्वगन्धा चूर्ण १॥ माशा मिलाकर १ कप दूध अथवा शुण्ठी की चाय के द्वारा देना।

लेप—दशाग लेप मे थोडा गुग्गुल मिलाकर गोमूत्र के साथ गुनगुना स्तन पर लेप करने से स्तनशूल शान्त होता है। दूध निकाल देना चाहिये।

लेप—दारुहल्दी, अजवायन, अमलतास, गोठ, हींग, एरण्ड बीज सब द्रव्य समान भाग लेकर दूध मे महीन पीसकर कुछ गर्म करके स्तन पर लेप लगाने से स्तनशूल शमन होता है।

चिकित्सा की अपेक्षा रोग की रोकथाम बेहतर है।

[१] सामान्य शूल रोग मे सेक करने मे लाभ होता है, पेट पर एरण्ड तैल लगाकर।

[२] पालि आर्क पत्र थोड़े आग पर उष्ण करके बांधे।

[३] लहसुन को सिल पर पीसकर पेट पर लेप करना चाहिए।

[४] सोठ, अजवायन, अदरक, कालीमिर्च की चाय (फाण्ट) पीनी चाहिए।

[५] इच्छाभेदी रस अथवा पचसकार चूर्ण तथा ईसबगोल की भुसी दोनो ६-६ माशे मिलाकर पानी के साथ सेवन कर उदर शुद्धि करना आवश्यक है। भोजन भूख लगने पर ही करना, मूग की दाल मे पचकोल की पोटली डालकर पकाई हुई का यूष, परवल का यूष दे।

शाक—भाजी, आलू, भिण्डी, अरबी, पूडी-पराठे, खीर, हलुआ, गरिष्ठ ओर वासा अन्न, अण्डा मास नही देना।

भूख लगने पर पतले पदार्थ जैसे—सांजा, खिचडी, कढी, दलिया दूध देना चाहिए। पपीता, मौसम्बी, मुनक्का, अजीर, अगूर देना हितावह है। आरम्भ मे एक दो दिन लघन कराना लाभप्रद है।

विटम्भिन स्मृता सर्वैवटका वातकोपना।
आधुकानि च सर्वाणि विष्टम्भी निगुर्णाणि च॥

—सुश्रुत स०

मूग या उडद की दाल की पिष्ठी द्वारा बनाई बडी-मगोडी आदि शुष्क शाको की पिसी बडी, आलूयुक्त मेदा के समोसे, आलूगोटा आदि आनाह-अफरा उत्पन्न करने वाले वायु प्रकुपित करते है। ★★

— शूल मे आयुर्वेदीय तात्कालिक चिकित्सा — पृष्ठ ७३ का शेषाश —

एरण्ड मिर्गी, सहजना, गोद ५०-५० ग्राम, रास्नादि क्वाथ की भावना देकर चणकमान गोलिया बनाले। तीव्र वातज कटिशूल, सन्धिवातज व आमवातज, गृध्रसी शूल मे तत्काल फलप्रद है तथा नियमित सेवन से स्थायी लाभप्रद योग है। वातव्याधि मे स्वर्ण-कस्तूरी घटित योगो से टक्कर लेने वाला तत्काल वेदनाशामक आशुगुणकारी योग है। बहुश परीक्षित है।

(१३) दूधिया तैल—१ लिटर-गर्म पानी मे साबुन (बारसोप) २५० ग्राम घोलकर तारपीन तैल ५०० मिलि मिला अच्छी तरह घोलकर शीशी मे रखले। तीव्र वेदना हरण मे तत्काल फलदर्शी है। वेदना स्थान पर धीरे-धीरे लगावे। रुई की फुरेरी से चोट, मोच के स्थान पर लगाने से तत्काल वेदना का शमन होता है। वातजशूल व आम-वातज शूल मे इसकी हल्की मालिश कर बालुका स्वेद देने से तत्काल तीव्र वेदना शात होती है।

(१४) टकण भस्म—सुहागे का चूर्ण कडाही मे डाल कर फूला बनाले और महीन पीसकर शीशी मे भर ले। स्त्री के लिये प्रसव पीडा काल अत्यन्त ही कष्टप्रद है। हम सुखदायक प्रसव के लिये टकण भस्म १ ग्राम मधु से खिला देते है। असह्य वेदना हो तो साथ मे दशमूल क्वाथ भी पिला देते है। १॥ से २ घण्टे के अन्दर ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है। कोई १-२ प्रतिशत रुग्ण को ही २ घण्टे बाद दूसरी मात्रा देनी पडती है अन्यथा पहली मात्रा ही कष्ट प्रसूति मे रामबाण है। मूढगर्भ की अवस्था मे भी टकण भस्म १ माशा, बशपत्र क्वाथ व दशमूल क्वाथ से देने से मूढगर्भ का प्रसव होजाता है।

(१५) दन्तशूलारि—तारपीन तेल ४५० मिलि, अमृतधारा ५० मिलि मिलाकर रखले। दन्तशूल के रोगी को रुई की फुरेरी से शूल स्थान मे लगाने पर तत्काल शूल का शमन होता है। आघातज वेदना, वातिक वेदना मे भी तत्काल फलप्रद है। वृश्चिक दश व कीट दश की तीव्र वेदना मे भी तत्काल वेदनाहर है। वाह्य प्रयोगार्थ (कान आख को छोड कर) शरीर के किसी भी भाग की वेदना पर इसका प्रयोग आशुफलप्रद है। ★

०()०

 शूल रोग चिकित्सा

वैद्य दरबारी लाल आयुर्वेद भिषक्, अशोक भैषज्य भवन, फतेहगढ (फर्रुखाबाद) उ. प्र

—★✣★—

शूल की शान्ति के लिये वमन (कै, उल्टी) कराना, लङ्घन, स्वेद (सेकना,पसीना निकालना) पाचन, फलवर्ती, क्षार चूर्ण ओर क्षार की गोलिया उत्तम कार्य करती है।

वातशूल की चिकित्सा—इसकी चिकित्सा स्नेह ओर स्वेद देकर करे। खिचडी, खीर और चिकना मासरस खिलाने से लाभ होता है। इसमे स्वेद देना वहुत सुखदायक है। तिलो को काजी मे पीसकर उसकी पोटली वना आग पर गर्मकर वार वार घुमाने से वातिक शूल शात होता हे। मैनफल काजी मे पीस कर नाभि पर लेप करने से वातिक शूल की शान्ति होती है। बेलगिरी, एरड की जड और तिल इनको समान भाग लेकर काजी से पीस कर पेट पर फेरने से वातिक शूल शात होता है।

कुलथी का क्वाथ घी मिलाकर तथा सेधा नमक, सोठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, लोंग, हीग, काला नमक और अनार दाना का चूर्ण मिलाकर पिलाने से वातिक शूल शीघ्र दूर होता है।

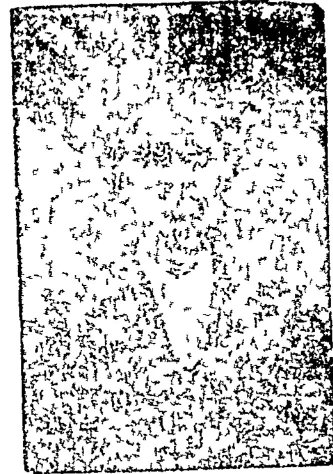
सोठ, एरण्ड की जड को समभाग लेकर काढा करे। इस क्वाथ मे हीग, काला नमक डालकर पीने से वातिक शूल नष्ट होता है।

दशमूल के काढे मे एरण्ड तैल व हीग और काला नमक मिलाकर पिलाने से गुडगुडाहट सहित वातिकशूल नष्ट होता हे।

पित्तशूल की चिकित्सा—

पहिले परवल और गन्ने का रस आदि से पित्तशूल वाले को वमन करावे फिर विरेचन (दस्त) करावे। शतावर, मुलहठी, वला, कुशा की जड गोखरू इनको समभाग लेकर काढा बना ठण्डा होने पर गुड, शहद और खाड मिलाकर पिलावे तो पित्तशूल, रक्तस्राव, दाह, हिचकी, ज्वर और वमन नष्ट होती है।

हरड, वहेडा, आमला और अमलतास समभाग लेकर क्वाथ करके खाड और शहद मिलाकर पिलाने से रक्तपित्त, दाह तथा पित्त शूल दूर होता है।



शतावरी स्वरस मधु मिला पिलाने से दाह व शूल शात होता है। आमले का स्वरस या विदारी कद का स्वरस त्रायमान और दाख के क्वाथ से मिलाकर खाड डालकर पिलाने से शीघ्र ही पित्त शूल शात होता है।

आमले का चूर्ण शहद मिलाकर चटावे या हरड का चूर्ण गुड और घी से मिलाकर खाने से पित्तशूल नष्ट होता है।

कफ शूल की चिकित्सा—

सेधा नमक, काला नमक, विड नमक, छोटी पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोठ और हीग इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर गरम पानी से पीने से कफ शूल नष्ट होता है।

त्रिदोषज शूल की चिकित्सा—

शङ्ख भस्म, सेधा नमक, हीग, सोठ, मिरच काली, पीपल छोटी सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर गर्म जल से पिये तो त्रिदोषज शूल नष्ट होता हे।

आमशूल की चिकित्सा—

आमजशूल मे कफज शूल को नष्ट करने वाली सब क्रियाये करनी चाहिए। तथा अन्य सब पथ्य आदि भी आम नाशक तथा अग्नि को वढाने वाले सेवन करने चाहिए। चित्रकमूल, पीपरामूल, एरण्डमूल, धनिया,

सोंठ और सुगन्ध वाला हींग, सेंधा नमक और बिड नमक मिलाकर पिलाने से आमशूल नष्ट होता है।

एरण्ड का तैल ८ भाग हींग १ भाग, सेंधा नमक ३ भाग और लहसुन का रस २७ भाग सबको मिलावें। इसके पीने से गुल्म और उदावर्त शूल नष्ट होता है।

द्वन्द्वज शूल चिकित्सा—

छोटी कटेरी २ भाग, बड़ी कटेरी, कुशा की जड़, लाल मखाने की जड़, गोखरू और एरण्ड की जड इनको १-१ भाग लेकर काढा बनावें, इस काढे को खाड और शहद मिलाकर पीने से वातपित्तज शूल नष्ट होता है।

पटोल पत्र, हर्रे, बहेड़ा, आमला, नीम, गिलोय सम-भाग लेकर क्वाथ कर मधु मिलाकर पिये तो पित्त श्लेष्मजशूल, भ्रम, ज्वर, दाह और शूल शांत होते है।

[illegible] गर्म करके पीपल और सेंधा नमक मिलाकर पीने से वात कफजशूल, कुक्षिशूल नष्ट होते है।

शूल रोग की सामान्य चिकित्सा—

त्रिफला का क्वाथ २ भाग, एरण्ड का तैल १ भाग मिलाकर पीने से या शहद दो भाग, एरण्ड तैल १ भाग मिलाकर पीने से या दूध २ भाग, एरण्ड तैल १ भाग मिलाकर देने से विरेचन होकर शूल रोग नष्ट होता है।

नीबू के रस मे शहद और यवक्षार डालकर पीने से पसलियो का दर्द, हृदय का दर्द और बस्ति का दर्द नष्ट होता है। यह पेट की भयकर वायु को भी निकालता है।

इन्द्र जौ, हर्र, पोहकर मूल इनका समभाग लेकर काढा करे और इस काढे मे हींग, पीपल और अतीस का चूर्ण मिलाकर गर्म-२ पिये तो वात शूल, आमशूल शीघ्र ही नष्ट होता है।

लवण भास्कर चूर्ण ३ ग्राम गर्म पानी से लेने से शूल शात होता है।

लवण भास्कर चूर्ण १॥ ग्राम, हिग्वाष्टक चूर्ण १॥ ग्राम, सोडाबाईकार्ब ३/८ ग्राम, नौसादर चूर्ण ३/८ ग्राम मिलाकर गर्मकर गर्म पानी से या नीबू के रस मे पानी मिलाकर इसमे लेने से उदर शूल शीघ्र शात होता है।

नौसादर १॥ तो, टाटरी १ तो, सोडा खाने वाला २ तो मिलाले। इसमे से ३ ग्राम दवा लेकर काच के गिलास मे ५ तोला पानी मे मिला दे। मिलाने पर झाग उठेगे। झाग उठते ही तत्काल पीडा शमन होती है।

शङ्ख वटी १ गोली गर्म जल से लेने से सब प्रकार के शूल नष्ट होते है। गुल्म रोग, अजीर्ण और परिणाम शूल नष्ट होते है। अतीसार रोग और विशेष करके ग्रहणी रोग नष्ट होता है।

शङ्ख वटी की निर्माण विधि—इमली का क्षार ५ पल, पाचो नमक प्रत्येक १-१ पल इन सबको मिलाकर जबीरी नीबू के २ प्रस्थ रस मे मिलावे। फिर १० पल शुद्ध शङ्ख को लेकर अग्नि पर तपा-तपा कर ७ बार उस रस मे बुझावे, फिर उसको एकत्र मिलाकर पीसे और सूखने के बाद इसमे हींग सोठ, मिर्च काली और छोटी पीपल का चूर्ण ४ पल डाले। शुद्ध गधक, शुद्ध पारा और वत्सनाभ प्रत्येक आधापल लेकर पारा गधक की कज्जली बनाकर सबको मिलाकर खरल करे। फिर उन सब द्रव्यो को एकत्र जम्मीरी नीबू के रस मे ३ दिन तक खरल करके बेर की गुठली के बराबर ३-४ रत्ती वजन की गोली बनाले।

शूल गज केसरी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभविष, कपर्द भस्म, यवक्षार, सेंधा नमक, पीपल छोटी और सोठ प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर पारे, गन्धक की निश्चन्द्र कज्जली बना फिर अन्य द्रव्य मिलाकर सबको एकत्र कर पान के रस मे घोटे। इसकी १-२ रत्ती की मात्रा देने से शूल रोग नष्ट होता है।

तेजाब गन्धक १ भाग गुलाब जल १० भाग मिलालें। एक छटाक जल मे १ तोला शक्कर और १० से २० बूद तक उक्त तेजाब का मिश्रण मिलाकर पिलावे। उदर शूल तत्काल शात होगा।

शङ्ख वटी कुमारी आसव के अनुपान से या लोहासव के अनुपान से देने से उदर शूल शीघ्र नष्ट होता है।

नौसादर ४ भाग सेंधा नमक २ भाग मिर्च काली १ भाग, नीबू का सत १/२ भाग लेकर चूर्ण करे, इसमे मे २-२ ग्राम चूर्ण पानी से दे। उदर शूल को शीघ्र नष्ट करता है, भूख बढाता हे अग्नि दीप्त करता हे।

सोडा खाने वाला १० तोला, गुड ५ तो, तेजाब गन्धक १॥ औंस, जल २४ औंस लेकर थोडे पानी मे गुड सोडा घोल तेजाब थोडा-२ डाले उफान आता है। तेजाब समाप्त होने पर छानकर रखले। १-१ औंस प्रात.

—शेषाश पृष्ठ ८२ पर देखे।

※ शूल विषयक गलत मान्यतायें एवं चिकित्सा ※

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर,
सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात

—✶✥✶—

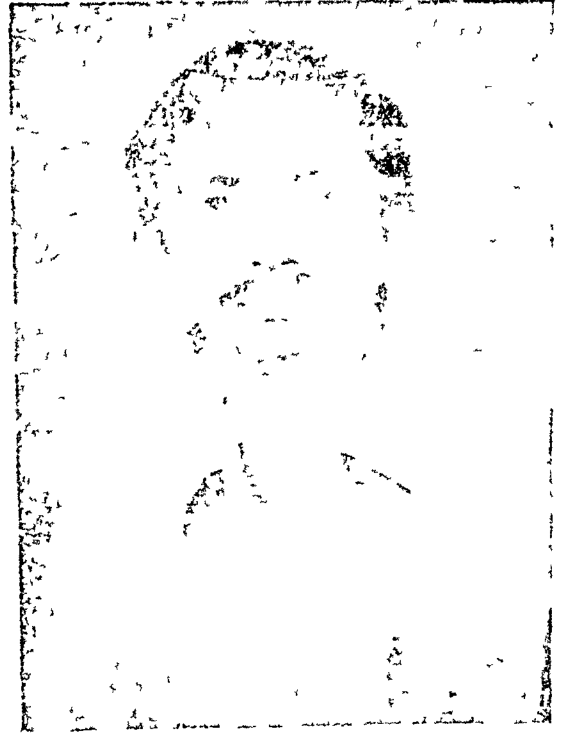
भारतीय समाज अधिकाशत अधश्रद्धा से युक्त है। जादू-टोना, मुठपेठ, दोरा, धागा, मन्त्र फूक इत्यादि पर श्रद्धा रखते है और रोगनाश हेतु इस पद्धति को अपनाते है। इसमे कुछ ऐसे भी छद्मचर चिकित्सक होते है, जो भाविक जनो की लागणी पर काबू पा कर अपनी मनमानी कर धन लूटते है। परिणामत रोग शात न होकर असाध्य बन जाता है, रोगी की मृत्यु हो जाती है। हमारे समाज मे शूल विषयक जो कुछ गलत मान्यतायें एव गलत चिकित्सा चलाई जाती है, उन पर विचार करना प्रत्येक चिकित्सक का कर्तव्य है।

(१) उदर कृमिजन्य शूल—

पेट मे उदर कृमि से शिशु एव वयस्को—दोनो को शूल होता है, दोर्बल्यता आ जाती है, अग्निमाद्य होता है, छर्दि व अतिसार भी होता है, उस समय यदि रोगी को छद्म चिकित्सक के पास ले जाया जायेगा तो वह कहेगा कि इसने भोजन मे सर्प खा लिया है और अब पेट मे सर्प ने अण्डा का जन्म देकर सर्पोत्पत्ति हुई है। इसकी चिकित्सा सिर्फ हमारे पास है। सर्वप्रथम सर्प शाति हेतु सर्पयज्ञ कराना होगा। दान-पुण्य करना होगा। दूध की धारा शिव मन्दिर मे करनी होगी, पश्चात मे मन्त्र सिद्ध औषधि दूगा, जिससे सर्प की मृत्यु होकर बाहर निकल जायेगा। आप सोचे! कितनी भयानक बात है। सर्प और हमारे पेट मे! यह मान्यता गलत ही गलत है। कृमि के कई प्रकार है, कोई गोलाकृति है, कोई सूत्राकृति है तो कोई केचुआ जेसा है। कृमिनाशक चिकित्सा से कृमि का नाश होगा। उसमे सर्प यज्ञ, दूध की धारा की जरूरत नही है।

(२) शिर.शूल—

शिर शूल एक प्रचलित व्याधि है, कुल मिलाकर ११ प्रकार के शिरो रोग है। कुछ व्याधि के लक्षणस्वरूप भी शिर शूल मिलेगा। अर्धावभेदक एव सूर्यावर्त कष्टसाध्य शिरो रोग है। जब रोगी फदेबाज चिकित्सक के पास



जायेगा तो वह स्वय अपने को मन्त्र सिद्ध कहलाते है। रोगी को देखकर उनकी चर्चा सुनकर कहेगे कि कुछ दिन बाद आना मै तुम्हारे रोग पर योग कर देख लूगा कि क्या है? बेचारा दर्दी कुछ दिन बाद जाता है तो ढोगी धूर्त चिकित्सक कहने लगेगा। यदि दर्दी हिन्दू होगा तो उनको कहा जाता है कि तुम्हारे मस्तिष्क मे चार पीर ने स्थान ले लिया है, वह भूखा है, उसको मन की शान्ति हेतु तुम चार पीर की यात्रा करो। लीजिये यह तावीज मै तुम्हारे गले मे बाध देता हूँ। यात्रा के बाद मेरे पास आकर दूसरी विधि करानी होगी, और कुछ राख देनी है, यह मन्त्र सिद्ध है, पानी मे घोलकर पीने से शिर शूल शान्त हो जाता है। भला! ऐसी बात भी कही है। मस्तिष्क मे क्या कोई गुफा है, जिसमे कोई निवास कर सके। यह सब मन की भ्रान्ति ही है, जो फैलायी जाती

है। जिस शूल में कोई कानों में मन्त्र की फूंक मारता है, तो कोई नाटक करता है, मातार्जी (अम्बा, कालिका आदि) के सामने भुवा बनकर घूमता है—(कांपता है) लोग हाथ जोड़कर पूछेंगे—दया करें, हम क्या करें। तो वह कांपने वाला भुवा कहने लगेगा कि तुम हमारी सेवा नहीं करते इसीलिए मैं तुमको दुःख देती हूँ। भला आदमी! विचार तो करो कि माता जी—देवी हमारी आराध्य है, हमारी मां है, तो मां अपनी सन्तान को दुःख कैसे देगी। इस कर्म से कदापि रोग नहीं मिटता।

(३) उदर शूल—

सामान्यतः पेट में उदरशूल होता है। अपचन से, उदावर्त से, अम्लपित्त आदि से। रोगी जब छद्म चिकित्सक के पास जायेगा तो वह कहेगा कि तुमको पित्तवायु नामक महाघोर व्याधि हो गया है। उसकी कुछ महंगी दवा खानी होगी। भला! ये पित्त वायु क्या बला है। पित्त वायु कोई रोग का नाम नहीं है। सिर्फ त्रिदोष का नाम है। इस वक्तव्य से भी लोग घबरा जाते हैं। अरे! क्या करें हमें पित्तवायु हो गया है।

(४) प्रसूतिजन्य शूल—

जब स्त्री को प्रथम प्रसूत का समय आता है तब उनको वेदना होती है, अनुभव भी नहीं होता, उस समय यदि वह स्त्री ग्राम प्रदेश में रहती हो तब कुछ अंधश्रद्धा की शिकार हो जाती है। अपना अनुभव यहाँ देता हूँ। बारह वर्ष पूर्व मैं जब देटान जिला अमरेली में चिकित्सा व्यवसाय करता था, तब नजदीकी निगाला नामक गांव में एक स्त्री को प्रसूति का समय था, मुझे बुलाया गया, मैंने जाकर देखा तो अभी ६-७ घण्टे की देर थी, क्योंकि आवि वेग कम था, उदर में शूल था। मैंने सूचित किया कि स्त्री को प्रथम प्रसूति है, कुछ समय लगेगा। ३ घण्टे के बाद मैं फिर आऊंगा, कहकर मैं चला आया, ३ घण्टे बाद मैं गया, तो गर्भाशय का मुख १ अंगुल खुला था, मैंने कहा कि अब भी कुछ देर लगेगी, तो पटोशिन वाली कि इस पर गम्भीर खतरा है। मैंने कहा ऐसा नहीं है, सब ठीक है। फिर से बोली कि अरे! साहब इस स्त्री की सास जो मर चुकी है, वह सांस रास्ते में बैठ गई है, वह बालक का जन्म नहीं होने देगी। मैंने रोमांच का अनुभव किया, मैंने कहा कि यह कैसे हो सकता है? आपने यह कैसे जान लिया? अरे! साहब अभी ही कुछ समय पूर्व यहां भुवा जी (माता जी का भक्त) को बुलाया गया था, उन्होंने दाना डालकर जांच की है। अब क्या होगा। मैंने कहा कि तुम यहां से चली जाओ, मैं इस सास से निपट लूंगा। पश्चात् मैंने प्रसवा सूचिवेध दे दिया, वेग आने लगा, सुखपूर्वक बालक का जन्म हो गया। सास तो आवि वेग के साथ ही बाहर निकल गयी।

(५) मासिक शूल—

स्त्री को अनियमित मासिक स्राव होता है, कभी प्रति १५ दिन पर आता है, तो कभी २-३ मास पर आता है। ऐसा भी देखा गया है कि जब मासिक ठीक समय पर नहीं आता तब उनको शारीरिक शिकायत मिलती है, उदर में शूल होता है, कटिशूल होता है, रक्तगुल्म भी होता है, पूछने पर पता चलता है कि अब तो प्रसूति आने वाली नहीं है, अन्तिम प्रसूति को ५-७ वर्ष हो गये हैं। उसी समय जब स्त्री को कोई लेकर अनपढ़ चिकित्सक के पास जायेगा तो कहा जाता है, तुम्हारे गर्भाशय में अन्तिम प्रसूति का कुछ खराब अंश रह गया है, उसे बाहर निकालना होगा, वह मान जाती है। ढोंगी वैद्य कहने लगता है कि पेट में, गर्भाशय में कुछ बिगाड़ जो रह गया है, उसकी दवा सिर्फ मेरे पास ही है। गर्भाशय में कभी भी बिगाड़ नहीं ठहर सकता। यह तो प्रसूति के समय बाहर ही निकल जायेगा क्योंकि यह शल्य स्वरूप है, जीवित शरीर में शल्य नहीं रह सकता। यदि रहा होता तो कुछ दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती। तात्पर्य यह है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। निष्णात चिकित्सक द्वारा रोगी परीक्षा कराई जाय तो दूसरी व्याधि मिल जायेगी।

अनैतिक वाक्पटुता—जब किसी व्यक्ति को मन्दाग्नि की शिकायत हो जाती है तब बिना निदान उससे कहा जाता है कि तुम्हारा लीवर खराब हो गया है, लीवर में सूजन आ गई है, आमाशय में सूजन है, आंतों में सूजन, कटि शूल में कहा जाता है कि किडनी फेल हो रही है। ऐसी वाक्पटुता से रोगी अन्धश्रद्धा से परेशान हो जाता है, तब ढोंगी वैद्य अपनी मनमानी कर धन कमाता है।

सन्धिवात, आमवात, शिर शूल आदि रोगों में काला डोरा (सूत की डोरी) मन्त्रित कर बांधा जाता है।

सर्प दंश, वृश्चिक दंश इत्यादि मे भी ऐसा किया जाता हे। यह सब गलत रास्ता है। यह चिकित्सा नही है, निदान नही है। धन कमाने का सिर्फ अनोखा तरीका है। शास्त्रो मे कहा गया है कि अनपढ छद्मचर चिकित्सकों से चिकित्सा कराने के बदले जहर पीना अच्छा है।

दम्भी चिकित्सक की एक सत्यकथा—

एक बार मै सावरकुण्डला नगर की सुप्रसिद्ध नदी बाजार से जा रहा था, तब उस समय ग्राम्य विस्तार से आये दो सज्जन मुझे मिल गये, मुझे रोककर विज्ञप्ति करने लगे कि हम दोनो चिकित्सक है। मैंने उनका अभिवादन कर कहा कि मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूं। उन्होंने कहा कि हमे कुछ मार्गदर्शन लेना ह, मैंने अनुमति दी। उन्होने कहा कि एक का लीवर खराब ह तो क्या करे? मैंने कहा कि यदि ऐसा हो तो उसको आरोग्यवर्धनी रस दीजिये, उसका लीवर ठीक हो जायेगा। तो वह हसते-२ कहने लगे कि साहब मे उनको मकरध्वज और सुप्रसिद्ध टेन्टेक्स फोर्ट की गोलिया देता हूँ तो आरोग्यवधनी से क्या होगा? मे तो हेरान हो उठा और कहा कि आपको ज्ञान नही है कि लीवर कहा होता है। लीवर किसे कहते हे। तो कहने लगा कि मोटर कार को लीवर देने से वह चलती हे, बस उसी प्रकार यह शिश्न जो हे, वह एक प्रकार का लीवर ही हे साहब! आप क्या जाने। वह शिश्न को लीवर समझ कर चिकित्सा कर रहा था।

दूसरी सत्य कथा—

सन् १९८६ मे धन्वन्तरि का वृक्क रोग विशेषांक के सम्पादन मे अपने भारद्वाज औषधालय मे मै व्यस्त था. तब एक रोगी आया, और कहने लगा कि साहब मेरी किडनी (वृक्क) खराब हो गई है, सूजन आ गई है और वेदना होती है कृपया उपचार करे। मैने सर्व प्रथम उनको लिटाकर कटि प्रदेश, उदर प्रदेश की स्पर्श परीक्षा की, बाद मे प्रश्न किया कि मूत्र मे दाह होता है? ज्वर आता है? कमर दुखती है? पैरो मे और मुख पर सूजन रहती है? तो वह आश्चर्य मे पडकर कहने लगा कि आप साहब क्या पूछ रहे हो? मुझे तो इनमे से कुछ नही सिर्फ खांसी आती है गले मे वेदना होती है है। हमारे गाव के ग्राम्य चिकित्सक (अनपढ) ने निदान किया था कि तुम्हारी किडनी बढ गई है, भारी सूजन है। तुम को हमारी दवा से आराम हो जायेगा। साहब मै तो घबडाकर आपके पास आया हूँ, क्या आपरेशन कराने से ठीक हो जायेगा। मैने समझ लिया कि उस अनपढ-झूठ वैद्य द्वारा तुण्डी-केरी (टान्सिल) को किडनी नाम देकर रोगी को परेशान कर रहा था।

प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ का धर्म है कि आप अपनी जगह मे ऐसे वक्तव्य पर, ऐसी गलत मान्यता एव ढोंगी-फरेबाज चिकित्सक का सामना कर समाज को सच्चा ज्ञान दे, ताकि जीवित शरीर प्रतिक्रिया एव मृत्यु से बचा जाये।✶

❊ शूल रोग चिकित्सा ❊

साय ले। हर प्रकार के शूल पर रामवाण, अतिसार, आमातिसार पर भी लाभकारी हे।

कच्ची हीग, नौसादर, सेधानमक, यवक्षार १२-१२ ग्राम लेकर डेढ लीटर जल मे घोट पीस कर मिला ले। १-१ औस दवा पीने से अजीर्ण यकृत शूल, वृक्क शूल आदि समस्त शूलो को नष्ट करने मे रामवाण है।

जब यकृत (जिगर, लीवर) में सूजन हो जाती है तो पेट मे मन्द-२ दर्द हर समय होता रहता है। कभी-२ तेज होने लगता है। गैस का कष्ट रहता हे। भूख कम हो जाती है। टट्टी साफ नही आती। कभी तापाश भी वढ

— पृष्ठ ७९ का शेषाश —

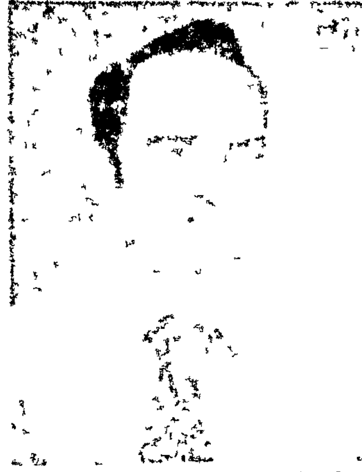
जाता हे। ऐसी दशा मे पुनर्नवादि मण्डूर १ गोली तथा आरोग्य वर्द्धनी वटी की १ गोली मिलाकर प्रात साय निराहार मुह पानीसे दे ओर भोजनोपरात लवणभास्कर, हिग्वाष्टक, सोडावाईकार्ब व नौसादर का मिश्रण जो पीछे लिख आये है, उसे पानी से देकर ऊपर से कुमारी आसव २ तोला, पानी २ तोला मिलाकर पिलावे तो कुछ दिन मे जिगर की सूजन, पेट का दर्द, भूख की कमी, मलवद्धता, गैस की शिकायत नष्ट होकर रोगी आरोग्य हो जाता हे। तीव्र उदर शूल मे राई को पीस कर उसमे थोडी हीग मिला लेप करे। ★

—❊❊—

शूल प्रधान व्याधियों पर अग्निकर्म

वैद्य एम० एच० बारोट H.P.A अधीक्षक–आचार्य शेठ जी प्र आयुर्वेद कालेज,
सरदार बाग, भावनगर, गुजरात
★ श्री वी० सी० वैद्य, अध्यक्ष–श० शा० विभाग
★ श्री डी० एल० जोशी, लैक्चरर–श० शा० विभाग
★ श्री पी० जे० याज्ञिक, डेमान्स्ट्रेटर–श० शा० विभाग





श्री वैद्य एम० एच० बारोट आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित है। आप आयुर्वेद के तत्त्वचिन्तक है। सर्वश्रेष्ठ सशोधक ह। कैन्सर पर आपने भल्लातक उपयोगी है, सिद्ध कर बताया हे और जेनेवा मे आपने सशोधन-पत्र पढा है। आप उत्तम लेखक है। गुजरात के वर्तमान पत्रो मे आप आयुर्वेद के लुप्त विषयो पर प्रकाश डालते हे, आपके लेख बुद्धिगम्य होते है। विद्वान प्रशसा करते हैं। यहा आपने अपनी लेखनी शल्य शालाक्य विभाग के विद्वानो द्वारा दी है, जो उपयोगी बनेगी।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

परिचय—तापीबाई आयुर्वेद रुग्णालय मे पिछले ५ वर्षों मे शल्य शालाक्य विभाग द्वारा अग्निकर्म किया जाता है।

संहिता काल मे प्रचलित अग्निकर्म का हम लोकव्यवहार मे भी प्रचार और प्रसार देख सकते है। आज भी हमारे गाव मे गाव के नाई द्वारा अथवा अनुभवसिद्ध औरत द्वारा यकृत्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, उदर रोग आदि मे अग्निकर्म किया जाता है, जिसे हम 'डाग' की परिभाषा मे जानते हैं। औषध से, शस्त्र से या क्षारो से जो व्याधि असाध्य है उसे अग्निकर्म नष्ट करता है, ऐसा महर्षि सुश्रुत का विधान हैं।

अग्निकर्म : साधन और विधि

अग्निकर्म के लिए इस विभाग द्वारा लोहे की शलाका का प्रयोग किया जाता हे। जिसे स्प्रिट लैम्प पर गर्म करके विविध रोगो पर (शूल प्रधान मे सामान्यत वेदना स्थान पर) अलग-अलग प्रकार के अग्निकर्म किये जाते है। विविध प्रकार की शलाकाओ द्वारा विविध प्रकार के अग्निकर्म के चिह्न अङ्कित किये जाते हैं। जैसे कि—

[१] वलय ○ [२] बिन्दू ●
[३] विलेखा — [४] स्वास्तिक 

विवरण—शूल प्रधान व्याधियो पर अग्निकर्म के इस पत्र मे ३० वर्ष या उससे कम वय के और ७० वर्ष या उससे अधिक वय के कुल ४० रोगियो का परीक्षण किया गया है, जिसका तालिकानुक्रम से निम्नवत वर्णन है—

वय अनुसार

वय	पुरुष	स्त्री	कुल
३० से ४०	१०	९	१९
४१ से ५०	१	३	४
५१ से ६०	४	७	११
६१ से ७०	५	१	६
कुल	२० (५०%)	२० (५०%)	४० (१००%)

इस तालिका से ऐसा अनुमान किया जा सकता हे कि ३० से ४० वर्ष की आयु मे शूल प्रधान वातव्याधि की व्यापकता अधिक रही है। कुल ४० रुग्णो मे से ४७ ५ प्रतिशत रुग्णो की वय ३० या ४० वर्ष के बीच की है।

जाति और रोगानुसार

रोग	हिन्दू पुरुष	हिन्दू स्त्री	कुल	मुस्लिम पुरुष	मुस्लिम स्त्री	कुल
सन्धिगत वात	३	३	६	०	२	२
गृध्रसी	६	४	१०	०	१	१
कटिगत वात	४	६	१०	०	०	०
आमवात	१	१	२	०	१	१
जानुसन्धिगत वात	१	०	१	०	०	०
अवबाहुक	२	०	२	१	०	१
विश्वाची	०	१	१	०	०	०
सिरापाक	०	१	१	०	०	०
अर्बुद	१	०	१	०	०	०
ग्रन्थि	१	०	१	०	०	०
	१९	१६	३५	१	४	५

हिन्दू पुरुष १९ – ४७.५% मुस्लिम पुरुष १ – २.५%
हिन्दू स्त्री १६ – ४०% मुस्लिम स्त्री ४ – १०%

३५ – ८७.५% ५–१२.५%

इस तालिका में शूल प्रधान विविध व्याधियों को १ से १० तक का क्रम देकर जाति और लिङ्ग भेद से उनके रोगियों की संख्या दिखायी गई है।

रोगानुसार परिणाम

रोग	सम्पूर्ण रोगमुक्ति	लक्षणाल्पता	अलाभ	कुल	प्रतिशत
सन्धिगत वात	४	३	१	८	२०%
गृध्रसी	३	८	०	११	५५%
कटिगत वात	५	३	२	१०	५०%
आमवात	०	२	१	३	१५%
जानुसन्धिगत	०	१	०	१	५%
अवबाहुक	०	२	१	३	१५%
विश्वाची	०	१	०	१	५%
सिरापाक	०	१	०	१	५%
अर्बुद	०	०	१	१	५%
ग्रन्थि	०	०	१	१	५%
	१२	२१	७	४०	
	[illegible]%	५२.५%	१७.५%		

शूल जिसका प्रधान लक्षण है ऐसे ४० रोगियों पर अग्निकर्म किया गया है और उसका परिणाम उपरोक्त तालिका में प्रस्तुत किया है।

वय-जाति अनुसार

वय	हिन्दू पुरुष	हिन्दू स्त्री	कुल	मुस्लिम पुरुष	मुस्लिम स्त्री	कुल
३० से ४०	९	७	१६	१	२	३
४१ से ५०	१	३	४	०	०	०
५१ से ६०	४	४	८	०	२	२
६१ से ७०	५	१	६	०	०	०
	१९	१६	३५	१	४	५

हिन्दू पुरुष १९ – ४७.५% मुस्लिम पुरुष १ – २.५%
हिन्दू स्त्री १६ – ४०% मुस्लिम स्त्री ४ – १०%
जोड ३५ ८७.५% ५ १२.५%

इस हॉस्पीटल में हिन्दू, मुस्लिम जाति भेद से हिन्दू रोगियों की संख्या थोडी अधिक होगी। फिर भी ३० या ४० वर्ष की उम्र में हिन्दू जाति की संख्या मुस्लिम जाति से ज्यादा है। हिन्दू ४० प्रतिशत में हिन्दू पुरुष २२.५% हिन्दू स्त्री १७.५% और मुस्लिम ७.५% में मुस्लिम पुरुष २.५%, मुस्लिम स्त्री ५%। कुल ४० रोगियों में से ८७.५% हिन्दू और १२.५% मुस्लिम रोगी थे। इस बात का कोई ठोस आधार नहीं है फिर भी इस विभाग द्वारा ऐसा तर्क किया जाता है कि वातव्याधि विशेषत शूल प्रधान हिन्दू-मुस्लिम जाति में हिन्दू पुरुषों में अधिक पाया जाता है। शायद मुस्लिम जाति में अण्डे, मांस भक्षण आदि उष्ण, गुरु और स्निग्ध आहार विशेष होने से ऐसा होता होगा।

गृध्रसी और कटिगत वात में अग्निकर्म का प्रयोग सबसे सफल रहा है। ग्रन्थि और अर्बुद पर हमें अग्निकर्म का विशिष्ट परिणाम नहीं मिला लेकिन उसके लिए व्याधि की तीव्रता अथवा अन्य कोई कारण हो सकते है।

उपसंहार—शूल प्रधान वातव्याधि पर अग्निकर्म का परिणाम उत्साह प्रेरक रहा है। तात्कालिक शूल शमन के लिए अग्निकर्म बेहतरीन प्रयोग है। अग्निकर्म की व्यावहारिकता बढ़ाकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ज्यादा से ज्यादा रोगियों पर अग्निकर्म का परीक्षण करना चाहिए। ★★

❀ दोषज शूल ❀

वैद्य श्री पी० एम० अनुमान एच० पी० ए०, रीडर—काय चिकित्सा विभाग,
सेठ जी० प्र० आयुर्वेद कालेज, पडवा—भावनगर (गुजरात)



लेखक महोदय आयुर्वेद के विद्वान एव प्रतिभा सम्पन्न प्राध्यापक ह। आप वर्षो से भावनगर (गुजरात) के प्रतिष्ठा सम्पन्न आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राध्यापक एवं चिकित्सक हे। आप सफल चिकित्सक एवं लेखक हैं। धन्वन्तरि के सामान्य अङ्क एव विशेषाको मे आपके विद्वतायुक्त लेख प्रकाशित होते रहते हैं। आपके लेख वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले संशोधनात्मक एव अनुभूतात्मक होने से वैद्य समाज को मार्गदर्शन मिलता है। यहां आपने दोषज शूल पर सशोधनात्मक लेख दिया हे जो ज्ञानवर्धक है।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज।

प्रकार—

१ गुल्म के स्थानानुसार तत्-तत् स्थानभेद मे शूल भेद कर सज्ञा प्रदान की जा सकती है—यथा हृच्छूल, नाभिशूल, बस्तिशूल, दक्षिण एव वामपार्श्वशूल।

२ वातिक, पैत्तिक, कफजन्य, वातपित्तजन्य, वातकफजन्य, पित्तकफजन्य, त्रिदोष जन्य एवं आमज यह आठ प्रकार माधव ने 'शूलोऽष्टधा' कहकर कहे हैं। अन्नद्रव एव परिणाम शूल का भी वर्णन किया हे।

३ सुश्रुत ने जिन शूलों का वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं (क) वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज आदि दोषज शूल (प्रस्तुत स्थल पर उन्ही पर विचार किया जायेगा।) (ख) स्थान विशेष के शूल यथा—पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, हृच्छूल, वस्तिशूल (ग) मूत्रशूल, पुरीष शूल (विट्शूल), अन्नदोषजशूल आदि निमित्त विशेष से उत्पन्न शूल।

४ इसी प्रकार अनेकानेक शूल शरीर के उदर के अतिरिक्त अवयवो मे सम्बद्ध वर्णित मिलते हे यथा शिर शूल, नेत्रशूल, दन्त-कर्ण शूल आदि। ग्रीवा, अंस, पृष्ठ, कटि, त्रिक, उर, कण्ठ अस्थि, जानु, आदि विभिन्न अवयवो के शूल का भी वर्णन मिलता है।

५ स्त्री रोगो मे आर्त्तवी एव मक्कल शूल, योनिशूल प्रसिद्ध हे।

६ पुरुषो मे मेहनशूल, वृषणशूल भी वर्णित मिलते है।

७ अन आवश्यकतानुसार मस्तिष्कशूल, यकृत्-शूल वृक्कशूल, हृदय-फुफ्फुस-आमाशय-अन्त्रगुदगत शूलादि अनेक शूलो की कल्पना या तो की गई हे या की जा सकती ह।

दोषज शूल—

सुश्रुत ने बिना गुल्म के उत्पन्न शूलो को ही दोषज शूल के रूप मे वर्णित किया ह। सुश्रुत का इसमे सम्बन्धित वर्णन इस प्रकार हे—इसके सामान्य कारण निम्नानुसार हे—

(१) दोष कोपक आहार यथा—अकुरित धान्य, या अकुरण शक्ति रहित धान्य, पिष्टान्न, शुष्क मास आदि।

(२) अति भोजन, अजीर्णाशन, अध्यशन, विरुद्धाशन, भूख लगने पर जल या अन्य द्रव पान करने से।

(३) वायु, मूत्र, मल के अवरोध से।

(४) परिश्रम, व्यवायादि।

उपरोक्त निदान सेवन से वायु कुपित होकर तीव्र शूल करता है। इस शूल के कारण रोगी का श्वास रुकता है और उसको अतिशय वेदना होती हे। (सु उ ४२।७७-८०) इस शूल पीडित को कीले को गाढने जैसी गहरी चुभन जैसी तीव्र वेदना होती हे उसीसे इसे शूल कहते हैं।

विशिष्ट निदान—

दोषज शूल के सामान्य निदान के अतिरिक्त प्रतिदोषानुसार कुछ विशिष्ट निदान भी कहे गये है। यथा—

[क] आहार सम्बन्धी—

(१) रस—वातजनक तिक्त, कषाय, पित्तजनक

अम्ल, कटु क्षार तथा कफजनक मधुर रस कारण माने गये है।

(२) गुणादि—अतिरूक्ष वात जन्य के लिये, उष्ण तीक्ष्ण अ विदाही पित्त जन्य के लिये, गुरु, अभिष्यन्दी कफजन्य के लिये निदान कहे गये है।

(३) आहार विधि—अध्यशन वातजन्य के, विदग्धाहार पित्तजन्य के, अत्याहार कफजन्य के कारण है।

(४) आहार द्रव्य एव कल्प—

[I] वातिक के लिये—वल्लूर (शुष्कमास), शुष्क शाक के अतिरिक्त कलाय (ढाग), मुद्ग, आढकि आदि शिम्बी तथा कोरदूपादि शूक-क्षुद्रधान्य कारण है।

[II] पित्तजन्य के लिये—पूति अन्न के अतिरिक्त निष्पाव (सेम), कुलत्थ, पिण्याक (सानी) भी कारण है।

[III] कफजन्य के लिये—आनूप, औदक मास, पिष्टान्न निन्न, शष्कुली, कृशरा आदि कारण कहे गये है।

(५) क्षीर विकार—कफजन्य के लिये सभी पयविकार तथा मुख्य रूप से किलाट को कारण माना है। तर्क द्वारा अन्य विकारो की दोपानुसारी कल्पना की जा सकती है।

(६) पान—वातिक मे अतिपान, अतिशीत जलपान, पित्तजन्य मे सौवीर, सुरा एव उसके विकारो का पान कफज मे इक्षु रस पान आदि कारण है।

[क] विहार सम्बन्धी—

१ निद्रा—वातजन्य मे प्रजागरण निदान कहा है।

२ ब्रह्मचर्य/अब्रह्मचर्य—वातजन्य मे अतिमैथुन, पित्तज मे मैथुनातिरेक को कारण माना है (शुक्ररोधजन्य उदावर्त मे भी वलात ब्रह्मचर्य एव शुक्ररोध भी कारण कहा है) शुक्ररोध वातज मे भी पढा हे।

३ वेगरोध—वातजशूल के लिये विट्-शुक्र-मूत्र वात के वेग रोध को कारण कहा गया हे। उपवास (क्षुधा-तृषारोध) भी वातज शूल का कारण माना गया है।

४ श्रमादि—अभिघात, आयान (सवारी) व्यायाम यह वातिकशूल के निदान है, जवकि आयास पित्तज शूल का इसी प्रकार शीघ्र गमन, परिधावन (दौडना) भी पैत्तिक शूल के कारण कहे है।

५ हास्यादि—अतिहास्य, अति भाष्य वातज शूल के कारण कहे गये है।

६ मानसिक—शोक वातिक के लिये, क्रोध-शोक-भय पित्तजन्य के लिये कारण कहे गये है।

७ अन्य—पुरावात, प्रभूत वात सेवन, वायु जन्य के लिये घर्म (धूप) एव अग्नि सेवन, पैत्तिक के लिये कारण माने गये है। इसी प्रकार पैत्तिक के लिये स्वेदातिरेक (वातिक के लिये शोधनातिरेक, कफज के लिये स्नेहनातिरेक) कारण माने गये है।

दोषज शूल के लक्षणो को दो रूप मे देखा जा सकता है—

(क) सामान्य लक्षण—विट्-मूत्र रोध, कृच्छ्रश्वास, स्थिरागता, जडता, तृषा, रोमहर्ष, अरुचि, छर्दि एव भोजन करने से वृद्धि आदि शूल मे सामान्य लक्षण कहे है।

(ख) विशिष्ट लक्षण—विभिन्न शूलो के विशिष्ट लक्षणो को विविध घटको की दृष्टि से निम्नानुसार समझा जा सकता है—

१ शूल स्थान—शूल विभिन्न दोषानुसार कतिपय विशिष्ट स्थानो पर विशेष रूप मे प्रगट होता है यथा—(१) वातिक शूल मे—हृदय, पार्श्व, पृष्ठ, त्रिक वस्ति प्रदेश मे, (२) पैत्तिक शूल मे—नाभिप्रदेश मे, (३) कफज मे—आमशय प्रदेश मे, वातपित्त के न० १-२ मे कहे स्थानो पर दाह एव ऊष्मा(ज्वर) युक्त, (६)कफपित्तज मे—कुक्षि, हृदय, नाभि क्षेत्र मे विशेष रूप से वेदना मिल सकती है। (७)त्रिदोपज मे मिश्र स्थान एव वेदनायुक्त शूल मिलता है।

२ वेदना प्रकार—वात मे तीव्र एव मुहुर्मुहु उत्पत्ति एव शांति वाला शूल, पित्तानुबध मे तीव रुजा, दाह एव ऊष्मा युक्त, कफज मे मद रुजा मिलती है।

३ प्रकोप एव वृद्धि—(१) वातिक शूल भोजन जीर्ण होने पर, प्रदोषकाल (साय) मे, वर्षा एव शीत ऋतु मे बढता है। (२) पैत्तिक शूल विदाह काल (भोजन पचते समय), मध्याह्न (दोपहर मे), अर्धरात्रि, शरद ऋतु मे बढता है। (३) कफज शूल भोजन के तुरन्त बाद, प्रात काल मे तथा शिशिर वसन्त ऋतुओ मे बढता है।

४ अनुसागिक वेदनाये—वातिकशूल मे वेदना मे शूल के साथ ही तोद भेद जैसी वेदनाये, पैत्तिक मे दाह, चोष जैसी वेदनाये, तथा कफज शूल मे गुरुता देखने मे आ सकती हे।

५ उदरगत अन्य भाव—वातिक मे आध्मान, पैत्तिक मे दाह युक्तता, कफज मे स्तिमितता है।

६ वातिकशूल मे वात, मूत्र-विट् की कृच्छ्रता एव

स्तम्भ देखने को मिलता है। (पैत्तिक मे विड् भेद कफज मे सामना ?)

७ शरीर मे वातिक शूल के कारण स्तब्धता, पैत्तिक के कारण ज्वर (सताप)। कफजशूल मे सदन (शैथिल्य) एव गौरव देखने को मिल सकते है।

८ दोष विशेष के लक्षण के रूप मे वातिक शूल मे श्वासादि की कृच्छ्रता, पैत्तिक मे तृषा, मोह, भ्रम, स्वेदन, मद, मूर्छा आदि, कफज मे अरुचि, हृल्लास, प्रसेक के साथ ही शिरो गौरव एव कास भी मिल सकता है।

९ उपशम—वातिकशूल स्वेदन, अभ्यङ्ग, मर्दन, तथा स्निग्ध उष्ण उपक्रमो मे शमन होता है। पैत्तिकशूल मधुर शीत सेवन एव शीतकाल मे शमन होता है। कफज शूल कफघ्न द्रव्य एव उपक्रमो से शात होता है।

१० प्रसङ्गवश आमज शूल लक्षण देख लेना उचित होगा। इसमे आनाह, आटोप, हृल्लास, वमी (वमन), गुरुत्व, स्तैमित्य, कफ प्रसेक एव कफज शूल के अन्य लक्षण भी मिल सकते है।

साध्यासाध्यता—

इन शूलो मे साध्यासाध्यता निम्नानुसार होती है—

[१] साध्य—एक दोष जन्य।

[२] कृच्छ्रसाध्य—द्विदोषजन्य या ससर्गज।

[३] असाध्य—सन्निपातज एव उपद्रव युक्त (शूल के उपद्रव गुल्म के उपद्रव के समान मिल सकते है।)

चिकित्सा सूत्र —

(क) सभी शूल प्राय वात से ही होते है। वायु आशुकारी एव चल गुणी है। अत वायु के शमन के लिये—

१ स्वेदन कर्म के विभिन्न प्रयोगो को युक्तिपूर्वक उपयोग मे लेना चाहिये।

२ स्निग्ध भोजन का प्रयोग रूक्ष व्यक्ति मे प्रयोग करना हितकारक रहता है।

३ क्षुधितावस्था से सलग्न शूल मे सन्तर्पण, कोष्ण दूध, उष्ण यवागू एव स्निग्ध मास रस दिये जा सकते है।

(ख) पित्तजन्य शूल मे पित्त एव तज्जन्य वेदनाओ की शाति के लिये प्रथम उष्ण द्रव्य, उपक्रम, या पित्त प्रकोपक द्रव्यो का त्याग कर निम्नोपचार करे—

१ शीत जलपान कराकर मृदु वमन करायें।

२. मणि, रजत, ताम्र के पात्रो मे जल भर कर उसको शूल स्थान पर रखे।

३ पित्त निर्हरणार्थ विरेचन कराये।

४ मधुर द्रव्य, दूध, घृत, शालि दे।

(ग) कफजन्य शूल मे—कफ शमनार्थ निम्नोपचार करे—

१ पिप्पली जल मिलाकर वमन कराये।

२ रूक्ष स्वेद, एव उष्ण द्रव्य सेवन करायें।

३ कटु, लवण रसयुक्त कल्पनाये दे।

(घ) शूलो मे गुल्म की अवस्थानुसार चिकित्सा की जाती है। (सु उ ४३।१४५)

कुछ चिकित्सा कल्प—

विभिन्न दोषज शूलो मे प्रयुक्त कुछ प्रसिद्ध कल्प यहा दिये जा रहे है—

१ वातिक शूल मे हिंग्वादि चूर्ण, सौवर्चलादिगुटिका, विडङ्गादि चूर्ण, पृथ्वीकादि चूर्ण आदि।

२ पैत्तिकशूल मे धात्रीचूर्ण, शतावरी क्वाथ, बृहत्यादि क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, पानक आदि।

३ श्लैष्मिक शूल मे पचकोलादि चूर्ण, बिल्वादिक्वाथ दशमूल क्वाथ, पिप्पली, शुण्ठी, पीपर, चित्रक, खस, यव, सर्जक्षार चूर्ण आदि।

४ वात पैत्तिक शूल मे बृहत्यादि क्वाथ।

५ कफ पैत्तिक शूल मे पटोलादि क्वाथ।

६ वातश्लेष्मिक शूल मे लशुनकल्क एव मधु।

७ त्रिदोषज शूल मे एरण्डादि क्वाथ, एरण्डसप्तक क्वाथ, मस्तुलुङ्गादि मूल क्वाथ, हिंग्वादि चूर्ण, रुचकादिचूर्ण

८ आमजशूल मे चतु सम चूर्ण, मुस्तादि चूर्ण।

९ इन शूलो मे दोषानुसार उदर पर लेप किया जाता है यथा—वातिक मे मदनफल काजी, पैत्तिक मे चन्दनादि शीत लेप, कफज मे दारुपटफल लेप, जीवन्ती एव तैल को नाभि पर लगाया जाता है। हीग, शुण्ठी आदि भी नाभि पर लगाये जा सकते है।

१० कम्बल ओढाकर सक्तू एव सर्षप तैल का धूपन कराये।

कुछ अन्य उपयोगी कल्प—

१ हिंग्वाष्टक, लवणभास्कर, शिवाक्षारपाचनादि चूर्ण

२ आमपाचन वटी, लशुनादि वटी, शङ्खवटी, हिंगुकर्पूर वटी, जम्बीर लवण वटी, गधक वटी, शूलवज्रिणीवटी।

३ कृष्णलवण, नारिकेल लवण, अर्क लवण।

४ अग्निमुख, अभ्रक सुन्दर, अमृत गर्भ रस या मण्डूर, ज्वालामुखी रस, पञ्चात्मक रस वातिक में, अग्निदीपन, अजीर्णगजांकुश, अमरेन्द्र रस, शम्बूकादिवटी, पैत्तिक में, अजीर्णकटक, अजीर्ण कालानल, अग्नि सन्निभा, उदय मार्त्तण्ड रस, सामुद्रादि कफज में।

पथ्यापथ्य—

१ वातिकशूल में—त्रिवृत्त पत्र, कटकरंज पत्र, वदिर पत्र यूप, कुलत्थयूप, बटेर-मांस रस, जांगल मांस रस, विलेशय मांस रस में अनारदाना डालकर तथा यूप में सेंधव एवं कालीमिर्च डालकर। वारुणी, सुरा, काजी, चुक्र, शुक्त, मस्तु, उदश्वित(छाछ), दधि एवं कालानमक।

२ पैत्तिक शूल में—फालसा, मृद्वीका, खजूर जैसे फल। कमलकन्द-यूप, शालि एवं यव, जांगल एवं पित्तघ्न मांस रस, दूध एवं शर्करा, घृतपान शर्बत आदि।

३ कटु एवं लवण रस।

अपथ्य—सभी शूलों में मूंग, मसूर, अरहर, चना तथा व्यायाम मैथुन, वेगधारण तथा क्रोध अपथ्य है।

दोषजशूल चिकित्सा के कुछ अनुभव—

चिकित्सा के लिये आये आतुरों पर प्रयुक्त विविध कल्पों का संक्षिप्त विवरण देना यहां उपयोगी होगा। इस संदर्भ में दोषज शूल सम्बन्धी जो भी रोगी चिकित्सा के लिये आये थे उनको निम्नलिखित तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

१ वात प्रधान वेदनायुक्त दोषज शूल के रोगी।

२ पित्त प्रधान वेदनायुक्त दोषजशूल के रोगी।

३ कफ प्रधान वेदनायुक्त दोषज शूल के रोगी।

इन रोगियों में प्राय निम्नलिखित तीव्र औषधि योजनाओं का प्रयोग किया गया था—

(क) वातिक शूल के रोगियों में—(१) लशुनादि एवं हिंगुकर्पूर वटी १-१ गोली २ बार कोष्णजल से, (२) हिंग्वष्टक चूर्ण एवं घृत भोजन पूर्व या मध्य, (३) शूल अधिक होने पर शूलवज्रिणी वटी आवश्यकतानुसार।

(ख) पैत्तिक शूल के रोगियों में—(१) पथ्यादि क्वाथ २ तोला प्रातः शर्करा डालकर, (२) चन्द्रवटी १ गोली नारिकेल लवण १ माशा शूल में १-२ बार, (३) कामदुधा, प्रवाल, सूतशेखर मिश्रण की १ माशा की मात्रा नीबू के शर्बत के साथ २-३ बार।

(ग) कफज शूल के रोगियों में—(१) दशमूलक्वाथ में पंचकोल या त्रिकटु प्रक्षेप प्रातः एक बार, (२) आम-पाचन वटी, चित्रकादि वटी १-१ गोली २ या ३ बार कोष्ण जल से, (३) शिवाक्षार पाचन भोजनोत्तर या रात्रि में।

आतुर विवरण—

ऐसे आतुर जो शूल रोग में (विशेषतया दोषज शूल) ग्रस्त पाये गये थे और जिनकी चिकित्सा उपरोक्त औषधि कल्पों के सहयोग से की गई थी उनके वय एवं लिंग समूह निम्नानुसार थे—

क्र	वय समूह	पुरुष	स्त्री	कुल	प्रतिशत
१	११ से २० वर्ष	४	६	१०	३१ (लगभग)
२	२१ से ३० ,,	६	२	८	२४.८ ,,
३	३१ से ४० ,,	३	२	५	१५.५ ,,
४	४१ से ५० ,,	५	१	६	१८.५ ,,
५	५१ से ६० ,,	१	१	२	६.२ ,,
	कुल	१६	१२	३१	

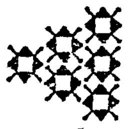
इन रुग्णों में से शूल प्रकारानुसारी संख्या निम्नानुसार थी।

क्र	घटक	वातिक	पैत्तिक	कफज	कुल
१	पुरुष	७	६	६	१९
२	स्त्री	४	५	३	१२
	कुल	११	११	९	३१

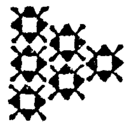
इनमें मिले परिणाम निम्नानुसार रहे थे—

क्र	घटक	वातिक	पैत्तिक	कफज	कुल
१	सम्पूर्णलाभ	५	४	४	१३
२	अल्प लाभ	६	७	३	१६
३	अलाभ	०	०	२	२
	कुल	११	११	९	३१





एकांग शूल और सर्वाङ्ग शूल



आयुर्वेद चक्रवर्ती श्री ताराशकर वैद्य, प्रधानाचार्य—श्री अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय
रामपुरी—जगतगज, वाराणसी उ० प्र०



देश के आयुर्वेद ज्योतिर्धरो मे परमादरणीय श्री ताराशकर जी मिश्र का नाम अग्रतर पर है। आप काशी क्षेत्र के प्रकाण्ड पण्डित है। महान आयुर्वेदज्ञ है। आज तक आपने सैकडो लेख लिखे है, अनेक ग्रथ लिखे है। "धन्वन्तरि" के दो वृहद् चिकित्साक—"विष चिकित्साक" एव "चिकित्सा समन्वयाक" का आप सफल सम्पादन कर चुके है। जब मैने शूल निदान चिकित्साक हेतु पूजनीय श्री ताराशकर जी को पत्र लिखा—तब उसी समय अधिक वर्षा से वाराणसी मे बाढ आयी हुई थी, अनेको व्यक्ति परेशान थे, उसमे श्री वैद्य जी भी फसे थे, फिर भी धन्वन्तरि से हार्दिक लगाव और मधुर सम्बन्ध होने से मेरे पत्र का आपने सानुकूल उत्तर भेजा और आपने यह लेख भेजा। सचमुच आपने अनुकम्पा कर ऋणी बनाया है। आपके लेखो से मार्गदर्शन मिलता है। भविष्य मे भी आप मार्गदर्शक बनेंगे—मैं आकाक्षी हू।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आगन्तुक शूल का प्रतिपादन इस लेख मे हम नही कर सकेगे। जहा तक दोषज शूल की बात है, वहा शूल वात दोष मे ही होता है और वह मात्र उसी का कर्म है।

यो तो सभी दोषो से होने वाली व्याधि का मूल कारण उनके मार्ग मे रुकावट है जैसाकि निम्नलिखित श्लोक मे स्पष्ट है—

दोषाणा हि प्रकुपिताना शरीरे परिधावताम्।
यत्र सग खवैगुण्यात् व्याधिस्तत्रोपजायते॥

ध्यान दे, उपर्युक्त श्लोक मे सग का तात्पर्य रुकावट है। खवैगुण्य का तात्पर्य मार्ग मे आकाश के विगुण होने, सकुचित होने (स्रोत मे शोथ या आम-कफ मल से अवरोध के कारण) से है। अर्थात् कोई भी व्याधि दोष के मार्गावरोध के बिना नही हो सकती। और, दोष को गति देने वाला वात ही है। कुल मिलाकर कोई भी व्याधि वात के अवरोध के बिना नही हो सकती। और

वायोर्धातुक्षयात्कोप मार्गस्यावरणेन च।

अर्थात् वायु का प्रकोप धातुक्षय एव मार्गावरोध से होता है। शूल धातुक्षय एव मार्गावरोध दोनो से होता है। शिर शूल धातुक्षय या धातु शोथ से रक्तवाहिनियो के सूखने से उत्पन्न उनके सकोच के कारण वात द्वारा प्रेरित रक्त के अवरोध से होता है। उदरशूल मलावरोध से उत्पन्न मार्गावरण के कारण होता है। अक्षिशूल- कर्णशूल पार्श्वशूल आदि का सम्बन्ध धातुक्षय से मुख्यत न होकर स्थानीय मार्गावरोध से है।

वात दोष से उत्पन्न शूलो मे वातव्याधि अध्याय मे केवल पादशूल, कर्णशूल और अक्षिशूल का नाम है। पर यक्ष्मा जो कफप्रधान रोग है, मे पार्श्वशूल एव शिर शूल का भी नाम है। वातव्याधि टीका मे गृध्रसी शूल का भी नाम है। पादशूल-कर्णशूल और अक्षिशूल को प्रधान एव प्राय होने वाला लिखा है। हस्तशूलादि प्रधान एव प्रायोभावी शूल नही है। हमारा तात्पर्य यह है कि शूल अनेक प्रकार के अनेक अङ्गो मे होते है जिनकी अनेक चिकित्सा भी हैं। पर पादशूल, कर्णशूल और अक्षिशूल प्रधान और प्रायोभावी है। मार्गावरणजन्य वात-दोष से होते है। मार्गावरण पादशूल धातुक्षयजन्य रक्तवाहिनी सकोच और आमजन्य रुकावट से होता है। अक्षिशूल प्राय सक्रमणजन्य प्रदाह से होता है। कर्णशूल मे पिटिका (फुन्सी) और आघात से होता है। क्रमि के दश, क्रमि-

जन्य अवरोध और कर्णशूल (कर्णमल) [तथा मटर आदि से उत्पन्न अवरोध से कर्णशूल होता है।

इन तीनो शूलो मे कारण के दृष्टिकोण से चिकित्सा करनी चाहिए परन्तु शूलघ्न या अवसादक अथवा शून्य-कारिणी औषधि को नही भूलना चाहिए। पादशूल मे वातनाशनक्रम अभ्यङ्ग (तैलमर्दन), स्वेदन एव महायोग-राज गुग्गुल आदि का भी प्रयोग करना चाहिए।

शिर शूल मे धातुक्षय एव पार्श्वशूल मे श्लेष्मा से उत्पन्न अवरोध और उर क्षत पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। इनमे अवसादक-शूलघ्न-शून्यताकारक औषधो का प्रयोग न करे तो उत्तम है।

हृच्छूल मे प्राणसकट से बचने के लिए तत्काल अवसादक औषधो का प्रयोग करते है पर हृदय को बल देने वाली औषधो एव प्रक्रियायो पर भी ध्यान देते है। व्रण और अभिघातजन्य शूल मे कारणानुरूप चिकित्सा की जाती है।

सावधान ! अजीर्ण मे शूलघ्न औषधि कदापि नही देनी चाहिये। शास्त्र वचन स्पष्ट है—

अत्यासन्नोऽपि नाऽजीर्णो न पिबेत् शूलघ्नमौषधम्।

क्योकि यहा शूलघ्न औषधि से हुई मन्दाग्नि अन्न पचाने मे समर्थ नही होती। मन्दाग्नि से हुए अजीर्ण मे परिणाम उल्टा होगा अर्थात् अन्न नही पचेगा और अजीर्ण बढेगा। अजीर्णजन्य उदरशूल मे दीपन-पाचन कर्म करना चाहिए। विवन्धजन्य शूल मे निरूहण वस्ति तत्काल लाभ करती है। यकृत् शूल और वृक्कशूल प्राय पथरी (अश्मरी) से होते हैं। विना पथरी निकले इनका शूल नही नष्ट होता।

उरस्तोय (प्लूरिसी) मे जल है तो जल निकालने एव उसे सुखाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

बहुत सी स्त्रियो को मासिक स्राव के समय असह्य कष्ट होता है। उसमे बाधकारि चूर्ण (गाजरबीज, मूली बीज, सोया बीज और मेथी का समभाग चूर्ण) १ माशा प्रति मात्रा उष्ण जल मे ४ बार लेने से उत्तम लाभ होता है।

मक्कलशूल मे सही निदान कर कारणानुरूप चिकित्सा से ही लाभ होता है। बाधकारि चूर्ण दिया जा सकता है।

दन्तशूल मे दन्तकोटर और कृमि पर ध्यान दे। स्वच्छता के अतिरिक्त मृदु हाइड्रोक्लोरिक एसिड का एक फाहा कोटर मे लगाने से अत्युत्तम लाभ होगा। ध्यान रहे फाहा कोटर मे लगे अन्यथा इधर उधर लगने से जला देगा। तब घबडाना नही चाहिये। हलकी सी मलाई जैसा पर्त निकल कर ठीक हो जाता है।

कटिशूल मे धातुक्षय एव अस्थिशोथ पर ध्यान दे। इसमे स्कन्धशूल, बाहुशूल, जानुशूल मे (आमवात या क्रोष्टुकशीर्ष न होने पर) महायोगराज गुग्गुल या आर कम्पाउण्ड (एलार्सिन) अच्छा काम करता है।

वृश्चिक दश या अन्य क्रिमियो-जन्तुओ के दन्शजन्य शूल मे कारणानुरूप चिकित्सा ही लाभकर होती है।

उपान्त्रशूल मे बालुका या दशाग लेप अच्छा काम करता है। यदि उसमे अफीम १-२ रत्ती हर बार मिला दे तो अधिक लाभदायी होगा। लवणरहित भोजन और कारण पर भी ध्यान दे।

सावधान—प्रत्येक एकाग शूल मे स्थानीय कारण, उसके निवारण एव स्थानीय चिकित्सा पर ध्यान देना ही पडेगा।

सर्वाङ्ग शूल प्राय आमवात से होता है। जिसकी चिकित्सा सामान्यत स्पष्ट है। इसलिये हम यहा मौन है।

दोषजन्य सर्वाङ्ग शूल या स्थानीय दोषजन्यशूल मे मद्य का मर्दन तत्काल लाभदायक होता है। मद रोग से बचाते हुए इसका पान भी हो सकता है। चरक सूत्र स्थान अध्याय ४ सूत्र १७ मे उल्लिखित इस शूल शमन कषाय के प्रयोग पर भी ध्यान दे—

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, शृङ्गवेर, मरिच, अजमोद, अजगन्धा, अजाजी और गण्डीर।

इनमे जिस शब्द को न समझे उसके लिए ग्रन्थ की टीका या अन्य द्रव्यगुण के ग्रन्थो से काम चलाये।

परिणामशूल और अन्नद्रवशूल मे वर्णित शास्त्रीय चिकित्सा सामान्यत लाभदायी है।

अल्सर मे पित्तशमन पर ध्यान देते हुए कारणानुरूप चिकित्सा करे।

卐—卐

शूल रोग निवारण

डा० पुण्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य, आयु० चक्रवर्ती, चिकित्सक रामानन्द चेरिटी औषधालय,
५–महेश मुखर्जी फीडर रोड, अरियादह, कलकत्ता-७०००५७





डा० पुण्यनाथ जी मिश्र आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित है, आप विद्या के धनी है। वर्षो से आप कलकत्ता महानगर में आयुर्वेद द्वारा जनता जनार्दन की सेवा कर रहे हैं। आप विद्वान लेखक हैं आज तक आपके अनगिनत लेख प्रकाशित हुए है। 'धन्वन्तरि' पत्रिका पर आपको अपार स्नेह है। आप धन्वन्तरि के सामान्य एवं बृहत् अको मे विद्वत्तायुक्त लेख देते है। आपके लेखो से आयुर्वेद समाज को मार्गदर्शन मिलता है। विशेषाग्रह से आपने यहा शूल पर ज्ञानवर्धक विवेचन किया है। आपसे अपेक्षा है कि 'धन्वन्तरि' पत्रिका पर कृपा कर निरन्तर मार्गदर्शक लेख दे। 'धन्वन्तरि' के विकास मे आपका सहयोग जरुरी है।

—वैद्य अशोक भाई तबालिया भारद्वाज

शूल रोग अत्यधिक कष्टदायक होता है। इस रोग से रोगी बेचैन हो उठता है, रोगी के शरीर मे नसे शिथिल पड जाती है, कमजोरी वढ जाती है और चिकित्सा मे देर होने से आत्मानुभूत असह्यता के कारण वह उसे भी छोड चली जाती है।

यदि रोगी निर्बल हो गया है, तीव्र वेदना के साथ बेहोशी, पेट फूलना, विष्टम्भ, ज्वर, प्रलाप, अरुचि के एकसाथ लक्षण हो तो चिकित्सक को अपनी चिकित्सा के बहिर्भूत समझना चाहिए और उच्च चिकित्सा व्यवस्था की सलाह देकर दायित्व से मुक्ति पाना ही श्रेयष्कर होगा।

वायुजनित शूल में प्राथमिक उपचार

सिन्दवार व रास्ना को जितने का काढा बनाना हो उससे आठ गुना जल मिलाकर खूब खौलाये। जब वाष्प के योग्य हो तो रोगी को लिटाकर उक्त काढे की वाष्प उसके उदर पर देनी चाहिए। कपडे को उक्त काढे मे भिगोकर सेक करना चाहिए। उदर पर तारपीन तैल व वातनाशक तैल की मालिश करना वातशामक है।

उडद का नमकयुक्त यूष, ईसबगोल की भुसी मिश्री-युक्त, घृत व मांसयुक्त यूष आदि पिच्छिल एव पौष्टिक पदार्थ का भोजन, जामुन का सिरका, अग्नि पर सेका गया जम्बीरी नीबू के ऊपर नमक, अजवायन डालकर चूसना शूल रोग मे लाभदायक होता हे।

'मधुराम्ल लवणा. वातघ्नन्ति' अर्थात् मधुर अम्ल और लवण रस वात का नाश करता है। अतएव अम्ल और लवण वातानुलोमक होने से शूलरोग को मिटाता है।

(क) सोठ के २ औंस काढे मे काला नमक, भुनी हीग मिलाकर आधे-आधे घटे पर देना लाभकर है।

(ख) मट्ठा ४ औंस मे अर्क अजवायन १ औंस, शख भस्म २ रत्ती, कपर्द भस्म २ रत्ती मिलाकर पिलाने से रोग जल्द शान्त हो जाता है।

(ग) अर्क अजवायन ८ औस, यवक्षार ६ ग्राम, कपर्द भस्म ६ ग्राम मिलाकर ७ खुराक बनाकर ३-३ घटे पर रोगी को दें।

पित्तज शूल पर

(क) गोघृत १ चम्मच, दूध १ पाव, मधु १॥ चम्मच,

कपर्द भस्म २ रत्ती मिलाकर १ खुराक की मात्रा मे १-१ घण्टे पर देने से रोग शान्त हो जाता है।

(ख) रोगी का पित्त निकालने के लिए गन्ने के रस मे अत्यन्त कडवे पटोलपत्र-निम्वपत्र का कल्क मिलाकर पीने के लिए रोगी को सलाह देनी चाहिए।

(ग) त्रिफला आधा तोला, अमलतास का वीजरहित गूदा आधा तोला, जल १६ औंस को जलाकर ४ ओस रह जाने पर उतार छानकर उसमे चीनी १ तोला, गोघृत १ तोला मिलाकर रोगी को दस्त साफ और शूल शान्त होने के लिए देना चाहिए।

(घ) अविपत्तिकर चूर्ण आधा तोला, कपर्द भस्म ४ रत्ती ठडे जल से देना चाहिए।

श्लेष्मज शूल पर

(क) त्रिकटु [सोठ-मिर्च-पीपल], काला नमक, यवक्षार ३-३ ग्राम, नीवू का रस या अम्ल अनार का रस १ औंस मिलाकर रोगी को चटाने से आराम होता है।

(ख) त्रिकटु, यवक्षार, सज्जीक्षार, कपर्द भस्म प्रत्येक १-१ माशा के हिसाव से २ औंस अजवायन अर्क, २ औंस गर्म जल मे मिलाकर पिलाने से रोग दूर हो जाता है।

(ग) पचकोल [पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल और नागरमोथा] का चूर्ण आधा तोला मे काला नमक १ माशा मिलाकर २ औंस अजवायन अर्क, २ ओस गर्म जल के साथ देना चाहिए।

कपडे से गर्म सेक करना।

गोमूत्र ४ औंस, त्रिकटु चूर्ण ४ आना भर मिलाकर पिलाने से तथा अश्वकचुकी रस की १ गोली गरम दूध १ पाव के साथ रोगी को देने से कब्ज दूर होकर रोगी का शूल शान्त हो जाता है।

आमज शूल मे उपरोक्त श्लेष्मज शूलवत उपचार करना चाहिए।

परिणाम शूल पर

वमनोपग-विरेचनोपग द्रव्यो के द्वारा रोगी को वमन-विरेचन देकर आमाशय एव पक्वाशय कोष्ठ को शुद्ध कर लेना चाहिए।

एक पाव गरम दूध मे २ से ३ चम्मच शुद्ध एरण्ड तैल भोजनोपरान्त रात मे देने से उदरशुद्धि होकर सत्वर नाम होता है।

इक्षु रस से निर्मित सिरका—जामुन का सिरका आधा औस, अर्क अजवायन १ औंस १ मात्रा के हिसाव से देना अति लाभदायक है।

अन्नद्रव शूल पर

आमाशय शुद्ध करने के लिए मदनफल, निम्व किरात तिक्त किसी एक को त्रिफला के साथ देकर रोगी को खूब जल पिलाना चाहिए, जिससे वमन होकर आमाशय शुद्ध हो जाता है।

भोजनोपरान्त रात को १ पाव गरम दूध मे २ चम्मच शुद्ध एरण्ड तैल, १ गोली अश्वकचुकी रस के साथ रोगी को देने से कोष्ठशुद्धि और आव का परिमार्जन होता है।

उपवास, अल्प भोजन, सुपाच्य भोजन तथा दस्तावर और पित्तनाशक पदार्थ के साथ दूध, ताजा दही, चावल, यव, वथुआ शाक, करेला, पटोल, पपीता सदा सुपाच्य एव पथ्य है।

पार्श्वशूल पर

वात के साथ कफ का सचय और गैस की अनिस्सरित अवस्था के कारण यह रोग केवल सेक, गरम दूध मे एरण्ड तैल पान, महुये से वने मद्य १ औंस का समान जल से, जामुन का सिरका और गरम जल से शिवाक्षार चूर्ण आधा तोला को दिन मे कई वार लेने से रोग का शमन हो जाता है।

कुक्षि मे ग्रहणी सयन्त्र (आहार को ग्रहण करने वाला यन्त्र) मे तापमान की कमी के कारण आम का अपक्वावस्था मे ही फेनयुक्त वारम्वार दस्त आते समय शूल होने से रोगी को आमाशय क्लेदन कफ को वमन के द्वारा निकाल देना चाहिए और शुष्क शाक, नीवू का पाचक, जामुन का सिरका, अजवायन अर्क का पान। वातनाशक तैल से रोगी की कशेरुका पर मालिश तथा हल्के सुपाच्य भोजन अल्पाहार करना चाहिए। शारीरिक जलीय पदार्थ (पसीना) निकालने का प्रयास करना श्रेयस्कर है।

रोगी को शूल की अवस्था मे सेक देना, वाष्प देना, कतिपय औषध सिद्ध तैलो की मालिश करना आयुर्वेद मे लिखा गया है। इन प्रक्रियाओ से शारीरिक नसो को वल मिलता है, गतिया सीमित व स्वाभाविक होकर कार्य करती है।

हमारे शरीर के प्रधान सयन्त्र हृदय-धमनी आमाशय, यकृत्, पक्वाशय, छोटी-बड़ी आत से लेकर आवश्यक छोटे-छोटे तन्तुओ से शरीर का निर्माण हुआ है। इन सभी को ठीक और टिकाऊ रखने के लिये हमें ठीक समय पर भोजन, आराम, शारीरिक व्यायाम, मन पर नियत्रण, प्रसन्नता, सयम और नियम से ही रोग का नियमन होना सम्भव हो सकता है।

शीत पदार्थ के साथ गरम और गरम के साथ शीत, भात के साथ दूध, दूध के साथ नमक या खटाई के आगे-पीछे दुग्धपान, मास के साथ सत्तू या शाक, तैल-घृत पक्वान्न को पुन गरम करके खाना आदि भक्ष्य भक्षण के बाद उनसे बने रस-रक्तादि धातु शारीरिक बल को ह्रास कर अनुकूलता मे बाधक बन रोग उत्पन्न कर देता है।

यदि स्वय यह जानकारी नही है कि मेरा शरीर किस प्रकार का है, किस प्रकृति का है, मुझे किन-किन पदार्थों को खाने से लाभ होगा, मेरा किस प्रकार का आहार और विहार शरीर के लिये हितकर होगा, अच्छे आयुर्विज्ञानवेत्ता से सलाह लेना आवश्यक होता है।

हमारे शरीर मे शूल अनेक प्रकार के होते है जैसे शिरदर्द, वात के अनेक नाम से अनेक स्थलो मे शूल, स्त्री को रज प्रवृत्ति के आगे पेडू मे शूल, प्रसव का शूल, प्रसव के पश्चात् यकृत् शूल आदि के विषय मे भी लिखना सम्भव नही है। केवल उपर्युक्त शारीरिक उदरगत जो शूल होते है उनकी विवेचना यहा सम्भव हो सकी है।

उनकी शास्त्रोक्त आयुर्विज्ञान की चिकित्सा व्यवस्था जो मुझे अनुभव है, जिससे मै हजारो रोगियो को रोग-मुक्त कर उन्हे निरामित किया है उसका आशिक प्रयोग यहा दे रहा हूँ—

वातज शूल पर

(क) शूलगजकेशरी रस [भै० र०] २ गोली, शूल-वज्रिणी वटी [सि० यो० स०] २ गोली, अमर सुन्दरी वटी [यो० चि०] २ गोली अजवायन अर्क के साथ २-२ घटे बाद दे।

(ख) शम्बूकादि गुटिका [यो० र०] २ गोली, आरोग्यवर्द्धिनी वटी [र० र० स०] २ गोली इक्षु रस का सिरका गर्म जल मे शखद्राव १० बूद के साथ ३-३ घटे बाद देना चाहिये। यह १ मात्रा है।

(ग) शूलकुठार रस [वृ० नि० र०] २ गोली, महा-शख वटी [भै० र०] २ गोली गरम जल २ औस, अर्क अजवायन २ औस के साथ तीन घटे के अन्तर से देना चाहिये।

मिश्रित योग

अर्क अजवायन २ औस, शखद्राव १० बूद, शख भस्म ६ ग्राम, टकण भस्म ३ ग्राम, यवक्षार १ तोला, जल ६ औस मिलाकर शीशी मे ८ खुराक भरकर दे, दिन मे ८ बार देना चाहिये। बोतल मे गरम जल भर-कर उदर पर सेक करे।

पित्तज शूल पर व्यवस्था-पत्र—(क) शूलान्तक रस [भै० र०] १ गोली, शख भस्म [र० त०] १ माशा, सिद्ध प्राणेश्वर रस [औ० गु० ध० शा०] १ गोली, एक मात्रा के हिसाब से अर्क पुदीना १० बूद, अर्क अजवायन १ औस, जल १ औस के साथ दिन मे ४ बार दे।

(ख) शख भस्म [र० त०], कपर्द भस्म [र० स०] ३-३ रत्ती, शूलकुठार रस [वृ० नि० र०] २ गोली, यवक्षार ३ ग्राम, १ मात्रा अर्क पुदीना १० बूद, शख-द्राव ५ बूद जल २ औस के साथ ३-३ घटे बाद देना चाहिये।

परिणाम शूल पर चिकित्सा व्यवस्था—

(क) विद्याधराभ्र रस [भै० र०] २ गोली, नारि-केल लवण [र० सा० स०] २ माशा, महाशख वटी [भै० र०] २ गोली एक मात्रा भोजन के बाद कुमार्यासव ३ औस समान जल के साथ दे।

(ख) शम्बूक भस्म [र०र०स०] १ माशा, शूलान्तक वटी [भै० र०] २ गोली, यवक्षार [आ० सा० स०] २ माशा की मात्रा दिन मे ४ बार गरम जल से दे।

अन्नद्रव शूल मे श्लेष्मज शूलवत औषधोपचार करना चाहिये जिससे क्लेदक कफ का निर्माण अधिक न हो और पाचकाग्नि तीव्र हो जाय।

हृत्शूल पर प्रामाणिक व्यवस्था—

(क) हृदयार्णव रस [भै० र०] २ गोली, यवक्षार चूर्ण १ माशा की एक मात्रा दिन मे ४ बार अर्जुन वृक्ष की छाल के काढे २ औस मे समान जल से दे।

(ख) हृदयार्णव रस २ गोली, नागार्जुनाभ्र रस २ गोली, शूलगजकेशरी २ गोली की एक मात्रा सुवह, शाम और रात्रि मे अर्जुनारिष्ट २ औंस मे समान जल से भोजनोत्तर दो वार दे। कपूर मे गोघृत गरम कर उदर के ऊपर मालिश करे।

कोई भी शूल क्यो न हो गरम जल का पीना, सेक करना आवश्यक है किन्तु हृत्शूल मे केवल गरम जल मे नीवू स्वरस डालकर पीना श्रेयष्कर है।

वातपैत्तिक द्वन्द्वज शूल पर—

धात्री लोह [आ० सा० स०] २ रत्ती, तारामडूर [भै० र०] २ गोली, महाशख वटी [भै० र०] २ गोली की एक मात्रा अजवायन अर्क के साथ भोजन के वाद दो वार सुवह और शाम दे।

श्लेष्मज शूल पर अनुभवात्मक—

(क) अग्निकुमार रस [भै० र०] २ गोली, शखभस्म २ रत्ती, शूलकुठार रस [आ० सा० स०] २ गोली की एक मात्रा त्रिकटु चूर्ण ३ माशा, अर्क अजवायन १ औस के साथ दिन-रात मे ४ वार दे।

(ख) शख भस्म ४ रत्ती, कपर्द भस्म ३ रत्ती, शिवाक्षार चूर्ण ४ आना भर, यवक्षार २ आना भर सुवह शाम और रात मे शुण्ठी चूर्ण ४ आना भर के साथ दे।

(ग) अर्कक्षार २ माशा, शख भस्म ४ रत्ती, तारामडूर ३ गोली की एक मात्रा सुवह, दोपहर, शाम और रात्रि मे गरम जल मे शुण्ठी चूर्ण ४ आना भर के साथ दे।

मिश्रित योग—

(१) निम्बु सत्व ४ माशा, यवक्षार ८ माशा, शख भस्म ८ माशा, अर्क अजवायन २ औंस, जामुन का सिरका २ औंस, सीसी मे ८ खुराक लगाकर दे दे। यह सभी प्रकार के शूलो मे ३-३ घण्टे पर प्रयोग करे।

(२) नारिकेल लवण ८ माशा, अर्कक्षार २ माशा, टकण भस्म २ माशा, अजवायन अर्क ४ औंस जल ४ औंस सीसी मे ८ खुराक लगाकर दे। दिन मे ४ वार सभी शूलो विशेषकर परिणाम शूल पर अच्छा प्रभाव पडता है और रोग निर्मूल हो जाता है।

वस्ति शूल पर—यवक्षार २ माशा, नीवू सत्व सेधा नमक, शङ्ख भस्म १-१ माशा, शुद्ध कलमी सोडा १/२ माशे, अर्क गुलाव व अर्क अजवायन १-१ औंस के साथ १ मात्रा के हिसाव से दिन मे ४ वार दे। रोगी को तण्डुल मड सेधा नमक के साथ पिलाना चाहिए।

चन्दनासव ४ औंस समान जल से २ गोली गोक्षुरादि गुग्गुल दे। दिन मे २ से ४ वार।

इसके अतिरिक्त स्नायुशूल, कर्णशूल, शिर शूल आदि पर निर्मल आयुर्वेद सस्थान का अवेदन कैपसूल १ से २ मात्रा गर्म जल से दिन मे ३ से ४ वार दें। वैद्यनाथ भवन का दर्दनाशक-दर्दोना टेवलेट १ से २ टेवलेट दिन मे २-३ वार ठडा जल से दे। स्नायुशूल मे भी लाभकर होगा।

कर्णशूल मे तत्काल १ चम्मच शुद्ध सर्षप तेल मे गर्म कर उसमे २ से ३ वूद अमृत धारा डालकर सहोष्ण कान मे डाले। प्याज का रस १ चम्मच गर्मकर उसमे मुर्दाशङ्ख चूर्ण मिलाकर कान मे डालने से कर्णशूल मे आराम होता है।

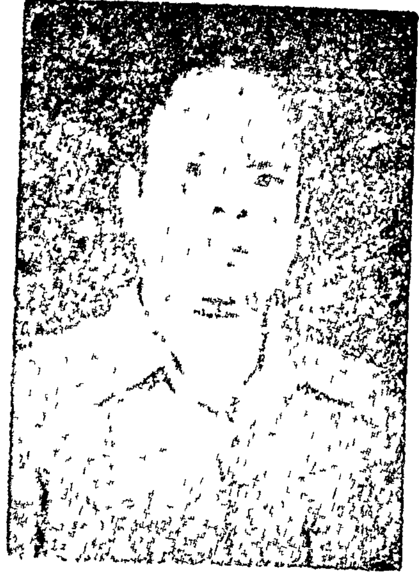
शिर मे तेज शूल होने पर शास्त्रीय औषधि शिर शूलादि वज्रारस २ गोली (भै० र०) गर्म जल मे दे, षड्-विन्दू तैल का नस्य ले।



✲ शूल एवं शोथ का पारस्परिक सम्बन्ध ✲

डा० जगदीश चन्द्र असावा ए एम बी. एस (आनर्स), रीडर/विभागाध्यक्ष—शारीर विभाग
ल ह राजकीय आयुर्वेद कालेज, पीलीभीत (उ० प्र०)

—★—



वैद्य श्री असावा जी आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित है। आप अष्टाग आयुर्वेद के ज्ञाता है। अनेको हिन्दी मासिक पत्र-पत्रिकाओ मे वर्षो से आपके लेख प्रकाशित होते रहते है। आपके लेखो से जन समाज को आयुर्वेद का सच्चा दर्शन होता है, एवं वैद्य समाज को मार्गदर्शन मिलता है। यहां श्री असावा जी ने शोथ एव शूल के पारस्परिक सम्बन्ध पर ज्ञानमय विवेचन किया है जो चिकित्सक समाज को नित्योपयोगी होगा। इस वर्ष १६८८ में आप 'धन्वन्तरि' के एक लघु विशेषाक का सम्पादन भी कर रहे है। मै वैद्य महोदय श्री असावा जी से अपेक्षा रखता हूं कि आप बार-बार ऐसे विषयो पर लिख कर धन्वन्तरि माध्यम से मार्गदर्शन दें। धन्वन्तरि मासिक आपका ही है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

"नर्तेऽनिलाद्रुक"

वायु के बिना पीडा नही होती अत सभी प्रकार की वेदना अथवा पीडा की उत्पत्ति वातदोष के कारण होती है।

सिद्धान्त निदान मे कविराज गणनाथ सेन ने इस का उल्लेख इस प्रकार किया है—

मज्ञावहाना नाडीना प्रतानीद्वेजनोद्भवा।
सर्वेऽपिशूलास्ते नाहृ शूलानाम निल प्रभु॥

स्थान विशेष पर शूल का आभास मज्ञावह नाडी सूत्रो के क्षोभ के कारण होती है। सभी शूलो मे वायु की ही प्रधानता रहती है।

आधुनिक क्रिया शारीर के अनुसार भी सज्ञावाहक नाड्यग्रो की उत्तेजना से उत्पन्न सवेदना तरग के केन्द्रीय वात नाडी सस्थान मे पहुचने पर चेतन्य मानव को पीडा का अनुभव होता है।

यह पीडा तोद-भेद, दारण, शूल, दाह आदि भेद से अनेक प्रकार की होती है।

आचार्य माधव ने शूल को स्वतन्त्र व्याधि माना है तब उसका दोषानुसार वर्गीकरण किया है तथा तदनुसार ही उसके लक्षणो का वर्णन किया है—

वातिक, पैत्तिक, कफज, द्विदोषज ३, सन्निपातज १ तथा आमज ८ प्रकार के शूल बताये है।

यहा यह विचारणीय विषय है कि माधव ने शरीरागो के अभाव स्थानानुसार शूलो का वर्गीकरण नही किया है। आहार पाचन को आधार मानकर अन्न द्रव शूल एव परिणाम शूल का वर्णन किया गया है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे शरीर रचना के आधार पर ऊपरी तथा गम्भीर शूल के रूप मे शूल का वर्गीकरण किया है पुनश्च उदर गुहा मे स्थित अवयवो के अनुसार भी शूल (Colic) व्याधि का उल्लेख किया है यथा वृक्कशूल, पित्ताशय, आत्रशूल आदि।

शोथ परिचय —

साधारण भाषा मे शोथ का अर्थ उत्सेद, फूल जाना या सूजन ग्रहण किया जाता है। आयुर्वेद मे शोथ श्वयथु एव शोफ शब्दो का प्रयोग मिलता है। आयुर्वेद विज्ञान

मे शोथ का व्याधि रूप मे वर्णन किया गया है—

माधव निदान मे—

रक्त पित्त कफान वायुर्दुष्टो दुष्टान वहि सिरा।
नीत्वा रुद्ध गतिस्तैहि कुर्यात्वङ्मास सश्रयम्॥
उत्सेद सहत शोथ तमाहुर्निचायादत ॥

कुपित रक्त पित्त एव कफ वायु द्वारा उत्तान शिराओ मे पहुँचता है तथा इनको अवरुद्ध कर त्वचा एव मास के मध्य सचित हो जाता हे तथा उभार उत्पन्न कर देता है। इसीको शोथ कहा गया है।

निज आगन्तुज भेद से शोथ के दो प्रकार—

शोथ की उपरोक्त सम्प्राप्ति दोषानुसार की गई है। अत शरीर दोषो के प्रकोप से उत्पन्न शोथ निज शोथ होता है। आगन्तुक कारणो से भी शरीर मे शोथ पैदा होता है।

आगन्तुक कारणो मे आघात, ऊष्मा, रसायनिक द्रव्य, विष, विद्युत तथा विकारोत्पादक जीवाणु का समावेश होता है। निज शोथ को आधुनिक विज्ञान मे Oedema तथा आगन्तुक शोथ को Inflammation की सज्ञा दी जाती है। शूल का सम्बन्ध मुख्यरूप से आगन्तुक शोथ के साथ होता है अत यहा शोथ का ग्रहण Inflammation के रूप मे करना अभीष्ट होगा।

यह एक प्रक्रिया है जो कि वाह्य आघात के प्रति शरीर कोशिकाओ मे उत्पन्न होती हे वशर्ते शरीर कोशिकाओ की जीवनीय शक्ति नष्ट न हो।

शरीर कोशिकाओ, रक्त वाहनियो तथा रक्त कोशिकाओ मे परिवर्तन होते है। परिणामस्वरूप अङ्ग विशेष मे अधोलिखित लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं—

१ रक्तिमा (Rubor)
२ उत्सेद (Tumor)
३ वेदना (Dolar)
४ ऊष्मा (Calor)
५ निष्क्रियता (Loss of function)

जीवाणु उपसर्ग होने पर रक्तकोशिकाये सक्रिय होकर भक्षण कार्य (Phagocytosis) आरम्भ कर देती हे तथा पूय उत्पन्न हो जाता है फलत वेदनाधिक्य हो जाता हे। विस्तारभय से पूर्ण वैकारिकी का उल्लेख नही किया जा रहा है परन्तु शूल का शोथ के साथ सम्बन्ध करना आवश्यक हे।

शूल एव शोथ का परम्परानुबन्ध—

(१) आश्रय आश्रयी भाव—शोथ व्याधि है जबकि शूल का वर्णन सहिता ग्रन्थो मे लक्षण या उपद्रव रूप मे किया गया है। माधव ने केवल लक्षण की उग्रता के आधार पर वात पित्तादि दोषो के लक्षणो से युक्त शूल को पृथक से व्याधि कहा है। उधर शोथ के लक्षणो मे निश्चित रूप से वेदना का समावेश पाया जाता है।

स्थान भेद से यही वेदना Pricking, Biting, Stabbing, Tigling Throbbing, Tearing, Burning, Crushing, Gritty अथवा Colic आदि नामो से जानी जाती है। अत शूल एव शोथ मे आश्रय आश्रयी भाव सिद्ध होता है।

(२) वात दोष वाहुल्यात—शूल एव शोथ दोनो ही की सम्प्राप्ति मे वातदोष की प्रधानता पाई जाती हे। यद्यपि चलनात्मक गुण केवल वायु दोष मे ही होता है कफ एव पित्त दोष पगु कहे गये है। अत शूल मे स्पर्श एव वेदना का सम्वहन वात के द्वारा होता हे तथा शोथ प्रक्रिया मे भी वात की प्रमुख भूमिका होती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे वात का प्रतीक वात नाडी सस्थान माना गया हे तथा शूल एव शोथ दोनो ही की उत्पत्ति मे नाडी सस्थान का प्रमुख योगदान पाया जाता है।

शूल की ज्ञानोत्पत्ति नाडी अङ्गो के द्वारा होती है तथा अनुभूति भी चेतन होने पर ही होती है। शोथ मे भी नाडी उत्तेजना द्वारा ही रक्त वाहनियो की क्रिया होती है तथा पश्चात शोथ मे चापाधिक्य के कारण नाडी-अग्र प्रभावित होकर शूल का ज्ञान कराते हे। अत दोनो ही अवस्थाओ का परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है।

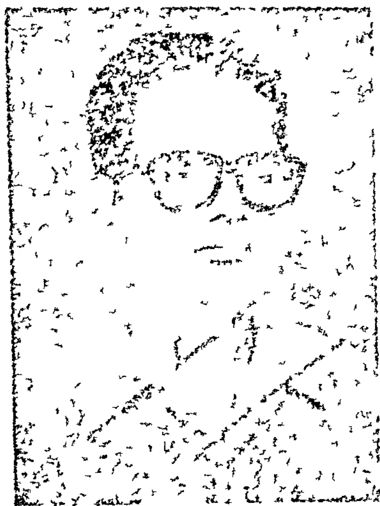
(३) लक्षणो की उग्रता के कारण शोथ युक्त अवस्था को शूल से नामोल्लेख जहा शोथ होगा वहा शूल होगा अत उण्डुक, वृक्क, आमाशय, आन्त्र अथवा पित्ताशय आदि अवयवो मे शोथ होने पर उत्पन्न तीव्र वेदना को प्राय शूल नाम से पुकारा जाता है यथा उण्डुक शोथ, वृक्क शोथ मे तीव्र वेदना होने पर वृक्कशूल, इसी प्रकार आन्त्रशूल, पित्ताशय शूल आदि पुकारा जाता है। इस प्रकार शूल एव शोथ मे परस्पर निकट सम्बन्ध स्थापित होता है।

—शेषाश पृष्ठ १०४ पर देखे।

❋ विभिन्न शूलों में आशुकारी अनुभव सिद्ध प्रयोग ❋

वैद्य हरिमोहन शर्मा भिषगाचार्य (जिला आयु० अधिकारी—सवाई माधोपुर)
४०५४ जौहरी बाजार, जयपुर--३०२००३ (राज०)

—✶❖✶—



हमारे आयुर्वेद समाज मे अत्यन्त लोकप्रिय, कठोर सिद्धान्तवादी, निरन्तर संघर्षशील, आयुर्वेद सेवी, रिश्वतखोरी एव भ्रष्टाचार के घोर विरोधी का नाम है वैद्य श्री हरिमोहन शर्मा। श्री शर्मा जी वर्तमान मे जिला आयुर्वेद अधिकारी के रूप मे सवाई माधोपुर (राज०) मे अपनी सेवा दे रहे है। सन १९५८ से आप आयुर्वेद की सेवा मे है, वर्षो तक आपने राजकीय औषधालयो मे विविध स्थानो पर सेवा दी है। आप आयुर्वेद मडलो मे भी सेवा देते हैं। वर्तमान मे आप राजस्थान राज्य आयुर्वेद सेवा परिषद के महासचिव, राजस्थान राज्य राजपत्रित अधिकारी सेवा महासघ के वरिष्ठ सयुक्त सचिव है एव भूतकाल मे भी विभिन्न पदो पर रहकर आपने आयुर्वेद समाज की सेवा की है। आप उत्तम लेखक है, शुचि, धन्वन्तरि, आयुर्वेद विकास आदि मे आपके लेख प्रकाशित होते है। आप समाजसेवी वैद्य जी है। यहां आपने "विभिन्न शूलो मे आशुकारी अनुभव सिद्ध प्रयोग" पर उपयोगी लेख दिया है तथा अन्यत्र 'वृक्कशूल' लेख भी है। मै आप से आशा करता हू कि आप 'धन्वन्तरि' द्वारा मार्गदर्शन देते रहेगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

अपने ३० वर्ष के चिकित्सक, वरिष्ठ चिकित्सक तथा आयुर्वेद प्रशासक जीवन के कुछ अनुभव सिद्ध आशुलाभकारी सफल योग चिकित्सको एव आयुर्वेद प्रेमियो की सेवा मे प्रस्तुत कर रहा हूँ—

कर्णशूल—नरमूत्र की कुछ बूद धत्तूरपत्र स्वरस मिलाकर मामूली गर्म कर शूलयुक्त कर्ण मे आश्च्योतन करें। शूल का शीघ्र शमन होगा। पिडका आदि होंगी तो मिट जावेगी।

दन्तशूल—कपूर २॥ तोला, पिपरमेट २॥ तोला, क्लोरल हाइड्रेट २॥ तोला, दालचीनी का तैल १ तोला, लौंग का तैल १ तोला, कार्वोलिक एसिड ३० बूद के मिश्रण को फुरैरी मे लगाकर पीडित दात या दाढ पर लेप करे, लार टपकावे। दन्तशूल तुरन्त मिट जावेगा।

दन्तकृमि का शूल—कण्टकारी के फल के धूम्रपान अथवा नली मे से पीडित दात को धुआ देने से कृमि मर जाते है, शूल मिट जाता है।

गुहेरी (पक्ष्म पिडिका)—आख की पलक एव नाक की नोक या नथुने पर कभी-कभी छोटी फुसी हो जाती है, ये बहुत पीडित करती है। इस पर लोग को पानी मे घिसकर लेप करने से यह शीघ्र पककर फूट जाती है और सारा पूय-मल निकलकर पीडा तथा रोग मिट जाता है।

सूर्यावर्त—सूर्योदय से प्रारम्भ होकर मध्याह्न तक बढने वाला तीव्र शिर शूल सूर्यावर्त कहा जाता है। इस रोगी को उष काल मे (सूर्योदय से २ घण्टे पूर्व) अर्कपत्र की कोपल गुड मे लपेटकर निगलवा दे, रोग २-३ दिन मे निर्मूल हो जावेगा। लाभ तो पहले ही दिन शुरू हो जावेगा।

वृश्चिक दश—पोटेशियम परमेंगनेट बारीक पीसकर दश स्थान पर रख उस पर कुछ बूद नीबू का रस निचोडे। स्थाई रूप से बनाकर रखने हेतु पोटेशियम परमेगनेट तथा साइट्रिक एसिड समभाग पीस शीशी मे भर-

कर रखे। आवश्यकता होने पर इनका प्रयोग करे। कुछ देर मे ही वृश्चिक दश की पीडा समाप्त हो जावेगी।

तीव्र हिक्का—अर्क पुष्प की लवग शुद्ध सरसों के तैल मे डुबोकर रोगी को निगलवा दे। आवश्यकता होने पर पुन प्रयोग कर सकते है। प्राय १-२ मात्रा मे ही हिक्का मिट जाती हे।

कटिशूल—भोजन के तत्काल पश्चात् मूत्र त्याग करे, मध्यम श्रेणी के कठोर बिस्तर पर सोवे। सेक, कटि-प्रदेश पर मायोस्टाल लिनिमेंट, स्माशिन आयल, नवगुण लिनिमेट मे से किसी एक का लेप करे। शुण्ठी, काला-नमक तथा खाने के सोडे के मिश्रण की ३ मात्रा प्रतिदिन कवोष्ण जल से ले।

तीव्र उदरशूल—इन्द्रायण के ताजे फल मे पच्चीस पैसे के साइज का छेद कर चाकू मे छिद्र जितने भाग का गूदा बाहर निकाल दे। इस फल मे अजवायन, काला-नमक, कालीमिर्च जितनी भरी जा सके भर दे। इन्द्रायण के छिद्र को काटे हुए छिलके की टोपी मे ढककर छाया मे सुखावे। जब फल पूरी तरह सूख जाय, तब कपडछन चूर्ण बनाले। इस औषध की २ से ४ रत्ती की मात्रा गर्म जल से प्रयोग करने पर तीव्र उदरशूल, उदावर्तजन्य शूल, मासपेशी सकोच का शूल शीघ्र मिट जाता हे।

सन्धिशूल—शुण्ठी, अश्वगन्धा, मेथी बीज, सुरजान तथा उसवा के समभाग चूर्ण का प्रयोग प्रतिदिन गर्म जल से सेवन करे। कब्ज न रहने दे। खट्टी, भारी, तली हुई तथा द्विदल धान्य वर्ग का प्रयोग न करे। स्नेहन भी लाभ करेगा। शिर व अण्डकोष के अतिरिक्त अन्य सन्धियो व आस-पास के भाग का सेक उपयोगी हे।

गृध्रसी शूल—एरण्ड स्नेह मे भुना या तला बैगन, बथुआ, मेथी, अदरख, लहशुन भोजन मे अधिक उपयोग करे। यथासम्भव काला नमक खावे। हारसिगार के पत्रो का मन्द आच से बना क्वाथ, निर्गुण्डी पत्र का मन्द अग्नि से बना क्वाथ अथवा शेफाली व निर्गुण्डी दोनो का क्वाथ प्रयोग करावे। गृध्रसी निश्चित मिटेगी।

आकस्मिक शूल—शोभाजन के गोद का चूर्ण ५ ग्राम की मात्रा मे प्रयोग करे। आकस्मिक उत्पन्न हुए तीव्र शूल शीघ्र मिट जावेगे।

तुण्डिकेरी शूल—बार-बार होने वाले टॉन्सिल के लिए गूलर की छाल के क्वाथ से गरारे करावें या शहतूत की पत्ती के क्वाथ व नमक के मिश्रण से गरारे करावें। सुहागा, हल्दी व शहद का मिश्रण तुण्डिकेरियों पर मर्दन करें। अधिक ठंडा, अधिक गर्म, कठोर भोजन न लें। शर्बत शहतूत एव अर्क मकोय का मिश्रण बार-बार चाटें।

उल्वा (पसली चलना)—उशीर रेवन्द २ रत्ती की मात्रा मे माता के दूध के साथ शिशु को पिला दें। थोड़ा वमन तथा विरेचन होगा। कोष्ठ शुद्धि के पश्चात् पसली चलना मिट जावेगा।

पार्श्वशूल—सागर गोटा तथा हार्सिंगार पानी मे घिसकर लेप करें। मेथी का क्वाथ मधु मिलाकर पीवें।

मूत्रकृच्छ्र के साथ शूल—गर्म जल के टब मे कटि-स्नान, पचगुण तैल की पेडू, कटि, शिर प्रदेश पर मालिश, गोखरु का काढा नीबू रस तथा यवक्षार १ ग्राम मिला-कर आधा-आधा घण्टे बाद २-३ बार दे।

हृच्छूल—नियमित रहने वाले चिरकारी हृच्छूल मे निम्न योग मिश्रण दे। रस सिन्दूर १२५ मि ग्रा, शृङ्ग-भस्म २५० मि ग्रा, पुष्करमूल चूर्ण १ ग्राम का मिश्रण प्रतिदिन ३ मात्रा दे। महानारायण तैल का मर्दन हलके हाथ से करे।

शिर शूल—किसी भी कारण से बार-बार होने वाले शिर शूल मे निम्न योग मिश्रण शीघ्र व स्थाई लाभ करता है। गोदन्ती भस्म ५०० मि ग्रा, स्वर्णगैरिक ५०० मि ग्रा, अपामार्ग क्षार ५०० मि ग्रा, कपर्द भस्म ५०० मि ग्रा, अर्कमूल त्वक् चूर्ण २५० मि ग्रा की एक मात्रा दिन मे ३ बार प्रतिदिन। प्रात-साय दुग्ध से, मध्याह्न शीतल जल से दे।

परिणाम शूल—नारिकेल लवण ५०० मि ग्रा मधुर क्षार १ ग्राम, अविपत्तिकर चूर्ण २ ग्राम, स्वर्णगैरिक ५०० मि ग्रा, कपर्द भस्म २५० मि ग्रा का मिश्रण उपलब्ध हो तो नारियल के पानी (डाभ) से अन्यथा मीठे अनार के रस व सौंफ के अर्क से दे। आवश्यकतानुसार औषध १-१ घण्टे पश्चात् दोहराई जा सकती हे।

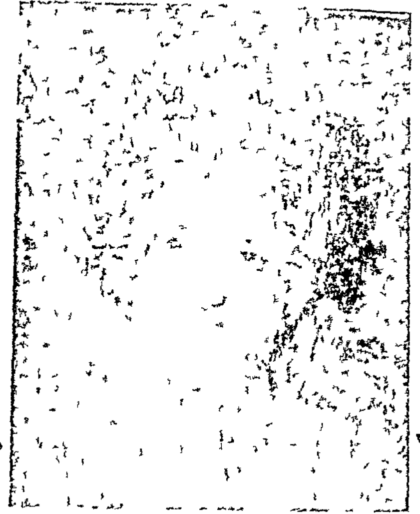
मूत्रावरोध—वड़ के पके ४-५ पीले पत्ते पानी मे उबाले। ठण्डा होने पर पत्तो को मसल पानी छानकर

—शेषांश पृष्ठ १०२ पर

※ शूल-शामक कुछ रसौषधि योग ※

वैद्य अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, मकराना मोहल्ला, जोधपुर (राजस्थान)





राजस्थान के सुप्रसिद्ध वैद्यो मे श्रीयुत वैद्यराज श्री अम्बालाल जोशी का नाम अग्रिम स्तर पर है। आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित है। अष्टांग आयुर्वेद के ज्ञाता होने से आप सिद्धहस्त वैद्य भी है। वर्षो से आप आयुर्वेद का प्रचार एव प्रसार कर रहे है। आपने अनेक ग्रन्थ भी लिखे है। धन्वन्तरि मासिक पर तो आपकी सदैव कृपा बनी रही है। 'धन्वन्तरि' के सामान्य अङ्क, लघु विशेषांक एवं बृहत् विशेषांको मे आपके ज्ञानवर्धक-मार्गदर्शक लेख प्रकाशित होते रहते है, यही आपकी विद्वत्ता का द्योतक है। गत वर्ष 'धन्वन्तरि' के औषधि प्रतिक्रिया एवं निवारण अङ्क आप द्वारा सम्पादित हुए थे। विशेष आग्रह पर यहा आपने "शूल-शामक कुछ प्रभावी रसौषधि योगो" का वर्णन कर उपकृत किया है, एवं दूसरा 'ताम्र की विषाक्तताजन्य शूल" पर उपयोगी वर्णन किया है। भगवान् धन्वन्तरि आपको सदैव स्वस्थ रखे एव आपका मार्गदर्शन धन्वन्तरि द्वारा देश के वैद्य समाज को मिले, अभ्यर्थना है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

* *

(१) अग्नितुण्डी वटी—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वच्छनाग, हरड, बहेडा, आवला, सज्जीखार, जवाखार, चित्रक, सेधव, जीरक, अजमोद, समुद्र नमक, विडङ्ग, काला नमक, सोठ, काली मरिच, पीपर सब समभाग, सबके सयुक्त बराबर कुचिला। यथाविधि सबको नीबू के रस मे खरल कर आधा-आधा रत्ती की वटी बनावे। मात्रा—१-२ गोली दिन मे २ बार जल से देवे। उपयोग—आध्मान शूल, आमशूल, अजीर्ण शूल, परिणाम शूल, सर्वाङ्ग शूल नाशक।

(२) निद्रोदय रस—रस सिन्दूर, वशलोचन, अफीम १-२ ग्राम, धाय के फूल, आवले २५-२५ ग्राम सबको चूर्णित कर मिलाकर भाग के रस की ३ भावना देवें, फिर बीजरहित मुनक्का १५० ग्राम मिलाकर २-२ रत्ती की गोली बनावे। मात्रा—१ से २ गोली। यह शूलशामक तथा निद्राप्रद है।

(३) शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नाग भस्म, वग भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म (शतपुटी), पीपल, सुहागे का फूला, काली मरिच, सूठ सभी समानभाग १०-१० ग्राम, वत्सनाभ विष ४५ ग्राम यथाविधि चूर्ण कर खरल मे डाल त्रिकटु क्वाथ, त्रिफला क्वाथ, चित्रकमूल क्वाथ, भृङ्गराज रस, कूठ क्वाथ, निर्गुण्डी के पत्तो का रस, अर्क दुग्ध, आवले का रस, अदरक का रस, नीबू का रस सबकी ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोली बना लेवे। मात्रा—१ से २ गोली। उपयोग—वात वाहिनियो के क्षोभ मे शामक प्रभाव करती है, शूल नाशक भी है। मक्कलशूल, शिर शूल, बस्तिशूल, गर्भाशय शूल आदि मे लाभदायक है।

(४) समीर गज केसरी—शुद्ध हिंगुल, काली मिर्च, शुद्ध अफीम, शुद्ध कुचला समान भाग मिलाकर अद्रक के रस मे मर्दन कर आधा-आधा रत्ती की गोली बनावे। मात्रा—१-१ गोली। गुण—किसी भी प्रकार के वातशूल को तत्काल कम करता है।

(५) वातगजांकुश रस—रस सिन्दूर, लोहा, स्वर्ण-माक्षिक, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध वच्छनाग, हरड, काकडासिंगी, सूठ, काली मिर्च, पीपर, अरणी की छाल, सुहागे का फूला इनको यथाविधि मिलाकर गोरखमुण्डी के रस, निर्गुण्डी के पत्तो के रस की ३-३ भावना देकर २-२ रत्ती की गोली बनावे। मात्रा—१-१ गोली ले।

गुण–आमवात शूल, आढ्यवात शूल, गृध्रसी शूल, क्रोष्टुक शीर्ष शूल, वातश्लेष्मक शूल, वातरक्त शूल आदि अनेक शूलो मे ल· ·कारी है ।

(६) ·ूलवज्रिणी वटी—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, ताम्र भस्म, सुहागा फूला, भुनी हीग, सूठ, काली मिर्च, पीपल, हरड, वहेडा, आवला, कचूर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीस पत्र, जायफल, लवग, अजवायन, जीरा, धनिया १०-१० ग्राम । सवका चूर्ण कर वकरी के दूध मे घोटकर २-२ रत्ती की गोली वनावे । मात्रा—२ से ४ गोली । उपयोग—पार्श्व शूल, हृदय शूल, आम शूल, शिर शूल आदि अनेक प्रकार के शूलो को मिटाने वाली दिव्य औषधि है ।

(७) शिर शूलारिवज्र रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, निसोत ४-४ तोला, शुद्ध गुग्गुल १६ तोला, त्रिफला ६ तोला, मुलहठी, पीपल, सूठ, गोखरू, वायविडङ्ग १-१ तोला, दशमूल सम्मिलित १० तोला । भृङ्गराज रस की १० भावना देकर २-२ रत्ती की गोली वनावे । मात्रा—१-२ गोली । उपयोग—तीव्र शिर शूल को तत्काल मिटाता है ।

(८) मिहिरोदय रस—लोह भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, प्रवाल भस्म, राजवर्द भस्म १०-१० ग्राम, रस सिन्दूर २० ग्राम मे एरण्डमूल क्वाथ तथा जटामासी क्वाथ की ३-३ भावना देकर १-१ रत्ती की गोली वनावे । मात्रा—१-१ गोली । उपयोग—विभिन्न अनुपानो से सभी प्रकार के शूलो के उपयोगी है ।

(९) शूलहर वटी—शुद्ध कुचिला ८ तोला, पीपर, पीपरामूल, यवक्षार, सैधव, कृष्ण नमक, विड नमक, शुद्ध गन्धक १-१ तोला, भुनी हीग, सुहागे का फूला, अजवायन २-२ तोला, सवका चूर्ण अद्रक स्वरस मे ३ दिन खरल कर १-१ रत्ती की वटी वनावे । मात्रा—२-२ गोली । उपयोग—वातज, कफज, आमज, त्रिदोपज शूलो को नष्ट करती है ।

(१०) शूलहर वटी—सुवर्ण वग क्षार १२ घण्टे अद्रक के रस मे खरल करे, फिर १-१ रत्ती की गोलिया वना ले । सुवर्ण वग डालते जावे । वग न डाले तो शुण्ठी चूर्ण डाले । वदरी प्रमाण की गोली वनावे । मात्रा—२-२ ·· उपयोग—उदर शूल नष्ट करती है ।

(११) वेदनान्तक रस—शुद्ध अहिफेन ३ माशा, खुरासानी अजवायन ६ माशा, रस सिन्दूर ६ माशा सवको एकत्र खरल मे डालकर भाग के रस मे मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलिया वनावे । मात्रा—१ गोली । उपयोग—सभी प्रकार की वेदनाओ और शूलो पर उपयोगी है ।

(१२) शूलहर रस—अजवायन १ तोला, अफीम २ रत्ती, भुनी हीग आधा तोला, ताम्र भस्म चौथाई तोला अर्क दुग्ध मे घोटकर १-१ रत्ती की गोली वनावे । मात्रा—१-२ गोली । उपयोग—वृक्क शूल, उदर शूल मे उपयोगी ।

(१३) शूल गजकेशरी वटी—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक ३-३ ग्राम, भुनी हीग ५ ग्राम, भुने हुए करज के वीज २५ ग्राम, भुना हुआ कुचला २५ ग्राम, टकण क्षार ५ ग्राम, अजवायन ५ ग्राम, पीपर ३ ग्राम, पीपरामूल ३ ग्राम, चव्य ३ ग्राम, काली मिर्च ३ ग्राम, शुण्ठी ३ ग्राम, हरड का वक्कुल ३ ग्राम, सज्जीखार ३ ग्राम, सैधव ३ ग्राम, यव क्षार ३ ग्राम, सचल नमक ३ ग्राम की विधिपूर्वक चणक प्रमाण वटी वनावे । मात्रा—१-२ वटी । उपयोग—हर प्रकार के उदर शूल पर योजित ।

(१४) हिंगुल कर्पूर कस्तूर्यादि वटी—घृत भृष्ट हिंगु ५ भाग, कर्पूर १ भाग, कस्तूरी १/८ भाग । सवको एकत्र घोटकर १-१ रत्ती की गोली वनावे । यदि गोली न वने तो खाली ० नम्वर के कैपसूल मे भर लेवे । मात्रा—१-२ वटी । उपयोग—कफजन्य पार्श्व शूल मे, हृदय शूल मे, आध्मान मे लाभकारी है ।

(१५) अपतन्त्रकारि वटी—घृत भृष्ट हिगु १० ग्राम, कर्पूर १० ग्राम, गाजा ५ ग्राम, खुरासानी अजवायन २० ग्राम, तगर २० ग्राम । सवका कपडछन चूर्ण कर खरल मे डालकर जटामासी के क्वाथ की ३ भावना देकर २-२ रत्ती की वटी वनावे । मात्रा—२ से ४ वटी । उपयोग—उदर शूल, आध्मान, शिर शूल तथा अन्य शूलो पर उपयोगी है ।

(१६) शूलारि रस—पारद, गन्धक की समभाग कज्जली, वच, खुरासानी अजवायन, अश्वगन्धा, पिप्पली मूल, अजवायन, अकीक भस्म, सफेद मिर्च, जीवन्ती समभाग को पोस्त के डोडे के क्वाथ मे घोटकर २-२ रत्ती की

—शेष पृष्ठ १०५ पर

—❖ शूल एवं शोथ का पारस्परिक सम्बन्ध ❖—

वैद्य अवधेश कुमार श्रीवास्तव आयुर्वेदाचार्य, सहायक सम्पादक–आयु० महा० सम्मे० पत्रिका
पजाबी बाग, मार्ग ६६, नई दिल्ली–२६

—★—



वैद्य श्रीवास्तव जी देदिप्यमान युवा वैद्य है। आयुर्वेद प्रचार एवं प्रसार हेतु आप अमूल्य सहयोग दे रहे हैं। भूतकाल में आप अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय-लखनऊ मे प्राध्यापक थे साथ-साथ धन्वन्तरि आयुर्वेद चिकित्सालय–लखनऊ मे प्रधान चिकित्सक थे। आयुर्वेद के पाक्षिक मुखपत्र आयु० सन्देश के चार वर्ष तक सहायक सम्पादक पद पर थे। आपने अ० भा० आयु० महासम्मेलन के हीरक जयन्ती ग्रन्थ का संकलन कार्य किया है। आप अ० भा० आयुर्वेद चिकित्सा प्रचारक सघ के प्रधान मन्त्री भी थे। वर्तमान मे आप आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका--नई दिल्ली के सहायक सम्पादक हे। इसके अतिरिक्त आप समय-२ पर नि० भा० आयु० विद्यापीठ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन उ प्र, भारतीय चिकित्सा परिषद उ प्र की परीक्षा मे परीक्षक एवं निरीक्षक रूप मे कार्य करते हैं। आपके लेख धन्वन्तरि, सुधानिधि, आयुर्वेद विकास, निरोगधाम आदि पत्रिकाओं के साधारण एव विशेषाको मे प्रकाशित होते हे। यहा आपने शूल एव शोथ पर ज्ञानवर्धक लेख दिया है। आप इस तरह बार-बार धन्वन्तरि की सहायता करेंगे मै आशावान हूं।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शोथ —

आयुर्वेद ग्रन्थो मे सूजन के लिये शोथ, शोफ और श्वयथु–इन तीन शब्दो का प्रयोग किया गया है। उत्सेध-उन्नतत्व (उभार) शोथ का प्रमुख लक्षण है। जब प्रदुष्ट वायु, प्रदुष्ट रक्त, पित्त और कफ को बाहर की शिराओ मे ले जाकर पुन उनसे अवरुद्ध होकर त्वचा और मास मे स्थान बनाता हे। इस प्रकार रक्त सहित तीनो दोषो मे होने वाले इस कठिन उठाव को शोथ कहते हैं।

रक्तपित्त कफान् वायुर्दुष्टो दुष्टान् वहि शिरा ।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मासस श्रयम् ।।
उत्सेध महत श ेथ तमाहुर्निचयादत ।।

आचार्य सुश्रुत ने दो प्रधान भेदो का वर्णन किया है–

(१) एक देशोत्थित (शरीर के किसी एक देश मे होने वाला) या व्रण शोथ (जिसमे व्रण होने की सभावना हो)।

(२) सर्वसर (जिसमे सारे शरीर मे फैल जाने की संभावना हो)।

आचार्य चरक के अनुसार शोथ के निम्न दो भेद है—

[१] निज–(शारीर दोष वात, पित्त, कफ से होने वाला)।
[२] आगन्तुज (आगन्तु बाह्य कारणो से होने वाला)

पारस्परिक सम्बन्ध विनिश्चय—

आयुर्वेद ग्रन्थो मे जब हम, उपरोक्त भाति शूल एव शोथ रोगो का अध्ययन करते है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि परवर्ती आचार्यो ने ही शूल रोग का प्रथक वर्णन किया है जबकि पूर्ववर्ती आचार्यो (जैसे चरक) ने शूल को स्वतन्त्र रोग न मानकर अन्य रोगो मे होने वाला लक्षण माना हे। वास्तव मे शूल कोई एक रोग नही है परन्तु जिन-२ रोगो मे शूल मारने के समान पीडा होती है उन सभी रोगो का यह वर्ग है। "शूल" शब्द पुल्लिङ्ग नपुसक लिङ्ग दोनो मे प्रयुक्त होता है।

शकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्रा हि वेदना ।
शूलासक्तस्य लक्ष्यन्ते तस्माच्छूलमिहोच्यते ।।
(सु उ अ ४२)

वृद्ध वाग्भट ने गुल्म को ही शूल नाम दिया हे—

यतश्च तस्मिन् शूलविद्ध इव व्यथते तीव्रवेदनार्दित कृच्छ्रोच्छ्वासस्तस्माच्छूलमित्युच्यते ।। —अ म नि अ ११

शूल रोग मे वातदोष की प्रधानता आवश्यक है और शोथ रोग । दूषित वायु रक्त पित्त और कफ को दूषित करता है । अर्थात् शोथ रोग बिना शूल के (वात दोष के) होना सभव नही है । परन्तु शूल रोग अन्य दोषो की सहायता के बिना केवल वात दोष से ही हो सकता है । चरक संहिता मे शोथ रोग के वर्णन मे अङ्कित है कि सभी शोथ त्रिदोषज होते है, परन्तु जिस शोथ मे जिस दोष के उत्पन्न होना कहा जाता है ।

सर्वस्त्रिदोषोऽधिका दोष लिंगे,
स्तत्सज्ञमभ्येति भिषग्जित च ।

उपरोक्त विवरण मे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि शरीर के किसी भी भाग मे शोथ रोग उत्पन्न हो जाये तो वहा शूल अवश्य होगा । परन्तु यदि किसी स्थान पर शूल हो रहा हो तो यह आवश्यक नही है कि वहा शोथ भी हो । अत यह भी निश्चित है कि इस पारस्परिक सम्बन्ध को देखते हुए शोथ रोग की चिकित्सा मे शूल (वात दोष) नष्ट करने वाले औषधि द्रव्यो का प्रयोग किया जाये । जैसे—दशमूल से मिश्रित एरण्ड तैल मे गोमूत्र डालकर अथवा गोमूत्र व त्रिफला डालकर पीने से शोफ-शूल नष्ट हो जाते है ।

विल्व, चित्रक, चव्य, अदरख, सोठ के क्वाथ व कल्क से बकरी के दूध से सिद्ध घृत शोफ मे लाभ करता है ।

अजवायन, शुद्ध हीग, सैन्धव, यवक्षार, सौर्वचल, हर्ड को समान मात्रा मे लेकर चूर्ण कर सुरामण्ड के साथ लेने से शूल शात होता है—

यवानी हिंगु सिन्धूत्थ क्षार सौर्वचलाभया ।
सुरामण्डेन पातव्या शूलगुल्म निवारणा ।।

उपरोक्त चिकित्सा योगो को देखने से भी यह स्पष्ट होता है कि शोथ रोग मे वात का प्रकोप अवश्य होता है। अथवा दोनो का समवाय सम्बन्ध निश्चित है ।

— विभिन्न शूलो मे आशुकारी अनुभव सिद्ध प्रयोग — — पृष्ठ ६८ का शेषाश —

नीबू रस, यवक्षार या मूलीक्षार मिलावें । १५-१५ मिनट के अन्तर से रोगी को ३-४ बार तक पिलावे । खुलकर पेशाब आने के साथ पीडा भी दूर हो जायेगी ।

अर्धावभेदक—सूर्योदय से २ घण्टे पूर्व कपर्द भस्म १ ग्राम की मात्रा मावे के पेडे मे रखकर रोगी को खिलावे । २-३ दिन के प्रयोग मे अर्धावभेदक निर्मूल हो जावेगा । शुद्ध गोघृत का नस्य भी साथ मे दिया जाता है ।

कृमिजन्य शूल—कृमिजन्य शूल के साथ कृमि भी नष्ट करने आवश्यक है । इसके लिए जयपुर के अनुसधान सस्थान का निम्न योग सुपरीक्षित तथा पूर्ण सफल सिद्ध हुआ है । छोटी हरड चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, कम्पिल्लक चूर्ण तीनो का समभाग मिश्रण बनाकर १-१ ग्राम प्रति मात्रा दिन मे ३ बार ७ से १० दिन तक रोजाना दी जावे । इसके पश्चात् एक सप्ताह का विराम दें । पुन एक कोर्स सेवन करावे । सूत्र व गण्डूपद कृमि, आम, जीर्ण मल सभी नष्ट होगे । पाचन-सस्थान व यकृत् की क्रिया मे पूर्ण सुधार होगा ।

प्रसव मे कष्ट—गावो मे हमारे चिकित्सक ही प्रसव भी कराते है । कई बार किसी-किसी महिला को प्रसव के पूर्व भारी वेदना होती है और प्रसव नही होता । आधुनिक चिकित्सक इस कार्य हेतु "पिच्युइट्री एक्सट्रेक्ट" का उपयोग करते है, पर इसका गावो मे मिलना बडा कठिन है । शुद्ध टकण ३ से ५ ग्राम की मात्रा मे निवाये पानी से देने पर १ या २ मात्रा मे ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है, किन्तु इस बात की सावधानी रखी जावे कि अपत्यपथ प्रसव योग्य है या नही । सीजेरियन प्रसव के मामले मे यह प्रयोग नही किया जाना चाहिए ।

कष्टार्तव—लघु कण्टकारी के बीजो का चूर्ण ५ ग्राम, रज प्रवर्तिनी वटी ४ गोली का मिश्रण प्रात एव रात्रि रोज दो बार दे । अनुपान के रूप मे अजवायन, तिल, मेथी, गुड का क्वाथ पिलावे । मासिक-धर्म की सम्भावित तिथि से २ दिन पूर्व से शुरू करे । ३-४ मासिक-चक्र तक हर माह एक सप्ताह तक प्रयोग करावे । गर्भाशय शोथ, पेडू का भारीपन, जमे हुए पुराने खून के छिछडे तथा नसो का दर्द सभी समाप्त हो जावेंगे ।

* शूल-नाशक "एस्प्रिन"-खतरनाक *

डॉ० रामचन्द्र शाकल्य, आयुर्वेद चिकित्साधिकारी--शा० आ० औष०, रूपादेह (सीवनी-मालवा) होशंगाबाद



डॉ० डेवेन्पोर्ट (U S A) ने एक परीक्षण से यह प्रमाणित किया है कि एस्प्रिन से अन्दर की चमडी के ऊपर का चिकना रक्षणात्मक आवरण खत्म हो जाता है, जिससे लवणाम्ल भी छोटी मांसपेशियों के ऊपर असर पडता है और छाले हो जाते हैं।

पेनसिलवेनिया विश्वविद्यालय के डॉ० हावर्ड एस० रान्सेल और वाल्टर वी० शेले का कथन है कि बाल झडना एस्प्रिन के अधिक उपयोग का फल है। उनका कहना है कि मरीज के मूत्र मे नीले चमकीले रंग की सतह दिखाई देती है, जिसे कि आसानी से देखा जा सकता है। यदि एस्प्रिन का उपयोग बन्द कर दिया जाय या उसके प्रभाव को किसी भी अन्य दवा के द्वारा समाप्त कर दिया जावे तो यह नीली सतह दीखना बन्द हो जाती है और मूत्र का रंग सामान्य हो जाता है। उन्होने बताया कि ७५% बाल झडने की शिकायत उन्ही लोगो को रहती है जो एस्प्रिन या उससे सम्बन्धित दवाओ का अधिक प्रयोग करते हैं।

एस्प्रिन से पेट मे क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका परीक्षण गेस्ट्रोस्कोप से किया गया है (गेस्ट्रोस्कोप एक लम्बी नली होती है, पेट मे प्रकाश डालती है और उसमे रहे 'लेन्स' से परीक्षक बाहर से अन्दर की सभी क्रियाए देख सकता है)। एस्प्रिन देने के बाद इस गेस्ट्रोस्कोप से देखा गया कि पेट की दीवारे लाल हो जाती हैं क्योकि वहा रक्त का बहाव बढता है और "छाला" जैसी स्थिति निर्माण होती है।

एस्प्रिन के प्रभाव को देखने हेतु प्रथम परीक्षण मे १५ रोगियो को चमडी मे छेद करके रक्तस्राव कराया गया। प्रथम रक्तस्राव एस्प्रिन लेने से पूर्व किया गया और दूसरा एस्प्रिन लेने के बाद। दूसरी बार के रक्तस्राव मे पहले की अपेक्षा चार गुना रक्त बहा। इसी प्रकार टट्टी की जाच भी कुछ व्यक्तियों की दो बार की गई, पहिले और बाद मे रोज ८ टिकिया लेने के बाद टट्टी मे ७ गुना ज्यादा रक्त पाया गया।

अस्पतालो मे जितने मरीज टट्टी मे रक्तस्राव के आते है, उनमे से ५२ प्रतिशत मरीजो ने रक्तस्राव शुरू होने के पिछले ३ दिनो मे कभी न कभी एस्प्रिन ली होती है।

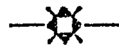
एस्प्रिन से टट्टी मे खून आने लगता है यह तो प्रमाणित परीक्षण है। इसके अतिरिक्त भी एस्प्रिन की क्रियाए खतरनाक होती है, जो हम देख चुके है। अत खासतौर से पेट की कोई भी बीमारी हो, तब एस्प्रिन बिलकुल नही लेनी चाहिए।

कलकत्ता के नेशनल मेडिकल कालेज के प्रोफेसर एव ख्यातिनाम चिकित्सक श्री डॉ० एस० आर० दास गुप्ता के अनुसार आधुनिक दवाइया अभी आरोपो के कटघरे मे हैं। उन्होने कहा है—ये दवाइया जो मुह मे लेने की होती है, वे सभी पेट और आतो के ऊपर कुप्रभाव करती है। पेट या आतो मे छाले होना, सूजन होना, आतो की दीवाल कमजोर होना इत्यादि कई तकलीफे होती है। एस्प्रिन की गोलियों से पेट मे से रक्तस्राव होता है।

हावर्ड विश्वविद्यालय के दो शरीर क्रिया वैज्ञानिको ने एस्प्रिन और इण्डोमिथासिन से मादा मूसको मे डिम्बक्षरण को रोकने मे सफलता पाई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि एस्प्रिन या इण्डोमिथासिन की अधिक मात्राओ को सेवन करने वाली औरतो को बडी कठिनाई मे गर्भ ठहर पाया। इससे यह सिद्ध होता है कि इनका अधिक प्रयोग करने वाली महिलाए सतान पैदा नही कर सकती है तथा दूसरी बात यह सिद्ध होती है कि इसके अधिक सेवन करने से गर्भ-निरोध मे सहायता हो सकती है। फिर भी निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता, क्योकि इनमे से एक शोधकर्त्ता वैज्ञानिक का कथन है कि गर्भ-निरोध के लिए प्रतिदिन एस्प्रिन की ८ से १६ टिकियो को खाने से बडे गम्भीर विपरीत प्रभाव हो सकते है। ●●

—❖ ज्योतिष शास्त्र और शूल रोग ❖—

ज्योतिर्विद श्री सुरेश ठाकुर एम० ए० (संस्कृत),
श्री राम ज्योतिर्विज्ञान केन्द्र, देवगढ (देवास) म प्र



ज्योतिष शास्त्र मे शूल रोगो पर भी विस्तार से विवेचन किया गया है। कुछ शूल रोगो का वर्णन प्रस्तुत है—

यदि जन्म कुण्डली के चौथे भाव मे राहू हो और लग्नेश पाप ग्रहो से देखा जाता हो तथा बलहीन अर्थात लग्नेश निर्बल हो तो इस जातक को शूल रोग होता है। इससे जातक हृदय मे पीडा अनुभव करता है तथा हृदय मे शूल चुभने जैसी व्यथा होती है। इसी प्रकार ओर भी यदि—

लग्नेश शत्रु के घर मे हो या नीच राशि मे हो मगल चौथे भवन मे हो तथा शनि पाप ग्रह द्वारा देखा जाता हो तो शूल रोग योग होता है।

अष्टमेश (अष्टम भाव का स्वामी) निर्बल हो, लग्न पर पाप ग्रहो की दृष्टि हो, आठवे भाव मे शनि हो या आठवे भाव पर शनि की दृष्टि हो तो भी 'शूल रोग योग' होता है।

यदि चन्द्रमा मगल के साथ छठे भाव मे हो तो 'शूल रोग योग' होता है।

सूर्य, चन्द्र और मगल ये तीनो यदि छठे भाव मे हो तो भी शूल रोग नामक योग होता है। इन सभी योगो के होने पर जातक के हृदय मे शूल चुभने जैसी पीडा होती है।

षष्ठम भाव मे धनु राशि हो और उसमे यदि शनि हो तो जघा-शूल व मज्जा तन्तु सबन्धि रोग होता है।

षष्ठम भाव मे सिह राशि हो और उसमे बुध हो तो रीढ की हड्डी मे दर्द तथा हृत्कम्प रोग होता है।

षष्ठम भाव मे कर्क राशि हो और उसमे यदि शनि हो तो 'उदर-शूल' होने की सभावना होती है।

यदि एकादशेश तृतीय भाव मे हो तो जातक को शूल रोग होता है।

यदि चन्द्रमा सिह राशि पर स्थित हो और वह पाप ग्रह मे युक्त अथवा दृष्ट हो तो भी जातक को शूल रोग होता है।

यदि शनि मङ्गल षष्ठम या द्वादश भवन मे हो तो भी शूल रोग होता है।

यदि सिह राशि का शुक्र केन्द्र अथवा त्रिकोण मे हो तथा बृहस्पति तृतीय भाव मे हो तब भी शूल रोग होता है।

यदि चन्द्रमा लग्न मे तथा शनि सप्तम मे हो तो जातक को जलोदर, वायुशूल या मन्दाग्नि आदि कोई उदर रोग होता है।

यदि शनि अथवा गुरु षष्ठेश होकर चतुर्थ भाव मे हो, साथ-साथ पाप ग्रह से देखा जाता हो तब 'हृत्कम्प' रोग होता है।

यदि चतुर्थ भाव मे राहू हो तथा लग्नेश निर्बल हो एव पाप ग्रह से देखा जाता हो, अथवा पाप ग्रह के साथ बैठा हो तो 'हृच्छूल' होता है।

— पृष्ठ ९६ का शेषांश —

(४) चिकित्सा कर्म मे शूल एव शोथ का सम्बन्ध— चिकित्सा कर्म मे शूल की शांति हेतु शोथ शामक चिकित्सा को प्राथमिकता दी जाती है उदाहरण के रूप मे उण्डुक शूल होने पर शूलशामक चिकित्सा का निषेध है अपितु शोथ शामक एव उपसर्ग नाशन चिकित्सा का विधान है। इस प्रकार भी शूल एव शोथ का परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है। ❖



शूल-शामक आधुनिक आयुर्वेदिक पेटेण्ट योग

शूल-रोग और आयुर्वेदिक सूचीवेध

डॉ० राजेश्वर कुमार शर्मा, वैद्य विशारद, आयुर्वेद रत्न,
त्रिवेणी क्लीनिक, मालीचौका रोड, नरसिंहपुर (म प्र)



(१) शिर शूल—नवीन शिर शूल पर शूलारिन व निर्गुण्डी [दोनों बुन्देलखण्ड फार्मेसी] के सूचीवेध तथा पुराने पर केवल निर्गुण्डी का सूचीवेध प्रतिदिन सुबह प्रयोग करने से आशातीत लाभ होता है। जीर्ण रोगो पर १५ से २० सूचीवेध लगाने से पूर्ण लाभ हो जाता है।

(२) हाथ-पैरो का शूल जिनमे चमक जैसी होती है उनमे वात-विनाशक, पैरासिमन [बुन्देल], लहसुन [बुन्देल व सिद्धि] के सूचीवेध परम उपयोगी पाये गये हैं।

(३) साधारण उदर रोगो मे अर्थात् अपच आदि के उदर शूल मे सिद्धि का उदरौन बेहद उत्तम कार्य करता है। सिद्धि व बुन्देल का ही अदरख व अजवायन अलग-अलग या मिलाकर भी दिया जाता है। दस्तो के कारण हुए उदर शूल पर सिद्धि का वेल फौरन असरदायक है। बुन्देल का प्रवाल पचामृत अपच के उदरशूल मे अच्छा कार्य करता है।

(४) गर्भाशय शूल—कैसा भी गर्भाशय शूल क्यो न हो, उसकी तात्कालिक चिकित्सा अशोक + अदरख का सूचीवेध ही है।

(५) हृदय शूल—अर्जुन [सिद्धि, बुन्देल] तथा जवाहर-मोहरा [बुन्देल] रामबाण सिद्ध हुए है। डूबते हुए हृदय को एकदम उबार लेते हैं। बिजलीके शॉर्ट के कारण हुई हृदय की अनियमितता को जवाहर-मोहरा नियमित करता है।

(६) गुर्दे का शूल—गोखरू [दोनों] के प्रयोग से यदि पथरी अथवा गर्मी के कारण पेशाब के लाल रग के साथ ही भयकर वेदना होती है तो शान्त हो जाती है। पाषाण-भेद [बुन्देल] के प्रयोग मे पथरी मे उत्पन्न शूल व अकारण शूल शान्त होता है।

(७) गृध्रसी—महावातविध्वस रस [सिद्धि] का एक सूचीवेध लगाने से१०से १५ मिनटो मे लाभ होता है।

(८) योनिशूल—इन्द्रायण [दोनो] व सूर्यमुखी [बुन्देल] के सूचीवेध शीघ्रातिशीघ्र लाभकारी है। दोनो को आधा-आधा मिलाकर भी दिया गया तो शीघ्र लाभ मिला।

(९) गुल्म व प्लीहा शूल—इन पर पचकोल [बुन्देल] सूचीवेध जब-जब दिया गया है, तब-तब अच्छा लाभ हुआ है।

(१०) निमोनियाजन्य पसलीशूल—स्पे० निमोनिया तथा मृगश्रृङ्ग भस्म [बुन्देल] इस रोग पर तुरन्त ही लाभकारी है।

(११) बिच्छूदश जनित शूल—इस पर सेंज्ञाकेन [बुन्देल] तथा शूलान्तक का प्रयोग करना चाहिए।

(१२) सर्वांग शूल—शरीर के किसी भी भाग मे उत्पन्न शूल का प्राथमिक उपचार सफलतापूर्वक तम्बाकू व शूलारिन [बुन्देल] तथा शूलान्तक [मार्तण्ड] के सूचीवेधो से किया गया व बहुत ही कारगर साबित हुआ है।

केवल लक्षण चिकित्सा के सदर्भ मे उपर्युक्त चिकित्सा दी गई है। शूल का हेतु जानकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।



[पृष्ठ १०० का शेषांश]

वटी बनावे। मात्रा—२ वटी। उपयोग—विविध प्रकार के शूल तथा मानसिक उत्तेजना शामक है।

(१६) त्रिश्वेत रसायन—गोदन्ती भस्म (गोरख-मुण्डी मे), श्रृङ्ग भस्म (मृगश्रृङ्ग) भस्म अर्क दुग्ध मे की हुई तथा पुष्पनुसार (नौसादर के फूल डमरू यन्त्र मे उडाये हुए) समभाग खरल कर चूर्ण रूप मे रखे या ०० नम्बर के कैपसूलो मे भर कर रखें। मात्रा—१ कैपसूल या १० ग्राम चूर्ण। उपयोग—शूलहर रसायन है।

❀ शूल के संदर्भ में शिरःशूल ❀

★ वैद्य (कु०) चन्द्रकला आर० पडित एम० डी० (आयु०), लैक्चरर–काय चिकित्सा विभाग
★ वैद्य हरिभाई के० त्रिवेदी, रीडर एव विभागाध्यक्ष–काय चिकित्सा विभाग
★ वैद्य वी० डी० नन्दुरवारकर एच० पी० ए०, आचार्य एव मार्गदर्शक
सरकारी आयुर्वेद महाविद्यालय, सरदार बाग, जूनागढ (गुजरात)

वैद्य श्री नन्दुरवारकर जी महान विद्वान वैद्य है। आप अनुसन्धानपूर्वक चिकित्सा करते हैं। आप निरन्तर ही संशोधनात्मक दृष्टि रखते हैं। आपने त्वक् रोगो मे महत्वपूर्ण संशोधन किया है। उस महाकार्य मे आपको आशातीत सफलता मिली है। आप चिन्तन किया करते है। मैं आपको नजदीक से जानता हूँ। पाच वर्षों तक अखडानन्द आयुर्वेद कालेज मे आपने मुझे आयुर्वेद की शिक्षा दी है। वर्तमान में आप सरकारी आयुर्वेद कालेज जूनागढ (गुजरात) के प्राचार्य हैं। मैं परमादरणीय वैद्य श्री नन्दुरवारकर जी को विज्ञप्ति करता हूँ कि आप 'धन्वन्तरि' द्वारा देश के वैद्य समाज को मार्गदर्शन दें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शूलति रुजति पीडयति प्रवृद्धो वायु एव पृष्ठ पार्श्व त्रिक वस्ति देशम् रवि शूलम्।

शूल रुजायाम 'इगुवधेति क'।

शकु स्फोटनवत् तस्य यस्मान् तीव्राहि वेदना।
शूलात्तस्य लक्ष्यन्ते 'तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥

वात प्रकोप मे शूल की उत्पत्ति के वारे मे आचार्य गणनाथ सेन का मन्तव्य देखे तो—

सज्ञावहाना नाडीना प्रतानोद्वेजनोद्भवा।
सर्वेऽपि शूलास्तेनाह शूलानामनिलो प्रभु ॥
आघात कार्य वैषम्य दौर्वल्य शूलभूमय. ॥

—सि० नि०

सज्ञावह नाडी (सेन्सरी पाथवे) मे उत्तेजना की अनुभूति से शूल की उत्पत्ति होती है। यह शूल स्रोतोरोध, उदावर्त, व्रणशोष, क्षत, आघात से विषम धातुओ मे एव दौर्वल्यता मे होता है।

शूल शब्द से उदरशूल का ग्रहण किया जाता है। भिन्न-भिन्न स्थानो मे होने वाले शूल के आगे स्थानो का नामकरण करना आवश्यक है, यथा—कटिशूल, सधिशूल, शिर शूल इत्यादि।

चरक, सुश्रुत, अष्टाङ्ग हृदय मे शिरोरोग नामक प्रकरण है। 'शिरोरोग शव्देन शिरोगत शूलरुपा रुजाऽभिधीयते।' एव 'सर्वेषु शूलेषु प्रायेण पवनम्।' शिरमे वातविकृतिवश–वेदना, रुजा, शूल की अभिव्यक्ति को शिर शूल या शिरोरोग कहा जाता हे। शिर शूल मे प्रत्यातम लक्षण शूल हे, फिर भी हम निम्नोक्त वर्गीकरण कर सकते है। यथा—

दोषानुसार	—	त्रिदोष
कालानुसार	—	सूर्यावर्त
विशिष्ट द्रव्यानुसार	—	कृमिज, रक्तज
क्षयानुसार	—	क्षयज शिर शूल
देशानुसार	—	शखक, अर्धावभेदक

सम्प्राप्ति घटक—

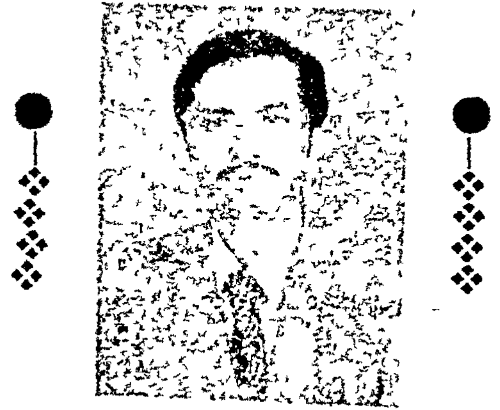
दोष	—	त्रिदोष
दूष्य	—	रस-रक्त
स्रोतस	—	शिरोगत सिरा
व्यक्ति	—	शिर
उद्भव स्थान	—	पक्वाशय
अग्नि	—	जठराग्नि एव धात्वग्नि

—शेषाश पृष्ठ १०९ पर

शूल शामक आयुर्वेदिक पेटेंट योग

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एम ए एम.
विशेष सम्पादक—धन्वन्तरि शूल निदान चिकित्सा एवं पुरुष रोग चिकित्सा

—००—



आयुर्वेदिक सूचीवेध—

वर्तमान मे भारतीय आयुर्वेदिक कम्पनिया द्वारा शुद्ध आयुर्वेदिक औषधा मे से सत्व एव क्षार निर्मित कर उनका सूचिवेध बनाते है। रस, भस्मो तथा खनिज द्रव्यो मे भी सूचिवेध तैयार होते है, जो शीघ्र फलप्रद पाये गये है। उत्तर प्रदेश की सिद्धि फार्मेसी वर्षो से ऐसे आयुर्वेदिक सूचीवेध निर्माण कर आयुर्वेद के प्रचार मे अपना महत्वपूर्ण सहयोग दे रही है। शूलशामक कुछ सूचीवेध जो सिद्धि द्वारा तैयार होते है, उनमे से महावातविध्वस रस सूचिवेध अत्यधिक गुणकारी पाया गया है। महावातविध्वस रस आयुर्वेद का अति पुराना रस योग है। शास्त्रीय योग है। इस शास्त्रीय महावातविध्वस रस का सत्व व क्षार निकाल कर सिद्धि फार्मेसी द्वारा सूचीवेध तैयार किया जाता है। महावातविध्वस सूचीवेध मे निम्नोक्त रोगो मे लाभप्रद परिणाम देखा गया है—

१ आमवात, २ सन्धिवात, ३ वातकण्टक, ४ पार्श्व शूल ५ उर शूल, ६ पेशीशूल, ७ अर्धावभेदक शिर शूल ८ जानुसन्धि वेदना, ९ गृध्रसी वात, १० आक्षेपक तथा ११ वात ज्वर मे आशुकारी है।

सामान्यत —इन रोगो मे महावातविध्वस सूचीवेध देने से दो घण्टे मे शूल का शमन होने लगता है। सम्पूर्णत शूलजन्य रोगो के नाश हेतु कुल मिलाकर दस से बारह सूचीवेध देना जरुरी है। सूचीवेध से प्रतिक्रिया नही होती अत महावातविध्वन्स सूचीवेध निरापद योग है। इसी तरह सिद्धि द्वारा ही अदरख से सूचीवेध तैयार किया गया है। वर्तमान मे हम देखते है कि अधिकाश व्यक्ति अजीर्ण, वायुगोला, आध्मान जन्य शूल एव अपचन से पीडित मिलते है। आर्द्रक आयुर्वेद की दीपन एव पाचन वनस्पति औषधि है। भोजन तैयार करने मे आर्द्रक का उपयोग होता है, भोजन पाचन हेतु—भोजन के बाद आर्द्रक लिया जाता है। पेट मे अपचन से शूल होगा तो सुण्ठी या अदरख लेने का व्यवहार है। सिद्धि द्वारा निर्मित अदरख सूचीवेध मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण जन्य उदरशूल-वायुगोला तथा आमाशय मे अम्लोत्पत्ति, खट्टी डकारें इत्यादि रोगो मे अदरख सूचीवेध शीघ्रफलप्रद पाया गया है। सिद्धि द्वारा लहसुन का क्षार १० मि.ग्रा मात्रा मे है। लहसुन सूचीवेध से कष्टपूर्वक मासिकस्राव मे जो शूल होता है उसे मासिक शूल भी कहते है—यह शात होकर सुखपूर्वक नियमित मासिकस्राव होने लगता है। समस्त प्रकार के वात रोगो मे लहसुन परमोपयोगी है, अत अर्दित गठिया, सन्धिवात, आमवात आदि रोगो मे लहसुन सूचीवेध देने से आशातीत परिणाम मिलता है।

प्रताप फार्मा के कुछ शूलशामक सूचीवेध बनते हैं जो शीघ्र फलप्रद है—

(१) प्रताप अर्जुना मे अर्जुन छाल का क्षार होता है। प्रति २ मि लि. मे ६ मि ग्रा क्षार है। प्रताप अर्जुना से हृदयशूल तुरन्त ही शात हो जाता है। इससे हृदयावरण के रोगो का शमन होता है, हृदय के लिये पौष्टिक है। हिक्का मे देने से तुरन्त लाभ हो जाता है। निरापद होने से प्रतिक्रिया नही होती। प्रताप फार्मा द्वारा ही कुटजत्वक मे से कुटजा सूचीवेध तैयार होता है। प्रवाहिका, अतिसार, आमशूल इत्यादि रोगो मे हम कुटजत्वक चूर्ण देते हैं, मगर चूर्ण तुरन्त लाभ नही करेगा, इनके स्थान पर प्रताप का कुटजा सूचीवेध देने से

प्रवाहिका तथा तज्जन्य शूल मे तुरन्त ही लाभ मिलेगा। साथ-साथ कुटजा मे उदर एव मलाशय द्वार की वेदना

मे लाभप्रद हे।

प्रताप फार्मा द्वारा ही शूलहर सूचीवेध तैयार हो रहा है। शूलहर मे खुरासानी अजवायन का क्षार होता है। शूलहर सूचीवेध से बालको मे होता कृमिजन्य उदर शूल मिट जाता हे। इस से कृमि का नाश होकर शूल का शमन होता है। इसके अलावा पेट का शूल, आध्मान आदि मे भी उपयोगी है।

शिशु उदर शूल पर कॉलिकार्मिन ड्राप्स—

शिशु के जन्म होने के पश्चात माता का दूध देने से कभी-कभी पेट मे मरोड होती हे, तो कभी-कभी बाहर का दूध देने से अपचन हो जाताहे। ऋतुपरिवर्तन के समय भी उनको छर्दि तथा अतिसार हो जाना है, और पेट मे वेदना होती है, साथ-साथ वह चिल्लाता है, हाथ-पैर उछालता हे। नीद नही आती तब चिकित्सक उनको नीद की गोलिया और सूचीवेध देता है। शिशु गहरी नीद मे सो जायेगा। कुछ घण्टे बाद औषधि का असर समाप्त हो जायेगा-तब पुन रोने लगता हे। इसी अवस्था मे हम आयुर्वेदज्ञ उनके प्रति सात्वना देकर निदान कर रोगनाशक दवा देंगे तो शिशु को आराम मिलेगा। आयुर्वेद मे तो चूर्ण, भस्म, गोलिया, काढा जैसी दवा हैं, जो कटु, तिक्त, कषाय रसो से युक्त होने से बालक को देने से उल्टी कर दवा को बाहर निकाल देगा और जोर से चिल्लाने लगेगा। तब हम परेशान हो जाते हे। मगर वर्तमान समय मे आयुर्वेदिक फार्मेसी वालो ने शिशु के लिए कुछ स्वादिष्ट मधुर पेयो का निर्माण किया है जो देने से बालक को कोई परेशानी नही होती। शिशु के उदर सम्बन्धी रोगो मे कालीकार्मिन बूद शीघ्र फलदायी है। मैं अपने चिकित्सा व्यवसाय मे वर्षो से इस योग का प्रयोग शिशु शूल पर सफलता से कर रहा हूँ। कालीकार्मिन ड्राप्स मे निम्नोक्त औषधि डाले जाते हैं। प्रति १ मि लि —(१) सौर्वचल २ मि ग्रा, (२) हीग १ मि ग्रा, (३) सैंधव १ मि ग्रा, (४) निम्ब सत्व १ मि ग्रा, (५) अतिविषा ५० मि ग्रा, (६) खुरासानी अजवायन ०७५ मि ग्रा, (७) एला ३ मि.ग्रा, (८) शतपुष्पा ५ मि ग्रा, (९) वचा १ मि ग्रा, (१०) पूतिकरज २ मि ग्रा और (११) इन्द्रयव—सम्मिलित है।

कालीकार्मिन सीरपमे अधिक मात्रा मे उपरोक्त द्रव्य सम्मिलित है। शिशु उदरशूल मे कालीकार्मिन ड्राप्स तथा बडी उम्र वालो के उदरशूल मे सीरप दिया जाता हे।

आप देखेंगे तो उपरोक्त औषधि योग मे कुछ द्रव्य वात नाशक कुछ पित्त नाशक तो कुछ कफनाशक हैं। साथ-२ वायुगोला नाशक, शोथ नाशक एव कृमि नाशक द्रव्यो का भी प्रयोग किया गया है। इस बूद से शिशु का उदरशूल, पक्वाशयगत उदरशूल, मूत्रदाह, सोनम का शूल, आध्मान आटोप, विबन्ध इत्यादि कुछ मिनटो मे शात हो जाता है। इस ड्राप्स मे नीद भी आ जाती है। वृक्कशूल मे तो रामबाण है। इससे अफरा दूर हो जाता हे। कृमि का नाश होता है। मैंने देखा हे कि बच्चे की नाभि वृद्धि मे नाभि फूल जाती हे, बालक रोता रहता है, तब नाभि पर चादी का सिक्का बाधे और कालीकार्मिन ड्राप्स प्रतिदिन तीन बार देना शुरू करे। कुछ दिनो मे नाभि वृद्धि स्वय ठीक हो जाती हे। कष्टपूर्वक मूत्र प्रवृत्ति होती है, तब उस अवस्था मे भी यह योग सफलतापूर्वक कार्य करता हे। इस योग से बालक का विबन्ध नष्ट होता हे। वायु शात हो जाता है। परिणामत दूध इत्यादि पेय पदार्थ का पाचन होता है। बालक सम्पूर्ण स्वस्थ हो जाता है, इसके साथ लिवेक्स ड्राप्स देने से यकृत एव प्लीहा की कार्यशक्ति बढकर बालक की व्याधि क्षमता बढेगी, रोग प्रतिकार शक्ति आजायेगी। यह दोनो योग वान मार्क द्वारा तैयार किये गये है।

गोली—

वान मार्क द्वारा ही सन्धिवात, आमवात, वातकटक कटिशूल इत्यादि चिरकाल तक रहने वाली पीडायुक्त व्याधियो के शमन हेतु फलप्रद योग का निर्माण किया हे, उनका नाम हे—आर-पायरीन गोली। इस योग मे निम्नोक्त आयुर्वेदिक औषधि द्रव्य डाले जाते है—प्रति गोली मे १ असगन्ध ४० मि ग्रा, २ महायोगराज गुग्गुल ८० मि ग्राम, ३ शङ्खभस्म ३० मि ग्रा, ४ महारास्नादि घनसत्व ३० मि ग्रा और ५ त्र्योदशाग गुग्गुल ४० मि ग्रा इस तरह एक गोली २३० मि ग्रा की है। आर-पायरिन गोली मे वातनाशक, वेदनाशामक एव शूलहर

औषधि को सम्मिलित किया है। आर-पायरिन मे कटिशूल, विश्वाची अपबाहुक, अस्थिगत वात, वातनाडी शूल, गृध्रसी, कम्पवात, वातरक्त, पेशीगत एव स्नायुशूल, पार्श्व शूल इत्यादि रोगो मे देने से आशातीत परिणाम मिलता है। वातव्याधि चिरकाल तक होने वाला कष्टसाध्य रोग है, अत उपरोक्त रोगो मे आर-पायरिन गोली ३-४ मास तक देनी जरूरी है। दो गोली ३ बार जल से दें।

वान मार्क द्वारा एक और शीघ्र फलप्रद योग है। अश्मरीजन्य शूल, मूत्रकृच्छ, वृक्काश्मरी आदि मूत्रवह स्रोतस के कष्टसाध्य रोगो मे केलक्रयुरोसीन केप-एव सीरप तथा यूरेस्मीनोल गोली सयुक्त देने मे उपरोक्त शूलजन्य रोगो मे कुछ दिनो मे आराम मिलेगा।

कष्टार्तव—इसी अवस्था मे -मे वासु फार्मास्युटिकल्स प्रा लि वाजवा (वडौदा) गुजरात द्वारा निर्मित शुद्ध आयुर्वेदिक केपसूल अलब्रोमा (Cap Albroma) आशातीत फायदा देती है। प्रति केप ३५० मि ग्रा की है, और अलब्रोमा केप मे निम्नोक्त औषधि द्रव्य डाले जाते है—१ हरड ३० मि ग्रा, २ मुस्सबर-(कुमारीघन) १२० मि ग्रा, ३ हिराबोल १०० मि ग्रा, ४ उलटकम्बल ४० मि ग्रा, ५ हरमल ३० मि ग्रा, ६ जटामासी १५ मि ग्रा, ७ मजीठ-मजिष्ठा १० मि ग्रा और ८ खुरासानी अजवाइन ५ मि ग्रा। इस तरह हम देखेगे तो इस केप मे वातनाशक, शूलशामक, रजोरोध निवारक द्रव्य है जिससे प्रतिमाह नियमित प्राकृतिक ढग से मासिक स्राव होने लगता है और कटिशूल एव उदरशूल का शमन हो जाता है। इस केपसूल के साथ इसी कम्पनी की Cap Dazzic और वान कम्पनी का "वीरोन ९९" सीरप देने से रक्ताल्पता दूर होती है, दौर्बल्यता दूर होती है।



[पृष्ठ १०६ का शेषाश]

शूल के सन्दर्भ मे शिर शूल

आचार्य चरक ने वातज शिरोरोग मे बताया है कि—

शिरोगता सिरा वृद्धो वायुराविश्य कुप्यति ।
तत शूल महत्तस्य वातात् समुपजायते ॥

—च० सू० १७

अर्थात् इनको सामान्य सम्प्राप्ति मानकर शिर मे स्थित सिरा मे रक्तप्रभाव के साथ वायु (प्रकुपित वायु) प्रवेश कर शूल उत्पन्न करती है। आधुनिक मतानुसार भी ब्रण्टन आफ वेसल्स मे विकृतिवश शिर शूल उत्पन्न होने का वर्णन है। वायु की प्रधानता होने पर भी शिरो रोग मे तीनो दोष प्रकोप अवश्यम्भावि होते है।

सर्वे एव शिरोरोग सन्निपात समुत्थिते ।

—मा० नि०

शूल की अभिव्यक्ति स्थानानुसार वाग्भट ने दो भेदो मे बतायी है, यथा—

(१) सारे शिर मे पीडा
(२) आधे शिर मे पीडा

आयुर्वेद शास्त्र मे शूल का भिन्न-भिन्न स्थान शिर मे ही बताया गया है—

वातिक शिर शूल—

अर्धावभेदक—मन्या, भृकुटि, शङ्ख प्रदेश, कर्ण, नेत्र, ललाट मे आधे भाग मे।

अनन्तवात—मन्या, पृष्ठ, घाटा (ग्रीवा का पिछला भाग), प्रारम्भ मे आक्षेप सहित।

नस्तकर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रविद् ।
द्वार हि शिरसो नासा तेन नई व्याध हन्तिनान् ॥

शिरोरोग की सामान्य चिकित्सा मे नस्यकर्म का उल्लेख है। इसमे रोगानुसार स्नेहन, शोधन, शमन एवं बृहण नस्य का प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा वातिक शिर शूल, सूर्यावर्त, क्षयज शिर शूल मे बृहण औषध एव आहार विधान भी शास्त्र मे है। इसके अलावा दोषानुसार शमन औषध प्रयोग भी हितकर है।

अन्त मे—

हृदये मूर्ध्नि वस्तौ च नृणा प्राणा प्रतिष्ठिता ।
तस्यात्तेषा सदा यत्न कुर्वीत परिपालने ॥

—चरक

卐

शूल के प्रकार से रोग निदान

वैद्य बलदेवप्रसाद एच० पनारा आयुर्वेद विशारद, राज्यपत्रित बीमा योजना तबीबी अधिकारी वर्ग—२
ई एस आई एस दवाखाना न० १८, क्वार्टर बी—१, एवरेस्ट सिनेमा रोड,
मनमोहन सोसायटी के पास, सरसपुर (अहमदाबाद) गुजरात





वर्तमान समय मे अधिकाश व्यक्तियो मे शिर शूल व्याधि पाई जाती है। प्रत्येक के घर मे शिर शूल शामक विविध प्रकार की गोलिया देखने को मिलती है। यहा लेखक महोदय ने शिर शूल के विविध प्रकार का आधुनिक एव आयुर्वेदीय दृष्ट्या सुन्दर विवेचन किया है। वैद्य श्री पनारा जी गुजरात के मान्य लेखक है। अनेको मासिक पत्रिकाओ, दैनिक पत्रो आदि मे आप निरन्तर आयुर्वेद विषय पर वर्षो से लिख रहे है। आप धार्मिक एव ज्योतिष के विषयो पर तत्सम्बन्वित मासिको मे भी लेख लिखते है। आपने आज तक अनेक लघुग्रन्थ लिखे है। आप निदान चिकित्सा यज्ञो मे सेवा देते है, साथ मे आयुर्वेद चित्र प्रदर्शन भी करते है। सम्मेलनो मे वक्तव्य देते है एव आकाशवाणी द्वारा भी मार्गदर्शन करते है। आप धन्वन्तरि, सुधानिधि, शुचि, आयुर्वेद विज्ञान आदि प्रमुख मासिको मे भी लेख लिखते है। अत आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित है। मै आशा करुगा कि आप बारम्बार 'धन्वन्तरि' को सहाय करे। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

यहा हम शूल (वेदना, दर्द) को प्रधानतया लेकर रोगसमूहो (ग्रुप) का प्राथमिक निर्देश मात्र कर रहे हे।

(१) अङ्गमेद सा शूल [दर्द]—ऐसा दर्द-शूल प्राय पूरे बदन मे-सर्वाङ्ग मे होता है। फिर भी कई विशेष अङ्ग के रुग्ण होने पर उस अङ्ग मे उसका असर प्राय अधिक रहता हे। जैसे कि ज्वर, नाडी दुर्बलता, फिरङ्ग, अस्थि क्षय, मदात्यय आदि मे सर्वाङ्ग मे दर्द होता है। जबकि आमवात, सधिवात मे सर्व जोडो (सधि) मे शूल होता हे। अन्त शल्य, कोथ, अस्थिशोथ, अभिघात, मस्तिष्क व्रणशोथ, चर्मरोग, पेशीशोथ, अर्बुद, ग्रन्थि, हृदय, श्रोणिगुहा, नितम्ब, मेरुदण्ड तथा फेफडो मे प्राय अङ्ग विशेष-स्थान विशेष मे शूल का प्राधान्य रहकर पूरे बदन मे दर्द रहता है।

(२) उदरशूल [तोद या भेदवत् शूल]—आन्त्रिकशूल, अजीर्ण, नवीन आन्त्रशोथ, तीव्र उदरावरण शोथ, पक्वाशयिक व्रण, हर्निया, आन्त्रपुच्छ शोथ, हेजा, जलोदर, पेचिश (मे मरोडवत् शूल), आन्त्रावरोध (तीव्रतम शूल), कृमि, कब्ज, रक्तपित्त, आन्त्र का स्थान भ्रष्ट होना, नाभि भ्र श, मेरुदण्ड के रोग, अश्मरी, वृक्कशूल, वृक्काश्मरी, मूत्राशय शोथ, उदरावरण शोथ, यकृत् या प्लीहा शोथ मे उदरशूल होता हे। यह शूल मन्द से तीव्रतर, शूल-भेद सा या बाजे सा हो सकता है। नाभिभ्र श मे नाभि हट जाने से स्कन्धरुक व पिडिकाद्वेप होता हे। ऊपर हटी नाभि कब्ज और नीचे को हट जाने पर अतिसार होता है। साथ मे धीरे-धीरे उदरशूल होता है। छोटी आत (क्षुद्रान्त्र) का दर्द पेट के ऊपरी भाग मे होता है और बडी आत का दर्द पेट के मध्य या निचले (बाये-दाहिने) हिस्से मे होता हे। आन्त्रपुच्छ का शूल हमेशा दाहिने पार्श्व मे होता है।

(३) तीव्र शूल [Sharp Pain]—आन्त्रपुच्छ शोथ (अपेण्डिसाइटिस), हृच्छूल, गठिया, धमन्यर्बुद, प्लूरसी,

सुषुम्ना का रक्तस्राव, फुफ्फुसवेष्ट गह्वर मे वायु सचय [Pneumothorax] आदि रोगो मे रुग्ण को तीव्र (तेज) शूल-दर्द होता है।

(४) पुनरावर्तित शूल—एपेण्डिसाइटिस, हृत्शूल, धमनी का अर्बुद, मस्तिष्कार्बुद, पेचिश, रज कृच्छ्रता, जलपूरित वृक्क, नाडीशूल, अवरुद्ध हर्निया आदि रोगो मे रुग्ण को थोडी-थोडी देर बाद रह-रह कर शूल होता है।

(५) परिवर्तित शूल [Shifting Pain]—हिस्टीरिया, हस्त-पाद पेशी की गति शक्ति का नष्ट होना, अफारा, सुषुम्नार्बुद और स्फीत कृमि (Tape) जैसे रोगो मे शूल-पीडा एक स्थान से दूसरे स्थान पर (परिवर्तन) जाता है।

(६) काटने सा तीव्र दर्द [Gnauling Pain]—आमाशय का कैंसर, सुषुम्ना का क्षय, गठिया, उदरावरण शोथ, सौषुम्निक प्रदाह (शोथ), धमनी प्रसार आदि दर्दो मे काटने वाला (अङ्गभेद सा) तीव्र शूल होता है।

(७) अङ्गक्रियाजन्य शूल—नवीन शोथ, व्रण, अस्थि भग्न, नाडीशूल, सुषुम्ना क्षय, कटिशूल, नाडीशोथ, वृक्क शोथ, गृध्रसी, नई प्लूरिसी, न्यूमोनिया, नया आमवात, सधिवात, मेनिनजाईटिस, डिम्ब प्रणाली का शोथ, ग्रन्थि-जन्य ज्वर, हृत्शूल, सक्रामक कामला आदि दर्दों मे रुग्ण को चलने-फिरने या उठने-बैठने जैसी हरकतें (अङ्गक्रिया) करने मात्र से शूल बढ जाता है।

(८) जकडन-दर्द—आमवात, आटन-(Corn-कामी), जूते की रगड से छाला, स्नायु दुर्बलता और प्रपादास्थि (Tarasalgia) जैसे रोगो मे तग जूते पहनने के कारण ऐसा दर्द होता है। अम्लपित्त से ग्रीवा, सीना और कई अङ्गो मे जकडन जैसा दर्द होता है। आमवात, सधिवात मे भी ऐसा ही दर्द होता है।

(९) जलन दर्द—अम्लपित्त, आमाशय व्रण, आतो का व्रण, कैसर, अभिष्यन्द, रक्तार्श, पैत्तिक ज्वर आदि मे रुग्ण को जलन सा दर्द होता है।

शिरःशूल निदान विवेचन

आयुर्वेद के प्राचीन पडितो ने शिर शूल, शिरोऽभिताप या शिरोवेदना को अनेक रोगो मे होने वाले लक्षणो के अलावा उसे स्वतत्र रोग के रूप मे भी स्वीकारा है। जबकि अभिनव चिकित्सा विज्ञान (एलोपैथी) उसे अनेक रोगो मे प्राप्त एक लक्षण (चिह्न सिम्प्टम्) मात्र ही मानता है।

शिर शूल प्राय मस्तिष्कगत रोगो का एक प्रधान लक्षण है। शिर (मस्तक) के विभिन्न स्थान भेदानुसार शिर शूल के अनेक प्रकार होते है।

(अ) करोटि वहिर्गत कारण—खोपडी के ऊपर की (बाह्य) त्वचा की मासपेशी व रक्तवाहिनियो पर बाहर के आघात (मार-चोट), दबाव आदि आगन्तुक कारणो से शिर शूल होता है।

(ब) कपालान्तर्गत कारण—खोपडी के भीतर की बडी-बडी रक्तवाहिनिया और पाचवी, नवी और दसवी शीर्षण्य नाडी पर प्रभाव पडने से भी शिर शूल होता है। खोपडी के भीतरी अङ्गो की विकृति से भी शिर शूल होता है। उदाहरणतया—

(१) मस्तिष्कार्बुद [सेरिब्रल ट्यूमर] (२) मस्तिष्कावरण शोथ-मेनिनजाइटिस, (३) मस्तिष्क-सुषुम्ना जलवृद्धि [सेरिब्रो-स्पाइनल फ्ल्युड]।

यह था अभिनव मत। अब आयुर्वेद दृष्ट्या हम शिर शूल के कारण देखेंगे। अधिक धूम्र (धुआ), धूप, ओमबिन्दु (सर्द हवा) या अधिक ठडा पवन मस्तक को लगना, पानी मे अधिक समय पडे रहना, अधिक नीद या अधिक जागना, शिर को अधिक सेकना, मन के सताप (शोक, चिंता, विलाप, मनोआघात), कुदरती आवेगो (जैसेकि मल, मूत्र, अपानवायु आदि) को अधिक रोकना, अधिक जलपान, अधिक मद्यपान, कृमिदोष, सोते समय शिर के नीचे तकिया न रखने से, देह शुद्ध न होने से (विबन्ध, मलावरोध से), निरन्तर नीचे या ऊपर देखते रहने से, अत्यधिक लिखना या पढना, अप्रिय दुर्गन्ध सेवन से, आमदोष से व अधिक सभाषण या प्रलाप से प्राय मस्तकगत दोष विकृत होने से शिर शूल से शिरोरोग होते है।

अब आधुनिक विज्ञान (एलोपैथी) दृष्टि से शिर शूल कारण देखेंगे—

[अ] स्थानीय कारणजन्य शूल (लोकल कॉजे)—
१ पुर कपाल वायु विवर (मर्मरास्थि) शोथज (एथ्मोइडल बोन इन्फ्लेमेशन), २ अस्थि शोथज (इन्फ्लेमेशन आफ बोन मेम्ब्रेन)।

[ब] सवाहित शूल (रिफर्ड पेन)—१ प्रतिश्याय (जुखाम-कोरिजा), २ नासापटल भ्रंश (डेविएशन आफ सेप्टम), ३ कनीनिका (नेत्रपुतली) शोथ [आईरिटिस], ४ अधिमन्थ (ग्लुकोमा), ५ मध्यकर्ण शोथ (ओटिटिस मीडिया), ६ दन्तकोटर (डेण्टल केरिज) आदि कारणो से सवाहित (बार-बार रुक-रुक कर) शिर शूल होता है।

[ग] वातजन्य (नाडीजन्य) शिर शूल (नर्वस हेडेक्)—१ त्रिशाखा नाडीशूल (ट्रिजेमिनल न्यूरेल्जिया), २ मस्तिष्कगत फिरङ्ग (सेरिब्रल सिफलिस), ३ मस्तिष्कावरण शोथ (मेनिन्जाइटिस), ४ मस्तिष्कार्बुद (सेरिब्रल ट्यूमर), ५ मस्तिष्क विद्रधि (सेरिब्रल एब्सेस) जिन कारणो से मस्तिष्क नाडियो मे दर्द होकर 'शिर शूल' होता है।

[द] शारीरिक कारणजन्य शूल (फिजीकल डिफोर्मिटी)—१ जीर्ण वृक्कशूल (क्रोनिक नेफ्राइटिस), २ मूत्र विषमयता (यूरेमिया), ३ रक्तचाप की वृद्धि (हाई ब्लड-प्रेशर), ४ योषापस्मार (हिस्टीरिया), ५ अर्धावभेदक (माईग्रेन), ६ आन्त्रिक (मोतीझरा) ज्वर (टायफाइड), ७ मसूरिका (मिजिल्स) आदि कारणो से भी शिर शूल पैदा होता है।

मस्तक के किस हिस्से मे पीडा होती है, उसके ज्ञान से किसी भी प्रकार की शरीर व्याधि का अनुमान हो सकता है। यहा शिर शूल किसी एक व्याधि के लक्षण या उपद्रव रूप होता है। दर्द के स्थान पर से मूल व्याधि का सही निदान सरल हो जाता है।

शूल स्थान से व्याधि निदान

[अ] पुर कपाल शिर शूल (फ्रण्टल हेडेक्)—१ पुर कपाल नासा-नाडीव्रण (फ्रण्टल सायनूसाइटिस,) २ अक्षितनाव व दृष्टि विपर्यय (आई स्ट्रेन्स, ऐरर आफ रिफ्रेक्शन), ३ तरुण नासिका प्रदाह (प्रतिश्याय-जुखाम) एक्युट रिनाइटिस (कोरिझा), ४. विबन्ध (कब्जियत, मलावरोध) कोन्स्टिपेशन, ५ मर्मरास्थि शोथ (वायु कोटर शोथ) एथमोइडिटीस, ६ हनुवात (चेहरे का स्नायु शूल) ट्रिजेमिनल न्यूरेल्जिया, ७ ऊर्ध्वाक्षि स्नायुशूल (सुप्रा ओरबिटल न्यूरेल्जिया), ८ नेत्ररोग-अधिमन्थ (ग्लूकोमा); ९ पाण्डु-रक्ताल्पता (एनिमिया), १० कनीनिका (नेत्र पुतली) शोथ (आईरिटीस), ११ सामान्य उन्माद (पागलपन) एक्रोमेगली।

इन रोगो के कारण रुग्ण के मस्तक के अगले हिस्से मे दर्द होता है। व्याधि के अन्य लक्षण देखकर सही दर्द का निदान करें।

[ब] पार्श्वकपाल शिर शूल (लेटरल हेडेक्)— १ सूर्यावर्त या अर्धावभेद (आधा शिरदर्द) माईग्रेन, २ हनुवात (चेहरे का स्नायु शूल) ट्रिजेमिनल न्यूरेल्जिया, ३ दन्तनाडी-दन्तव्रण-दन्तकोटर (डेन्टल केरिज), ४ स्तनाकार कोषों का तरुण शोथ (एक्युट मस्टोइडाइटिस), ५ मध्य कर्णशोथ (कर्ण पूय स्राव पाक) ओटिटीस मिडीया।

इन कारणो से मस्तक के दोनो बाजुओं-पार्श्वों मे दर्द हो सकता है।

[स] पश्चात् शिर शूल (ओसिपिटल हेडेक्)—१ धमनी रक्तज मानसिक तनाव (अस्वस्थता) [आर्टिरियल हाइपरटेन्शन], २ जीर्ण वृक्क प्रदाह (क्रोनिक नेफ्राइटिस) गुर्दे की सूजन, ३ (स्त्री के) बीजाशय-अण्डाशय-गर्भाशय के दर्द (यूटेरो-ओवरियन डिसीज), ४ मुख तालु की ग्रन्थि (एडेनोइड्स), ५ ग्रीवा पश्चात् नाडीशूल (मन्यास्तम्भ) [सर्विको-ओसिपीटल न्यूरेल्जिया], ६ जतूकास्थि मे नाडीव्रण (स्फीनोईडल सायनूसाइटिस), ७ मूत्रक्षार विकृति (यूरीमिया), ८ मस्तिष्क सुषुम्ना पटल शोथ (सेरिब्रो-स्पाइनल मेनिनजाईटिस), ९ मस्तिष्कार्बुद (सेरिबेलर ट्यूमर), १० आमवात (रयुमेटिज्म), ११. कफ ज्वर या कफ-वात ज्वर (हे फीवर या फ्ल्यु)।

इन रोगो के कारणो से शिर के पिछले भाग मे दर्द होता है

[द] सर्वाङ्ग शिर शूल (जनरल हेडेक्) या अस्थिर (चलित) शिर शूल (वेरियेबल हेडेक्)—१ स्नायविक शिर शूल (न्यूरोसिस), २ धमनी दार्ढ्य (दृढीकरण) [आर्टरियो स्केलेरोसिस], ३ मस्तिष्क उपदंश (सेरिब्रल सिफिलिस), ४ तरुण मदात्यय (एक्युट एल्कोहोलिजम), ५ तरुण या जीर्ण आमाशय शोथ (एक्युट या क्रोनिक गेस्ट्राइटिस), ६ मस्तिष्क रक्तस्कन्द (खून का शिर मे जम जाना) [सेरिबल थ्रोम्बोसिस], ७ यक्ष्मासहित मस्तिष्क पटल शोथ (ट्यूबर्क्युलस मेनिन्जाइटिस), ८ खोपडी की हड्डी टूटना (स्कल फ्रैक्चर), ९ मस्तिष्क

अभिघात (मार-चोट) [सेरिब्रल कन्वयुजन], १० मस्तिष्क अर्बुद (सेरिब्रल ट्यूमर), ११ मस्तिष्क व्रण (विद्रधि, नाडीव्रण) [सेरिब्रल एब्सेस], १२ मस्तिष्क और उसके पटल के शोथज-मूर्च्छा या तन्द्रा (बेहोशी) [एन्सिफेलिटिस लेथार्जिका], १३ मस्तिष्क रक्त क्षयज गाड्ढ (सेरिब्रल एनीमिया), १४ अंशुघात (लू-धूप लगना, सन-स्ट्रोक), १५ शिर त्वचीय व्रण (एब्सेस आफ स्काल्प), १६ खोपडी मे विवर (छिद्र) होना (क्रेनियल केरिज), १७ धमनी रक्त वमन (एओर्टिक रिगर्गीटेशन), १८ कफ प्रधान ज्वर (हे फीवर), १९ पोषणाभाव जनित दौर्बल्य (डेबिलिटी ड्यु टु पूअर न्यूट्रिशन); २० जीर्ण अपस्मार (क्रोनिक एपिलेप्सि); २१ जीर्ण यकृत् शोथ (क्रोनिक नेफ्राइटिस), २२ मधुमेह (मीठे पेशाब का दर्द-डायबिटीज मेलिटस), २३ मधिवात (गाउट), २४ नाग (सीसा) विष (लेड पाइजनिंग), २५ तीव्र मलेरिया (विषम ज्वर) [क्रोनिक मलेरिया], २६ आन्त्रिक (मोतीझरा) ज्वर (टाइफायड फीवर), २७ श्लेष्मवात ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा), २८ शिरस्तोय (हाइड्रोसिफेलस), २९ राजयक्ष्मा (क्षय-टी बी), ३० कृमि (वर्म्स) ।

इन रोगो मे एक लक्षण (सिम्पटम) के रूप मे सर्वाङ्ग शिर शूल होना है ।

आयुर्वेदोक्त शिरःशूल अभिनव दृष्टि मे

अब हम आयुर्वेद दृष्ट्या शिरोरोगान्तर्गत शिर शूल के पृथक् लक्षणो और उसका एलोपथिक विज्ञान मे क्या सामजस्य है, यह देखेगे ।

[१] वातदोषज शिर शूल—जिस व्यक्ति के मस्तक मे अन्य बिना लक्षित वजह ही तीव्र शूल (दर्द) होता है, जो रात्रि मे अत्यधिक बढता है और बन्धन, स्वेदन (या सेक, उष्णोपचार) से शान्त होता है उसे वातिक शिर-शूल कहते हैं । —सुश्रुत उ० २५ अ०

वाग्भट ने वातजन्य शिर शूल का बहुत ही स्पष्ट व विस्तृत वर्णन इस तरह किया है—शख प्रदेश मे तोद (सुई भेदवत पीडा), ग्रीवा के पीछे का अङ्ग फटना (दर्द), भ्रकुटि के मध्य और पूर मस्तक मे पीडा होना कानो मे सनसनाहट सी होना, आखे बाहर निकल पडेगी ऐसी पीडा होना, चक्कर सा आना व जबडे जकड जाना, प्रकाश सह्य न होना और कभी नासा से (पानी जैसा पतला) स्राव होना व अकस्मात् दर्द की शान्ति हो जाना वातजन्य शिर शूल है ।

वातजन्य शिर शूल को एलोपैथी मे हम न्यूरेल्जिता या न्यूरेल्जिक हेडेक् कह सकते है । अभिनव विज्ञान की दृष्टि से इस प्रकार का वात सस्थानीय (नर्वस सिस्टम) है जो अपजनन (डिजनरेशन ऑफ नर्वस सिस्टम), रक्त-विकृति (ब्लड डिस्क्रेसिया), निर्बलता, दन्त विकृति या चिन्ता से उत्पन्न होना हुआ माना जाता है ।

[२] पित्तदोषज शिर शूल—जिसका मस्तक सुलगती चिनगारी जैसा गरम (उष्ण) हो और जिसका शमन शीतल चीजो से रात्रि मे होता है, उसे आयुर्वेद मे पित्त-दोषज शिर शूल कहते है ।

अभिनव विज्ञान दृष्ट्या पित्तज शिर शूल को हम बिलियरी हेडेक् कह सकते है । ऐसा शिर शूल पचन सस्थान की विकृति से जैसाकि अजीर्ण, मन्दाग्नि, अम्ल-पित्त, यकृत् (लीवर) रोग व आन्त्रशोथ आदि कारणो से होता है ।

[३] कफ दोषज शिर शूल—जिसका मस्तक कफ दोष से लिप्त, भारी, जकडा हुआ और शीत हो, उसे मन्द-मन्द पीडा प्राय सुबह मे, शीतल आहार-पानी या पवन मे वृद्धिमान हो, जो उष्णोपचार से शान्त होता हो, जिसमे रुग्ण को तन्द्रा, आलस्य व अरोचक हो उसे कफ दोषज शिर शूल कहते है । प्राय सर्दी-जुकाम होने पर ऐसा शिरदर्द होता है ।

कफज शिर शूल को एलोपथी विज्ञान दृष्ट्या प्रसेक कज (केटरेहल) या गवाहित पीडा (रिफर्ड पेन) से सामजस्य बठता है । अभिनव विज्ञान दृष्टि से इस प्रकार का शिर शूल प्रतिश्याय (जुखाम-कोरिजा), दृष्टि दोष, दन्त रोग, मध्यकर्ण शोथ (कर्ण पूय), आमाशय व गर्भा-शय विकृतियो से होना है ।

[४] त्रिदोषज शिर शूल—त्रिदोषज शिर शूल मे देहधारक त्रि-तत्व वायु, पित्त व कफ तीनो के सम्मिलित लक्षण उत्पन्न होते है । जैसेकि वायु के तीव्र शूल, भ्रम (चक्कर) व कम्प, पित्त दोष के--दाह, मद व तृषा और कफ दोष के--शिरोगौरव व तन्द्रा । ये सभी लक्षण सन्नि-पातिक शिर शूल मे प्राप्त होते है ।

त्रिदोषज शिर शूल को आधुनिक विज्ञान दृष्टि से पुर कपालीय वायु विवर शोथ (फ्रण्टल सायनसाइटिस) से सामजस्य बैठता है। कई ऐसे शिर शूल को विषम शिर शूल (टॉक्सिक हेडेक्) बताते है।

[५] रक्तदोषज शिर शूल—रक्तज शिर शूल मे पित्त-दोषज शिर शूल के समान लक्षण होते हैं। इसके अलावा इसमे स्पर्शासहत्व (स्पर्श सह्य न होना) का लक्षण विशेष होता है। इस प्रकार के शिर शूल मे दर्दी के चेहरे पर लाली (रक्ताभ) तथा दर्द सहन न हो सकना, ये लक्षण होते है।

आधुनिक विज्ञान दृष्टि से रक्तज शिर शूल को हम रक्त सग्रह जनित (कन्जेस्टिव हेडेक्) कह सकते हैं। ऐसा शिर शूल हमे रक्तचाप (ब्लड प्रेशर), तीव्र मदात्यय (अल्कोहोलिज्म) और अभिघातज कपालास्थि शोथ मे देखने को मिलते है।

[६] क्षयज शिर शूल—मस्तिष्क के भीतर रहने वाली रक्त, वसा, कफ और वायु जैसी धातुये उसके प्राकृत मान से अत्यधिक कम हो जाये (क्षय हो) तो उस धातु क्षय से शिर मे तीव्र दर्दयुक्त कष्टसाध्य क्षयज शिर शूल होता है। इस प्रकार के शिर शूल मे स्वेदन, वमन, धूम्रपान, नस्य और रक्तमोक्षण प्रतिकूल होते है। क्षयज शिर शूल मे भ्रम, तोद, शिर शून्यता, मूर्च्छा और अङ्गावसाद के लक्षण होते है। इसमे वात-पित्त दोष की प्रधानता समझी जाती है।

अभिनव विज्ञान दृष्ट्या क्षयज शिर शूल को हम सार्वदैहिक कारणजन्य वर्ग मे रख सकते है। पाडु, अकुशाङ्क्ष कृमि, मधुमेह और जीर्ण विषम ज्वर जैसे सार्वदैहिक व चिरकालीन रोगो से और मैथुनातिरेक जनित शुक्रक्षय से देह की वसा, रक्त, कफादि धातुओ के क्षय से इस प्रकार का शिर शूल पैदा होता है। कभी-कभी अभिघात (आघात चोट) से जब रक्तादि का क्षय होता है या रक्तस्राव से मस्तिष्कगत रक्ताल्पता होने पर भी इस प्रकार का शिर शूल होता है। इस प्रकार के दर्द मे प्रधान दर्द की चिकित्सा करने से लक्षण रूप शिरदर्द दूर होता है। प्राय ऐसी रुग्णावस्था मे सिर्फ लाक्षणिक चिकित्सा करने से सफलता नही मिलती। इसलिए इस रोग को कृच्छ्रसाध्य माना जाता है।

[७] कृमिज शिर शूल—जिस रुग्ण के मस्तिष्क मे अत्यधिक तोद (सुई भेदनवत दर्द), कपालास्थि को कोई जन्तु काट खाता हो ऐसी पीडा, स्फुरण गति, नासा से पूययुक्त जल (या रक्त) स्राव होना, कभी-कभी स्राव के साथ सूक्ष्म कृमि भी निकलना, ऐसे लक्षणो से युक्त शिर शूल 'कृमिज' कहलाता है। इसके अन्य लक्षणो मे तीव्र (जोरदार) दर्द, चित्तविभ्रम, ज्वर, कास व बलहानि, शिर मे रूक्षता, शुष्कता व कर्णो मे झनझनाहट जैसे लक्षण भी देखने को मिलते हैं।

अभिनव विज्ञान दृष्ट्या कृमिज शिर शूल (डायरेक्ट हेडेक् के २ प्रकार होते है। (अ) साक्षात् कृमिजन्य, (ब) परम्परागत या अप्रत्यक्ष कृमिजन्य।

(अ) साक्षात् कृमिजन्य शिर शूल—इस व्याधि मे नासिका द्वारा स्राव के साथ छोटे कृमि गिरते हैं। इन कृमियो (जन्तुओ) को हम देख सकते हैं। इस प्रकार की अवस्था वायुविवर शोथ (साइनूसाइटिस) से होती है। इसके लक्षण पीनस और रक्तज या दुष्ट प्रतिश्याय के समान होते है।

(ब) अप्रत्यक्ष कृमिजन्य शिर शूल—इस प्रकार के रोग मे कृमि प्रत्यक्ष दिखाई नही देते और नासिका से किसी प्रकार का स्राव भी नही होता। उदर मे गडूपद कृमि, अकुशमुख कृमि की उपस्थिति से ही शिर मे सवाहित शूल होता है। किन्तु यह प्राय अधिक तीव्र स्वरूप का नही होता। ये कृमि या आत्रस्थ रक्त पर अपना निर्वाह करती है। इस वजह से मस्तिष्क मे रक्ताल्पता होकर शिर शूल पैदा होता है। आयुर्वेद मे ऐसे शिर शूल का वातज या क्षयज शिर शूल मे समावेश होता है।

[८] सूर्यावर्त—जो मस्तिष्कशूल सूर्योदय के साथ शुरू होता है, सूर्य शिर के ऊपर आने पर दर्द अधिकतम् होता है, सूर्य ढलने पर दर्द कम होता है और सूर्यास्त होने पर दर्द गायब हो जाता है। जिसमे शूलपीडा नेत्रो व भृकुटि मे भी फैलती है, उसे सूर्यावर्त कहते है। ऐसे शिर शूल का ह्रास-वृद्धि सूर्य पर निर्भर होता है। (यह त्रिदोषज दर्द है)।

अभिनव विज्ञान दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि इसमे रुग्ण मे प्रतिश्याय (जुकाम) का इतिहास अवश्य होता है। वस्तुत प्रतिश्यायजनक कफदोष का योग्य

प्रकार से स्राव न होने पर इस रोग का जन्म होता है। प्रतिश्यायजनक दोष (वायु, पित्त व कफ दोष) की विकृति होने से या विविध जन्तुओं के सक्रमण की वजह से कपालास्थि विवरो की श्लेष्मकला मे शोथ हो जाने से इस प्रकार की स्थानीय पीडा (दर्द) और मन्द ज्वर रहता है। इससे इसे अस्थिविवर कला का मन्द शोथ (सब एक्युट सायनूसाइटिस) कहते है। विकृति के स्थान की दृष्टि से दर्द का स्थान भी भिन्न होता है। यदि विकृति पुर कपालास्थि मे हो, तो दर्द ललाट (भाल) प्रदेश मे और विकृति यदि ऊर्ध्व हन्वस्थि विवरो (मेक्जिलरी सायनस) मे हो तो कपोल (गालो के ऊपर जबडो) पर अधिक पीडा होती हे। सूर्योदय के पश्चात् विवर स्थित कफ का स्राव आरम्भ होता हे और उसके साथ दर्द शुरू होता है, जो सूर्य बढने-ऊपर उठने पर कमश दर्द भीबढता है। इसका शमन कभी शीतल तो कभी उष्ण उपचारो से (जो दोष अधिक हो उसके मुताबिक) होता हे।

[९] अर्धावभेदक (आधाशीशी)—अयोग्य आहार-विहार से प्रकुपित वायु अकेला या फिर कफदोष के साथ मिलकर शिर के (बाये व द ने) अर्ध मस्तिष्क को जकड कर मन्या, भ्रकुटि, शख, क , नेत्र तथा मस्तिष्क के अर्ध हिस्से मे शस्त्र से काटने जैसी (कर्तनवत्) पीडा या जलने जैसी या मथनवत् अत्यधिक तीव्र (तेज) पीडा मस्तिष्क के अर्ध हिस्से मे होती है, उसे अर्धावभेदक कहते हे। यह रोग यदि बहुत आगे बढ जाये, तो वह आख व कान का नाश करता है। इस दर्द मे अर्ध शिर शूल, तोद, भेद, भ्रम, मोह और शूल होता हे।

अर्धावभेदक को अभिनव विज्ञान मे हेमिक्रेनिया या माईग्रेन कह सकते हे। यह एक प्रावेगिक शिर शूल (पेरोक्सिज्म हेडेक्) हे जो बाल्यावस्था म अधिक होता है और आयु बढने के साथ कम हो जाधा हे। वृद्धावस्था मे इस रोग की सभावना बहुत कम होता हे। यह रोग बहुधा बुद्धिजीवी वर्ग, खास करके चिंतनशील औरतो को अधिक होता हे। यह रोग भोजन की अनियमितता, चिंता, अधिक परिश्रम, वशपरम्परागत दोष, मस्तिष्कगत धमनी सकोच से उत्पन्न रक्ताल्पता आदि कारणो से होता है।

अभिनव विज्ञान इस दर्द के लक्षण इस तरह बताता है—प्रात जागने पर चक्कर (भ्रम), उत्क्लेश (जी घबराना), आखो के आगे चिनगारिया सी दीखना, झनझनाहट व शून्यता का अनुभव होना है। प्राय शून्यता व झनझनाहट हाथ-पैरो से शुरू होकर फिर आधे घण्टे मे अर्धावभेदक मे पलटता हे। शिर शूल प्राय सर्वप्रथम शख प्रदेश से शुरू होकर फैलता हे। पीडा सचित रूप की अथवा विदारणवत् होती है। यह दर्द थोडे घटा से शुरू होकर कई सप्ताहो तक हो सकता है। रुग्णा का मुख पीला (फीका) हो जाता है। कई बार इस रोग के उपद्रव रूप मे मूकता, एकाङ्गवात, अर्धाङ्गवात, नेत्रपेशीघात या अन्य अङ्गो की विकृति (अङ्गनाश) भी सम्भव हे।

[१०] अनन्तवात—प्रकुपित हुए वात-पित्त और कफ ये तीनो दोष ग्रीवा की मन्या नाडियो को पीडित करके ग्रीवा के पीछे के भाग मे दारुण दर्द पैदा करता हे। यह दर्द तेजी से बढकर नेत्र, भृकुटि और शख प्रदेश मे प्राय स्थिर होना है। इससे कपोल (भाल) की बगल मे कम्पन, हनुग्रह तथा नेत्र के कई रोग पैदा होते है। इसे ही अनन्तवात कहते है।

अभिनव विज्ञान दृष्ट्या इस रोग को हम त्रिशाखा नाडीशूल (ट्रिजेमिनल न्यूरेल्जिया) कह सकते है। यह रोग खासकर के पुक्त (प्रौढ) वय के स्त्री-पुरुषो को समान रूप से होता हे। प्राय जाडे के ठडे मौसम म व ५० साल की आयु के बाद यह अधिक होता है। इस दर्द मे नासारन्ध्र या नेत्र के नीचे के प्रदेश (इन्फ्रा-ओरबिटल फोरामेन) की त्वचा से शुरू होकर तुरन्त पूरी त्रिशाखा नाडी या पचमी शिरस्का नाडी मे फैल जाता हे। पीडा (दर्द) का रूप गोली लगने से होनी हुई दाह जैसी ओर तोदयुक्त होनी है। कभी-कभी रुग्ण कोई स्पर्श पही सह सकता। पीडा के स्थान पर रक्तिमा (ललाश), स्वेद, लालास्राव, अश्रुस्राव और पेशी सकोच (मन्याग्रह, हनुग्रह) जैसे लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हे। अग्रेजी मे इस दर्द को हम करोटि दबाव जनित शिर शूल (हेडेक् ड्यु टु दी इन्ट्रा क्रेनियल प्रेशर) कह सकते है।

[११] प्रदुष्ट वायु, पित्त और रक्त इकट्ठे होकर शख प्रदेश मे तीव्र दर्द, दाह ओर रक्तवर्ण दारुण शोथ पैदा करते है। यह शोथ (सूजन) विष जैसा तीव्र वेगवान होने से फौरन शिर व कठ को ग्रसकर तीन दिन मे ही रुग्ण के प्राण ले लेता है। यही शखक रोग हे।

आधुनिक विज्ञान दृष्ट्या हेडेक् ड्यु टू दी सेरिब्रल एपोप्लेनैक्सी कह सकते है व इस दर्द मे विकृति खोपडी के अन्दर होती है। कई विद्वान इसे शिरोरोगान्तर्गत गिनने के पक्ष मे नही है। क्योकि इसमे —

(१) दर्द पूरे शिर मे न होकर सिर्फ शंख प्रदेश (टेम्प्रो पेरिएटल रीजन) मे होता है।

(२) इसमे दर्द का रूप अत्यधिक तीव्र होता है।

(३) रोग की मर्यादा सिर्फ ३ रोज की है। इस मर्यादा के बाद व्याधि असाध्य हो जाती है (यदि तुरन्त चिकित्सा हो तभी रोगी बच सकता है)।

(४) इस दर्द मे उष्ण स्वेद करने का निषेध है।

(५) इसमे विषमयता (टॉक्सिसिटी) के कारण ज्वर और तृष्णा पैदा होते है।

(६) इसमे रुग्ण मूर्च्छित हो जाता है। इसलिए वह इसे शिरो रोग नही मानते।

इस तरह शिर शूल एक स्वतन्त्र रोग के रूप मे भी है और अन्य (शारीर-मानस) रोग के एक लक्षण रूप भी है। चिकित्सक देख सकता है कि सिर्फ शिर शूल के एक-मात्र लक्षण मे सही निदान करने मे कितनी सारी बातो का ख्याल करना पडता है।



अनुभूत प्रयोग

वैद्य नटवरलाल पण्ड्या मु० पो० रेथल, ता० साणद (अहमदाबाद) गुजरात



(१) टासिल [तुण्डिकेरी]—

[१] तीन दिन गर्म पानी से लंघन। पानी मे सोंठ एवं हल्दी मिलाकर ले।

[२] कवलग्रह हेतु—हल्दी, त्रिफला, भुना सुहागा, भुनी फिटकरी, यष्टी मधु समभाग लेकर पानी मे डालकर इस पानी को कुछ मिनटो तक मुह मे रखे और कुल्ले करे।

[३] हरिद्रा चूर्ण, यष्टी मधु और त्रिफला चूर्ण आधा-आधा माशा मिलाकर तीन बार शहद से चाटे।

[४] बाह्य प्रदेश पर दोषघ्न लेप और रसवन्ति समभाग मिला पानी मे डालकर लेप करे।

[५] महालक्ष्मीविलास रस की १-१ गोली तीन बार शहद से।

[६] खदिरादि वटी प्रतिदिन ८ से १० गोली चूसने को दे।

(२) बिच्छू [वृश्चिक] दंश—

[१] तुलसी के १५ से २० पत्र लेकर मुख मे रखकर चबाओ--मुख बन्द करके तुलसी पत्र की गैस होने दो। वृश्चिक दंश के रुग्ण के कान मे तुलसी पत्र की गैस की फूंक मारो। इसी तरह ४-५ फूंक लगावे।

[२] चमार दुधेली प्रयोग—चमार दुधेली के १५-२० पत्ते हाथ मे मसल कर रखो। जहा बिच्छू ने काटा है और उसकी वेदना शरीर मे जहा तक होती है, उस दंश स्थान से लेकर वेदना के अन्तिम स्थान तक चमार दुधेली के मसले हुए पत्तो से इसकी मालिश करो। साथ मे दंश स्थान पर पोटाशियम पर-मेगनेट १ भाग और निम्बु का फूल (सत्व) १ भाग मिलाकर खरल मे घोटकर उसमे थोडा सा पानी डालकर १-२ बूंद दंश स्थान पर लगाने से आराम मिलता है।

विशिष्ट शिरःशूल – अर्धावभेदक

आयुर्वेद चक्रवर्ती डा० सत्यनारायण खरे ए. एम बी एस.,
चिकित्साधिकारी—जिला परिषद आयु० चिकित्सालय, कवखारा (झांसी) उ प्र.



धन्वन्तरि के जाने माने विद्वान लेखक महोदय श्री डा० सत्यनारायण जी खरे आयुर्वेद के प्रकाण्ड पडित हैं। वर्षो से आप धन्वन्तरि मे विद्वतापूर्ण लेख प्रेषित करते आ रहे ह। आप आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी स्वास्थ्यप्रद लेखनी चलाकर धन्वन्तरि, सचित्र आयुर्वेद, स्वास्थ्य, शुचि, आरोग्य, सुधानिधि, श्री मोहता आयुर्वेद पत्रिका, अनुभूत योगमाला आदि अनेक मासिक पत्रिकाओ के लेखक रूप में सेवा प्रदान करते आ रहे हैं। इस पुरुषार्थ फलस्वरूप आप देश-विदेश के रोगियो की सेवा करते हैं। पिछले २८ वर्षो मे २०० के लगभग जनस्वास्थ्य सम्बन्धी लेखो द्वारा आयुर्वेद प्रचार प्रसार का कार्य किया है—करते हैं। आप विशेषत फक्क रोग (सूखा), आन्त्रज्वर, हृद्रोग, उदरशूल आदि के विशेषज्ञ ह। आप पत्राचार द्वारा देश एव विदेश के रोगियो की सेवा करते हे। आयुर्वेद साहित्य की सेवा के फलस्वरूप आपको अखिल भारतीय आयु० विज्ञान सम्मेलन ईशीपुर भागलपुर-(बिहार) द्वारा 'आयु० बृहस्पति' एव अखिल भारतीय आयु० महाविद्यालय, सागर (म प्र) द्वारा 'आयु० चक्रवर्ती' से सम्मानित किया गया हे। यहा आपने कष्टदायक शिर शूल-अर्धावभेदक पर नित्य उपयोगी अपनी अनुभव सामग्री प्रस्तुत की हे जो मननीय है।

— वैद्य अशोक भाई तल विया भारद्वाज

निदान (कारण) —

रूक्षाशनाद्यध्यशनप्राग्वातावश्य मैथुनैः ।
वेगसन्धारणायास व्यायामैः कुपितोऽनिल ॥
केवल सकफोवाऽर्द्ध गृहीत्वा शिरसोबली ।
मन्याभ्रूशङ्खकर्णाक्षि ललाटार्द्धेषु वेदनाम् ॥
शस्त्राशनि निभा कुर्यानी व्रासोऽर्द्धावभेदक ।
नयन वाऽथवा श्रोत्रमतिवृद्धोविनाशयेत ॥

— माधव निदान

अर्थात सूखे भोजन, अधिक परिश्रम, अतिप्राग्वात सेवन, अति शीत मे रहना, अति मैथुन, वेगावरोध, आयास और अति व्यायाम से प्रकुपित वायु अकेले या कफ साथ मिलकर आधे शिर को जकड कर मन्या, भ्रू, शङ्ख (कनपटी), कर्ण, नेत्र व ललाटार्ध मे तीव्र पीडा को उत्पन्न कर देता है जो शूल शस्त्र से कटने के समान और प्रचण्ड अग्नि के समान जलन पैदा करता हे। इस प्रकार के आधे शिर शूल की पीडा को 'अर्धावभेदक (आधाशीशी) कहते है। यह पीडा अधिक समय तक रहने व तीव्र पीडा होने से उस ओर के नेत्र, कान की शक्ति नष्ट कर देता है।

महर्षि सुश्रुत ने इस व्याधि को त्रिदोषात्मक बताया है क्योकि वात, पित्त, कफ तीनो दोष प्रकुपित हो जाते है जिस मनुष्य के सिर मे तीन, पाच, सात, पन्द्रह दिन या एक माह के अन्तर मे नियमित रूप मे पीडा होती रहती है उसे त्रिदोषज अर्धावभेदक कहा गया है। जैसा कि सुश्रुत उ/२५ मे उल्लिखित हे—

यस्योत्तमाग रुजतेऽर्धमात्र सतोदभेदभ्रम मोहशूलैः ।
पक्षाद्दशा हादधवाप्यकस्मात्तमर्धभेद त्रितयादव्यवस्येत ॥

—सु उ—२५

वाग्भट्टाचार्य ने अर्धावभेदक का कारण निम्न प्रकार से लिखा हे—

शिरस्तापोऽयमर्धेतु मूर्घ्नं सोऽर्धावभेदक ।

अर्थात पूरे शिर मे दर्द वायु के कारण हो तो उसे शिरस्ताप एव यदि अर्धपार्श्व मे शिर शूल हो उसे अर्धावभेदक कहा गया है। बिना वायु के कुपित हुए इतनी अधिक तीव्र पीडा कभी नही होती है।

पूर्वरूप—

रात्रि मे रोगी पूर्ण स्वस्थ रूप मे सोता हे परन्तु जब

सोकर प्रात काल उठना है तो उसे चक्कर, हृल्लास (जी मिचलाना), धुन्धला दिखाई पडना, आख के सामने चमकते ध ग, शरीर मे सुन्नता आदि प्रारम्भ हो जाती है। इसके कुछ समय बाद आधे शिर मे कनपटी मे तीव्र शस्त्र द्वारा काटने जैसी पीडा प्रारम्भ हो जाती है।

अर्धावभेदक के लक्षण इस प्रकार से है—

शिर की पीडा प्राय प्रात काल भोहो मे या आखो मे या शङ्खक (कनपटी) मे या इन सब मे मन्द पीडा प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे बढती है और क्रमश शिर के आधे भाग मे फैलकर पीडा बढ जाती है। यह अधिकतर शिर के अर्ध भाग मे ही सीमित रहती है। यह पीडा पूरे शिर मे भी कभी-कभी फैल जाती है। यह पीडा कभी सामान्य और कभी अधिक तीव्र हो सकती है।

तीव्र पीडा अधिक भयङ्कर होती है। इसमे रोगी चल फिर नही पाता है एव जी मचलाने के कारण बहुत घबडाहट होती है रोगी चारपाई पर पडा रहता है। यह पीडा ग्रीवा व हाथो तक फैल जाती है।

अर्धावभेदक की पीडा प्रकाश, शब्द और शिर को हिलाने डुलाने से बढ जाती है। पीडा अधिक होने से जी मिचलाना, वमन व सुस्ती रहती है। रोगी का चेहरा फीका व पीत पाण्डु वर्ण का हो जाता है। कुछ सर्दी मालूम पडती है, हाथ-पैर शीतल और नाडी क्षीण और मन्द हो जाती है। कभी-२ प्रलाप व आक्षेप आते है। इस प्रकार की पीडा मे कभी-२ शामक गोलिया कार्य नही करती हैं केवल रोगी को वमन हो जाने व निद्रा आजाने से आराम मिल सकता है।

इस प्रकार की पीडा कुछ निश्चित समय के उपरात अचानक प्रारम्भ हो जाती है। इसकी पीडा कभी-कभी सूर्यावर्त व अनन्त वातज शिर शूल से मिलती है परन्तु कुछ विशिष्ट लक्षण इसमे होते है जिससे इसका परीक्षण ठीक-ठीक हो पाता है।

इस रोग को अलर्जीजन्य शिर शूल, मस्तिष्कगत अर्बुदजन्य शिर शूल, फिरङ्गजन्य और अन्तर्विषजन्य शिर शूल और कभी अपस्मार के प्रारम्भ मे भी इस प्रकार के शिर शूल के समान लक्षण देखने को मिलते है।

अर्धावभेदक मे वमन पीडा के बाद होती है किन्तु ... मे पहले ही होजाती है। इसका रोगी बेहोश नही होता है केवल शिथिल पडा रहता है जबकि योषापस्मार व अपस्मार मे रोगी बेहोश पडा रहता है। अर्धावभेदक की पीडा का दौरा दिन या रात मे कभी भी हो सकता है जबकि सूर्यावर्त की पीडा सूर्य के प्रकाश के घटने बढने मे घटती बढती है। यह व्याधि अधिक समय तक चलती रहती है। यह ३५-४० वर्ष की आयु के बाद मन्द रूप मे रहता है।

मस्तिष्कगत अर्बुदजन्य शिर शूल व अन्य प्रकार के शिर शूल स्थायी रहते है एव इनका कोई समय निश्चित नही रहता है जबकि अर्धावभेदक निश्चित अवधि-विश्राम से शिर शूल का दौरा प्रारम्भ होता है। एव वमन के बाद स्वत शात भी हो जाता है।

विद्युत अन्त मस्तिष्कांकन (Electro-encephalogram) द्वारा भी इस व्याधि का निश्चित निदान किया जा सकता है।

अर्धावभेदक के उपद्रव एव साध्यासाध्यता—इस पीडा के फलस्वरूप मस्तिष्कगत रक्तवाहिनियो मे रक्त जमजाने से पक्षाघात, एकागघात आदि हो सकते है। नेत्र के अन्त पटल (Retina) मे रक्त जमजाना जिससे अधता होती है दृष्टि सदैव के लिए नष्ट हो सकती है एव कर्ण श्रवण शक्ति भी सदैव के लिए नष्ट हो जाती है।

शारीरिक दुर्बलता, रक्तभार की कमी, अपस्मार होना, अचानक शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। उपरोक्त कोई उपद्रव या अनेक उपद्रव देखे जा सकते है।

यह रोग प्राय घातक नही हैं किंतु रोग के समय अधिक कष्ट रहता है यदि रोग सामान्य तो कुछ औषधियो से ठीक हो जाता है अथवा पुरुषो मे ५० वर्ष के बाद एवं स्त्रियो मे रजोनिवृत्ति की आयु के बाद स्वत मन्द हो जाता है।

चिकित्सा—

अधिकतर पीडा वातज व पित्तज विकार के कारण होती है इसलिये रोगी को शान्त अधेरे कमरे मे शीतल स्थान पर रखना चाहिए।

१ शिर पर ठडा जल या बर्फ की पट्टी रखनी चाहिये परन्तु शीत ऋतु मे किंचित उष्ण लेप या सेक से आराम मिलता है।

२ दौरे के समय रोगी को पानी, चाय, कोफी दे।

३ वेदनाहर औषधियों का प्रयोग तीव्र पीड़ा मे करना चाहिए परन्तु एक औषधि का सदैव इतना प्रभाव नही रहता है इसलिये औषधि बदल कर प्रयोग करे।

४ दौरे के समय स्वच्छ हवा, पौष्टिक और हल्के आहार का सेवन, मलावरोध को दूर करना, मुख व गले की सफाई रखनी चाहिए।

५ शारीरिक व मानसिक श्रम कम करना चाहिए।

६ अन्त स्रावी ग्रन्थि या रजोविकार सम्बन्धी शिर शूल होने पर ओरगी का सत्व देने मे लाभ होता है।

७ वातज शिर शूल मे स्नेहन, स्वेदन, महानारायण तैल का मर्दन आदि करना चाहिए। वातनाशक स्निग्ध व उष्ण आहार सेवन करनाचाहिये जैसे प्रात काल नित्य प्रति गर्म शुद्ध घृत की जलेबी अथवा हलुवा व उष्ण दूध के साथ नित्य एक सप्ताह तक सेवन से लाभ होता है।

८. देशी कपूर १ रत्ती को मिठाई के पेडे के साथ पहिले या बाद मे निगल जाना चाहिये। मुख मे इस औषधि को चबाना नही चाहिए। अन्यथा उल्टी होने का भय रहता है। इसको ४-५ दिन तक सेवन करना चाहिये।

९ रोगी को अगर कोष्ठबद्धता रहती हो तो पचसकार या षट्सकार एव त्रिफला चूर्ण को मिलाकर गर्म जल के साथ रात मे १ बार प्रयोग करना चाहिए।

१० पैत्तिक शिर शूल मे शीतल जल एव शीतल भोजन पदार्थो का सेवन एव शिर पर शतधौत घृत का मस्तिष्क पर लेप करना हितकर होता है।

११ श्वास कुठार मे कपूर, मिश्री व बकरी के दूध को सफेद चन्दन के साथ घिसकर नस्य देने मे सभी प्रकार के शिर शूल मे लाभ होता है।

१२ शिर.शूल के रोगी की नासिका मे ५-६ बूद 'षड्बिन्दु तेल' का प्रतिदिन नस्य देने से समस्त शिर शूल नष्ट होकर बालो का गिरना बन्द हो जाता है एव नेत्र ज्योतिवर्धक हे। हिलते हुए दात सुदृढ हो जाते है एव शरीर मे बल की वृद्धि हो जाती है।

१३ गुड मिश्रित शुद्ध घृत के बने पदार्थ मालपुआ का सेवन घृत मिश्रित दुग्ध का नस्य एव पान नित्य करे।

१४ अर्धावभेदक के रोगी को सर्व प्रथम स्नेहन, स्वेदन, विरेचन तथा अनुवासन, आस्थापन वस्ति द्वारा शरीर की शुद्धि करनी चाहिये। स्निग्ध तथा उष्ण भोजन करे।

१५ वायविडङ्ग, काले तिल दोनो को समान भाग लेकर पीसकर लेप करने तथा इसी को निचोडकर नस्य देने से अर्धावभेदक नामक शिर शूल नष्ट हो जाता हे।

१६ इस व्याधि मे शर्करामिश्रित दुग्ध नासिका द्वारा पीने से एव इसी विधि से नारियल का जल, शीतल जल व घृत पान करने से सूर्यावर्त व अर्धावभेदक मे शीघ्र लाभ होता है।

१७ इस व्याधि के तीव्र प्रकोप के समय गीला चूना व नौसादर का चूर्ण एक शीशी मे मिलाकर इसका समय समय पर नस्य लेते रहने से छीक आजाती है एव नासिका मे अवरुद्ध वायु निकल जाने से शिर दर्द मे लाभ होता हे।

कुछ वेद मन्त्र आगे उल्लिखित है। उनको दीपावली नवदुर्गा व दशहरा के मुख्य पर्वो पर अग्नि पर लोबान का हवन करके प्रत्येक वर्ष सिद्ध करते रहना चाहिए। उसके बाद मन्त्र द्वारा झाडने वाला चिकित्सक रोगी को पूर्व दिशा की ओर मुख करके बिठाले। फिर निम्बपत्र का झोका लेकर पीडित स्थान की ओर शिर को ७ बार झाडना चाहिए एव उन्ही पत्तियो को पीसकर शिर के पीडित भाग पर लेप कर देना चाहिए।

नोट—स्मरण रहे निम्नोक्त मन्त्र द्वारा केवल मगल, गुरु एव शनिवार को प्रात काल मे ही झाडना चाहिए। इस वेदोक्त मन्त्र चिकित्सा मे किसी प्रकार का पैसा या अन्य उपहार (भेंट) प्राप्त न की जावे अन्यथा लाभ नही होगा। रोगी के स्वस्थ होने के उपरान्त उसीके द्वारा कोई धार्मिक दान करा दिया जावे।

वेदोक्त मन्त्र इस प्रकार है जिन्हे चिकित्सक समय-२ पर सिद्ध करता रहे एव अपने इष्ट देवता का स्मरण करते हुये रोगी को इस प्रका के झाड दे जिससे अर्धावभेदक व सूर्यावर्त मे लाभ होजाता है। वेद मन्त्र इस प्रकार है—

१— "ॐ नम आधा शीशी ॐ हूँ कारी पहर प्रचारी मुख मूद पाटले डारी ॐकारे शीशरहे मुख महेश्वर की आज्ञा फुरे ॐ ठन ठन स्वाहा।"

२—"अघोरेभ्यो अपिघोरेभ्यो घोर घोरतरेभ्या सर्वेभ्या-सर्व सर्वेभ्यो नमस्ते अस्तुतत्पुरुषाय विद्महे धियो रुद्र प्रचोदयात॥"

उपरोक्त वेदमन्त्रो को सिद्ध करके (१०० बार हवन) इष्ट देवता का स्मरण करके शुद्ध विचारयुक्त होकर नि'स्वार्थ भावना से रोगी झाड़नने से शीघ्र लाभ हो जाता है। ❖

शिरःशूल चिकित्सा विवेचन

वैद्य रघुवीरशरण शर्मा आयुर्वेद बृहस्पति, डी-१५० भजनपुरा, दिल्ली--५३



८६ वर्षीय वयोवृद्ध आयुर्वेद ज्ञानवृद्ध महोदय श्री रघुवीरशरण शर्मा आयुर्वेद के सिद्धहस्त प्रकांड पंडित हैं। आपने अपने जीवन के अनेकों वर्ष बुलन्दशहर में बिताये हैं। वहां आपने आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार हेतु तप किया। आप द्वारा भारतीय जीवाणु विज्ञान, धन्वन्तरि परिचय आदि ग्रन्थ लिखे गए हैं जो उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी किये गये एवं आप ज्योतिष, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन और वेदान्त दर्शन के परम विद्वान हैं। आप प्रखर रसशास्त्री हैं, अतः रसौषधि स्वयं तैयार करते हैं। भूतकाल में आप राजकीय पार्टी में रहकर जनता की सेवा करते थे। वर्तमान में आप निवृत्त होकर आत्म-साधना के साथ आयुर्वेद साधना करते हैं। आज तक आपके आयुर्वेदीय लेख धन्वन्तरि, सुधानिधि, प्राणाचार्य, जन आयुर्वेद, सचित्र आयुर्वेद एवं महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। वयोवृद्ध होते हुए भी आपने 'धन्वन्तरि' पर कृपा बनाये रखी है। इस अङ्क हेतु आपने तीन लेख भेजे हैं। मैं भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना करता हूँ कि आपको शतायु बनावें और स्वस्थ रखें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया मान्द्राज

[१] चन्द्रकान्त रस (र० यो० सा०)—रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म और शुद्ध गन्धक प्रत्येक समभाग लेकर सभी द्रव्यों को स्नुही क्षीर (सेहुड के दूध) में दो दिन मर्दन करके २-२ रत्ती की गोली बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में भरकर रख लें। प्रातः-सायं १-१ गोली मधु के साथ सेवन करने से यह रस अर्धावभेद, सूर्यावर्त और अनन्तवात आदि सर्व प्रकार के शिरदर्दों को नष्ट करता है। यह दीपन-पाचन और बल-वर्धक है।

वक्तव्य—यदि इसमें २ रत्ती गोदन्ती भस्म भी मिला लें तो अधिक लाभ करता है।

[२] गोदन्ती भस्म १॥ माशा, चीनी १॥ माशा, घी ३ माशा मिलाकर पानी के साथ सेवन करने से शिरदर्द में लाभ होता है। स्मरण रहे यदि शूल सूर्यावर्त या अर्धावभेदक का हो तो सूर्योदय से १ घण्टा पूर्व ही औषध देना आरम्भ कर दें। ३-३ घण्टे बाद दिन भर में ४ मात्रा दे दें। अवश्य लाभ होगा।

[३] सूर्यावर्त के लिए होमियोपैथिक की स्पाईजिलिया ३०X अव्यर्थ औषधि है। इसे सूर्योदय से १ घण्टा पूर्व देना आरम्भ करें। अनुपान--ताजा पानी। ३-३ घन्टे बाद ४ मात्रा दें।

[४] कर्पूरासव को सूर्यावर्त और अर्धावभेद के रोगी के कान में ५ बूंद डाल दें और थोड़ा सा शिर पर भी मलें। इससे थोड़ा सा दर्द बढ़ेगा लेकिन थोड़ी ही देर में शूल शान्त हो जायगा।

[५] पथ्यादि क्वाथ (शार्ङ्गधर म० ख० अ० २)—हरीतकी, बहेड़ा, आंवला, चिरायता, हल्दी, नीम की अन्तर्छाल और गुडूची समभाग लें। इन सबको दरदरा करके रख लें। आवश्यकता पड़ने पर १॥ तोला को १६ तोला पानी में औटा लें। जब पानी चतुर्थांश रह जाय तब छान लें और ६ माशे गुड़ डाल दें और जब गुड़ घुल जाय तब प्रातः-सायं पी लें। इसके सेवन से सर्व प्रकार के शिरदर्द नष्ट होते हैं।

वक्तव्य—मैं इसके साथ गोदन्ती भस्म का भी प्रयोग करता हूँ।

[६] मुलहठी आदि चूर्ण—मुलहठी २ तोला, सनाय २ तोला, सौंफ १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला सबको कूट कपड़छन करके शीशी में भरकर रख लें। इसकी

४-६ माशे की मात्रा गुनगुने पानी के साथ सेवन करने से दस्त साफ हो जाता है।

[७] त्रिफला का योग—त्रिफला का सूक्ष्म चूर्ण २० तोला, धनिये की मींग का चूर्ण २० तोला, बादाम का तेल २० तोला, मधु असली ८० तोला। इन सबको किसी कांच के या चीनी के बर्तन में भरकर रख दे और बर्तन का मुख बन्द कर दे। फिर २० दिनों जौ की राशि में रख दें। १५ दिन बाद निकाल ले और काम में लावे। मात्रा १-२ तोला पानी के अनुपान से प्रात-साय सेवन करे। गुण—चिरस्थाई पुराना शिरदर्द और बार-बार होने वाला प्रतिश्याय नष्ट होता है। हृदय और मस्तिष्क बलवान बनता है।

[८] शिरःशूलादिवज्र रस (भै० र० शिरोरोगा०)—शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, लोह भस्म ४ तोला, सफेद निशोथ ४ तोला, शुद्ध गूगल १६ तोला, त्रिफला ८ तोला, कूठ, मुलहठी, पीपल, सोठ, गोखरू और विडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला। पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर अलग रख ले। काष्ठौषधियो को कूट कपड़छन करके कज्जली में मिला दे। फिर शुद्ध गूगल को घी के छीटे दे दे कर इमामदस्ता में कूट-कूट कर नरम कर लें। गूगल के नरम होने पर सबको गूगल में मिला दे। इसके बाद दशमूल के काढ़े की भावना देकर ४-४ रत्ती की गोली बनाकर रख लें। मात्रा और अनुपान—२-२ गोली प्रात-साय मधु या बकरी के दूध (इसके अभाव में गाय या भैंस का दूध) से दें। इसके सेवन से सर्व प्रकार के शिरदर्द नष्ट होते है। इसका नाम शिरःशूलादि वज्र रस है। अर्थात शिरदर्द आदि नाम पर्वत है उसके लिए यह वज्र प्रहार है।

दशमूल—शालपर्णी, पृष्णपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, अरनी, अरलु की छाल, काश्मरी की छाल, पाटला की छाल और बेलगिरी ये दशमूल की औषध है। इनका काढ़ा बनाकर भावना देनी है। दशमूल की औषध ६-६ माशे ले।

[९[धान्यकादि क्वाथ—धनिया ५ माशे, उस्तखद्दूस ५ माशे, गुलबनफ्सा ५ माशे। इनको ३० तोला पानी में औटा लें। जब पानी आधा रह जाय, तब इसमे ६ माशे पर्यंत बनफ्सा डाल छानकर प्रात-साय पी ले। इससे प्रतिश्यायजनित शिरदर्द में लाभ होता है।

वक्तव्य—जब काढ़ा बन रहा हो तब उसकी भाप में यदि शिर को सेक लिया जाय तो तत्काल ही लाभ मालूम होगा।

[१०] षड्बिन्दु तैल (भै० र०)—अरंड की जड की छाल, तगर, सौफ, जीवन्ती, रास्ना, अगर, सैंधानमक, भृङ्गराज, विडङ्ग, मुलहठी और सोठ प्रत्येक १॥-१॥ तोला, तिल तैल ६४ तोला, बकरी का दूध ६४ तोला, भागरे का रस ३ सेर १५ तोला। सबसे पहले औषधियो को कूटकर दरदरा कर ले और तैल में मिला दे। फिर दूध को भी तैल में मिलाकर आग पर पकाने को रख दे। जब तैल मात्र शेष रह जाय, तब उतार लो और छानकर शीशी में भरकर रख लो।

गुण—षड्बिन्दवो नासिकया प्रदेया निहन्ति शीघ्र शिरसो विकारान्। इसकी ६ बूंद नाक में डालने से शिर शूल शीघ्र ही दूर होता है। शास्त्रोक्त गुण ये हैं—च्युताश्च केशान् चलिताश्च दन्तान् दुर्बन्धमूलाश्च दृढी करोति। सुपर्ण दृष्टि प्रतिम च चक्षुर्बाह्वोर्बलचाप्यधिक करोति।

शिर के गिरते हुए बाल रुक जाते है। हिलते दांत मजबूत हो जाते है। गरुण के समान दृष्टि हो जाती है और बाहुओ में बल बढ़ जाता है।

अनुभव—इसकी ६-६ बूंद दोनो नाक में डालने से शिरदर्द शीघ्र दूर होता है। बार-बार प्रतिश्याय का होना रुकता है। नाक के भीतर की सूजन ठीक होती है।

[११] ब्राह्मी तैल (लेखक का आविष्कृत)—ब्राह्मी का रस या काढा १ सेर, शंखपुष्पी का काढा १ सेर, भागरे का रस १ सेर, तिल का तैल १ सेर। सबको मिलाकर मन्दाग्नि पर पका लें। जब तैल मात्र शेष रहे तब उतार ले और २ तोला कपूर डाल दे। जब शीतल हो जाय तब छानकर शीशी में भर ले। इसके लगाने से शिरदर्द दूर होता है। अकाल में बालो का गिरना या सफेद होना रुकता है। इससे हृदय और मस्तिष्क बलवान बनता है। अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) और उन्माद में लाभ करता है। यह बुद्धिजीवियो और विद्यार्थियो के लिए अधिक उपयोगी है।

शिर:शूल एवं एक्युप्रेसर

श्री धीरजलाल के० पटेल (एक्यूप्रेसर थेरापीस्ट), हीराणा (अमरेली) गुजरात

—००❖००—

एक्यूप्रेसर को हम दाव चिकित्सा भी कह सकते है। यह चिकित्सा पद्धति विलकुल निर्दोष, प्राकृतिक फिर भी सरल है। मूल भारत की यह चिकित्सा-पद्धति बौद्धकाल मे जापान और चीन मे गई। अव अमरीका तथा कैनडा मे भी रोगी को स्वस्थ करने हेतु इस चिकित्सा-शैली को अपनाया जा रहा है। जिसमे न कोई दवाई, न अस्पताल, न जाच करने की मशोने-लेवोरेटरी की जरूरत। भारत जैसे अल्प विकसित एव आर्थिक रूप से पिछडे देश मे जहा ग्रामीण इलाको मे, न कोई अस्पताल है, न डाक्टर, न औषधालय की सुविधाये, जहा लोगो के पास पैसो के स्रोत भी वन्द हैं, अर्थात निरी गरीवी का साम्राज्य। ऐसे ठिकानो मे यह दाव पद्धति ही वरदात्री वनी रहेगी। यहा शिर शूल किस तरीके से मिटाया जाता है इस सम्वन्ध मे वात करेगे।

प्रयोग विधि—

एक्यूप्रेसर चिकित्सा निश्चित विंदू पर योग्य दवाव देने से काटे की भाति अखरता है। जिन विन्दूओ पर विविध रूप के दवाव से रोग सहज साध्य वना सकते है। इससे चेतना प्राणशक्ति एव रक्त परिभ्रमण नियमित होकर रुग्ण अवयवो पर आश्चर्यकारक असर होता और अवयवो की कार्य शक्ति सुचारु वनती है। रोगी दर्दमुक्त होता है। माथे के शूल मे, माथे के ऊपर के विन्दुओ को स्थानीय (लाकल) विन्दु कहते है। पाव के तलवे मे आये हुये विन्दुओ को प्रतिक्रियाजनक (रिफलेक्स) विन्दु कहते है। वहा दवाव देने से काटे की तरह अखरता है। इस अखरने को एक्यूप्रेसर मे टेंडरनेस कहा जाता है।

प्रथम आप रोगी की परीक्षा करे। पाव के तलवे मे अगूठे पर—आकृति मे वताये गये पोइन्ट पर—अपने हाथ के अगूठे से या पेन्सिल के रवर वाले छोर से दवाव देने मे यहा पीडा (टेन्डरनेस) का दर्दी को अनुभव होगा। मतलव कि माथे मे दर्द है। वाद मे अगूठे पर दर्दी सहन कर सके जितना दाव (प्रेसर) से हाथ के अगूठे, पेन्सिल के छोर अथवा वेलन के छोर को घुमाइये (रॉटेट करे)। मन ही मन १ से २० तक गिनती करे अर्थात २० सेकिण्ड तक गिनती करे अर्थात २० सैकिण्ड तक हर विन्दू पर दवाव देना है। २० सेकिण्ड पूरे होते ही झटके (झर्क) के साथ प्रेसर को छोड दे। इस तरह वताये हुए विन्दूओ पर पोइण्ट करने से वहा इकठ्ठे हुए कचरे (क्रिस्टल) अलग होकर रक्तप्रवाह के साथ मूत्रपिण्ड (किडनी) द्वारा शरीर के वाहर ढकेला जायेगा। और दर्द वाले अवयव को चेतना, प्राण शक्ति और रक्त वरावर मिलने से उस अवयव का कार्यकलाप सुधर जाता है और दर्द अपने आप विदा लेता हे। वताये गये तरीके से पोइण्ट करने से शिर शूल ५ से १५ मिनट मे गायव हो जायेगा।

मेरे अनुभव की दो बातें —

कालेज कन्या। वय २२ साल, प्रथम एलोपैथी डाक्टर ने मलेरिया की चिकित्सा दी। रुग्णा को लाभ न हुआ। आखिर मे टाईफाइड के लक्षण अनुमानित किया गया। राहत न होने से मुझे बुलाया गया। रोगी की फरयाद १२ साल से शिर शूल की थी फिवर हटता ही नही। मैंने शिर और पावके तलवे मे पोइण्ट दिये १५ मिनट मे पीडा अदृश्य। बुखार के पोइण्ट भी दिये, १० मिनट मे वुखार भी गायव ! मैंने दूसरे दिन सुवह देखा, बुखार नही था। अलवत्ता शाम को थोडा था। शिरदर्द भी था। पुन विन्दू उपचार शुरू कर दिये। ८ दिन की सतत चिकित्सा से रोगिणी रोगमुक्त हो गई।

८० वर्षीय वूढा ८ वर्ष से शिर शूल से पीडित था। सुई भोकने जैसी पीडा होती थी। एलोपैथी चिकित्सा से कोई लाभ नही हुआ। डा० ने वताया कि मस्तिष्क का ऐक्स-रे लेने के वाद चिकित्सा होगी। दर्दी गरीव था ७ दिन शिर और अगूठे मे पोइण्ट देने से रोग मुक्त हो गया।

★★

शिरःशूल—व्यक्ति विशेष एवं प्रासंगिक विवेचन

श्री फकरुद्दीन वी० कपासी आयुर्वेद छात्र (भावनगर)
दिलखुश मोडा सेन्टर, मावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात



आजकल तो देश के आयुर्वेद कालेजो से स्नातक बनकर अधिकाश स्नातक अन्य पद्धति अपनाते है। छात्रावस्था मे आयुर्वेद मे रुचि नही लेने से आयुर्वेद क्या है? ठीक से जानकारी उनको प्राप्त नही होती हे। कुछ ऐसे भी छात्र हैं, जो प्रथम वर्ष से ही आयुर्वेद की महत्ता को समझकर आयुर्वेद का भक्त बनते हैं। ऐसे ही आयुर्वेद के उपासक उत्साही आयुर्वेद छात्र श्री कपासी हैं। भावनगर (गुजरात) के आयुर्वेद महाविद्यालय मे आयुर्वेद का अभ्यास करते हैं। ज्ञान पिपासा तीव्रतर है। उन्होंने धन्वन्तरि के अनेक वृहत् विशेषाक एव लघु विशेषाक मगा लिए है, यह उनकी आयुर्वेद पिपासा है। कालेज की वक्तृत्व स्पर्धा मे प्रथम एव द्वितीय स्थान मिला है। श्री कपासी का प्रयास स्तुत्य है। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आयुर्वेद के मनीषियो द्वारा बतलाये गये ११ प्रकार के शिर शूल उसके निदान एव लक्षण से 'धन्वन्तरि' के मुज्ञ पाठक जन परिचित हैं। यहा पर बालक और माता दो विशिष्ट व्यक्तियो के शिर शूल और निदान एव पाचन परिपाटी से अलग कुछ नवीनतम निदानो से उद्भवित शिर शूल तथा उसकी चिकित्सा का क्रमश विवरण देंगे।

बालक का शिरःशूल —

प्रारम्भिक लक्षण—(आधार ग्रन्थ—काश्यप सहिता)—

(१) सर दर्द—शूल बेचैनी की वजह सोते हुए सर पर दबाव आये ऐसी तरह इर्द-गिर्द घूमना।

(२) आखे बन्द रखना या निमेषोन्मेष क्रिया बार-बार करना।

(३) खुराक या स्तन्यपान से नापसन्दी।

(४) रात को कुछ ज्यादा ही रोना।

(५) निद्रा से बिलकुल परे रहना।

* प्रकार विनिश्चय—

[अ] दर्शन परीक्षा—मुह और आखो का लाल वर्ण-युक्त होना पित्तज शिर शूल एव मुह कुछ शोथयुक्त होना कफज शिर शूल का द्योतक है।

[ब] स्पर्शन परीक्षा—सर का स्पर्श ठडा हो तो वातज या कफज शिर शूल का एव गर्म हो तो पित्तज या रक्तज शिर शूल का निदान कर सकते है।

[स] अन्य—नासिका मे कृमि, दौर्गन्ध और कण्डू का चिह्न देखकर कृमिज शिर शूल समझना चाहिए। इसके अलावा बुद्धिमान वैद्य को मौसम व बच्चे की प्रकृति को देखकर शिर शूल का प्रकार तय करना चाहिए।

बाल्यावस्था मे कफाधिक्य की वजह से सामान्यत कफज शिर शूल ज्यादा देखने को मिलता हे।

चिकित्सा —

(१) वातज शिर शूल मे सर पर तेल या एरण्डी तेल से अभ्यङ्ग करे।

(२) पित्तज शिर शूल मे दशाङ्ग लेप या घृत से मालिश करे और गौदन्ती भस्म (१/८ से १/४ ग्राम तक) उतने ही बाल चातुर्भद्र के साथ मिलाकर दूध या द्राक्षा के पानी मे देवें।

(३) वात कफज शिर शूल मे अजवायन सौठ, लौग, तज आदि द्रव्यो का पानी मे लेप बना कर भाल प्रदेश पर लगाये।

(४) कब्ज की वजह से हुए शिर शूल मे हरीतकी अश्वकचुकी आदि यथोचित मात्रा मे जल से देवे।

(५) प्रकार विनिश्चय के अभाव मे शिर शूलादिवज्र रस १/८ से १/४ ग्राम पानी से देवे व दूध मे घृष्ठित सोठ का कपाल पर लेप करे।

नोट—बालक के सौम्य होने की वजह से उसे तीक्ष्ण नस्य, धूप, लेप और तीव्र विरेचन न देवे।

सूतिका का शिरःशूल—

सूतिका का अति परिश्रम, रात्रि जागरण, क्षुधा, थकावट, शीत जल स्नान, आराम का अभाव, जाडे के मौसम मे सर पर वस्त्र को न बाधना, विवन्ध और पोषक तत्वों से वियुक्त आहार से शिर शूल होता है।

मानसिक निदान—कभी-कभी इच्छित बालक का जन्म न होने से या जन्मोत्तर मृत्यु होने से भी सूतिका को शिर शूल होता है।

चिकित्सा—

'निदान परिवर्जयेत्' के अनुसार शिर शूल के कारणो का परित्याग करके निम्नोक्त चिकित्सा प्रयोग करे—

१ प्रतापलकेश्वर रस, सूतशेखर रस चौथाई-चौथाई ग्राम और गोदन्ती भस्म आधा ग्राम मिलाकर। पानी, दशमूलारिष्ट या दशमूल क्वाथ से दिन मे ३ बार ले।

२ भाल प्रदेश पर सोठ का लेप करे।

प्रासंगिक शिरःशूल—

चश्मे के नम्बर—कभी-कभी दृष्टिदोष की वजह से पढते समय या किसी चीज पर नजर टिकाते समय शिर-शूल होता हे, कभी चश्मे के नम्बर मे परिवर्तन होने पर शिर शूल होता है। अतएव ऐसे समय मे आख का हास्पिटल से योग्य नम्बर निकलवा कर चश्मे पहनने से शिर शूल दूर होता है। वाद मे दृष्टिमाद्य की भी चिकित्सा करनी चाहिए। आजकल विद्यार्थी, चित्रकार, लेखक, स्वर्णकार, प्रोफेसर एव वैज्ञानिक आदि मे ये प्रासगिक शिर-शूल देखा जाता है।

व्यसन—चाय, कॉफी, तम्वाकू, मद्य, सिगरेट, गाजा या अफीम का सेवन करते हुए लोगो को वक्त पर उनका सेवन करने का अवसर न मिले तब उन्हे ये प्रासगिक शिर शूल होता है। कभी-कभी तो व्यसन त्याग की प्रतिज्ञा किये लोग भी शिर शूल की बजह से व्यसन की ओर लौटते हैं। यदि ऐसी अवस्था मे आत्म सयमपूर्वक क्रमश युक्ति से व्यसन त्याग किया जाय तो शिर शूल का उपद्रव नावूद हो सकता है।

दुर्गन्धी—कुछ लोगो को पेट्रोल, केरोसीन, प्याज, लसुन, हीग, अतर आदि की गन्ध से शिर शूल होता है। मल, मूत्रवहन सस्थान का सयोग, दुर्गन्धित वायु, मृत कोथित प्राणी या दर्दी का पसीना व श्वास से उड़ती दुर्गन्धादि की वजह से प्राय सभी को शिर शूल हो सकता है। यह आदत की वात है, जिसे 'एलर्जी' कह सकते हैं। ऐसे पर्यावरण से दूर रहना ही इस प्रासगिक शिर शूल की चिकित्सा है।

शिरःशूल मे सद्यः कारगर प्रयोग—

अपामार्ग क्षार, गोदन्ती भस्म दोनो ४-४ रत्ती मात्रा मे देने से ५ ही मिनट मे पसीना छूटकर शिर शूल नाबूद होता है। इससे नीद भी अच्छी आती है। यह मेरा अनुभूत प्रयोग है। इस अङ्क के विशेष सम्पादक माननीय श्री अशोक भाई तलाविया जी ने भी इसका प्रयोग असख्य दर्दियो पर किया है और इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। आयुर्वेद मे इमरजेसी नही हे ऐसा कहने वालो के लिये ये एक लाजवाव जवाव है।

शिर शूलादि वज्ररस—भैषज्य रत्नाकर का यह पेटेण्ट योग है। वच्चो को १/८ से १/४ ग्राम तक और वडो को १/४ से १/२ ग्राम तक की मात्रा मे पानी से देने से सर्व शिर शूलहर है। वटी और पाउडर (चूर्ण) रूप मे प्राप्य है। सामान्यजन को भी अपने घरो मे रखना चाहिए। जीर्ण होने पर भी खराव नही होता।

महा लक्ष्मी विलास रस (भै र)—वैसे यह रसायन एव शक्तिप्रद है, लेकिन मैंने 'सर्वशूल' एव 'शिर शूल' मे इसे अक्सीर पाया हे। प्रात साय १-१ गोली मधु से सेवन करावे। आयुर्वेदीय ए पी सी हे।

श्वास कुठार रस—शिर शूल हर औषधि मे श्वास कुठार का नस्य वहुत ही शीघ्र असर करता है। यह सर्व शिर शूल शामक होने पर भी विशेषत वातज शिर शूल का काल है। (भा प्र)

रस श्वासकुठारो यस्तस्य नस्य विशेषत।
शिर शूल हरत्येव विधेयो नात्र सशय ॥'

गोदन्ती भस्म—यह त्रिदोषशामक होने से सर्व शिर शूल नाश करती है। वच्चो के लिए यह विशेष हितकारी है, यदि कोई दवा प्राप्य न हो तो इसका पानी से सेवन वगैर किसी शका के कर सकते है। जैसा कि पहले कह चुके हैं, अपामार्ग से इसका सयोजन और भी लाभप्रद है।

वेदनान्तक रस (र त)—किसी भी वेदना के लिये अत्युपयोगी औषधि है। अत एव १ गोली (१/८-१/४ या

—शेषाश पृष्ठ १२८ पर

आधाशीशी पर आयुर्वेदीय व मन्त्र चिकित्सा

श्री प० नन्दकिशोर शर्मा वैद्य रत्न, आगर (मालवा) वाया उज्जैन (म.प्र.)





धन्वन्तरि मासिक पत्रिका के स्थायी आधार स्तम्भ एव सुप्रसिद्ध मन्त्रज्ञाता विद्वान वैद्य श्री प० नन्दकिशोर जी शर्मा भारतीय पुरातनी (प्राच्य) विद्याओ के ज्ञाता है। आप आगर (मालवा) मे युग निर्माण योजना द्वारा मा गायत्री जी की उपासना के साथ आयुर्वेदीय विद्या का प्रचार-प्रसार कर रहे है। आपने यन्त्र-मन्त्र तन्त्राङ्क भाग १-२ तथा मलावरोधाक एव सम्मोहन चिकित्साक (धन्वन्तरि) का विशेप सम्पादन किया हे जो आपकी विद्वता के द्योतक है। यहा आपने अर्धावभेदक शिर शूल (आधाशीशी) पर अनुभूत योग के साथ मन्त्र चिकित्सा दर्शायी है एव महाराजा सवाई प्रतापसिह जी रचित आयुर्वेद ग्रन्थ का कुछ राजस्थानी भाषा मे प्रयोग लिया है—बडा रोचक है। — वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

(१) जल १५ तोला, शक्कर ६ तोला मिलाकर प्रात सूर्योदय के समय सूर्य सन्मुख खडे होकर ३ दिन तक पीवे। जल व शक्कर का वजन कम ज्यादा नही होना चाहिए। आधाशीशी का दर्द दूर होता है।

(२) आक का पका हुआ पीला पत्ता तोडकर मसल कर रस निकालें और नाक मे सू घे। फिर सूरज के सामने मु ह करलै अनेक छीक आयेगी। आधाशीशी आदि सव प्रकार के सिर दर्द समूल नष्ट हो जायेंगे। जोर से सू घने से यदि मु ह मे या पेट मे आक का रस चला जाय तो कोई नुकसान नही।

(३) वैंगन मारु का पीला पत्ता भी यही गुण करता है।

अव हम जयपुर के स्वर्गीय महाराजाधिराज राजेन्द्र श्री सवाई प्रतापसिह जी द्वारा सम्वत् १८२३ मे विरचित आयुर्वेदीय ग्र थ के परीक्षित प्रयोग तथा मन्त्र लिख रहे हैं। पूर्व राजाओ मे आयुर्वेद के प्रति कितनी अगाध श्रद्धा थी, स्वय ने ग्रन्थ निर्माण किया। वर्तमान मे एलोपैथी के प्रति दास है यह प्रश्नवाचक चिह्न है ? अव हम उन्ही की भाषा मे प्रयोग प्रस्तुत कर रहे है—

१ दूध और घृत या को मिलाय नास ले तो आधाशीशी जाय। अथवा—

२ गुड, घृत (शुद्ध) के करि मालपुआ खाय।

३. अथवा—खीर खाय।

४ तिलन को सेक करावे तो आधाशीशी जाय।

५. जल भागरे का रस, वकरी का दूध ये वरावर ले इनको तावरे (धूप) से गर्म करे। पाछे याकी नस्य ले तो आधाशीशी जाय।

६ अथवा वायविडग, काले तिल दोनो वाटी (पीस कर) लेप करे तो आछी होय।

पथ्यादिक क्वाथ—हरड की छाल, वहेडा, आवला, हलदी, गिलोय चिरायता, नीम की छाल, गुड ये वरावर ले। इनको जौकुट करि याको काढो ले तो आधोमाथ, कनपटी दुखतो, नेत्र रोग जाय।

७ आधे सीप को चूनो, नौसादर इनको मिलाकर खरल कर नस्य ले तो सर्व प्रकार की सिर की व्यथा जाय।

८ मिश्री, केशर, इनको घृत मे सेके पाछे याको नस्य ले तो आधाशीशी, कनपटी को दुखवो (दर्द) नैत्रन को दुखवो ये सर्व रोग आछे होय।

९ पीपल, मिर्च, लोधा ये वरावर ले इनको महीन वट याको ३ दिन नस्य ले तो आधा शीशी जाय।

—शेषाश पृष्ठ १२८ पर

❀ शिर:शूल-सिरदर्द चिकित्सा ❀

डा० रामचन्द्र शाकल्य, आयुर्वेद चिकित्साधिकारी—शासकीय आयुर्वेद औषधालय
मु० रूपादेह (सिवनी मालवा), जि० होशंगाबाद (म० प्र०)



(१) शिर शूलान्तक रस २ गोली बकरी का दूध १ पाव के साथ प्रात-साय देने से सम्पूर्ण प्रकार के शिर शूल नष्ट होते हे।

(२) गोघृत १ तोला, सैंधा नमक १ तोला मिला-कर पिलाने से अर्धावभेदक (अधकपारी) नष्ट होता हे।

(३) शीप भस्म १ तोला, नौसादर १ तोला जल के साथ महीन पीसकर नस्य देना शिर शूलनाशक है।

(४) मुलहठी ६ रत्ती, वत्सनाभ १॥ रत्ती जल से पीसकर नस्य देना शिर शूल करता है।

(५) विडङ्गादि तैल का नस्य कृमिजन्य शिरो रोग को नष्ट करता है।

(६) घी मे भुनी केशर २ रत्ती, मिश्री २ रत्ती की नस्य देना शिर शूल, शखक, अर्धावभेदक तथा अर्धशूल नाशक है।

(७) पित्तज सिरदर्द मे—सप्तामृत लोह, आमलकी रसायन एव मुक्तायुक्त कामदुधा देना चाहिए।

(८) वातपित्तज मे—सूतशेखर स्वर्णयुक्त एव प्रवाल पचामृत का उपयोग अच्छा फल देता हे।

(९) जीर्ण रोगो मे वृ० वातचिन्तामणि एव ताप्यादि लौह विशेष रूप से उपयोगी हे।

(१०) वातिक शिर शूल मे महावातविध्वस रस एव अकीकपिष्टी और सर्पगन्धा का योग विशेष लाभकर होता है।

अर्धावभेदक पर सिद्ध प्रयोग—

(१) १०० ग्राम मिश्री को १ पाव पानी मे मिट्टी के बर्तन मे रात को गला दे। सूर्योदय से पूर्व ही यह रोगी को पिला दे। इसके पूर्व कोष्ठबद्धता आदि ठीक कर लेना चाहिए। लाभ देखा गया है।

(२) नौसादर एव अद्रक का रस दोनो मिलाकर रोगी के जिस तरफ का आधा शिर दर्द करता हो उसी नथुने मे खूब जोर से सू घने को कहिये। यदि एक बार मे आराम न दीखे तो दोबारा करावे, लाभ निश्चित होगा तथा फिर कभी दर्द नही होगा।

(३) भर्जित कुटकी का चूर्ण दो आने भर सूर्योदय से पूर्व देवे। सूर्योदय के बाद पीपलामूल, गुड एव घी मिला कर सुपारी जितनी बडी गोली बनाकर देवे। एक सप्ताह प्रयोग करावे, लाभ होगा।

(४) सूर्योदय के पूर्व मावे या मावे के पेडे मे थोडा सा देशी कपूर मिलाकर खिला दे, बाद मे गर्म-गर्म शुद्ध घी की जलेबी खिलावे।

(५) प्रयोग न० १ एव प्रयोग न० ३ के साथ यदि पथ्यादि क्वाथ का सेवन कराया जावे तो परिणाम उत्तम रहेगा।

(६) आधा पाव गुड मु ह मे लेकर प्रमुख (सेन) चौराहे पर रात को १२ बजे थोडा-थोडा खाकर थूकना चाहिए।

(७) स्वर चिकित्सा भी इसमे सहायक सिद्ध हो सकती है। इसे भी अजमाइये—

आधासीसी मे जिस स्वर के चलते समय सिरदर्द हो उसी मे साफ रुई या स्वच्छ वस्त्र ठूसकर स्वर का चलना बन्द कर दीजिये और उसी ओर की भुजा को कोहनी के ऊपर किसी कोमल रस्सी से कसकर बाध दीजिये। जब दर्द न रहे तब रस्सी का बन्धन ढीला कर दीजिये। ऐसा २-४ दिन करने से अर्धकपाली का दर्द निश्चय ही जाता रहता है।



❖ शिरःशूल और कृमिदन्त में विशिष्ट प्रयोग ❖

वैद्य आदित्य भाई पटेल, २६ रत्नापार्क सोसायटी विभाग–१,
घाटलोडिया रोड, नारायणपुरा, अहमदाबाद–६१

★★★

शिर.शूल मे प्याज की सफल चिकित्सा

शिर शूल एक दारुण एव जटिल रोग है। काफी परिश्रम करने पर भी शान्त नही होता। यह व्याधि लम्बे समय तक कष्ट देती है।

शिर शूल मे आमतौर पर वात की प्रधानता होती है। कभी-कभी वात-पित्त दोनो दोष साथ रहते है तव तो उसको काबू मे लेना वहुत मुश्किल कार्य होता हे।

मैने शिर शूलादिवज्र रस का शिर शूल मे ठीक-ठीक प्रयोग किया है फिर भी दोप के वृद्धिकाल मे यह औषधि भी कार्य नही करती।

हमको शिर शूल मे प्याज का चिकित्सा प्रयोग एक महात्मा जी से मिला। हमने अनेको वार उसका प्रयोग किया। उसके प्रयोग से शीघ्र फायदा मिला।

शिर शूल व्याधि मे प्याज के कन्द को साफ करके उसको छीलकर वारीक करे और साफ कपडे के टुकडे मे रखकर उसकी पोटली वना ले और उस पोटली से पैरो के तलवो तथा पेट पर मालिश करे। १०-१५ मिनट मालिश करने से शिर की वेदना कम होने लगेगी और थोडी देर मे शिर का दर्द गायब हो जायगा।

जहा एस्प्रो, एनासिन तथा स्टोपेक जैसी विलायती औषधियो का प्रयोग करने से कुछ न कुछ विकृति असर पैदा करती है और शिरदर्द को मर्यादित समय के लिए आराम करती हैं तथा साथ-साथ हमेशा ये गोलिया लेने की आदत-सी वन जाती है। यह वहुत भारी नुकसान-दायक भी है।

इन गोलियो के वदले प्याज का रस पैर के तलवो पर मालिश करने से एक सरल, घरेलू एव फलदायी इलाज प्राप्त होता है। यह एक चमत्कारिक परिणाम देने वाला प्रयोग है।

कभी-कभी शिर शूल नष्ट होते ही रोगी को नीद भी आ जाती है। यह प्रयोग ज्वर को उतारने मे भी बेजोड है। प्याज का रस पैरो के तलवो तथा पेट पर मलने से बुखार जल्द उतरने लगता है।

दन्तकृमि पर कण्टकारी का प्रभाव

दातो मे सडन होने पर उनमे कृमि पैदा होते है, जिनके कारण दातो मे से रक्त निकलता है एव दातो मे शूल होता है।

दातो के कृमियो के नाश के लिए अनेक प्रकार के दन्त-मजनो के प्रयोग करने पर भी दातो मे होने वाले कृमियो का नाश सम्पूर्ण रूप से नही होता और दातो का दर्द यदा-कदा चालू ही रहता है। दन्तकृति और दन्तशूल का नाश करने के कार्य मे कण्टकारी अद्वितीय कार्य करती है। इस चिकित्सा का प्रयोग निम्नदर्शित है जिसका लाभ उठावे—

कण्टकारी दशमूल की वनस्पति है। पच लघुदशमूल मे इसकी गणना होती है। कण्टकारी के सर्व अङ्गो मे काटे होने से इसका नाम कण्टकारी पडा है। यह दैगनी फूल की जमीन पर फैलने वाली लता सदृश है।

इस पर बैगन के पौधे की भाति गोल और बैगन से छोटे फल लगते है। ये फल कच्चे होने पर हरे रग के और पकने पर पीले रग के होते हे। ये फल आकार मे छोटे नीवू जैसे होते है। इसके डठल मे सर्वत्र छोटे-छोटे काटे होते हे। कण्टकारी के पके फलो के वीजो को चिकित्सा मे लिया जाता है।

कण्टकारी के पक्व फलो के वीजो को लेकर उनको तैल मे सिक्त किया जाता है। वाद मे मिट्टी की एक छोटी मटकी लेकर उसके पैदे मे दो इञ्च त्रिज्या का गोल छेद करे। मटकी का मुख जमीन पर उल्टा टिकावे। मटकी के पार्श्व मे लोहे की कछली जा सके ऐसा छेद

बनावे। लोहे की कछली को अग्नि मे बराबर गरम करे। जब कछली खूब गरम हो जावे तब उसके पृष्ठ भाग पर तैल मे भिगोये हुए कण्टकारी के बीज डाले और उस कछली को मटकी के पार्श्व वाले भाग के छेद से मटकी के अन्दर दाखिल करे। कछली गरम होने से कण्टकारी के बीजो मे से धुवा निकलेगा। मटकी के पैंदे के गोल छेद मे से धुवा बाहर निकलना शुरु होगा। उस समय मुह को खोल कर धुवा दातो पर बराबर लगता रहने दो। मटकी के अन्दर जमीन पर पानी से भरी हुई कटोरी मे मुह मे से लार टपकने दो। इस तरह ६-१० मिनट तक दातो पर धुवा लगे, ऐसा करते रहे और मुख मे से लार कटोरी मे गिरती रहने दो। पानी की कटोरी मे दातो के कीडे निकल कर गिरेगे। दातो मे से कीडे निकल जाने पर फिर कभी दातो मे दर्द या शूल नही होगा। यह चिकित्सा शत-प्रतिशत फलदायी है, इसमे कोई शका नही है। भारत मे सर्वत्र पैदा होने वाली इस वनस्पति का चिकित्सा प्रभाव चकाचौध करने योग्य है।

आशा है वैद्य समाज इसका दातो के कृमि निष्कासन हेतु चिकित्सा मे प्रयोग करके लाभ उठाकर यश की प्राप्ति करेगे।



[पृष्ठ १२४ का शेषाश]

शिर शूल-व्यक्ति विशेष एव प्रासगिक विवेचन

१-२ रत्ती) पानी, मधु, दूध या नागरवेल के पत्र के साथ चबाने को दी जाती है।

कल्पतरु रस—सामान्यत शीत ज्वर, विषम ज्वर मे उपयोगी है, लेकिन 'नस्येनावश्येव हरीत शिवोर्गति कफ वातजान्। भा प्र मध्य ज्व ३६२' के अनुसार इसका नस्य कफवातज शिर शूल मे देते है।

निद्रोदय रस—वेदना शमन का एक उपाय निन्द्रा है, अत टैन्क्वलॉइझर के रूप मे देते है।

पथ्यादि क्वाथ—शिरो रोग एव नेत्ररोग के लिये प्रशस्त है।

पथ्याऽक्षधात्री रजनी गडूचीभूनिम्बनिम्बै सगुड कषाय।
भ्रूशङ्ख कर्णाक्षिशिरोऽर्धशूलनिहन्ति नाशानिहित क्षणेन॥
(भा प्र म ख शि चि श्लो ५७)

अर्थात हरड़, बिभीतक, आमलकी, हल्दी, गुडूची, किराततिक्त, नीम की अन्त त्वक के क्वाथ मे गुड को मिलाकर नस्य लेने से भौह, आख, शङ्ख, कान एव आधे सर का तीव्र दर्द क्षण मे दूर होता है। करीब ५ से ७ दिन तक पान करे एव नस्य लेवे।

त्रिफलाचूर्ण—उर्ध्वजत्रुगत रोगो मे श्रेष्ठ है। त्रिदोष शामक, विरेचक एव नेत्र हितकारी होने से शिर शूल की परमौषधि है।

कायफल चूर्ण—घ्नेय कटफल चूर्णम्। कटफल के चूर्ण को सू घना-ऐसा शिरोरोग के लिए विधान है। इसका महर्षि चरक ने 'वेदनाहर दशेमानि' मे उल्लेख किया है। इसका ताजा सूक्ष्म चूर्ण कफघ्न एव शूलघ्न है। इसका नस्य एव लेप मे भी प्रयोग करते है।

सोठ को गुड के साथ खाने से, दूध मे पीसकर लेप करने से या स्वतत्र चूर्ण का नस्य लेने से सर्व प्रकार के शिर शूल दूर होते है।



[पृष्ठ १२५ का शेषाश]

आधाशीशी पर आयुर्वेदीय व मन्त्र चिकित्सा

मन्त्र चिकित्सा—

प्रत्येक मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को निम्न मन्त्र [illegible] अनुसार जप कर लेना चाहिये। इसके पश्चात शनिवार के दिन २१ वार पढकर हर वार माथे पर फूँकने से आधाशीशी निश्चय जाय—

(१) ॐ [illegible] [illegible], जा जारे पापनी, जा जारे [illegible], [illegible] पापनी, नही जाय तो तेरा गुरु जी आज्ञा, हनुमत वा[illegible]नी, आज्ञा, गुरु पावणी आज्ञा, मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

(२) ॐ नमो आधाशीणी, हूहूकारी, परहपचारी, मुखमुद। वाढलैजारी, * अमुकरि सीस रहे, मुख महेश्वर की आज्ञा फुरै, ॐ ठ ठ स्वाहा।

* अमुक की जगह रोगी के नाम का उच्चारण करे।

★★

※ हृदयाधरिक क्षेत्रीय शूल से रोगों का सापेक्ष निदान ※

वैद्य बलदेवप्रसाद एच० पनारा आयुर्वेद विशारद, ई. एम आई एस,
डिस्पेन्सरी नं० १८, क्वार्टर नं० बी–१, मनमोहन सोसायटी के पास
सरसपुर, अहमदाबाद–३८००१८ (गुजरात)

★★★

हम यहां आमाशय क्षेत्रीय (Epigastric region) शूल के आधार पर उदर के भिन्न-भिन्न रोग का सही निदान हो सकता है, उसके बारे में चिकित्सोपयोगी मार्गदर्शन हमारे २७ वर्षीय चिकित्सानुभव के आधार पर प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है कि चिकित्सकगण इससे लाभान्वित होंगे।

यहां प्रस्तुत सभी दर्दों में शूल को प्रधानतया लेकर उसकी विशिष्टता किस रोग में कैसी होती है, यह बताकर साथ में निदान-सहायक प्रधान लक्षण दिये हैं जिससे व्याधि का विनिश्चय हो सके—

(१) आमाशय क्षतव्रण शूल—विशेष लक्षण—आमाशय (Stomach) में क्षतव्रण (अल्सर) होने पर भोजन के बाद पेट में गोल घूमता हुआ शूल (दर्द) होता है, जब तक खुराक आमाशय में रहे, उस समय तक रहता है। सहायक प्रधान लक्षण—उदर (आमाशय) से खुराक ग्रहणी में चली जाय तब तक शूल रहता है। जो बाद में पीठ तक फैलता है। आमाशय में जलन होती है, उदर गौरव होता है, शूल-पीड़ा रात्रि को अधिक होती है और यह शूल स्वर्जिका क्षार (सोडाबाई कार्ब) के प्रयोग से शान्त होता है।

(२) ग्रहणी क्षतज शूल—विशेष लक्षण—भोजन लेने के २-३ घण्टे बाद खुराक परिपाक होते समय ही उदर शूल होता है जो कुछ खा लेने से शान्त हो जाता है। सहायक प्रधान लक्षण—शूल प्राय रात्रि को ही होता है, मन्दाग्नि व अम्लाविदग्धता का वृत्तान्त, शूल नाभि प्रदेश तक फैलता है।

(३) आमाशय छिद्रयुक्त क्षतज शूल—विशेष लक्षण—उदर में यकायक दारुण शूल-पीड़ा, हृदयाधरिक (Epigastric) क्षेत्र में निरन्तर दर्द रहना, जो बाद में पूरे पेट में फैलता है। सहायक प्रधान लक्षण—उदर में क्षत की जगह कठिनता या मृदुता (स्पर्श सह्य न होना), आघात व दबाव में दर्द में वृद्धि।

(४) आमाशय कैंसरजन्य शूल—विशेष लक्षण—आमाशय में कैंसर होने पर उदर में प्रथम शूल-दर्द होता है (गांठ ग्रन्थि-सी लगती है)। दर्द स्कन्ध और पीठ (पृष्ठ) में होता है। भोजनोत्तर स्थिति अधिक खराब होती है। ग्रन्थि की जगह पर दबाने पर दर्द बढता है। सहायक प्रधान लक्षण—आमाशय में खुदाई होने जैसा तीव्र शूल-कैंसर ग्रन्थि की जगह पर होता है। साथ ही उस स्थान पर स्पर्श असह्यता (मृदुता) होती है। मन्दाग्नि-अरोचक, रक्तवमन, पाण्डु, कृशता व अल्प अम्लपित्त होता है।

(५) आमाशय के तीव्र शोथजन्य शूल—विशेष लक्षण—आमाशय के तीव्र शोथ में हृदयाधरिक (आमाशय का निचला हिस्सा) प्रदेश में आमाशय बढा हुआ मालूम होता है। उदर विस्फार में शूल-दर्द बना रहता है। सहायक प्रधान लक्षण—आमाशय की सूजन में मृदुता (स्पर्श असह्यता), आमाशय में निरन्तर गुरुता, आध्मान (अफारा), उत्क्लेश, वमन (छर्दि) व उदर पर सूजन (उत्सेध) दीखता है।

(६) आमाशय के जीर्ण शोथ में—दर्द प्राय विशिष्ट नही होता, सताप (दु ख-दर्द) का अनुभव, भोजन के बाद उदर में अधिक बोझ लगना, घबराहट होना, आमाशय के स्थान पर दबाने से पीडा (दर्द) होना, पूरे पेट मे धीरे-धीरे दर्द होना।

(७) स्वादुपिंड (अग्न्याशय) के जीर्ण शोथज शूल—विशेष लक्षण—आमाशय के नीचे के हिस्से मे प्राय पीडा (शूल) रहती है। दर्द हृदयाधरिक (एपिगेस्ट्रिक) प्रदेश मे तीव्र रूप से होकर मध्य से बाई ओर बढता है। सहायक लक्षण—प्राय दर्द के लक्षण अस्पष्ट होते है।

फिर भी उत्क्लेश, उल्टी (वमन) होना, कामला या पाड व पेशाब का दर्द होना हो सकता है।

(८) आमाशय की विषजन्य सूजन से शूल—विशेष लक्षण—मुख, कण्ठ व आमाशय मे अत्यन्त तेज शूल-दर्द होना। सहायक लक्षण—इसमे रुग्ण द्वारा किसी न किसी प्रकार का जहरी (विषाक्त) पदार्थ खा-पी लेने का वृत्तान्त मिलता है। निगलने मे तकलीफ, लार टपकना, तीव्र उल्टी (वमन) या उत्क्लेश होना, अतिसार होना।

(९) पित्ताश्मरी शूल—विशेष लक्षण—हृदयाधरिक (आमाशय के निम्न) प्रदेश मे खास करके दाहिनी पार्श्व मे तीव्र शूल (दर्द) होता है। सहायक लक्षण—अम्लपित्त व पित्तज शूल का वृत्तान्त, उत्क्लेश (जी मिचलाना) तथा उल्टी (छर्दि) होना।

(१०) स्वादुपिंड के रक्तस्रावयुक्त तीव्र शोथज शूल—विशेष लक्षण—आमाशय के नीचे पेट के ऊपरी हिस्से मे यकायक अत्यन्त तीव्र दर्द होना। सहायक लक्षण—यकायक मूर्च्छित या मरणासन्न हो जाना, आघात लगना, वमन होना, कब्जियत, शरीर एकदम ठडा हो जाना और रक्त मे श्वेतकणो की वृद्धि (Leucocytosis)।

(११) मेरुदण्ड-कशेरुका-क्षयज शूल—विशेष लक्षण—उदर मे असह्य तत्कालीन चिकित्सा करने जैसा शूल होना, तीव्र (तेज) उदर दाह, दर्द, उदर मे मरोड सा दर्द। सहायक लक्षण—यकायक जी मिचलाना, बेचैनी, उसके तुरन्त बाद कै होना, शरीर पीला-फीका हो जाना, शीत पसीना आना, नाडी (नब्ज) छोटी-पतली दीखना, फिरग (सिफलिस) का इतिहास, पादस्नायु की गतिहीनता।

(१२) स्वादुपिंड के कैंसरजन्य शूल—विशेष लक्षण—आमाशय के नीचे समय-समय पर रोग का गम्भीर गहन, दर्द (शूल) युक्त हमला। सहायक लक्षण—प्राय यह दर्द प्रौढो को (मध्य वय के बाद) होता है। कामला, जी मिचलाना, कै, द्रुत गति से कृशता (दुबलापन)।

(१३) तीव्र उदर शूल—विशेष लक्षण—कुछ भी श्रम करने के बाद उदर मे शूल का गम्भीर नियमित हमला। सहायक लक्षण—(हृदय और उदर के बीच मे रहने वाले) मणिपुर चक्र का अति तेज गति से फडकना, आध्मान (अफारा), आवेग-आक्षेप, अन्य उदर शूल के चिह्न और दर्द के मारे जान निकल जाने का डर।

(१४) आमाशय रसस्रावाभावज शूल (Achylia gastrica pain)—विशेष लक्षण—कई रोगियो मे हृदयाधरिक (आमाशय के नीचे के) प्रदेश मे आमाशय मे खुराक पडी हो तब तक तीव्र शूल-पीडा होना। सहायक लक्षण—कै, मुह मे छाले पडना, अतिसार, घातक पाडु, आमाशय (होजरी) का कैंसर।

(१५) रक्ताधिक्यता जनित हार्टफेल मे शूल—विशेष लक्षण—आमाशय के क्षतव्रण (अल्सर) मे होता है, वैसा ही (सीने मे दिल के बाईं ओर) तीव्र शूल होता है। सहायक लक्षण—(सीने मे) जहा दर्द होता है, उस जगह का स्पर्श भी सह्य नही होता (मृदुता), जरा से श्रम या हिलने-डुलने से तुरन्त दिल के शूल मे वृद्धि होना व सोये रहने पर आराम मिलना।

शूल शामक अनुभूत प्रयोग

वैद्य छोटेलाल वर्मा आयु० भिषक्, सर्वजन हितकारक औषधालय, तालग्राम (फर्रुखाबाद)

(१) मक्कल शूल—मद्य मे अहिफेन घोलकर योनि मे पिचु धारण करावे तथा यवक्षार गर्म जल से खिलावे, सद्य फलप्रद है।

(२) दन्त शूल—कत्था, सफेद फिटकरी, मकोय सूखी, पोस्त के डोडे, बबूल छाल, वायविडङ्ग, तोमर बीज, अजवायन देशी, सोठ, पियावासा समान भाग लेकर पानी मे उबाल कर गरारे करे।

(३) नेत्र शोथ एव शूल—गेरू, रसोत, हरड, सोठ, अफीम मिला जल मे पीसकर साधारण गर्म करके लेप करने से अतीव लाभ होता है।

सूर्यावर्त की अनुभूत सफल चिकित्सा

डा० वेदप्रकाश गुप्ता B I M S, वैद्य वाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य
२७५ गुलमोहर एन्क्लेव, नई दिल्ली–११००४९



वैद्य श्री वेदप्रकाश जी गुप्ता भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान हे। आप वर्षों से "धन्वन्तरि" मासिक पत्रिका को अपनी मानकर सर्वाङ्गीण सहायता करते आ रहे हैं। आप भूतकाल मे सनातन धर्म प्रेमगिरि आयुर्वेद कालेज लाहौर एव आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय दिल्ली के प्राध्यापक एव सेठ लक्ष्मणदास आयु० अस्पताल लाहौर तथा जैन धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय दिल्ली के प्रधान चिकित्सक थे। वर्तमान मे आप आयुर्वेदीय सामाजिक कार्यकर्ता के रूप मे अखिल भारतीय आयुर्वेद पत्रकार सघ नई दिल्ली के प्रधानमन्त्री, अखिल भारतीय आयुर्वेद प्रचारक सघ लखनऊ के वरिष्ठ उपाध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन पटना के वरिष्ठ उपाध्यक्ष एवं अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन दिल्ली के कार्यकारिणी सदस्य हैं। आप डाबर इण्डिया लि० नई दिल्ली के चिकित्सक परामर्शदाता हैं। आपके अनेको लेख प्रकाशित हो चुके हैं। मैं आपसे अपेक्षित हूँ कि आप बार-बार धन्वन्तरि को सहयोग करते रहेंगे।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज।

१९६२-६३ मे मुझे सूर्य निकलने पर बाईं ओर शिर मे शूल आरम्भ होकर दोपहर तक तीव्र हो जाता था। यह तीव्रता ३ घण्टे तक रहती थी, उसके पश्चात् शनै-शनै कम होकर सूर्यास्त के १ घण्टा पश्चात् शान्त होकर शिर मे भारीपन रहता था। इसकी चिकित्सा दो वर्षों तक करवाता रहा, वेदनाशामक औषध से कुछ क्षण लाभ रहता था परन्तु रोग निरन्तर समय पर होता रहा।

शूल नेत्र-नासा के ऊपर और कर्ण के पार्श्व तक होता था (सर्वे एव शिरोरोगा सन्निपात समुत्थिता) रोग के कारण शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी।

सूर्योदय या प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुव रुक समुपेति गाढा-
विवर्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्ती विनिवर्तते च।

—उ० सु०

अर्थात्—यथा सूर्यो वर्धते तथा वेदना प्रवृद्धा भवति।

अंधेरे कमरे, शीत स्थान पर आंखे बन्द कर लेने से कुछ शान्ति सी प्रतीत होती थी (शीतेन शान्ति लभते)। जैसे-जैसे सूर्य चढता है, वैसे-वैसे ही स्रोत सकुचित हो स्रोतो का मार्ग रुक जाता है जिसके कारण क्रमश शूल बढता जाता है।

अकस्मात मुझे किसी सामाजिक कार्य मे हिसार जाना पडा। वही पर सर्वश्री सदाराम कलियाराम (औषधि विक्रेता) ने दोपहर को भोजन का निमन्त्रण दिया, जिसको मैंने अस्वीकार कर दिया। कारण पूछने पर जब कारण बताया तो हसकर कहने लगे कि एक ही दिन मे यह रोग सदा के लिए चला जायेगा। मुझे विश्वास नही हो रहा था, क्योकि बडे-बडे सिद्ध चिकित्सको के प्रयोग कर चुका था। उन्होने विश्वास यह कह कर दिलाया कि पारिवारिक सिद्ध अनुभूत योग है, सेवन करने पर ही इसके प्रभाव का पता लगेगा।

वे मुझे अपने घर ले गये और औषधालय मे तीन पुडिया बनाकर मुझे दे दी। भोजन के पश्चात् कोई एक घण्टा बीत जाने पर एक मात्रा गरम पानी से दी। औषधि का प्रभाव यह हुआ कि जो स्रोत सकुचित हो रहे थे, वह सामान्य स्थिति मे आ गये। शूल भी समाप्त हो गया। एक पुडिया रात्रि को तथा एक पुडिया प्रात सूर्योदय से पूर्व गरम पानी से ही लेने को बताया। ऐसा ही किया। शूल शान्त हो गया परन्तु भृकुटि के ऊपर शख प्रदेश मे भारीपन रह गया। तभी मेरे मित्र ने बिशे-

पश्च डा० कपूर ने मुझे सेक करने तथा आखो मे आर्जी-रोल डालने को बताया, रोग नष्ट हो गया।

रोग परीक्षा—

[१] प्रकोप समय—सूर्योदय के समय।

[२] व्याधि दोष—लक्षणानुसार वर्गीकरण-शूल वात प्रधान, वाई ओर की नासा, भृकुटि, शख प्रदेश मे दोपहर के समय शूल तीव्रता--पित्त।

[३] रोग की प्रारम्भिक अवस्था—सूर्य निकलते ही शिर मे भारीपन होना।

[४] रोग अधिष्ठान—वाई ओर शिर मे, आख, कान, नासा।

[५] वेदना की अनुभूति—सूर्य की वृद्धि से वढती व सूर्यास्त मे कमी।

[६] पचज्ञानेन्द्रिय परीक्षा—स्पर्श द्वारा (वेदना वाले स्थान मे) कुछ ऊचा।

[७] वर्ण भेद—नेत्रो मे रक्तिमा।

चिकित्सा क्रम—

शूल वाले स्थान पर स्वेदन (लेप द्वारा) एव दोषो को सामान्य करने के उपाय—

[१] नाक-कान मे षड्बिन्दु तैल—नाक मे इतना डाले और ऊपर चढावे कि नाक द्वारा जमी हुई श्लेष्मा वाहर आ जाय। इसे रात्रि और प्रात काल करे।

[२] नेत्रो मे सूर्योदय के पूर्व ही नेत्रविन्दु डाले।

[३] दवा की एक मात्रा गरम पानी से दे।

[४] नासा के ऊपर भृकुटि और शख प्रदेश पर सेक।

योग—गोदन्ती हरताल भस्म २५० मि ग्रा, कपर्दिका भस्म २५० मि ग्रा, प्रवाल भस्म २५० मि ग्रा। तीनो को मिलाकर तीन पुडिया वना ले। इसे गरम जल से सूर्योदय से पूर्व, सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त हो जाने के पश्चात् दे।

औषध आहार से पूर्व और आहार के १ घण्टा वाद ही दे। रोग सन्निपातज होता है, अत सिद्धान्त से वात कफ का पहिले शमन करना चाहिए, उसके पश्चात् ही वात-पित्त का।

[१] गोदन्तीहरताल भस्म—पित्तविकार, अम्लपित्त, ज्वर, विषम ज्वर, पित्तदोष वृद्धि मे उसके द्वारा उत्पन्न रोगो मे उत्तम लाभ करती है। पित्तज्वर, आमज्वर, शिर शूल (वातपित्त), प्रतिश्याय, अर्धावभेदक, विवन्ध, विषम ज्वर मे विशेष हितकर है।

[२] कपर्दिका भस्म—अजीर्ण, सग्रहणी, अग्निमाद्य, आम, यकृत-प्लीहा वृद्धि, उदरशूल, गुल्म, आध्मान, परि-णाम शूल, कान से पीप आना (कर्णस्राव)। पित्तदोष को कम करने का विशेष गुण है। अन्नद्रव शूल, वातपित्त दोषो को सामान्य करता है।

कदुष्णा दीपनी वृष्या तिक्ता वातकफापहा।

[३] प्रवाल भस्म—क्षय, पित्त विकार, विष को दूर करता है, शुक्रवर्धक है, दीपन है, आमाशय के शूल को दूर करता है। इसका प्रभाव शामक-वृहण प्रसादन होने के कारण भिन्न-भिन्न रोगो मे प्रयोग किया जाता है। पित्त प्रधान या अनुवन्धजन्य ज्वर-दाह, तृषा, शीर्षशूल, निद्रानाश, भ्रम।

तीनो औषधियो का मिश्रण वात नाशक, पित्त दोष शामक, कफ को सामान्य करता है अर्थात् त्रिदोष का नाश करता हे।

सूर्यावर्त में पथ्य-अपथ्य—

पथ्य—शालि वा साठी चावल, पटोलपत्र या पर-वल, करेला, वथुआ, दूध, घी, मीठा अनार, आवला, आम का सेवन करना चाहिए।

अपथ्य—वेगावरोध, अजीर्ण अनिद्रा, दिन मे शयन नही करना चाहिए।

:०()०

❋ फिरंगज महाधमनी शोथज शूल ❋

आयुर्वेद बृहस्पति आचार्य महेश्वर प्रसाद प्राणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, आयु० सम्राट,
आचार्य—डा० महेश्वर विज्ञान भवन, मङ्गलगढ (समस्तीपुर)
प्रिंसीपल–महात्मा गाधी आयु० महाविद्यालय, बैनी (दरभगा)

—✶❖✶—

सन्निकृष्ट कारण—फिरङ्ग से पीडित स्त्री से पुरुष या फिरङ्ग से आक्रात पुरुष से स्त्री सम्भोग करने अथवा परस्पर देह का सम्पर्क रखने से यह व्याधि हो जाती है। इस व्याधि को उत्पन्न करने मे 'ट्रेपोनीमा पेलिडम' या 'स्पायरोकीटा पेलिडा' के सक्रमण की प्रमुखता रहती है। आचार्य भावमिश्र ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि फिरङ्गिणियो के साथ मैथुन करने और उनके शरीर के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क करने से यह व्याधि उत्पन्न होती है। इस तथ्य को उन्होने 'फिरङ्गिण्या प्रसङ्गात' वाक्य से व्यक्त किया है। यथार्थ वात यह हे कि फिरङ्ग व्याधि अपने राष्ट्र भारत मे नही थी। जव फिरङ्गी अर्थात पुर्तगाली यहा आये तो उनकी स्त्रिया कुत्ते बिल्ली की तरह मैथुन कर्म मे स्वतन्त्र थी, जिस पुरुष से चाहती उन्हे प्रलोभित कर सम्भोग कर लेती थी। इन्ही पुर्तगाली फिरङ्गी स्त्रियो से यह व्याधि भारतीय पुरुषो और फिर उनसे भारतीय नारियो मे फैल गयी। वशानुगत फिरगज विष एव विजातीय सक्रमित द्रव्यो से भी यह व्याधि उत्पन्न होती हे जिसमे वशपरम्परानुगत फिरग सक्रमित रज-वीर्य का प्रमुख हाथ होता है।

विप्रकृष्ट कारण–यह व्याधि गर्मी तथा वर्षा के दिनो मे अधिक प्रसरित एव प्रस्फुटित होती है क्योकि गर्मी एव वर्षा मे ही पुरुषो अथवा स्त्रियो की कामना अपेक्षाकृत अधिक जगती है तथा वे अधिकाधिक वासनाओ१ मे प्रवृत्त होते है। यह व्याधि पुरुषो को अधिक होती है।

व्याधि सम्प्राप्ति एव विकृति–यह व्याधि सामान्यतः महाधमनी चाप(२) और उसके आरोही(३) भाग जो लसवाहिकाओ(४) से विशेष सम्भरण किया हुआ रहता है, मे उपस्थित रहती है और कभी-कभी महाधमनी कपाटो से २ ५ से ५ से भी ऊपर पायी जाती है तथा तव ऊपर और नीचे की ओर प्रसरित होती हे। कदाचित महाधमनी के अन्य भाग भी व्याधि पीडित हो सकते है। चिकित्सा शास्त्र के वैज्ञानिको ने सूक्ष्म जाच करके यह तथ्य पता लगाया है कि स्पाइरोकीटा पैलिडा(५) नामक फिरङ्ग के कीटाणु मध्यस्थानिक लसीका प्रवाह मे पहुँचने के लिए फुपफुसीय रक्तवाहिनी शय्या से लसवाहिकाओ मे छन जाते है। वहा से ये महाधमनी की वाहिकावहा(६) के परिवाहिका लसीका७ अवकाशो (क्षेत्रो) मे होकर भ्रमण करते है।

प्रारम्भिक परिवर्तन वाह्य रूपमे दीख पडते हे। वाह्य भाग से मध्य भाग तक शोथ फैल जाता है। इस प्रकार स्पष्ट परिवर्तन न केवल वाहिकावहा के साथ उपलब्ध होता है, वरन् परिवाहिका के साथ भी। वाहिकावहा बहुधा उतकक्षय (परिगलन) सदृश गम्मामय(८) विक्षतियो(९) के साथ लसीकाभ और प्लाविक(१०) कोशिकाओ के एकसचय द्वारा आवृत्त रहता है। वाहिका की अवकाशिका(११) अन्तस्तर के प्रचुरोद्भवन(१२) के कारण विलुप्त हो जाता है, इस प्रकार वाहिकावहा की अवकाशिका यथा—लोपक अन्तर्धमनी शोथ(१३) शनै-शनै लोप होने लग जाती है। परिणामस्वरूप महाधमनी का सवर्धन माध्यम जिसमे मास-

(१) ग्राम्यधर्म, मैथुन सम्भोग, (२) Arch of aorta, (३) Ascending, (४) Lymphatics, (५) Spirochaeta Paleda (६) Vasa Vasorum, (७) Perivascular lymph, (८) Gummatous, (९) lesion, (१०) Plasma, (११) lumen of the vessel, (१२) proliferation of intima. (१३) Endarteritis obliterans.

पेशीय प्रत्यास्थ ऊतक रहता है, पोषण के अभावसे पीड़ित हो जाता है। इस प्रभाव से वाहिका के पेशीय प्रत्यास्थ तत्व का विनाश हो जाता है। स्पाइरोकीटा पैलिडा नामक कीटाणु [illegible] तक क्रियाशील रहते हैं और इस प्रकार विकृति प्रगामी रहती है। विरोहण प्रक्रम धीमी रहती है। कोई पुनर्जनन नहीं होता है तथा तन्तुमय ऊतकों के प्रतिस्थापन द्वारा विरोहण होता है। समीपवर्ती संयोजक ऊतकों से उद्भूत तन्तु कणमय प्रचुरोद्भवन होते रहते हैं। [illegible] सम्वर्धन माध्यम में धब्बा या चित्ती जैसी अनियमित [illegible] ऊतक निर्माण का निर्देश करता है। इन क्षेत्रों पर पूर्ण आच्छादित अन्तःस्तर की क्षतिपूरक स्थूलता रहती है। मृदु अन्तःस्तर धीरे-धीरे अनुदैर्घ्य वलियों में प्रक्षेपित हो जाता है तथा पर्वित, स्थूल, सकुंचित एव विशिष्ट नागाकार व्रणचिह्न प्रकट होता है। किसी प्रकार का अपजनन या कैल्सीकरण नहीं होता है।

पूर्वरूप एवं लक्षण –

पूर्वरूप— व्याधि के प्रारम्भ में श्रम से श्वास कष्ट एवं उरोस्थि में हल्का दर्द होता है। कभी व्याकुलता तथा कभी शरीर में ऊष्मा उत्पन्न होने सदृश प्रतीति होती है।

रूप (लक्षण)—श्वास कष्ट, उच्च प्रत्यास्थ उरोस्थि में मन्द पीड़ा, मुख मण्डल काला और मलीन हो जाता है तथा शरीर में कहीं भी फिरङ्ग व्रण की उपलब्धि होती है। [illegible] करने पर लगभग ८५% रोगियों में [illegible] उपलब्ध होता है।

[illegible] परीक्षा करने पर प्रारम्भ में [illegible] मर्मर या [illegible] का निर्देश करती है। [illegible] की अवस्था [illegible] के लक्षण प्रकट होते हैं। [illegible] (फिरङ्गज [illegible]) [illegible]

ही रह पाती है। व्याधि के निम्नलिखित उपद्रव दृष्टिगोचर होते है—

(१) हृद् ऐन्यूरिज्म—इस घातक उपद्रव के उत्पन्न होते ही रुग्ण व्यक्ति का जीवन मात्र ४ वर्ष ही चल सकता है। इसमे हृदय अधिक विकृत हो जाता है और उसकी क्रिया प्राय असन्तुलित एव अनियमित हो जाती है। इसे शीघ्र दूर करना चाहिए।

(२) रक्ताधिक्य हृद् निपात—हृदय मे रक्त प्रवाह द्वारा रक्त की अधिकता होने से हृद् निपात की स्थिति आ जाती है जो अति भयङ्कर एव महाघातक है। आशुकारी चिकित्सा द्वारा ऐसा प्रवन्ध करना चाहिए कि इस प्रकार की स्थिति आने ही न पावे। व्याधि की शीघ्र सम्यक् चिकित्सा करे।

(३) हृद् शूल का तीक्ष्ण प्रयास—यह उपद्रव भी भयानक है। अतएव उपर्युक्त व्याधि की प्रभावशाली चिकित्सा करके उपद्रव को समीप फटकने ही नही देना चाहिये। किंतु यदि उपद्रव आ धमके तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

(४) महाधमनी असमर्थता— इस उपद्रव के उत्पन्न होते ही अल्प श्रम करते ही श्वास कष्ट, उदास (ग्लान) काला मुखमण्डल, प्रस्पन्दन की अनुभूति—प्रारम्भिक डायस्टोलिक मर्मर—वाम निलय की अतिवृद्धि, ग्रीवा की स्पन्दनशील धमनिया और एक निपातित नाड़ी सामान्यतः महाधमनी असमर्थता के लक्षण प्रकट करने लग जाते है। जीर्णता प्राप्त करने पर वाम निलय की क्षति अपूर्ति के कारण प्रवेगी श्वास कष्ट या यहा तक कि हार्दिक दमा उत्पन्न होते है। हृदय की अति वृद्धि फिरङ्गज महाधमनी शोथ मे निगमत होती है तथा असमर्थता मे प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। प्रारम्भिक डायस्टोलिक मर्मर की ध्वनि प्रायः महाधमनी क्षेत्र के ऊपर हृदय के अग्र सिरे की ओर [illegible] सुनाई पड़ती है। इस उपद्रव के उत्पन्न होने से पहले ही इस व्याधि की चिकित्सा कर लेनी चाहिये।

साध्यासाध्यता—

उपर्युक्त उपद्रवों की अनुपस्थिति रहने पर यह व्याधि [illegible] है तथा [illegible] रूप मे भी साध्य है किन्तु

जीर्ण एव जटिल अवस्था मे तथा उपर्युक्त उपद्रवो की उपस्थिति मे असाध्य है ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—

चिकित्सा सूत्र—विरेचन देकर कोष्ठो की शुद्धि करे प्रबल फिरङ्गनाशी चिकित्सा हानिप्रद है, अत ऐसा न करें । सामान्य और निरापद फिरगनाशी औषधियो से कुल विकृतियो को दूर करे । साथ ही आहार विहार पर व्याधि के हित के अनुसार यथावश्यक नियन्त्रण रखे । रोगी को सदैव ब्रह्मचर्यमय जीवन व्यतीत करते हुए ईश्वर भजन, कीर्तन भक्ति एव योग साधना मे मन को लगाना चाहिए । प्रात ब्रह्ममुहूर्त मे जागकर नित्य क्रिया से निवृत हो वासी जल के साथ त्रिफला चूर्ण ३ ग्राम सेवन करके प्रतिदिन खुली और स्वच्छ वायु मण्डल मे दूर तक भ्रमण करना चाहिए, आसन और प्राणायाम करें ।

चिकित्सा—

(१) व्याधि हरण रस (वसवराजीयम) ६० से १०० मि ग्रा खरल मे सूक्ष्म घोटकर मधु से चाटकर ऊपर से स्वर्णक्षीरी मूल का क्वाथ १५ से ३० मि लि दिन मे २-३ बार सेवन कराना चाहिए । रात मे सोते समय वाल हरीतकी का मोटा जौकुट चूर्ण २ ग्राम ताजा जल से रोज सेवन कराना चाहिए । वात वृद्धिकारक भोजन नही करना चाहिये ।

(२) कुटकी, चिरायता, नीमत्वक, शरपु खा मूल, मजिष्ठ, स्वर्णक्षीरी मूलत्वक, सारिवा एव ब्राह्मी पत्र—प्रत्येक समभाग मे लेकर कपडछन चूर्ण कर ३ ग्राम की मात्रा मे प्रात साय चिरायता फाण्ट १५ से ३० मि लि के साथ प्रतिदिन पिलाते रहे तो उत्तम लाभ हो ।

(३) शूल दूर करने के लिए शूलवज्रिणी वटी (रस चंडाशु) आवश्यकतानुसार १ से ४ गोली (२५० मि ग्रा से १ ग्राम) तक दिन मे ३ बार बकरी के दूध या जल से दे ।

(४) सनाय, सोफ, धनिया, मुनक्का प्रत्येक ५० ग्रा , मिश्री २०० ग्राम—इन्हे यवकुट करके ३ भाग बना ले । एक भाग ३ किलो जल मे डालकर रात्रि भर छोड दे । प्रात ७ बजे वस्त्र से छानकर २४ मि लि पिला दे । दिन मे १२ बजे तक यह समस्त जल पिला दें तो मल-मूत्र का बिरेचन होकर व्याधि शान्त होगी । साय को ३ बजे मू ग की दाल और चावल की खिचडी खाने को देवें । यह क्रम ३ दिन तक रखे ।

(५) नीलातुत्थ २४ ग्राम लेकर निरन्तर ८ दिन तक स्वर्णक्षीरी और नीबू के रस मे खूब घोटे । ऐसी घुटाई न्यूनतम ६ प्रहर चलाये । वाद मे टिकिया बनाकर छाया मे सुखा ले तथा १९२ ग्राम देशी ढेला कर्पूर लेकर एक मिट्टी के शराव मे ९६ ग्राम कर्पूर नीचे रखकर उस पर टिकिया रखे और फिर शेष कर्पूर रखकर दूसरे शराव को बेर पत्र कल्क से अच्छी प्रकार सन्धि बन्धन करके १६ उपलो का लावक पुट दे । स्वाग शीतल होने पर १ चावल भर औषधि निर्बीज मुनक्का मे रखकर दिन मे ३ बार जल से दे ।

(६) उपदशारि वटी—शुद्ध रस कर्पूर १२ ग्राम, लौंग ३६ ग्राम, इन्हे तुम्बी के रस मे ३ दिन तक भली-भाँति घोटकर मू ग प्रमाण गोली बना ले । १ गोली प्रात साय मुनक्का के अन्दर डाल निगलवाये । सावधान ! सतर्कता के साथ इन्हे निगलवाये अन्यथा दात गिरने और मु ह आने की आशका रहती है ।

(७) शूल होने पर कूट, विडङ्ग, सैंधव लवण, सौवर्चल लवण, तिरवक, देवदारु, अतीस, सबको समभाग मे ले चूर्ण बना २ से ३ ग्राम उष्णोदक से दे । भोजन के वाद सारिवाद्यासव और मजिष्ठाद्यरिष्ट ये सब १५ मि लि समभाग जल से पिलाये । लक्षणानुसार पारद भस्म, उपदश कुठार, उपदश सूर्य, अमीर रस, त्रिपुर भैरव रस, अष्टमूर्ति रसायन, बृहत मजिष्ठादि क्वाथ, अमृतारिष्ट, उपदशहर क्वाथ आदि सेवन करा सकते है ।

परमाणुविक चिकित्सा—

सर्व प्रथम कोष्ठ शुद्धि हेतु बाल हरीतकी चूर्ण ३-४ ग्रा. वासी जल के साथ पैखाना जाने से पूर्व सूर्योदय से पहले खिलाये तब पैखाना जाये । पश्चात नीम पत्र एव भृङ्ग-राजपत्र के क्वाथ का एनिमा दे । इसके बाद व्याधिहरण रसायन खरल करके १ भाग, नीम पत्र, शरपु खा पत्र गिलोय काण्ड, स्वर्णक्षीरी मूल, कुटकी, चिरायता, द्रोण-पुष्पी पत्र, मजीठ ये सब २५ भाग तथा इनके भस्म प्रत्येक २ भाग लेकर दृढ हाथो से खरल करे । अब कुल का १६ वा भाग काली मिर्च वस्त्रपूत चूर्ण मिलाकर स्वर्णक्षीरी मूल के काढ़े मे ६ घटे तक घोटे । जब वारितर एव

सतसर्वत्र हो सूख जाय तो डाटयुक्त काच की बोतल मे सुरक्षित रखे। प्रयोग विधि—५०० मि ग्रा. से १ ग्राम औषधि कुटकी, चिरायता के फाण्ट १५ से ३० मि लि. के साथ प्रात, साय एव दोपहर को सेवन करावे। शूल शमनार्थ एक मात्रा मे मैदा लकडी व कटकरज की भुनी मीगी प्रत्येक का कपडछन चूर्ण १-१ ग्राम मिलाकर देवे।

व्याधि की पाश्चात्य (एलोपैथिक) चिकित्सा—

तुरन्त ही तीव्र फिरङ्गनाशी चिकित्सा हानिप्रद है। पोटाशियम आयोडाइड ६०० मि. ग्रा प्रतिदिन की मात्रा मे मुख से सेवन करते हुए चिकित्सा आरम्भ करना निरापद है और अन्त मे अर्थात् १५ दिनो के लिए २ ग्राम ७०० मि ग्रा. से ३ ग्राम ६०० मि ग्रा तक प्रतिदिन की मात्रा देना लाभप्रद है।

इस व्याधि की चिकित्सा बिस्मथ का प्रयोग करके भी प्रारम्भ की जा सकती है। किन्तु आजकल अनेकों पेटेण्ट दवाये हैं, जिनका विवरण नीचे प्रस्तुत है—

गुण	औषधि नाम और पैकिंग	निर्माता	मात्रा एव प्रयोग विधि	वक्तव्य
शूल	(अ) एनाल्जिन—			
	इञ्जेक्शन—			
	[१] नोवाल्जिन इञ्जेक्शन एम्पुल—२ वा ५ मि लि वायल—३० मि लि	हेक्स्ट	२ से ३ मि लि गहरे मास या शिरा मे धीरे-धीरे दर्द के समय	सावधान! अतिसुग्राही रोगियो तथा निपात की दशा मे वर्जित।
	[२] पामाजिन इञ्जेक्शन	अलकेम		
	टिकिया—			
	[१] नोवाल्जिन टिकिया	हैक्स्ट	१ से २ टिकिया दर्द के समय दिन मे १-२ बार दे।	सावधान! उपर्युक्त के अतिरिक्त तीव्र सकीर्ण कोण वाले ग्लायकोमा, नन्हे शिशु व वृक्क-यकृत् क्षति मे वर्जित।
	[२] पामाजिन टिकिया	अराकेम		
	[३] प्रोमाल्जिन टिकिया	यूनिलवाइड्स		
	[४] अल्ट्राजिन टि०, मीरप	मैनर्स		
	(आ) पैरासीटामोल टिकिया	वी वेलकम	पूर्ववत्	
फिरङ्ग सक्रमण	(अ) पेनिसलीन—			
	इञ्जेक्शन—			
	[१] पेनिड्यूर ६, १२ या २४ लाख यूनिट के वायल्स	वाईथ	६ से २४ लाख यूनिट के इञ्जेक्शन नितम्ब के गहरे मास मे क्रमश हर तीसरे दिन सप्ताह मे एक वार या एक महीने पर सुई लगाये।	सावधान! पहले रोगी पर अतिसुग्राही परीक्षा अवश्य कर लें।
	[२] लोगासिलीन	आई डी पी एल		
	(आ) एम्पिसिलीन—			
	इञ्जेक्शन—			
	[१] ब्रॉडिसिलीन इञ्जेक्शन	अल्केम	५०० मि ग्रा नितम्ब के गहरे मास में प्रतिदिन २-३ वार सुई लगावे।	सावधान! पेनिसिलीन के अतिसुग्राही रोगियो, गर्भवती, वृक्क एव यकृत् की क्रिया मे गडबडी, नन्हे शिशुओ को इसका प्रयोग वर्जित है।
	[२] वैसिपेन इञ्जेक्शन	एलेम्बिक		
	[३] कैम्पिसिलीन इञ्जेक्शन	कैडिला		
	[५] रॉशिलीन इञ्जेक्शन	रैनबक्सी		
	कैपसूल्स—			
	[१] ब्रॉडसिलीन	अल्केम	२५० से ५०० मि ग्रा के कैपसूल दिन मे ३-४ वार जल से निगलवाये।	
	[२] रायम्पिलीन-६	वी० सी०		
	[३] रॉशिलीन	रैनबक्सी		
	[४] एम्पिपेन	वाईथ		



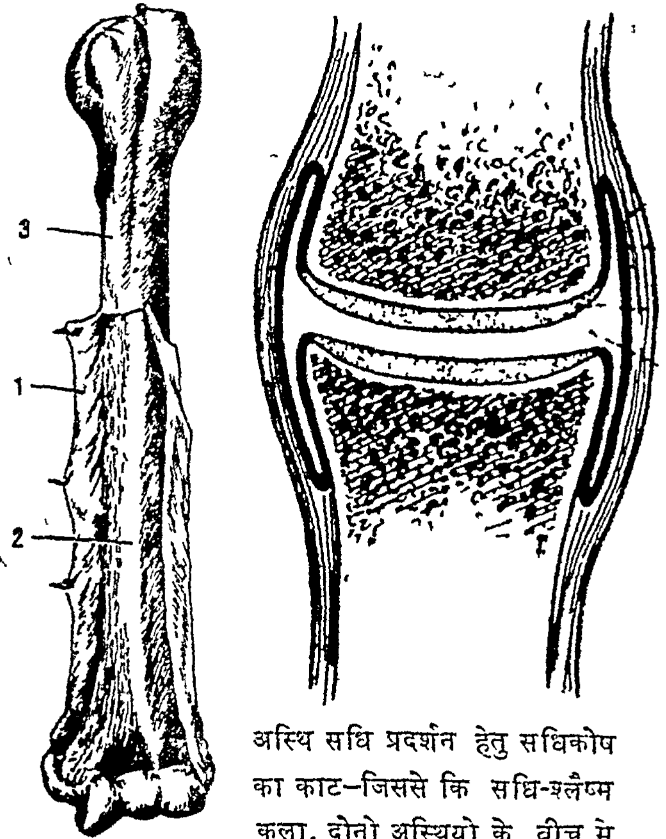
आमवात का विकृति विज्ञानीय अध्ययन एवं उसकी आयुर्वेदीय चिकित्सा

वैद्यराज प० सुन्दरलाल जैन आयु० वृह०, इटारसी (म प्र)



आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे व्याधि विज्ञानीय अध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता है। इससे व्याधि विनिश्चय करने मे सुगमता रहती है। इस व्याधि के विकृति विज्ञानीय अध्ययन के अनुसार सामान्यत हाथ की अगुलियो की पहली और दूसरी सधियो मे धीरे-धीरे तकुए के आकार का शोथ दिखाई देता है। सधियो मे यद्यपि लालिमा दिखाई नही पडती, किन्तु रोगी को उसमे वेदना का अनुभव होता है। इस वेदना का अनुभव विशेषत रात्रि मे या अगुलि सचालन के समय होता हे। प्रात काल उठने पर शोथयुक्त उन अगुलियो की सधियो मे जकडाहट प्रतीत होती है जिससे मुट्ठी एकदम नही खुल पाती। एक शोथयुक्त सधि का परीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि सधि के स्नायु तन्तु के सरेस सदृश्य पदार्थ मे शोथ होता है। अर्थात वहा पर रक्त के अति मात्रा मे सचित होने मे सधिकोष मे जल की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है। जल का अधिक मात्रा मे वड जाना ही शोथ का ज्ञापक है। प्रारम्भिक अवस्था मे यह शोथ साध्य एव चिकित्स्य होता हे। इसके पश्चात् सधि के मध्यस्थित श्लेष्म कला मे शनै शनै रक्ताधिक्य या अधिक रक्त सचय के कारण वह प्रदेश या वहा उत्पन्न हुआ शोथ रक्त वर्ण का कुछ स्थूलता युक्त तथा कुछ उन्नत प्रवर्धनो से युक्त दिखाई देता है। उसमे से जो श्लेष्म स्राव होता हे उसकी मात्रा वढ जाती हे और वह स्राव स्वच्छ एव स्पष्ट न होकर धुधला सा रहता है। सधिकोष का वाह्यावरण भी इसी प्रकार शोथ एव स्थूलता युक्त दिखाई पडता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हे कि यह एक प्रकार का श्लैष्मिक शोथ हे और श्लैष्मिक शोथ की इस प्रथम अवस्था मे सधिकोष और उसके चारो ओर के अवयवो (ऊतको तन्तुओ) मे शोथ हो जाता हे जिससे सधि मोटी दिखाई पडती हे और उसमे विशेषत वेदना की अनुभूति होती है। तत्काल उपचार करने पर शोथ और वेदना का शमन शीघ्र हो जाता है। उपचार नही करने की स्थिति मे जव प्रारम्भिक अवस्था के वाद सधियो मे शोथ अधिक समय तक वना रहता है तो सधियो की अन्त श्लैष्मिक कला मे स्नायु तन्तु अधिकाधिक उत्पन्न हो जाता है और वृद्धि को प्राप्त होकर सन्मुख स्थित तरुणास्थियो के आभ्यन्तर पृष्ठ को भी यह तन्तु आवृत कर देता है। इससे तरुणा-



अस्थि सधि प्रदर्शन हेतु सधिकोष का काट—जिससे कि सधि-श्लैष्म कला, दोनो अस्थियो के बीच मे रहने वाली तरुणास्थि की स्थिति स्पष्ट होती है।

१—अस्थ्यावरण कला
२—अस्थ्यावरण कला रहित अस्थि
३—अस्थ्यावरण कला सहित अस्थि

स्थियो के पृष्ठ कुछ क्षत हुए से लगते है। इसके परिणाम स्वरूप ये तरुणास्थिया धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है। अभिप्राय यह है कि उन तरुणास्थियो मे स्नायुतन्तु आ जाता है और फिर ज्ञात हुई उन तरुणास्थियो के परस्पर न्यूनाधिक जुड जाने से सधिया चेष्टाहीन हो जाती हैं और उनका सधिकोष भी लुप्त हो जाता है। इसीलिए इस व्याधि की जीर्णावस्था मे अ गुलि की सधिया स्तब्ध हो जाती है, उनमे हिलने, डुलने की सामर्थ्य नही होती है। यदि उन्हे हिलाया या चलाया जा सकता है तो उनमे कष्ट एव वेदना का अनुभव होता है। इस अवस्था मे अ गुलियो की सधियो मे जो क्षति होती है वह स्थाई होने से सधियो के पूर्ववत् स्वस्थ होने की सभावना भी क्षीण हो जाती है। देखा गया है कि शनै शनै आमने-सामने की अस्थियो के शिरो मे भी पोलापन या भगुरता होजाती है।

इस व्याधि मे यदि क्ष-किरण-परीक्षण किया जाय तो ज्ञात होता है कि इस स्थिति मे प्राय तरुणास्थिया नष्ट हो जाती है और सधियो को बाधने वाले सौत्रिक तन्तु मोटे एव सकुचित हो जाते है। आस पास की मासपेशिया क्षीण हो जाती हैं जिससे उनका आकार लघु हो जाता है। प्रसारक मासपेशियो मे प्रथम यह लघुतायुक्त क्षीणता होती है जिससे सधियो मे सकोच उत्पन्न हो जाता है। अन्त मे दोनो अस्थियो के सिरे परस्पर जुड जाने से सन्धिया स्तब्ध चेष्टारहित हो जाती है परिणामत वे अपना प्राकृत नियमित कार्य करने मे असमर्थ हो जाती है। हाथो की अ गुलिया तक केवल सकुचित ही नही होती अपितु अन्दर की ओर मुड सी जाती है। अ गुलियो की इस प्रकार की यह विषम स्थिति इस व्याधि का मुख्य लक्षण है जिसके आधार पर व्याधि का निर्णय सुगमता से किया जा सकता है।

उपर्युक्त विकृति विज्ञानीय अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि दोनो हाथ अथवा पैर से शुरूआत होती है। आरम्भ मे उक्त सधियो मे क्षीणता की स्थिति उत्पन्न होती है और क्षीणता के लक्षणो से युक्त शोथ उत्पन्न होता है। क्षीणता के लक्षणो से युक्त शोथ क्रमश ऊपर की अन्यान्य सधियो मे भी फैल जाता है। कालान्तर मे रोगी की शारीरिक स्थिति एव रोग-प्रतिरोधन क्षमता के अनुसार रोग का प्रसार या व्याप्ति होजाती है।

इस प्रकार इस रोग मे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से जो विकृति पाई जाती है वह मुख्यत. सधियो की श्लेष्मकला और तरुणास्थि जन्य होती हैं जो प्रारम्भिक अवस्था मे चिकित्सा साध्य और बाद मे प्राय असाध्य मानी जाती है।

चिकित्सा सूत्र एव सामान्य चिकित्सा—

१ आमवात की प्रथमावस्था मे सामज्वर, गात्र गुरुता और अग्निमाद्य आदि उपद्रवों का शमन करने के लिए रोगी को सर्वप्रथम लङ्घन कराना चाहिए। लङ्घन से रोग के सभी प्रबल उपद्रव प्राय शात हो जाते हैं।

२ सधियो मे शोथ का आधिक्य और शूल होने पर स्वेदन अत्यधिक लाभकारी होता है। अत बालुका स्वेद से स्वेदन करना चाहिये।

३ इस रोग मे विबन्ध नहीं होने देना और दस्त साफ होते रहना अत्यन्त आवश्यक है। अत उदर शुद्धि के लिये विरेचन देना चाहिए। विरेचन के लिए मृदुकोष्ठ रोगी को वैश्वानर चूर्ण गरम जल से देना चाहिए। इससे भी यदि दस्त साफ न हो तो सेंधानमक ६ रत्ती, सौंठ ३ रत्ती निशोथ मूल चूर्ण ३ माशा मिलाकर गर्म जल या कांजी से देना चाहिए। इससे अच्छा विरेचन हो जाता है।

४ लङ्घन के बाद पचकोल क्वाथ से पकाया गया साबूदाना अथवा जौ का पानी देना चाहिए। खील मुरमुरा भी खाने को दिया जा सकता है।

५ इस रोग की चिकित्सा करते समय अग्निवर्धक मलमूत्रकारक और पसीना लाने वाली औषधिया प्रयुक्त करनी चाहिए।

६ प्रात और रात्रि मे सेक देना, सेक के बाद लेप करके रुई से इस अङ्ग को बाध देना लाभकारी है।

७ इसके अतिरिक्त कपास, कुलथी, जौ, एरण्ड की जड, काला तिल, अलसी सहजना की छाल, पुनर्नवा और सभालु पत्र समभाग लेकर काजी मे पीसकर ५-७ पोटली बना लेनी चाहिए। फिर इन पोटलियो को वाष्प से गर्म कर पीडित अङ्गो को सेकना चाहिए।



आमजन्य शूल

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस ए एस
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुज०



मैं यहा आमवात शूल का वर्णन करना चाहता हूं। इसका वातव्याधि के साथ कोई सवन्ध नही है। आमवात वाले रुग्ण आते ही कहते है कि वैद्य जी! वायु का रोग होगया है—उपचार करे। तो वैद्य जी भी कहने लगते है कि हा! तुम्हे वात रोग होगया है। सहिता ग्रन्थो मे वात रोगाधिकार मे आमवात का वर्णन नही है। कुल मिलाकर ८० प्रकार की वातव्याधि है। उसमे आमवात नही आता। आमवात स्वतन्त्र व्याधि है। आमवात मे आमरस (अपक्वरस) का महत्व है। इस अपक्व रस को वायु चलायमान करता है–तब आमज शूल पैदा होता है–

कारण—

विरुद्ध आहार लेने से यथा–दूध-दही, दूध-फल एक साथ लेना विरोधी है। मन्दाग्नि मे भोजन कराने से, व्यायाम न कराने से, ठण्डा पेय लेने से, दही अत्यधिक लेने से, खटाई लेने से, वर्फ की वनावट खाने-पीने से, ठडा और वासी आहार लेने से, शीतऋतु से, वर्षाऋतु से, रात्रि जागरण करने से और दिवास्वाप करने से, अत्यधिक मात्रा मे मिष्ठान्न लेने से इत्यादि अनेक कारणो से आमवात हो जाता है। यहा खास तौर पर अपक्व आहार रस का ही सम्वन्ध है।

सम्प्राप्ति घटक—

नाम–आमवात।
आग्ल नाम–रुमेटिज्म
लोक बोली–वायु-गठिया, जोडों का दर्द
दोष–वात+कफ+पित्त
दूष्य–रस (अपक्व), रक्त
स्रोतस्–रसवह, रक्तवह (सीरा-रसायनी)
स्रोतस् दुष्टि–सङ्ग (शोथ)
उद्भव स्थान–आमाशय
रोगमार्ग–मध्यम रोग मार्ग

लक्षण—

उपरोक्त निदान व कारणो से निम्नोक्त लक्षण पैदा होते है—

सर्व सामान्य लक्षण–वृश्चिकवत् वेदना

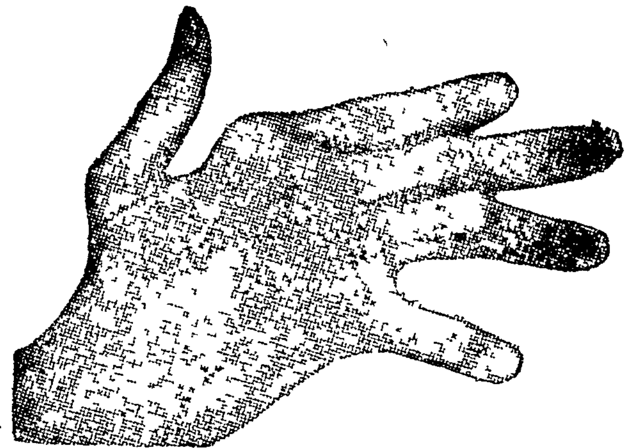
अन्यश्च—

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ।
स्तब्धश्च कुरुते गात्रमामबात स उच्यते॥
अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्य गौरव ज्वर।
अपाक शूनताङ्गानामामवातस्य लक्षणम्॥

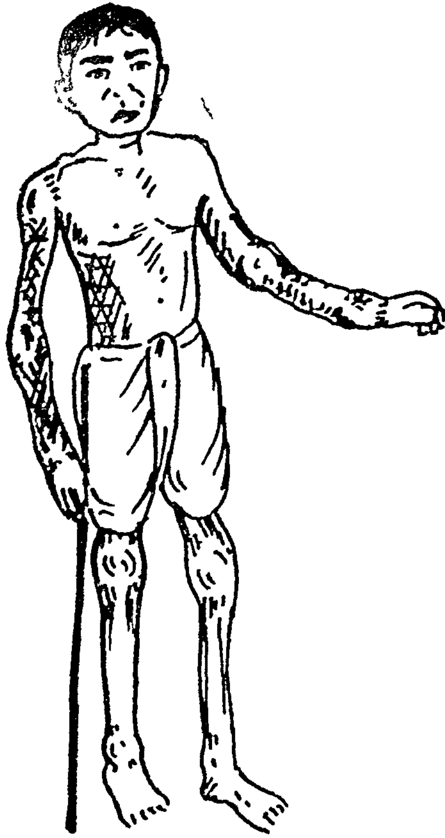
अर्थात् एक साथ अपक्व आहार रस (आम) और वात दोष कुपित होकर कटिसधि मे प्रवेश कर वेदना करते है तथा गात्रो को स्तब्ध कर देता है। अङ्गमर्द, अरुचि, तृषाधिक्य, आलस्य आदि लक्षण होते है।

वाताधिक आमवात लक्षण—

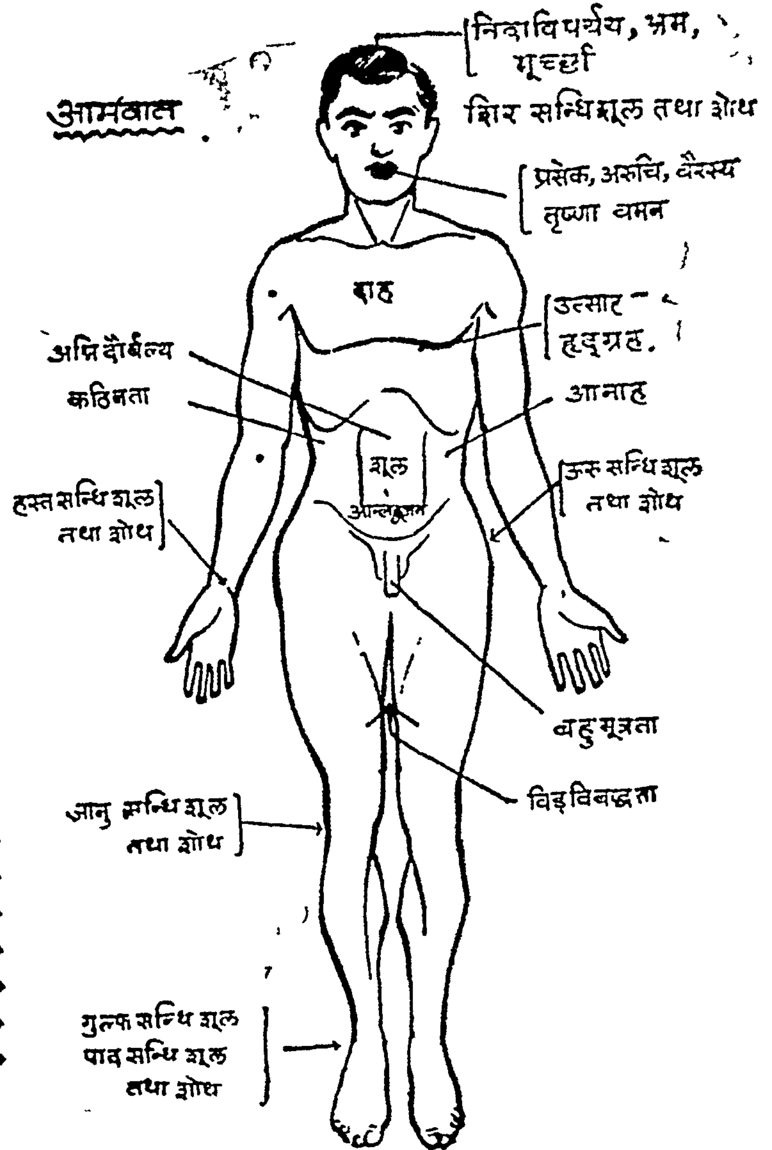
१ बडे जोडो मे होता है।
२ पीडा भ्रमणशील रहती है।
३. बाल्यावस्था मे प्रारम्भ होता है।
४ सैलीसिलेट या गुग्गुल से विशेष लाभ होता है।



आमवात रोगी के हाथ की स्थिति



↑
आमवात रोगी के
जोड सूज गये हे ।



↑ आमवात रोगी के लक्षण

जव आमवात होता है तव हस्त, पाद, शिरस् गुल्फ, त्रिक, जानु और उरु के सन्धिस्थानो मे वेदनायुक्त शोथ होता हे । शरीर के जिस प्रदेश मे दुष्ट आम आता है वहा वृश्चिकवत् वेदना होती हे । जठराग्नि मन्द होती है, मुख मे से लालास्राव होता हे । अरुचि एव शरीर गौरव होता है । उत्साह हीन, वैरस्य, दाह तथा वहुमूत्रता होती है । उदर प्रदेश कठिन हो जाता हे शूल होता है तथा निद्रा-रपता होती हे । तृषाधिक्य, छर्दि, भ्रम, मूर्च्छा, हृदय मे वेदना, विवन्ध, शरीर मे जडता आत्रज कूजन और आनाह जैसे लक्षण होते है ।

आमवात मे पित्ताधिक्य हो तो दाह होता है और त्वचा रक्तवर्ण की हो जाती है । वाताधिक्य मे शूल होता है तथा कफाधिक्य मे कण्डू तथा गौरवता होती है ।

सम्प्राप्ति विश्लेषण---

पूर्व मे जो कारण दर्शाये है उन्ही कारणो से जठराग्नि मन्द होकर अपक्व रस (आमरस) पैदा होकर वायु उसको कफ स्थान मे ले जाता है अत अपक्व आहार रस (आम) धमनी मे जाता है। इस तरह वात,पित्त और कफ दोषों से दूपित होकर स्रोतस् मे स्थान ले लेता है और रसवह तथा रक्तवह स्रोतस् मे जाकर आम शिराओ मे सोतोरोध

उत्पन्न कर देता है। वातादि दोष से अनेक वर्ण वाला चिकना और पिच्छायुक्त आम अग्नि को मन्द कर हृदय मे पहुँच कर उनको गौरवता प्रदान करता है—उसको दारुण आमवात कहते है। जहा भी आमरस स्थान सश्रय करता है वहा वातदोष भी साथ मे होता है और दोनो मिलकर कष्टदायक वृश्चिकवत् तीव्र शूल पैदा करते हैं। यह शूल विशेष लक्षण है।

ऐसा भी देखा गया है कि जब बालक को कफ-ज्वर हो जाता है तब बालक मे प्रकृति के कारण जठराग्नि मन्द होती है—तब सन्धि स्थानो एव हृदय मे वेदना होती है फिर भी सन्धि स्थानगत आम पडा रहता है—उसे आमवातिक ज्वर कहते है और आग्ल भाषा मे रुमेटिक फीवर कहा जाता है। उस अवस्था मे हृदय के वाल्व मे शोथ उत्पन्न होता है। अत. हृदय मे शूल होता है। बडी उम्र वालो को भी ऐसे लक्षण मिलते हैं।

लक्षण समीक्षा मे आचार्य महोदय ने ठीक तरह से कहा है कि आम जहा भी जायेगा वहा शोथ के साथ वृश्चिकवत् वेदना होती है। ठीक उसी तरह हस्त-पाद की अगुली के सन्धिस्थानो मे सर्व प्रथम शोथ, वेदना का प्रारम्भ होता है। बाद मे शरीर के अन्य सन्धि स्थानो मे आम पहुँचता है तब क्रमश शोथ-वेदना होती है। अन्तिमावस्था मे हृदय बाधा होती है। शोथ एव वेदना के साथ साथ उपरोक्त कहे गये लक्षण मिलते हैं।

साध्यासाध्यता—

एक दोषज आमवात साध्य, द्विदोषजन्य कष्टसाध्य और सान्निपातिक लक्षणो वाले सशोथ आमवात घोर कष्टसाध्य होता है।

चिकित्सा विमर्श—

सिद्धात—

लङ्घन स्वेदन तिक्त दीपनानि कटूनि च।
विरेचन स्नेहनश्च वस्तचश्चाममारुते ॥

लङ्घनम्—आमपाचन हेतु सर्वप्रथम लङ्घन कराना जरूरी है। लङ्घन मे केवल शुण्ठीयुक्त उष्ण जलपान हितकारी है।

स्वेदनम्—रूक्ष स्वेद का तात्पर्य है। उसमे बालुका स्वेद सर्वोत्तम है।

दीपन तथा तिक्त पदार्थो का सेवन हितकारी माना गया है एव विरेचन तथा वस्ति कर्म करना चाहिये।

आमवात वाले रुग्ण को तृष्णा लगे तो पीपली, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सूठ से उत्पन्न हुआ जल देवे।

१ पचमूल क्वाथ तथा शुठी चूर्ण देना हितकारक है।

२ सुवा, वच, सूठ, गोखरु, वरुणत्वक्, पुनर्नवा, देवदार, कचुरो और गोरखमुण्डी समभाग लेकर चूर्ण बनाकर १-१ माशा तीन बार उष्ण जल से दे।

३ चित्रक, कटुकी, पाठा, इन्द्रयव समभाग, अतिविषा दो भाग, गुडूची, देवदार, वच, मुस्त, और हरड समभाग लेकर चूर्ण बनाकर देने से दारुण आमवात का नाश होता है।

४. सूठ और हरड का चूर्ण समभाग लेकर देने से आमवात मिट जाती है।

५ सूठ और गोरखमुण्डी का क्वाथ देना चाहिए।

६. सूठ, हरड और गिलोय के क्वाथ मे गुग्गुल मिलाकर देने से कष्टसाध्य आमवात साध्य होता है।

७ एरण्ड तेल दो चम्मच और एक चम्मच सूठी चूर्ण एक साथ मिलाकर सुबह-शाम देने से अति दारुण आमवात मे विजय प्राप्त होता है।

इसके अलावा—हिग्वाद्य चूर्ण, पिपल्याद्य चूर्ण, पथ्याद्य चूर्ण, अजमोदादि चूर्ण, नारसिंह चूर्ण, उष्मन चूर्ण, चित्रकादि चूर्ण, पुनर्नवादि चूर्ण, नागर चूर्ण, पचकोल चूर्ण, अमृतादि चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, रास्नापचक क्वाथ, महारास्नादि क्वाथ, पिपल्यादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ, योगराज गुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल, त्र्योदशाग गुग्गुल, लशुनाद्य गुग्गुल, पुनर्नवा गुग्गुल, रास्नादि गुग्गुल, महावातविध्वस रस, आमवातारि रस, वातगजाकुश रस, बृहत् वातचितामणि रस, शृङ्ग भस्म, वङ्ग भस्म इत्यादि अनेक औषधि योगो का सफल प्रयोग आमवात मे होता है।

सफल अनुभवात्मक चिकित्सा—

१. सुबह-शाम एरण्ड तैल, शुण्ठी चूर्ण समभाग।

२ सुबह-शाम—बालुका स्वेद।

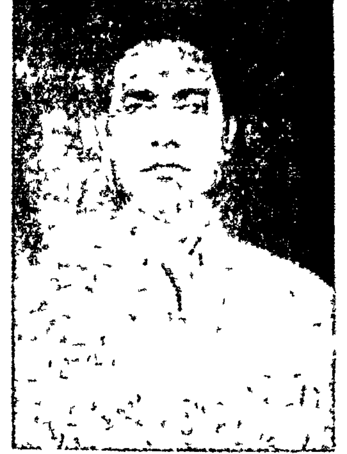
३ आभ्यन्तर औषधि चिकित्सा—

अजमोदादि चूर्ण १ माशे, नारसिंह चूर्ण १/२ माशे, त्रिउष्मन चूर्ण, शृङ्ग भस्म, वङ्ग भस्म ये तीनो २-२ रत्ती

—शेषाश पृष्ठ १४३ पर देखे।

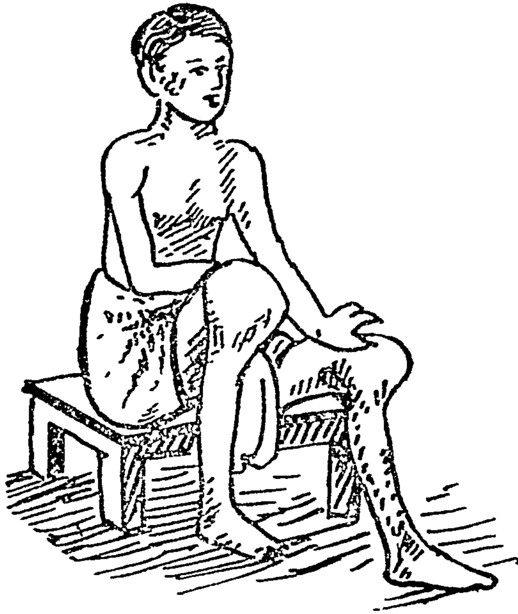
क्रोष्टुक शीर्षक

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश' भिष.



श्री वैद्य गोपीनाथ जी पारीक आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान वैद्य हैं। 'धन्वन्तरि' पर आपकी सदैव असीम कृपा वनी रही है। श्री पारीक जी हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध कवि एव उत्तम साहित्यकार भी हे। आप एक प्रवुद्ध कवि, समाज चिन्तक, कहानीकार एव यथार्थ के पक्षधर लेखक है। आपकी विभिन्न रचनाये शुचि, राष्ट्रदूत, जाह्नवी, शब्द, सवोधन, धन्वन्तरि, सुधानिधि, आयुर्वेद विकास आदि पत्रिकाओ मे कविता, कहानी एवं लेख के रूप मे प्रकाशित होती रहती हैं। सन् १९८४ के धन्वन्तरि–वातव्याधि चिकित्सा विशेषांक के आप विशेष सम्पादक रह चुके हैं। यह अङ्क अत्युपयोगी एव मार्गदर्शक हुआ था। उसमे आपकी विशेष विद्वता दिखाई देती है। — वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖



घुटनो मे श्रृगाल (गीदड) के सिर के समान स्थूल एव अत्यधिक पीडा करने वाला शोथ क्रोष्टुकशीर्षक कहलाता हे। क्रोष्टुकशीर्षक केवल जानुसन्धि मे ही होता है किन्तु वातरक्त अन्य सन्धियो मे भी होता है। व्यान वायु सारे शरीर मे व्याप्त होकर विविध क्रियाओ को नियन्त्रित करता हे। इसकी विकृति से रक्तादि की विकृति होकर चेष्टाहानि एव अत्यधिक वेदना को उत्पन्न करते हैं। जानु मे शूलयुक्त रक्त सचय का होना ही इस रोग का प्रमुख लक्षण है। रोगी चलने फिरने मे असह्य पीडा अनुभव करता हे शोथ, रुक्ष होता है। आधुनिक दृष्टि से शोथयुक्त जानु (Inflammed knee या Sinoarthritis of the knee joint) मे यह स्थिति मिलती हे। प्राय पूयमेह के वाद इसके होने से इसे पूयमेहज सन्धि शोथ (Gonorrhoeal Arthitis) भी कहते है। महामहोपाध्याय गणनाथ सेन ने विविध सन्धिवात निदान मे एक विषवात का भी वर्णन किया है। पूयमेह के उपद्रव स्वरूप विषवात मे क्रोष्टुक शीर्षक के लक्षण उत्पन्न होते है—

पूयमेहविष स्तोक यस्य रक्ते प्रसर्पति।
सन्धिवातोऽस्य विषज प्रायश्च क्रोष्टुशीर्षक ॥

यह आमवात मे भी पृथक रोग है। आमवात आम व वात जन्य विकृति है। कोष्टुक शीर्षक वातरक्तज विकृति है। आमवात का शोथ ठीक हो जाने के पश्चात प्राय: पुन नही होता है। पीडायुक्त जानुशोथ ही इसका मुख्य लक्षण है—'क्रोष्टुशीर्ष जानुशोथ.'। इस शोथ मे जानु का ऊपरी और नीचे का भाग पतला होता है।

चिकित्सा—

(१) नारियल के तेल मे लवण डालकर उसे जला कर कवोष्ण तेल का ही लेप कर रुई रखकर बाधे।

(२) गोदुग्ध मे एरण्ड तेल मिलाकर पिलावे। अथवा विधारा मूल चूर्ण को गोदुग्ध से दे।

(३) इसकी चिकित्सा प्राय वातरक्त की भाति ही की जानी चाहिए। व्याख्याकार डल्हण ने व्यक्त किया है—यथोद्देश चेति चकारेण क्रोष्टुक शीर्षक वात शोणित चिकित्सा वेक्षण च (सुश्रुत चि० ५/२३)।

(४) सुश्रुत ने इसमे सिराव्यध का निर्देश किया है।

(५) त्रिफला एव गुडूची के क्वाथ से गुग्गुल सेवन करना लाभप्रद है। १-१ ग्राम कैशोर गुग्गुल दिन मे ३-४ बार देना चाहिए।

(६) एक सेर पानी मे सामुद्रक्षार ५ तोला (मैगसल्फ या समुद्रफेन) डालकर शोथ पर डालना चाहिये। वस्त्र तर कर शोथ पर बाधना भी चाहिए। वस्त्र सूखने पर पुन आर्द्र कर लेना चाहिए।

(७) शुद्ध गुग्गुल, त्रिफला घन सत्व, एरण्ड बीज की मीगी ये ४-४ तोला, इन सब द्रव्यो को एक लोहे के खरल मे डालकर इतना कूटो कि सब द्रव्य मिलकर एक जीव हो जाय। जब सम्पूर्ण द्रव्य मक्खन की भाति मुलायम हो जाय तब १ माशा के प्रमाण के वटक बना लिये जाय। १ वटक सुबह १ शाम को मुख मे रखकर दातो से तोड कर गाय के गर्म मीठे दूध के घूट के साथ खावे।

—प्राणाचार्य स्व हर्षुल जी मिश्र

(८) मोर के चमकीले पख की भस्म १॥ ग्राम को ३ ग्राम पुराने गुड मे मिलाकर गोली बना ले। इसे उष्णोदक से निगलवा देवे। इस प्रकार एक माह पर्यन्त प्रयोग करने से रोग का प्रशमन हो जायेगा। तैल, गुड, खटाई, हीग आदि का वर्जन करे।

(९) वातगजाकुश रस—रस सिन्दूर, लोह भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध वत्सनाभ, हर्र का वक्कल, काकडासीगी, सोठ, मिर्च, पीपल, अरणी की छाल, शुद्ध टकण। प्रत्येक औषधि समभाग लेकर कूटकर कपडछन करले। इसके बाद मुण्डी के रस अथवा क्वाथ मे और निर्गुण्डी के पत्तो के रस मे एक भावना देकर २-२ रत्ती की वटी बना छाया मे सुखा रख ले। मजिष्ठा क्वाथ सेवन करने से लाभ होता है।

(१०) अमृताद्यघृत—अमृता, मुलैठी, मुनक्का, त्रिफला सोठ, खरैटी, अडूसे का फूल, अमलतास का गूदा, पुनर्नवा, देवदार, गोखरु, कुटकी, शतावरी, छोटी पीपल, खम्भार के फल, रास्ना, ताल मखाना, एरण्ड की छाल, विधारा नागरमोथा, नीलोफर इन सबको समान मात्रा मे ग्रहण कर कल्क करे तथा आवले का स्वरस १ प्रस्थ (७६८ ग्रा) घृत १ प्रस्थ सबको ३ प्रस्थ जल मे मन्द अग्नि पर पका छानकर ६-१२ ग्राम की मात्रा मे सेवन करे।

(११) पूयमेहजन्य मे पूयमेह का भी उपचार करे। आयुर्वेदिक औषधियो मे महाश्रवटी (भै र) १२५ मिग्रा स्वर्ण वङ्ग २५ मिग्रा त्रिफला क्वाथ से देवे।

❖ पृष्ठ १४१ का शेषाश ❖

मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया ३ बार जल से दें।

४ सिहनाद गुग्गुल—दो गोली ३ बार।

५ महावातविध्वस रस—१ गोली ३ बार जल से।

६ सूचीवेध चिकित्सा—

इस रोग मे सिद्धि फार्मेसी, ललितपुर द्वारा निर्मित महावातविध्वस सूचीवेध फलप्रद पाया गया है।

७.आर पायरीन टिकिया (बानमार्क राजकोट)गुज.

२-२ गोली ३ बार जल से १ मास तक।

१-१ गोली ३ बार जल से २ मास।

१-१ गोली सुबह-शाम तीसरे मास। यह गोली शुद्ध आयुर्वेदिक, गुणकारी है। अति मात्रा मे वेदना हो तो बृहत् वातचिंतामणि रस २ गोली प्रति २ घटे शहद से देने से लाभ मिलेगा। आमवात के साथ हृदय बाधा हो तो अजमोदादि चूर्ण १ माशा, हृदयार्णव रस १ रत्ती, वग भस्म, उष्मन चूर्ण, जवाहर मोहरा ये २-२ रत्ती, मात्रावत् पुडिया बना प्रति ४ घटे मधु के साथ। बृहत् वातचिता-मणिरस का आवश्यकतानुसार प्रयोग जरूर करे। ❖

कटिशूल

कविराज डा० अयोध्या प्रसाद अचल, एम ए (द्वय), पी एच डी, आयुर्वेद बृहस्पति
निदेशक—योगायुर्वेद शोध संस्थान, धर्मसभा रोड, रमना (गया)

—※—

देश के विद्वान वैद्यो मे श्री अयोध्या प्रसाद जी अचल का नाम प्रथम पंक्ति मे लिया जाता है। आप गया (बिहार) की आयुर्वेद मेडीकल कालेज के मौलिक सिद्धान्त विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष है। आप धन्वन्तरि के स्थाई आधार स्तम्भ है। वर्षों से आपके लेख धन्वन्तरि के सामान्य अङ्क एवं विशेषाङ्को मे प्रकाशित होते है। अन्य आयुर्वेदीय मासिक पत्रिकाओ मे आपके ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित होते रहते है। श्री अचल जी प्रतिभा सम्पन्न आयुर्वेदज्ञ के साथ-साथ योग के निष्णात भी है। आयु० चिकित्सा के साथ योग को जोडकर आपने कष्टसाध्य रोगो मे सफलता प्राप्त की है। अत अचल जी का कार्य सचमुच ही ऋषि तुल्य है। यहा आपने कटिशूल पर सशोधनात्मक विवेचन किया है। साथ-साथ आपकी धर्मपत्नी वैद्या श्रीमती विमला देवी जी ने भी 'स्त्रियो मे कटिशूल नामक' लेख भेजकर उपकृत किया है जोकि इसी लेख मे सलग्न है।

— वैद्य अशोक भाई तनाविया भारद्वाज

****

यह दर्द कभी-कभी झुकने, मुडने या किसी बोझ को एकाएक उठाते समय अचानक बडे ही उग्र रूप मे तेजी से होने लगता है। इसका मुख्य कारण किसी हड्डी या पेशी मे आई कोई चोट, खरोच या मोच होती है। कभी-कभी शुरु होकर धीरे-२ बढता या उग्ररूप धारण करता है। कभी सतत होता रहता है और कभी रह रहकर या किसी खास मुद्रा मे आने पर होता है या चिनक के रूप उठता है।

आयुर्वेद की सहिताओ मे वात रोगो के अन्तर्गत प्राय त्रिकग्रह और पृष्ठग्रह का उल्लेख मिलता है पर कटिग्रह का उल्लेख कम ही मिलता है। इसे त्रिकग्रह मे ही समाविष्ट मानना चाहिए। शारङ्गधर सहिता मे कटिग्रह का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यथा—

बाह्यायामोन्तरायाम पार्श्वशूल कटिग्रह।

— शा स पूर्व खण्ड, ७ वा अ १०६

स्तम्भ, तोद, शूल इसके प्रमुख लक्षण माने गये है।

कमर दर्द का कारण—

वस्ति पुरीषाधान कटि सक्थिनी पादावस्थीनी पक्वाशयश्च वातस्थानानि।

—च० सू० २०।८

आयुर्वेद मे मूत्राशय, मलाशय, कटि, दोनो जघाओ। पैर, अस्थियो को विशेष रूप से वात का स्थान माना गया है। इन अङ्गो की विकृति प्रधानत वात की विकृति से होती है। वात मे भी अपान वायु की प्रमुख भूमिका रहती है। अपानवायु के क्षेत्र और कार्य का उल्लेख करते हुए वाग्भट ने कहा है—

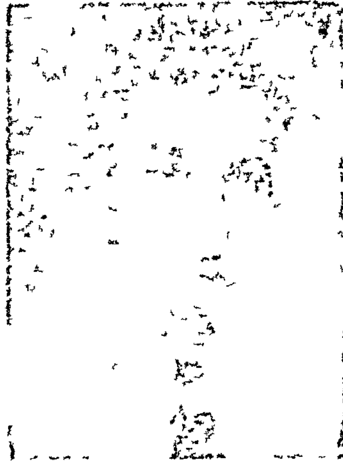
अपानोऽपानग श्रोणिवस्तिमेढ्रोरुगोचर।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रिय ॥

—अ० हृ० सू० १२।६

अपानवायु मुख्यतया गुदा मे रहती है और श्रोणि, कटि, चक्र, जघन-मण्डल, वस्ति, मेहन और अण्ड, ऊर्ध्व जघा मे विचरती है। शुक्र, आर्तव, मल, मूत्र और गर्भ को बाहर निकालती है। अपानवायु के आमयुक्त अथवा अन्य कारणो से विकृत हो जाने पर ही कटिशूल की उत्पत्ति होती है। नीचे कमर दर्द के जो प्रमुख कारण बतलाये जा रहे है वे सभी सापेक्ष या निरपेक्ष रूप से वायु की विकृति का कारण बनते हैं।

१ शक्ति से अधिक भार उठाना।

२ गलत ढङ्ग से भार उठाना। विशेष रूप से जिसमे कमर झुक या मुड जाती हो। ऊची जगह से कोई चीज



— लेखक —

नीचे उतारते समय हाथो को सर से ऊपर लेजा कर नही उतारना चाहिये । कोई स्टूल या मेज रख लीजिये । जब सर वस्तु के स्तर तक पहुँच जाये तभी उसे आहिस्ता से उतारिये ।

३ पीठ या कमर मे लगी कोई चोट ।

४ रीढ की हड्डी की विकृति जो उक्त कारणो से भी हो सकती है अथवा रीढ की हड्डी का कोई रोग, गृध्रसी, अस्थिसुषिरता (Osteoporosis), बद्धकशेरुका सधिशोथ (Ankylosing Spondylitis), कशेरुका काघर्पण (Spyndylolisthesis) अथवा कशेरुकाग्रसधिग्रह (Spondlyolysis) हड्डी का यक्ष्मा । ऐसी हालत मे प्राय पेशियो मे भी खिचाव, ऐठन अथवा पीडा के लक्षण पाये जाते है।

५ मोटापा, खासकर जब उदर बडा और बाहर को निकला हुआ हो । ऐसी हालत मे बेचारी कमर अतिरिक्त भार ढोते-ढोते थक जाती है ।

६ जठराग्नि विकार विशेष रूप से जब वे आम की उत्पत्ति का कारण बनते है जिससे गुदा स्थित वायु विकृत हो जाती है ।

७ अपकर्पण या ह्रासी परिवर्तन । इसका कारण सामान्य क्रिया कलाप भी हो सकता है और वृद्धावस्था भी । वृद्धावस्था मे आपने देखा होगा कन्धे के नीचे रीढ की हड्डी अधिक गोल हो जाती है जिससे कमर स्वत झुक जाती है । उनकी मेरुदण्ड की कशेरुकाये भी सिकुड कर छोटी और अपेक्षाकृत मृदु होने लगती है । कशेरुकाओ के बीच स्थित उपास्थिया भी पतली हो जाती है । यद्यपि ये सारे परिवर्तन अपने आप मे पीडारहित होते है पर इसी बीच यदि कही कोई कशेरुका क्षतिग्रस्त हो जाये तो स्थानिक रूप से तीव्र शूल की वेदना होती है । ऐसे मे झुकने और बोझ उठाने मे भी तीव्र वेदना होती है ।

८ लम्बे अर्से तक एक ही स्थिति मे बैठे-२, बिना विशेष हिले-डुले, काम करना । चरक ने ऐसे व्यक्तियो की गणना सदातुरो मे की है ।

९ डिस्क, (कसेरुकाओ के मध्य स्थित उपास्थियो) का खिसकना या उनमे अन्य टूट-फूट ।

१० श्रोणि या प्रजनन अङ्गो से सम्बन्धित विकृतिया, विशेष रूप से स्त्रियो मे ।

११ मानसिक चिन्ता एव अवसाद ।

कमर दर्द की चिकित्सा

निदान के अनुरूप चिकित्सा की जाये । मूत्र रोग जैसे जैसे ठीक होता जाता है कमर दर्द भी घटता जाता है । पेट की गडबडी हो तो आमदोप का पाचन और अग्नि का उद्दीप्त करना अत्यावश्यक है । इसमे भी वात रोगो का समस्त चिकित्साक्रम अपनाना पडता है । कोष्ठ शुद्धि का दर्द पर सीधा प्रभाव पडता है । मै ऐसे रोगियो मे युक्तिव्यपाश्रय और यौगिक क्रियाओ-आसनो का सम्मिलित चिकित्सा क्रम अपनाता हूँ और उनमे से अधिकाश मे, यदि उनमे कोई विशिष्ट सरचनात्मक दोप न हुआ तो सफलता मिलती है ।

सामान्य अवस्था मे—

१ त्रयोदशागगुग्गुल—२-२ गोली प्रात , दोपहर, शाम गर्म पानी या दूध से । रोग कुछ बढा हुआ हो तो किसी वातहर क्वाथ से—यथा रास्नादि, दशमूल आदि ।

२ महाविपगर्भ तैल की मालिश और बालुका-स्वेद । बालु की पोटलिया बना उन्हे तवे पर गर्म कर उनसे सेक करना ।

आघातज होने पर—

१ महायोगराज गुग्गुल—२-२ गोली प्रात दोपहर शाम महारास्नादि क्वाथ से ।

२ पन्चगुण तैल की मालिश और बालुका स्वेद ।

अगर साथ मे मलावरोध भी हो, जोकि प्राय होता है तो—

१ एरड-पाक १० ग्रा. रात को सोते वक्त गर्म दूध से ।

२ वेश्वानर या पचसकार चूर्ण ५ से १० ग्राम ।

रोग के वढे हुए होने पर तत्तलक्षणानुसार कभी-२ निम्न योगो की भी सहायता लेनी पडती है—समीरपन्नग रस, महावातविध्वस रस, सुवर्णभूपति रस, वातगजाकुश रस, रौप्य भस्म, शिलाजीत तथा भल्लातक के योग । कुब्जप्रसारिणी तैल ।

नीचे कुछ सस्ते अनुभूत योग दिये जा रहे है जिन्हे कुछ समय तक लगातार सेवन करने पर कमरदर्द की पीडा मे निश्चित लाभ होता है—

१ लहसुन का कल्क तिल तैल के साथ ।

२ एरण्ड बीज को पीसकर उसमे सोठ का चूर्ण मिलाकर दूध के साथ ।

३ आमला, असगन्ध, चोपचीनी का चूर्ण समभाग मिश्री मिलाकर गर्म जल से ।

४ तैल, घृत, अदरख का रस और बिजौरा नीबू का रस समभाग गुड मिलाकर ।

आनुपगिक चिकित्सा—अगर पीडा और जकडाहट अधिक हे तो रोगी को पूर्ण विश्राम लेना चाहिए। पीडा के कम होने पर ही धीरे-२ खडे होने, चलने-फिरने की राय देनी चाहिये । सेक देने के उपरात रोगी के त्रिक् प्रदेश पर धीरे-२ गर्म हाथो से ही मालिश करे। पीडा कम होने पर जितना सह्य हो सके पडे-२ ही पैरो को धीरे-२ सचालित करे । बैठते तथा खडे होते समय इस बात का ध्यान रहे कि रीढ की हड्डी सीधी रहे। सोने के लिए तख्त का इस्तेमाल करे । आवश्यक ऊंचे तकिये का इस्तेमाल न करें। ढीली चारपाई हानिकारक है ।

कमर और रीढ के दर्द मे निम्न आसन विशेप रूप से उपयोगी पाये गये है ।

(क) बैठकर करने वाले आसन—स्वस्तिकासन, पद्मासन, वज्रासन । विशेप रूप से भोजन के वाद । अर्ध-कटि चक्रासन, कटिचक्रासन, शशाकासन, योग मुद्रा आदि ।

(ख) खडे होकर करने वाले आसन—ताडासन, कटि चक्रासन, त्रिकोणासन और सूर्य नमस्कार ।

लेटकर किये जाने वाले आसन—पवन मुक्तासन, सुप्त वज्रासन, मत्स्यासन, धनुरासन, शलभासन तथा भुजगासन । आसनो एव व्यायामो के वाद अगर रोगी मे मानसिक अवसाद या चिन्ता के लक्षण भी देखे जाते हैं जो उनसे प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास भी कराया जाता हे । अनावश्यक थकान या अनिद्रा की शिकायत होने पर योगनिद्रा का अभ्यास कराया जाता है । इससे उनका चित्त शात होता है, मन एकाग्र होता है । ❖

* स्त्रियों में कटिशूल *

वैद्या श्रीमती विमला अचल बी-ए एम एस ,
योगायुर्वेद शोध सस्थान, रमना (गया)

कारण —

स्त्री रोग सम्बन्धी कारणो मे प्रमुख है—(१) गर्भाशय-भ्रश या उसका विस्थापन (२) गर्भाशयग्रीवा शोथ, (३) जननागो मे सुदम्य अथवा दुर्दम अर्बुद, (४) शल्योपरात पीडा तथा (५) मासिकपूर्व तनाव, ये सभी स्थितिया कटि या पृष्ठशूल को जन्म देने वाली है ।

गर्भाशयग्रीवा मे व्रणशोथ होने पर भी प्राय त्रिक्-प्रदेश मे शूल होता है जो निरन्तर बना रहता है । इसमे प्रदर-द्रव और कभी-२ रक्तस्राव भी होते देखा जाता है ।

जननागो—गर्भाशय, डिम्ब नलिका, डिम्बग्रन्थि आदि किसी मे भी अर्बुद के होने पर कटिशूल पाया जाता है । यदि कटिशूल के लक्षण पहले से वर्तमान हो और अर्बुद वाद मे उत्पन्न हुआ हो तो प्राय वह सुदम्य होता है । दुर्दम अर्बुद मे कटिशूल अर्बुदोत्पत्ति के वाद उसके वढ जाने पर ही प्रारम्भ होता है और प्राय रक्तस्राव की वहुतायत देखी जाती है ।

मासिकपूर्व तनाव की पीडा मासिक शुरू होने से १-२ दिन अथवा कुछ समय पूर्व शुरू होती है और कभी तीव्र होती है । वह कटि के अतिरिक्त त्रिक्, जङ्घाओ और पेडू को भी प्रभावित करती है ।

इस वर्ग की विकृतियो मे भी कारणानुरूप चिकित्सा की जाती है। गर्भाशय भ्रश के कारण उत्पन्न कटिशूल मे गर्भाशय को यथा स्थान बैठा देने पर, गर्भाशय ग्रीवा शोथ मे व्रण तथा शोथ का उपचार हो जाने पर, अर्बुदो मे शल्यक्रिया द्वारा अर्बुदो के निकाल दिये जाने पर मासिकधर्मपूर्व तनाव के रूप मे उत्पन्न कटिशूल मासिक के प्रारम्भ होजाने पर अथवा तत्सम्बन्धी विकृति के दूर होने पर स्वत शात होता है । आवश्यक होने पर साथ-२ वेदनाहर द्रव्यो का भी प्रयोग करे । ♣

हृदयावरण शोथज शूल

आयुर्वेद बृहस्पति आचार्य श्री महेश्वर प्रसाद प्राणाचार्य, आयुर्वेदाचार्य,
आयुर्वेद सम्राट, आयुर्वेद वाचस्पति, आयुर्वेद वारिधि, योग-ब्रह्मर्षि,
आचार्य डा० महेश्वर विज्ञान भवन, मगलगढ (समस्तीपुर)
प्राचार्य—महात्मा गाधी आयु० महाविद्यालय, बैनी (दरभगा)

—✶✶✶—

शारीर एव क्रिया—हृदय नीचे मुख किये हुए रक्त कमल की कली के सदृश निम्न भाग मे शकु सदृश नुकीला तथा ऊर्ध्व भाग मे स्थूल मासपेशी से बना एक खोखला कोष्ठाङ्ग है जो हृदयावरण (Pericardium) द्वारा आवृत्त रहता है। डल्हण की भी इसी आशय की उक्ति मिलती है। यदुक्त—

कमलमुकुलाकारमधोमुखम्। —डल्हण

अरुणदत्त ने हृदय को कफ, रक्त, प्रसाद एव ओज का स्थान बताते हुए उपर्युक्त बात की ही पुष्टि की है। यदुक्त—

कफ रक्त प्रसादात्स्याद्धृदय स्थानमोजस।
मासपेशी चयोरक्तपद्माकारमधोमुखम्॥
—अरुणदत्त

हृदय प्राय अशुद्ध रक्त को शरीर के समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गो से लेता है, प्राय शुद्ध रक्त को शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गो को देता है तथा सदैव गतिमान रहता है। आहरण, दान और गति अर्थात् लेना, देना एव चलते रहना। इन्ही तीन क्रियाओ के कारण बृहदारण्यक उपनिषद् मे हृदय को प्रजापति और ब्रह्मा की सज्ञा दी है।

'हृदय' तीन अक्षरो से निर्मित शब्द है। 'हृ' इत्येक अक्षर अभिहरन्त्यस्मै, स्वाश्च अन्ये च य एव वेद। अर्थात् इसमे जो एक अक्षर 'हृ' है वह अभिहरण (आहरण) कर्म का प्रतीक है। इससे अपनी इन्द्रिया तथा दूसरे अपना-अपना भाग समर्पण करते या बलि प्रदान करते है। 'द' इत्येक अक्षर ददाति, अस्मै स्वाश्चान्ये च य एव वेद। अर्थात् 'द' जो एक अक्षर इसमे है वह ददति (देता है) का प्रतीक है। यह 'दा' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ दान है। आशय है कि हृदय अपनी इन्द्रियो और दूसरे को अपने मे से देता है। 'यम्' इति एक अक्षर एति स्वर्ग लोक य एव वेद। 'यम्' अक्षर 'इण' धातु से निर्मित है जो गति के अभिप्राय को सूचित करता है। आशय है कि यह निरन्तर गतिमान है, यही गति इसे स्वर्ग को या लोक को पहुँचाती है। अभिप्राय यह है कि हृदय मे गति न होने से मृत्यु और गति होने से जीवन अर्थात् इसी गति के कारण पारलौकिक एव लौकिक सुखो का मार्ग प्रशस्त होता है। स्पष्ट है कि हृदय अपनी इन्ही क्रियाओ द्वारा समस्त शरीर का धारण, पोषण एव रक्षण का कार्य सम्पादित करता है। इसी हृदय के ऊपर समस्त भाग मे पतली सी मजबूत कला (झिल्ली) जिसे हृदयावरण कहते है, आवृत्त रहती है। इनके दो परत रहते है जिन दोनो के अन्दर हृदय को घर्षण से बचाने के लिए विशिष्ट प्रकार का तरल सचित रहता है। 'हृदयावरणे शोथश्च शूल' अर्थात् इन आवरणो मे शोथ या तरल मे विकृति अथवा वृद्धि उत्पन्न हो जाती है तो 'हृदयावरण शोथज शूल' व्याधि प्रारम्भ होने लग जाती है।

कारण, सम्प्राप्ति एव विकृति, भेद—

सन्निकृष्ट कारण—आयुर्वेद के सिद्धान्त से ठडी और आर्द्र पृथ्वी पर या घर मे निवास करने, अभिघात (घुटना, वृक्क या हृदय प्रदेश पर आघात लगने), अत्यधिक चिन्ता से मस्तिष्क मे तनाव उत्पन्न होने, अधिक सोने, ठडी रात मे जागने, उष्ण, गुरु पदार्थो, कषाय एव तिक्त रस प्रधान द्रव्यो के अति सेवन, दूषित आहार-विहार सेवन करने, मधुर पदार्थ विशेषकर चीनी (खाड) अधिक खाने, निरन्तर वेगावरोध, कोष्ठबद्धता, अध्यशन (पद पद पर भोजन करने), तैल मे पके पकवान या चटपटी मसालेदार सब्जी, अचार के साथ अधिक से अधिक

जल पीने, सर्वाङ्ग शोथ की अवस्था मे वात एव जल वृद्धिकारक अपथ्य के सेवन से, कीटाणुमय दुर्गन्धित स्थान मे, अस्वास्थ्यकर वातावरण मे या गन्दी नालियो के समीप मे रहने से यह व्याधि उत्पन्न हो जाती है। "माधव निदान नव्य रोग निदान परिशिष्ट" ग्रन्थ मे श्रद्धेय ग्रन्थकर्त्ता ने "वृक्कस्य दोषादपिचामवातात्—तथा आर्द्र शीतस्थल सन्निवासात" को इस व्याधि का कारण माना है, जिसमे से 'आर्द्र शीतस्थलसन्निवासात' का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यदि सूक्ष्मता से विचार कर देखा जाय तो इस व्याधि का कारण प्रमुखरूपेण पूय उत्पादक जीवाणु ही होते है जो ऊपर लिखे वातावरण मे ही इस व्याधि का प्रसार और सक्रमण करते है, क्योकि वे ही इस व्याधि के लिए अधिक अनुकूल एव उपयुक्त है।

विप्रकृष्ट कारण—ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि चू कि इस व्याधि के जीवाणुओ के विकास एव प्रसार के लिए ठडी एव आर्द्र पृथ्वी मे निवास करना अधिक अनुकूल एव उपयुक्त है, अतएव शीत कटिबन्ध के देशो एव प्रान्तो की यह व्याधि प्राय शीतकाल मे अधिक प्रसरित एव प्रस्फुटित होती है।

स्मरण रहे कि यह व्याधि अधिकतर उपद्रवस्वरूप दृष्टिगोचर होती है किन्तु कभी-कभी अकेले भी स्वतन्त्र रूप से प्रधान व्याधि के रूप मे विशेषकर बालको मे तथा स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे विशेष प्रकट होती है। जहा बाल्यावस्था मे यह व्याधि आमवात एव लोहित ज्वर (स्कारलेट फीवर) के साथ वहा कभी-कभी वृद्धावस्था मे वृक्कशोथ, श्वसनक ज्वर, पूययुक्त परिफुफ्फुसीय कला शोथ, घातक अर्बुद, मधुमेह, यकृत विद्रधि, वातरक्त, राजयक्ष्मा आदि जटिल व्याधियो के साथ दिखाई पडती है।

अर्वाचीन कारण—आधुनिक युग के प्राचीन चिकित्सा शास्त्री-वैज्ञानिको की दृष्टि से इस व्याधि की उत्पत्ति मुख्य रूप से पूय उत्पादक जीवाणुओ, प्रधान रूप से आमवात के जीवाणुओ, मूत्रविषमयता, वक्षस्थल पर बाह्य आघात या गम्भीर छिन्न-भिन्न विद्ध गम्भीर व्रण द्वारा होती है। इसमे दो मत नही है कि आधुनिक युग के पाश्चात्य (वेस्टर्न) चिकित्सा वैज्ञानिक भी उपर्युक्त कारणो को सहर्ष स्वीकार करते हुये एक्टिनोमाइसिस रुग्णता, उपदंश, हृद् धमनी घनास्रता (Coronary thrombosis) न्यूमो-स्ट्रेप्टो-स्टेफिलो-गोनो कोकस, बी० कोलाई, मायो-बैक्टिरियम ट्यूबरक्यूलोसिस, बैसीलस टाइफोसस आदि द्वारा भी इस रोग की उत्पत्ति के कारण मानते है। अत यह सक्रामक व्याधि कहलाया जा सकता है।

यह व्याधि कभी-कभी प्रसूत ज्वर, फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा, रक्त ज्वर, श्लैष्मिक ज्वर, पूयीजीवरक्तता (Septicaemia), जीवाणुदोषमयता, लसीका ग्रन्थियो का राजयक्ष्मा, अस्थिमज्जा शोथ, पूयरक्तता, सक्रामी रक्तता, श्वेतमयता, अरुण ज्वर, ऊर्मिला ज्वर (Uudulant fever) प्राथमिक अग्रसर्पी न्यूमोनिया, मेनिगोकाकसी मस्तिष्कावरण शोथ, पेशी शोथ, बहु-पर्व-सन्धि शोथ आदि व्याधियो मे उपद्रवस्वरूप प्रकट होती है। यदा-कदा रक्त-सशायी कामला और अमीबी पेचिश के सक्रमण से तथा लसवाहिकाओ द्वारा सक्रमण से भी यह व्याधि पैदा होती है।

व्याधि सम्प्राप्ति एवं विकृति—हृदयावरण शोथज शूल एक ऐसी प्राय सक्रामक व्याधि है जिसकी उत्पत्ति मे विभिन्न पूयजनक, आमवातज, राजयक्ष्माजन्य वृक्क-शोथज, मूत्रविषमयता उत्पादक और अभिघातज जीवाणु एव कारण भाग लेते है। जीवाणुओ मे स्ट्रेप्टोकोकस, स्टेफिलोकोकस, गोनोकोकस, मेनिगोकोकस, न्यूमोकोकस, मायोबैक्टिरियम ट्यूबरक्यूलोसिस, बैसीलस टाइफोसस, बी० कोलाई, ट्रेपोनीमा पेलिडम, अमीबा, आमवात के जीवाणु आदि इस व्याधि को उत्पन्न करते है। किन्तु वृक्कशोथ से उद्भूत हृदयावरण शोथज शूल मे प्राय. जीवाणुओ की पूर्णतया अनुपस्थिति रहती है। राजयक्ष्मा, पूयरक्तता, न्यूमोनिया, प्रसूति ज्वर, अस्थिमज्जा शोथ, यकृत विद्रधि एव आमवात मे जहा फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, पर्शुकाए, पृष्ठ, यकृत, सन्धिस्थल आदि अङ्ग-प्रत्यङ्गो मे जीवाणु उत्पन्न होकर सक्रमित हो रक्त परिसचरण (Blood circulation) और लस वाहिकाओ के द्वारा बडी सरलता से सीधे हृदयावरण मे पहुँच जाते हैं वहा वक्ष पर गम्भीर चोट एव व्रण मे जीवाणु बाह्य वातावरण या दूषित सम्पर्क से हृदयावरण मे आ पहुँचते है।

हृदय शारीर प्रकरण मे लिखा जा चुका है कि हृदय के ऊपर दो स्तरो वाला हृदयावरण आच्छादित रहता है

जिसका आभ्यन्तर स्तर हृदय से चिपका हुआ (सलग्न) तथा बाह्य स्तर ऊपर से आवृत्त किया हुआ रहता है। इन दोनो स्तरो के अन्दर श्लेष्मल द्रव रहता है जो निरन्तर चलायमान हृदय की क्रिया मे उन स्तरो के घर्षण को नहीं होने देता है। जब इन दोनो आवरणो (स्तरो) के अन्दर के श्लेष्मल द्रव मे ऊपर लिखे कारणो से जीवाणुओ का सक्रमण होता है अथवा विकृति उत्पन्न होती है तो हृदयावरण में शोथ या तो स्थानिक होते है अथवा सार्वदैहिक। स्थानीय प्रकार वाला शोथ महाधमनी एव महाशिरा के समीप हृदयमूल से तथा सार्वदैहिक प्रकार वाला शोथ हृदय के समस्त आवरणो मे व्याप्त रहता है। इस बात का ध्यान रखें कि हृदय के आवरण मे शोथ हो जाने पर उनकी स्निग्धता, चिकनापन एव कान्ति (चमक) अति क्षीण (नष्टप्राय) होकर खुरदरापन (अनिमसृणता) आ जाती है। परिणामस्वरूप हृदय के सकुचित होने एव प्रसार के समय दोनो आवरणो मे परस्पर घर्षण होने लगते है जिससे शोथ वाले स्थल मे तन्तुयुक्त चिपचिपी स्तर एकत्र हो जाती है। इन अति रूक्ष आवरणो के परस्पर घर्षण (रगड) से उस व्याधि के विविध लक्षण तथा हृदय के पूर्व प्रदेश मे शूल (दर्द) तथा स्टेथिस्कोप से परीक्षा करने पर 'घर्षण' ध्वनि की अनुभूति होती है। शोथ के बाद दूषित या विकृत स्थल से निर्यास निकलना प्रारम्भ हो जाता है।

व्याधि के भेद—हृदयावरण शोथ के बाद जो निर्यास निकलना आरम्भ होता है, उस निर्यास के सघटन के आधार पर इस व्याधि के चार भेद होते हैं—

(अ) शुष्क—इस प्रकार मे फाइब्रिनस निर्यास नि सरित होने लगता है। शोथारम्भ मे हृदयावरण की चमक (कान्ति) समाप्त हो जाती है किन्तु रक्ताधिक्य के कारण वे लाल हो जाते है। इसके पृष्ठ अश पर फाइब्रिन और लसीका बहने लगता है, जो जमकर एक पतला स्तर बन जाता है और सूखकर चिकनी हो जाती है। इसकी चिकित्सा न की जाय तो यह अधिक से अधिक सूखती चली जाती है।

(ब) आर्द्र—इस प्रकार मे फाइब्रस के साथ प्रचुर मात्रा मे लसीका नि सरित होती है और टपकने लग जाती है। परिणामस्वरूप निर्यास की मात्रा ज्यादा एव अधिक द्रवीभूत होती है। फाइब्रिन से लसीका का स्राव प्रचुर मात्रा मे होने से हृदय के दोनो स्तरो के अन्दर द्रव एकत्रित हो जाता है जिसमे लसीका के अलावा किंचित श्वेत कण, लालकण तथा व्याधि उत्पन्न करने वाले जीवाणु भी उपस्थित होते हैं। इस प्रकार मे तन्तु के साथ लसीका भी उपस्थित रहती है, अत इसको लसीका तन्तुमय हृदयावरण शोथ (Serofibrinous) भी कहते है।

शुष्क और आर्द्र प्रकार अधिकतर आमवात मे उपलब्ध होते हैं।

(स) सपूय—हृदय के दोनो स्तरो के मध्य मे जो द्रव रहता है उसमे पूयोत्पादक जीवाणुओ का सक्रमण हो जाता है। यदा-कदा उनके साथ-साथ श्वेत कण भी प्रचुर मात्रा मे उपस्थित रहते हैं। हृदयावरण के अन्दर का द्रव पूय के सदृश दृष्टिगोचर होता है तथा पूय के लक्षण प्रकट करते ह।

(द) रक्तस्रावी हृदयावरण शोथ (Haemorrhagic Pericarditis)—इस प्रकार मे अति रक्तस्राव से हृदयावरणो के अन्दर रक्त की प्रचुरता रहती है, फलस्वरूप इसके अन्दर का द्रव रक्त के सदृश दृष्टिगोचर होता है। सघातक रक्तार्बुद (Malignant blood tumour), फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा, रक्तचित्तिता या परप्यूरा व्याधियो मे इस प्रकार के हृदयावरण शोथ मिलते है—

कुछ जगत्प्रसिद्ध विशिष्ट पाश्चात्य चिकित्सा शोधशास्त्री हृदयावरण शोथ के निम्नलिखित ग्यारह भेद मानते है—

१ तीव्र मृदम हृदयावरण शोथ (Acute Benign Pericarditis), २ चिरकारी आसजी हृदयावरण शोथ (Cronic adhesive Pericarditis), ३ चिरकारी सकीर्णक हृदयावरण शोथ (Cronic Constructive Pericarditis), ४ तीव्र सकीर्णक हृदयावरण शोथ (Acute Constructive Pericarditis), ५. कौक्सेकी हृदयावरण शोथ, ६ शुष्क हृदयावरण शोथ, ७ फाइब्रिनी हृदयावरण शोथ, ८ सपूय हृदयावरण शोथ (Purulant Pericarditis), ९ आमवातज हृदयावरण शोथ, १०. राजयक्ष्मा जन्य या यक्ष्मज हृदयावरण शोथ, ११ निस्सार युक्त हृदयावरण शोथ (Pericarditis with effusi·

इनमे से शुष्क, सपूय, फाइब्रिनी आदि की विवेचना ऊपर की जा चुकी है, शेष भेदो का अन्तर्भाव आर्द्र और रक्तस्रावी प्रकार मे ही हो जाता है।

यदि विकृति मे सयोग से फाइब्रिन का स्राव अल्प मात्रा मे सम्पादित होता है तो यह अल्प काल मे ही नष्ट होकर उपशम की अवस्था को प्राप्त होता है।

कभी-कभी जब हृदयावरण शोथ हल्के प्रकार का होता है, निर्यास की मात्रा अत्यल्प होती है और उसके जमे तह या स्तर तनु होती है तो अन्दर ही अन्दर उसका पूर्णरूपेण प्रचूषण होकर शोथ उपशमित हो विलुप्त हो जाता है।

मध्यम प्रकार की हृदयावरण शोथ की अवस्था मे जबकि निर्यास का स्तर प्रचुर स्थूल होता है तो इसके तन्तुओ का किंचित अश तो चूस लिया जाता है और शेष किंचित अश सगठित होकर स्फोटो को उत्पन्न कर देता है, परिणाम यह होता है कि विकृत स्थल का भाग मोटा होकर उस पर दुग्ध विन्दु के सदृश कही-कही श्वेत धब्बा दृष्टिगोचर होने लगते हैं, जिन्हे दुग्ध विन्दु कहते है।

अनेक रोगियो मे निर्यास के स्तर अधिक मोटे होते है, परिणामस्वरूप उसका प्रचूषण नगण्य या अतिन्यून मात्रा मे होता है जिससे उसका अत्यधिक अश सघटित होकर हृदयावरण के दोनो तहो को मोटा बना देते है तथा बन्धो द्वारा परस्पर अभिलग्न की क्रिया सम्पादित करते हैं। इसी हेतु इस प्रकार के हृदयावरण को अभिलग्न हृदयावरण कहते हैं।

किसी-किसी रुग्ण व्यक्ति मे यदा-कदा यह बन्ध हृदयावरण के बाह्य भाग फुफ्फुसावरण, छाती, उदर, मध्यपेशी एव वक्षभित्ति के साथ निर्माण करते हैं तथा इन अवयवो या आशयो या अङ्ग-प्रत्यङ्गो से हृदयावरण सयुक्त हो जाता है।

कभी-कभी जब निर्यास मे प्रचुर लसीका आने लग जाती है तो शुष्क हृदयावरण शोथ शीघ्र ही आर्द्र प्रकार मे परिवर्तित हो जाता है।

जब रुग्ण व्यक्ति लम्बी अवधि तक इस व्याधि से पीडित रहता है तो हृदयावरण के पर्त पर्याप्त स्थूल हो जाते हैं तथा उन पर कैल्सियम तत्व सचित होने लगता है, परिणामस्वरूप हृदय पर कैल्सियम का प्लास्टर सदृश संरचना का निर्माण हो जाता है तथा वह स्थान पत्थर सम कठोर प्रतीत होता है।

पूर्वरूप एवं रूप—

पूर्वरूप—प्रारम्भ मे कोई विशिष्ट लक्षण दीख नही पडता। मात्र सामान्य ज्वर, पीडा तथा हृदय प्रदेश में हल्का कष्ट प्रतीत होता है। हृदय प्रदेश मे तेज छुरी से काटने सदृश पीडा, बेचैनी एव छूने मे कष्ट की अनुभूति आदि लक्षण यदा-कदा व्यक्त होते है। किसी-किसी रोगी मे ज्वर के साथ कम्पन भी रहता है।

स्टेथिस्कोप यन्त्र से परीक्षा करने पर हृदयावरण के सूखे शोथयुक्त भाग मे घर्षण से यत्र-तत्र सञ्चरित होने वाली साफ-साफ घर्षण ध्वनि सुनाई पडती है, प्राकृत हृदय की ध्वनि अल्प तीव्र हो जाती है तथा सूखी खासी भी प्रारम्भ हो जाती है जिसके शब्द कर्णगोचर होते है।

किन्तु हृदयावरणो मे विकृत द्रव बढने से अथवा दोनो स्तरो के परस्पर सयुक्त होने मे घर्षण ध्वनि सुनाई नही पडती है, हृदय की प्राकृत ध्वनि क्षीण और स्पष्ट हो जाती तथा गम्भीर हृदय मन्द ध्वनि प्रकट होती है।

रूप (लक्षण)—हृदय कोष्ठ की आवरणी शीघ्र ही दोषो से व्यथित हो जाती है, परिणामस्वरूप हृदयावरण मे दाह और उष्णता उत्पन्न होकर शोथ, गुरुता, अधिक पीडा, कोष्ठ मे अधिक कम्प, खासी, दुर्बलता, श्वासकष्ट, नाक से रक्तस्राव, अग्निमाद्य, हस्त एव पाद मे शोथ, नाडी की विषम गति, ज्वर, व्याकुलता, प्रलाप, कष्टदायक सूखी खासी सह छाती मे दर्द आदि लक्षण (रूप) प्रकट होते है। इस व्याधि की तरुण अवस्था मे कभी-कभी किसी रोगी का प्राणान्त भी हो जाता है। कारण स्पष्ट है कि व्याधि की तरुण अवस्था मे हृदयावरणो के अन्दर के विकृत द्रव बढने लग जाते हैं, परिणाम यह होता है कि द्रव के बढने से ग्राहक कोष्ठ अलिन्द के ऊपर पर्याप्त दबाव पडता है जिससे हृदय की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है और रोगी के प्राण पखेरू उड जाते हैं।

इस व्याधि के कई भेद है जिनका उल्लेख पूर्व प्रकरण मे किया जा चुका है। इतना ही नहीं रुग्णावस्था की कोटि के अनुसार इस व्याधि के तीव्र और जीर्ण प्रकार मे और भी दो भेद है। इन अलग-अलग भेदो के पृथक्-पृथक् लक्षण है, जिन सबका उल्लेख आगे किया जा रहा है—

(अ) शुष्क हृदयावरण शोथ—प्रारम्भ मे हृदय प्रदेश मे तेज चाकू से काटने सदृश अल्प, मध्यम या कभी-कभी तीव्र वेदना होती है, व्याकुलता, स्पर्शासह्यता (दाब वेदना), साधारण ज्वर एव कम्पन, श्वसन उथला तथा शीघ्रता मे, साथ ही सूखी खासी भी, अग्निमांद्य, प्यास एव जीभ सूखी, मूत्र की मात्रा मे न्यूनता, हृदय प्रदेश पर स्पर्श करने से रगड की अनुभूति होती है जो हृदय के दक्षिणार्द्ध मे उरोस्थि (Sternum) के समीप चतुर्थ पर्शुकान्तराल मे बहुत ज्यादा व्यक्त होती है तथा स्टेथिस्कोप यंत्र से जाचने पर भी उक्त गतागत (To and fro) घर्षण ध्वनि स्पष्ट सुनाई पडती है और मर्मर ध्वनि स्पष्ट हो जाती है। रुग्ण व्यक्ति के चेहरे पर उद्वेग तथा यत्रणा के भाव परिलक्षित होते है। हृदय प्रदेश तथा अतर पर्शुका (Intercostal) को दबाने पर पीडा होती है। नाडी मन्द, निर्बल और अनियमित होती है। व्याधि के लक्षण कम न होकर शनै-शनै वृद्धि को प्राप्त होते है, जिससे रोगी को निगलने मे भी तकलीफ होती है, हृदय की क्रिया विषम हो जाती है, तीव्र ज्वर हो जाता है, रोगी बाये करवट सो नही पाता है, गर्दन की शिरायें सूज जाती हैं, नीलिमा (समस्त शरीर का नीला हो जाना), अनिद्रा, प्रलाप एव आक्षेप आदि लक्षण प्रकट होते है।

(आ) आर्द्र हृदयावरण शोथ—हृदय प्रदेश विशेषकर अतरापर्शुका स्थल सूजे हुए दिखाई पडते है। हृदय प्रदेश पर एक विशिष्ट प्रकार की तरग दीख पडती है, स्पर्श परीक्षा के द्वारा जल सचय की अनुभूति होती है तथा घर्षण की अत्यल्प प्रतीति होती है। जब आवरणो के अन्दर द्रव काफी बढ़ा हुआ रहता है तो यत्र से घर्षण की ध्वनि प्राय बिल्कुल सुनाई नही पडती और हार्दिक ध्वनि भी स्पष्ट कर्णगोचर होती है। द्रव पर्याप्त मात्रा मे एकत्रित होने पर हृदय के समीप वाला फुफ्फुस का भाग थोडा दूर हट जाता है जिससे अगुलि ताडन से उक्त भाग पर मन्द ध्वनि प्रतीत होती है। जब रुग्ण व्यक्ति शयन करता है तो एकत्रित द्रव हृदय के पीछे के अश मे चला जाता है, फलस्वरूप द्रव सचित होने पर भी घर्षण की ध्वनि सुनाई पडती है, हृदय के प्राकृत शब्द भी स्पष्ट कर्णगोचर होते हैं और मर्मर शब्द क्षीण पड जाते हैं। कोई-कोई रोगी प्रलाप भी करता है।

(इ) तीव्र हृदयावरण शोथ—व्याधि के इस प्रकार मे रुग्ण व्यक्ति बहुत ही दुखी और आतुर प्रतीत होता है, चेहरे पर थोडा सा शोथ तथा गाल का वर्ण प्राय पीला दिखाई पडता है, ज्वर और नाडी की गति तीव्र, वक्ष के वाम पार्श्व मे तेज दर्द, श्लेष्मा रहित शुष्क कास, हृदय प्रदेश की स्पर्शासह्यता, प्रारम्भ मे यत्र से घर्षण शब्द की उपलब्धि किन्तु ज्यो-ज्यो व्याधि की वृद्धि होती जाती है, त्यो-त्यो घर्षण शब्द हृदय के मध्य भाग मे, तत्पश्चात् निम्न भाग की ओर अग्रसर होता जाता है। अन्ततोगत्वा हृदय के आधार अश मे तृतीय वाम पर्शुका के समीप अत्यधिक तेज रगड ध्वनि के रूप मे सुनाई पडती है। ध्यानपूर्वक श्रवण करने से ज्ञात होता है कि यह घर्षण ध्वनि हृदय की एक स्पन्द के साथ प्राय दो बार या कभी-कभी तीन बार भी उपलब्ध होती है और शरीर का आसन परिवर्तित कर देने पर अथवा जब तब इसका प्रकार भी परिवर्तित हो जाता है।

हृदयावरणो के अन्दर के द्रव की उत्पत्ति एव वृद्धि के साथ-साथ यह ध्वनि क्रमश क्षीण होती चली जाती है। इसको स्पष्ट सुनने के लिए रोगी को कुर्सी, बेंच या चौकी (तख्त) पर बैठाकर पूरी सास लेने का आदेश देना चाहिए। ऐसा सम्भव है कि हृदयावरणो की इस ध्वनि के साथ फुफ्फुसावरण की घर्षण ध्वनि भी सुनाई पड सकती है। अतएव सापेक्ष निदान के लिए जानना अनिवार्य है कि फुफ्फुसावरण की घर्षण ध्वनि सास रोकने पर जहां बन्द हो जाती है, वहा हृदयावरण की घर्षण ध्वनि निरन्तर सुनाई पडती है।

'विद्युत हृद्लेखी' या 'इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम' यत्र द्वारा जाच करने पर व्याधि के इस प्रकार मे एस. टी सैगमैण्ट पर असर पडता दिखाई देता है। समस्त पर्त लीड मे, जो अन्तर्हृदय की ओर होगी एस टी उठा रहेगा, किन्तु उल्टा लीड मे नीचे की ओर रहेगा। अधिक रूप से एस. टी २ टी १, टी ३ नही अथवा कम उठा हुआ दीख पडेगा। हृदयपेशी रोधगलन (Myocardial infarction) तथा तीव्र हृदयावरण शोथ के एस टी टी. मे यह अन्तर दीख

पडेगा कि इसका एस टी प्राय समस्त मे उठा होगा। किसी भी प्रकार के हृदयावरण शोथ मे जो एस टी उठा होगा उसका अवतलीय भाग (Concavo part) उपर की ओर एव हृत्पेशी रोधगलन मे जो एस टी ऊपर उठा होगा उसका उत्तलीय भाग (Convexo part) ऊपर होगा। हृदयावरण शोथ मे मास का गलन नही होने के कारण 'क्यू' तरङ्ग की अनुपस्थिति होगी।

(ई) जीर्ण हृदयावरण शोथ—व्याधि के इस प्रकार मे स्टेथिस्कोप यत्र से परीक्षा करने पर द्विकपर्दी क्षेत्र (Mitral area) मे पहले ध्वनि तेज एव कठिन प्राप्त होती है, फलस्वरूप पूर्व प्रकुञ्ची मर्मर (Presystolic murmur) की शका हो जाती हे।

स्मरण रहे कि घर्पण ध्वनिया हृदयावरण के दोनो स्तरो पर परस्पर घर्पण या फुफ्फुसावरण के स्तरो के परस्पर घर्पण से उत्पन्न होती ह तथा यह ध्वनि तव तक निरन्तर सुनाई पडती है, जव तक कि वहा प्रचुर मात्रा मे द्रव का सचय न हो जाय। हृदयावरण की घर्पण ध्वनि तृतीय एव चतुर्थ पर्शुकाओ के मध्य के स्थान मे वाम पार्श्व की ओर कर्णगोचर होती है। सर्वप्रथम इसे मात्र हृदय से आधार अ श पर ही सुन पाते है, तत्पश्चात् यह सम्पूर्ण हृदयावरण पर परिश्रवण किया जा सकता हे।

ध्यान रहे कि यह घर्पण ध्वनि हृदय के आधार पर पर्याप्त काल तक, यहा तक कि द्रव सचय के वाद भी निरन्तर सुनी जा सकती हे। प्रत्यक्ष परीक्षण से देखा गया है कि इस प्रकार की ध्वनि 'खड-खड' के शब्द मे हृदय के प्रकुञ्चन एव अनुशिथिलन दोनो ही काल कभी प्रकुञ्चन मे शुरू तथा अनुशिथिलन मे अन्त होती हुई उपलब्ध होती हे। रुग्ण व्यक्ति को वैठाकर इस ध्वनि को स्पष्ट सुन सकते हे।

व्याधि की इस अवस्था मे हृदयावरण मे द्रव के उपस्थित होने पर एक या दो दिनो के वाद सामान्यतया शोथ लीन हो जाता हे, द्रव अश वढने लगता हे, पीडा और स्पर्शासह्यता न्यून होने लगती है।

विद्युत हृद्लेखी यत्र से जाच करने पर अपेक्षाकृत अधिक लीड मे टी तरङ्ग विपरीत या चपटी (चौरस, Flat), एस टी सम रेखा के वरावर, क्यू आर एस क्षीण शक्ति का लघु अकित तथा हृद्क्षिप्रता (Tachycardia) के लक्षण व्यक्त होते है। पी तरङ्ग विशेषकर वृहत्, विस्तृत, उठी हुई एवं गरुडमय प्रतीत होगी। [विशेष जानकारी के लिये मुझे लिखे]।

(उ) सपूय हृदयावरण शोथ—व्याधि के इस प्रकार मे हृदयावरणो के अन्दर पूय उत्पन्न करने वाले जीवाणुओ से सक्रमित विकृत द्रव भरे रहते है। कदा-कदा इनमे श्वेत कण भी प्रचुर मात्रा मे रहते है। यदि इस विकृत द्रव को अल्प मात्रा मे निकालकर देखा जाय तो वे पूय के सदृश दीख पडते है। हृदय प्रदेश विशेषकर अन्तरापर्शुका-स्थल सूजे हुए दृष्टिगोचर होते है तथा इन पर एक विशिष्ट प्रकार की तरङ्ग प्रतीत होती है। खासने मे विशेष यत्रणा, श्वास कष्ट, अल्प वमन आदि लक्षण के साथ स्पर्शन जाच से द्रव सचय का वोध होता है तथा घर्पण ध्वनि (स्टेथिस्कोप यत्र की जाच मे) नगण्य प्रतीत होती है।

विकृत द्रव की मात्रा प्रचुरता से वढने पर आवरणो की घर्पण ध्वनि प्राय विल्कुल ही सुनाई नही पडती, किन्तु हृदय के प्राकृत शब्द स्पष्ट सुनाई पडते है। दूषित द्रव के एकत्रीकरण से हृदय के समीप वाला फुफ्फुस का भाग थोडी दूर हटा हुआ रहता है फलस्वरूप अगुलिताडन की क्रिया से उतने अश पर मन्द ध्वनि प्रतीत होती हे। आर्द्र प्रकरण मे उल्लेख किया जा चुका हे कि इस व्याधि से पीडित रोगी जव लेटता है तो एकत्रित द्रव हृदय के पीछे वाले अश मे गमन करता हे, परिणामस्वरूप द्रव एकत्रित होने पर भी घर्पण ध्वनि सुनाई पडती है और हृदय की ध्वनि भी साफ साफ सुनाई पडती है।

(ऊ) रक्तस्रावी हृदयावरण शोथ—व्याधि के इस प्रकार मे हृदयावरणो के अन्दर द्रव मे रक्त अधिक रहता है जिससे वह लाल रक्त सदृश दीख पडता है। खासने मे अत्यधिक कठिनाई होती हे, श्वास कष्ट, दर्द, ग्रीवा की शिराये सूज जाती है, नीद नही आती है, हृदय के अग्रभाग को छोडकर उसके आवरण का सम्पूर्ण भाग हृदय के साथ सलग्न हो जाता हे। आवरणो के मध्य द्रव के अधिक होने पर अलिन्द के दव जाने से हृदय दुर्वल हो जाता है तथा हृदय की क्रिया अवरुद्ध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

है। हृदय प्रदेश मे कभी तेज और कभी धीमी वेदना होती है। रोगी प्रलाप करता है, हाथ-पैरो मे शोथ होता है। रोगी का मुखमण्डल उद्वेग की भावनाओ से परिपूर्ण तथा कष्टमय ता हे। घर्षण की ध्वनि अत्यल्प होती है। रोगी के पृष्ठ एव वाम पार्श्व मे तेज दर्द होता है, खासते समय भी दर्द की अनुभूति होती है तथा रोगी सोना या आराम करना चाहता है, किन्तु सोने पर भी उसको शान्ति नही मिलती है। कभी-कभी हृदय प्रदेश के अतिरिक्त मुखमण्डल पर भी शोथ दृष्टिगोचर होता है।

त्वरित पहचान—'माधव निदाने-नव्यरोग निदान परिशिष्टम्' के श्रद्धेय ग्रन्थकर्त्ता ने इस व्याधि को तरक्षण पहचानने के क्या ही विलक्षण रूप व्यक्त किये हैं। यदुक्त—

रोगेण चानेन कला तु तत्र
प्रपीड्यते सत्वरमेवनूनम्।
तेनोष्णता स्यादथ शोथ दाहौ-
तथोष्णता दुर्वलना च गौरवम्॥
श्वासस्यकृच्छ्रत्वमतीव पीडा
हृत्कोष्ठकम्प कसन विशेषाद्।
नासापथेनास्रमपि स्रवेच्च-
शाखासु शोथोऽनल मन्दताऽपि॥

अभिप्राय यह है कि इस व्याधि मे हृदयावरण व्यथित हो जाता है, दाह और उष्णता उत्पन्न हो जाती हे, हृदय प्रदेश पर शोथ, अधिक गुरुता, तेज पीडा, हृदय कोष्ठ मे कम्पन, खासी, दुर्वलता, श्वास कष्ट, नाक से रक्तस्राव (कभी किसी मे), जठराग्नि की मन्दना, हाथ और पैरो मे शोथ उत्पन्न हो जाता है।

वय की विभिन्न अवस्थाओ मे व्याधि का रूप—

नन्हे शिशुओ मे—मातृस्तनपोषी नन्हे शिशुओ मे इस दुष्ट व्याधि का आक्रमण सम्भवत ही किसी को होता है।

बडे बच्चो मे—स्वतन्त्र रूप से यह व्याधि अधिकतर बालको मे होती है। बाल्यावस्था मे आमवात और लोहित ज्वर के साथ यह व्याधि दृष्टिगोचर होती है।

स्त्रियो मे—यह व्याधि स्त्रियो मे बहुत कम होती है।

वृद्धो मे—यह व्याधि स्त्रियो की अपेक्षा ४५ वर्ष से अधिक आयु वाले पुरुषो तथा ५५ वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धो मे वृक्कशोथ, वातरक्त, राजयक्ष्मा, यकृत् विद्रधि, आमवात (जीर्ण) आदि व्याधियो के साथ किंचित स्वतन्त्र व्याधि के रूप मे अथवा विशेषकर उपद्रव के रूप मे दृष्टिगोचर होती है।

विभिन्न व्याधियो मे इसका स्वरूप—

आमवात मे—इस व्याधि से ग्रसित रुग्णो मे हृदयावरण शोथज शूल, घुटनो मे सूजन एव दर्द के साथ हृदय कम्प, ज्वर, श्वासकष्ट, हृदयावरणो मे द्रव की मात्रा लगभग २५० से ३०० मि लि बढी हुई, खासी मे अधिक दिक्कत, शूल आदि लक्षण उपस्थित रहते हैं।

राजयक्ष्मा मे—हृदय प्रदेश पर पीडा, एक्स-रे मे राजयक्ष्मा रोग के सक्रमण का आभास, मन्द ज्वर, क्षीणता, शुष्क खासी, श्वास लेने पर छाती मे दर्द, शुष्क मुखमण्डल, हृदय प्रदेश तथा पर्शुकान्तराल को दबाने से पीडा, नाडी क्षीणता आदि लक्षण राजयक्ष्मा मे व्यक्त होते है।

श्वसनक ज्वर मे—पर्शुकाओ का चलना (पसली मारना), तीव्र ज्वर, श्वास कष्ट, हृदय एव फुफ्फुस प्रदेश मे पीडा आदि।

फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा मे—राजयक्ष्मा के सदृश।

प्रसूत ज्वर मे—हाथ-पैरो मे दाह, शोथ, हृदय प्रदेश मे सूजन, तीव्र ज्वरसह कम्पन, श्वास-प्रश्वास उथला, अग्निमाद्य, जिह्वा शुष्क, सर्वाङ्ग शरीर मे पीडा आदि।

मधुमेह मे—मूत्र मे शर्करा की उपस्थिति, हृदय प्रदेश मे यन्त्रणा, तृषा, व्याकुलता, नाडी क्षीण एव दुर्बल, हृदय कम्प, मानसिक उद्वेग आदि।

वृक्क शोथ मे—मूत्र की मात्रा अल्प, हृदय क्रिया की विषमता, हृदयावरणो मे द्रव की वृद्धि, प्रलाप, हृदय प्रदेश मे कभी मन्द तथा कभी तेज शूल आदि।

घातक अर्बुद मे—हृदयावरणो के अन्दर वाले द्रव मे रक्त की प्रचुरता, हृदय प्रदेश पर तेज छुरी से काटने सदृश तेज पीडा, ज्वर, कम्पन, श्वास कष्ट आदि।

परप्यूरा व्याधि मे—प्राय घातक अर्बुदो के ही समान।

यकृत् विद्रधि मे—यकृत् प्रदेश मे पर्शुकाओ के नीचे यकृत् मे वृद्धि एव विद्रधि (फोडा) की प्रतीति, तीव्र ज्वर, कम्पन, हृदय एव यकृत् प्रदेश मे तीव्र शूल, खासी कठि-

नाड़ी मे आना, कभी-कभी आम एव रक्त के साथ मल-त्याग, पेशाब कम होना तथा मरोड़ आदि।

अन्य व्याधियो मे इनके लक्षण, चिह्न एव रूप, उपद्रव के अनुसार स्वरूप का निर्माण करते है।

व्याधि के विभिन्न उपद्रव—

वैसे तो इस व्याधि मे हृदय की पीडा, व्याकुलता, श्वास कष्ट, कठिनाई से सूखी खांसी, मुखमण्डल पर नीला, हाथ-पैरो मे शोथ, वक्ष के बायें भाग मे तेज दर्द, मानसिक उद्वेग, हृदय की क्रिया विषमता, प्रलाप, तेज ज्वर, हृदय कम्पन आदि अनेक उपद्रव मिल सकते है, किन्तु तीन मुख्य उपद्रवों का उल्लेख किया जा रहा है—

(अ) तीव्र ज्वर—ज्वर दिनों मे कम और रातो मे बहुत ज्यादा रहता है। तीव्र ज्वर मे नाड़ी उष्ण और वेगवती होती है।

(आ) हृदय प्रदेश पर तेज दर्द—हृदयावरणो मे विकृत द्रव सचय से दबाव के कारण तेज दर्द उत्पन्न होता है। रुग्ण व्यक्ति को कोष्ठबद्धता की शिकायत रहने पर यह दर्द अधिक बढ़ जाता है।

(इ) हृदय की क्रिया की अवरुद्धता—हृदयावरणो मे विकृत द्रव की उत्तरोत्तर वृद्धि से अन्दर दबकर हृदय की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है, फलस्वरूप रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है। व्याधि की तरुणावस्था मे भी आकस्मिक मृत्यु होती है।

रोग विनिश्चयार्थ आधुनिक परीक्षाएं

स्टेथिस्कोप यन्त्र द्वारा परीक्षा—हृदयावरणो के अन्दर की शुष्क या आर्द्र (द्रवमय) स्थिति तथा उसकी विकृति का ज्ञान स्टेथिस्कोप को हृदय प्रदेश, अन्तरापर्शुका, फुफ्फुस प्रदेश पर लगाकर किया जाता है। घर्षण ध्वनि, हृदय की प्राकृत ध्वनि, मर्मर ध्वनि के ग्रहण द्वारा (पूर्व प्रकरण मे वर्णित उल्लेखों के आधार पर) इस व्याधि की पहचान की जाती है।

हृदयावरणो के दोनो स्तरो के परस्पर घर्षण होने से गतागत ध्वनि उत्पन्न होती है जो स्पर्श से या उपर्युक्त यन्त्र से सुनी जा सकती है। विकृत द्रव सचय होने से शब्द की ध्वनि मन्द सुनाई पड़ती है और शब्द दूर स्थान से आते हुए ज्ञात होते है।

अगुलि ठेपण—सर्वप्रथम इस क्रिया से हृदय की मर्यादा का पता लगाना चाहिए। इसके पश्चात् हृदयावरण मे जलसचय किस मात्रा मे तथा किस क्षेत्र तक है, इसका ज्ञान सामान्य एव गम्भीर अगुलि ठेपण से करना चाहिए।

नाड़ी स्पन्दन परीक्षा—नाड़ी परीक्षा यन्त्र (Pulsometer) द्वारा परीक्षा करने पर इस व्याधि मे नाड़ी अनियमित, कभी क्षीण, कभी तेज, दुर्बल और विषम गति वाली होती है।

विद्युत हृल्लेखी यन्त्र (इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम)—यह यन्त्र हृदय रोगो के विनिश्चयार्थ बहुत ही उपादेय सिद्ध हुआ है। सिद्धान्त यह है कि जब भी मानव शरीर का कोई भी अंग या अङ्ग-प्रत्यङ्ग सकुचित प्रसारित होगा, अवश्यमेव कुछ न कुछ परिमाण मे विद्युत उत्पन्न होगी। इसलिए हृदय के सकुचन एव प्रसार क्रिया मे एस. ए नोट से समयबद्ध विद्युत लहरें उठती रहती है तथा यह समस्त हृदय की पेशी मे प्रसारित हो जाती है एव अन्त भी हो जाती है। फिर लहर उसी स्थल से उठती है एव समस्त हृदय मे एक विशिष्ट पथ द्वारा फैलकर पुन नष्ट हो जाती है। जब यह लहर उठकर अग्रसर होने लगती है, तब इसके साथ-साथ हृदय की मासपेशी विद्युत से आवेशित (Charge) होती चलती है, अन्त मे समस्त हृदय आवेशित हो जाता है। इसी आवेशित होने की क्रिया को विध्रुवण (Depolarisation) कहते है और जिस काल मे हृदय आवेशित नही रहता उस काल मे उक्त दशा को ध्रुवण (Palorization) कहते है।

स्मरण रखें कि इसी विद्युत प्रवाह के प्रभाव के अन्तर्गत ज्यो-ज्यो हृदय की पेशी आती जाती है, त्यो-त्यो तदनुकूल विद्युत हृद् लेख (ई सी जी) की रेखाएं अंकित होती रहती हैं। यह अकन एक स्वचालित फोटोग्राफ के कागज पर लिया जाता है। यन्त्र को दो विध्रुव इलैक्ट्रोड द्वारा शरीर मे दो स्थलो पर बाध स्थित कर दिया जाता है, फलस्वरूप विद्युत का सचार दीप्त होने लगता है। ऊपर उल्लेख कर चुके है कि इस प्रकार का परिवर्तन एक स्वचालित फोटोग्राफ के कागज पर अंकित कर लिया जाता है।

क्षमा करे। यत्र प्रयोग की सम्पूर्ण विधि वर्णन की जाय तो एक पुस्तक का निर्माण हो जायेगा, अतएव लेख का कलेवर बढने के भय से अति सक्षिप्त उपयोगी बाते ही लिखी गई है। पूर्व प्रकरण मे हृदयावरण शोथ के विभिन्न भेदो के रूप वर्णन मे इस यत्र से जाच कर विनिश्चयात्मक निदान का उल्लेख किया जा चुका है, कृपया उनका ही अवलोकन करे। यहा यत्र प्रयोग मे आये सक्षिप्त सकेत शब्दो की व्याख्या प्रस्तुत है।

सकेत-शब्द-व्याख्या—वि स रे = विद्युतसम रेखा। लीड = दाये और बाये हाथ एव कन्धो से मिलाने वाली बिन्दु पर की विद्युत तरगे, फिर बाये स्कन्ध की तरगे नीचे पैर तक जाती है। इस प्रकार वक्ष मे अङ्कित 'त्रिकोण' के तीन बिन्दुओ को 'लीड' कहते है। वैसे तो अन्य प्रकार के और भी लीड निर्मित कर लिए गये है किन्तु ये (उपर्युक्त) तीनो प्रमाणिक लीड है। एस टी = जिस समय तक निलय सम्पूर्ण हृदयपेशी आवेशित रहती है। एस टी सैगमैण्ट = थोडी देर के लिए पुन ध्रुवीकरण या साधारण स्थिति या आवेश हटने या कम होने से पूर्व एक रेखा आइसो इलैक्ट्रिक लाइन निर्मित होती है जिसको एस टी सैगमैण्ट कहते है। एस टी इण्टरवल = एस टी के मध्यावकाश। क्यु आर एस = यह तरङ्ग मध्यपेशी सैप्टम और दोनो निलयो के आवेगित होने से बनता है। पी तरङ्ग = अलिन्द के सकुचित होने की स्थिति ज्ञापक तरङ्ग। क्यू तरङ्ग = निलयो के बीच की विभाजन वाली पेशी भाग सैप्टम के आवेशिल होने की ओर सकेत करने वाली तरङ्ग। आर तरङ्ग = यह हमेशा आइसो इलैक्ट्रिक लाइन के ऊपर धनात्मक रहती है। एस तरङ्ग = आर तरङ्ग के बाद नीचे आने वाली ऋणात्मक तरङ्ग। टी तरङ्ग = निलय के पुन ध्रुवीकरण या विद्युत आवेश हटने की तरङ्ग जो विशेष महत्व की होती है।

सापेक्ष निदान—

हृदयावरण शोथज शूल से मिलती-जुलती भी कुछ व्याधिया है जिनका सापेक्ष निदान नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

हृदयावरण शोथज शूल	फुफ्फुसावरण शोथज शूल	हृद्पेशी रोध गलन	हृत्पेशी शोथज शूल
१ हृदय प्रदेश मे भारीपन, शोथ एव शूल, प्रारम्भ मे हृदय प्रदेश मे तेज छुरी से काटने सदृश पीडा। दर्द के साथ व्याकुलता एव स्पर्शासह्यता।	१ पीडित पार्श्व मे शोथ, खासने पर पर्शुकाओ मे तेज दर्द, फुफ्फुस क्षेत्र मे भारीपन। चुभने सदृश तेज दर्द के साथ शुष्क कास, ज्वर।	१ प्राय शोथ का अभाव, पसीने से आर्द्र, प्राय वमन, हल्के दर्द से प्रारम्भ होकर बाद मे बहुत तेज दर्द सह स्तब्धता। प्राय नीद की अवस्था मे ही रोग का प्रारम्भ।	१ हृदय की पेशी मे सूजन, उरोस्थि के ऊपरी भाग के पीछे से दर्द शुरू होकर हृदय के अग्र नोक से होते हुए दोनो बाहुओ विशेषकर बाये बाहु से लेकर अगुलियो के अग्र तक चली जाती है।
२ विद्युत हृद् लेखी यत्र की जाच से एस टी का अवतलीय भाग ऊपर की ओर उठा हुआ होगा।	२ अभाव होगा।	२ एस० टी० का उत्तलीय भाग ऊपर की ओर उठा होगा।	२ वाम प्रिकार्डियल लीड्स मे थोडा-सा एस० टी० नीचे सरकी हुई, न्यून-गम्भीर और विपरीत टी० तरङ्ग व्यक्त होगी।

साध्यासाध्यता—

हृदयावरण शोथज शूल सामान्यतया त्रिदोपज होता है, किन्तु आघात, विद्रधि, गम्भीर व्रण तथा विभिन्न विकृतियो से दूसरे दोषो की भी उल्वणता सम्भव है, जिन पर सूक्ष्मता से अवश्य ही ध्यान देना चाहिये ।

रोग नया और अल्प होने पर पथ्य सेवन एव अपथ्य त्याग करने पर व्याधि स्वत शान्त हो जाती है । किन्तु तरुण और जटिल होने पर समय पर यथोचित चिकित्सा एव पथ्य व्यवस्था नही करने पर रोगी की अचानक मृत्यु हो जाती है । व्याधि की जीर्णावस्था मे रुग्ण व्यक्ति के हृदय के अग्र नुकीले भाग शिखाग्र को छोडकर हृदयावरण का समस्त भाग हृदय के साथ चिपक जाता है, फलस्वरूप आवरणो के मध्य सचित द्रव वस्तु की अत्यधिक वृद्धि से ग्राहक कोष्ठ अलिन्द पर असाधारण दाब पडने से हृदय की क्रिया अवरुद्ध होकर रोगी के प्राण पखेरु उड जाते हैं।

अति दुर्बल, मद्यपेयी, मास, चरस, हशीस, गांजा, तम्बाकू आदि दूषित एव कैंसर उत्पादक वस्तुओ के सेवन करने वाले व्यक्तियो को यह व्याधि होने पर उपरोक्त रोग असाध्य होजाते हैं ।

ध्यान रहे कि इस व्याधि मे हल्का सा असाध्य लक्षण प्रकट होने पर भी सद्वैद्यो द्वारा यदि पूर्ण अनुभूत, उत्तम एव श्रेष्ठ गुणकारी औषधियो से यथोचित चिकित्सा, सेवा-सुश्रुषा एव सम्यक् उपचार की व्यवस्था की जाय, तो रोगी के प्राणो की रक्षा हो सकती है ।

व्याधि से बचने के उपाय—

(१) आमवात, राजयक्ष्मा, श्वसनक ज्वर, फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा, सपूय फुफ्फुसीय कला शोथ, प्रसूत ज्वर, वृक्क शोथ, मधुमेह, अस्थिमज्जा शोथ, पूयरक्तता, पूतिजीव-रक्तता, जीवाणुदोपमयता, सक्रामक कामला, श्वेतमयता, अरुण ज्वर, ऊर्मिल ज्वर, प्राथमिक अप्ररूपी न्यूमोनिया, मेनिंगोकॉक्सी मस्तिष्कावरण शोथ, पेशी शोथ, रक्त ज्वर आदि व्याधियो मे से किसी के भी उत्पन्न होने पर तत्क्षण ही उसकी सम्यक् चिकित्सा एव यथोचित उपचार, पथ्यादि की व्यवस्था करके उन्हे शान्त ही कर देना चाहिये । कभी भी उन व्याधियो को जीर्ण अथवा जटिल नही होने देना चाहिए ।

(२) छाती, पर्शुका, वक्ष प्रदेश आदि पर आघात नही लगने देना चाहिये । शरीर पर गम्भीर व्रण भी न होने पावे ।

(३) उपदश, सुजाक, न्यूमोनिया, राजयक्ष्मा के सक्रमण से पूर्णरूपेण वचना चाहिये ।

(४) शरीर मे विशेषकर वक्ष के व्रण मे पूय उत्पादक जीवाणुओ के सक्रमण को तुरन्त दूर करना चाहिये ।

(५) ठण्डी और आर्द्र भूमि पर कभी निवास नही करना चाहिये । सडे-गले फल, सब्जी या अन्न नही खाने चाहिये ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा

चिकित्सा सूत्र—जिन कारणो से व्याधि उद्भूत हुई हो उन्हे यथा विविध व्याधि-सक्रमण, सघात, गम्भीर व्रण आदि को शीघ्रातिशीघ्र दूर करना चाहिये ।* जिस व्याधि के उपद्रव रूप मे यह प्रकट हो उसकी सम्यक् चिकित्सा, उपचार एव सुपथ्य व्यवस्था अवश्ययेव एव त्वरित करनी चाहिये । हृदय को पूर्ण विश्राम देने के लिये आल्हादित, स्वच्छ एव शान्त वातावरण मे मृदु एव गद्देदार पलग पर उसे शयन कराना चाहिये । रोगी की शक्ति एव मनोबल को बढाना चाहिये तथा स्थानीय रक्ताधिक्य को रोकना चाहिये । आवरणो मे द्रव तथा उसके सकीर्णन की कठिनाइयो से हृदय को स्वतन्त्र करना चाहिये । यदि विकृत द्रव की मात्रा अत्यधिक है तो परिवेधन द्वारा उसे निष्कासित करना चाहिये । यदि दर्द असह्य है तो सर्वप्रथम इसे ही दूर करना चाहिये । व्याधि के पूर्वरूप एव रूप (लक्षणो) पर अधिक ध्यान देते हुये तथा व्याधि के मूल कारण को मस्तिष्क मे स्मरण रखते हुये सम्यक् चिकित्सा करनी चाहिये । आशु लाभ के लिये चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व वालहरीतकी चूर्ण २ से ५ ग्राम जल से रोगी को खिलाकर दस्त करा कोष्ठ की शुद्धि कर लेना आवश्यक है । पथ्य मे लघु और सुपाच्य स्वादिष्ट भोजन हल्की-हल्की मात्रा मे कई वार देना चाहिये । जल और लवण को न्यूनातिन्यून मात्रा मे देना चाहिये । चावल भी न दे तो अच्छा है ।

चिकित्सा—यदि रोगी को अत्यधिक असह्य पीडा हो तो हृदय प्रदेश पर विधिवत जोक ४-५ की सख्या मे

* निदान परिवर्जन ।

लगानी चाहिये अथवा विधिवत शिरावेध द्वारा रक्त निष्कासन करना चाहिये । स्मरण रहे कि श्वास ऊर्ध्वगामी, नाडी गति तीव्र एव अनियमित, धमनियो मे रक्त की कमी, शिरागत रक्त सचय की वृद्धि आदि अवस्थाओ मे शिराओ द्वारा रक्त लगभग १० से १५ मि लि तक की मात्रा मे ही निकालना चाहिये ।

शूल को दूर करने के लिये कटकरज वीज को आग मे भूनकर उसकी मींगी को निकाल एक भाग, शुण्ठी एक भाग, दर्दमेदा की लकडी दो भाग और नीम की अन्तर्छाल एक भाग, इन्हे कूट-पीस कपडछन कर २ से ३ ग्राम की मात्रा मे उष्ण जल से हर ४ घण्टे पर या आवश्यकता पडने पर हर ३० मिनट पर कुल ४ मात्रा सेवन करे ।

हृदय प्रदेश पर विशुद्ध सरसो तैल मे मिलाया हुआ दशाग लेप (शार्ङ्गधर सहिता) गरम-गरम ही (आग पर सावधानीपूर्वक गरम कर) लगावे । ऐसा दिन मे २-३ वार करे । दर्द से पीडित क्षेत्र पर अहिफेन से सिक्त वस्त्र को चिपकाना चाहिये, अलसी का उपनाह लगाना चाहिये यथवा अभाव मे सामान्य गरम सेक करना चाहिये ।

व्याधि की प्रारम्भिक अवस्था मे हृदय क्षेत्र पर हिम (वर्फ) की थैली भी रखकर (सावधान ! यह थैली ऊपर से टागकर इस प्रकार रखनी चाहिये कि इसका हृदय क्षेत्र पर दवाव न पडे) तथा शरीर को उष्ण जल की वोतलो से गर्म रखकर और समय-समय पर रुग्ण व्यक्ति के शारीरिक तापमान को अकित कर उस पर ध्यान रखकर हृदय के दर्द को थोडा शान्त एव कष्ट को दूर किया जा सकता है तथा द्रव को वढने मे रोकने मे एव ताप की मात्रा कम होकर रोगी को सुखकर नीद आने मे सहायता मिल सकती है । ध्यान रहे कि हिम प्रयोग से यदि रुग्ण व्यक्ति के शारीरिक तापमान मे न्यूनता का सकेत मिले तो तत्क्षण हिम की थैली का प्रयोग वन्द कर देना चाहिये । हिम के अभाव मे शीतल जल मे भीगे वस्त्र का प्रयोग करे ।

हृदय के दर्द को तत्क्षण दूर करने के लिये शूलवज्रिणी वटी (रसचण्डाशु) १ से २ गोली (२५० से ५०० मि ग्रा) विशेष कष्ट मे ४ गोली (१ ग्राम) उष्ण किये पानी मे घुला या केवल उष्ण जल से तीन वार प्रतिदिन सेवन करावे । दर्द को कुछ ही क्षणो मे शान्त करेगा ।

त्रैलोक्य चिन्तामणि रस (योग रत्नाकर) रुग्ण व्यक्ति की आयु (वय), शक्ति, सामर्थ्य तथा व्याधि की नवीन-जीर्ण अवस्था के अनुसार ६० मि ग्रा से १२० मि ग्रा तक अदरक स्वरस एव मधु के साथ प्रतिदिन एक-दो वार सेवन करावे जिससे दर्द के साथ सूजन, ज्वर, वमन, शुष्क कास आदि की शान्ति हो ।

हृदय प्रदेश के पीडित स्थान पर नारायण तैल (भाव प्रकाश) की हल्के हाथो से मालिश दिन मे ३-४ वार कराये तो दर्द, शोथ एव वात प्रकोप शान्त कर द्रव वृद्धि को रोक देगा ।

यदि आघात लगने से हृदयावरण शोथज शूल उत्पन्न हो तो पीडा शामक तैल (र० त० सार व सिद्ध प्रयोग सग्रह) की मालिश दर्द स्थान पर दिन मे २-३ वार करने से शीघ्र ही शोथ, दर्द, चोट के कष्ट एव रक्त जमने की क्रिया दूर होती है । यदि इस तेल की मालिश कर थोडा सेक दिया जाय तो सत्वर लाभ पहुँचता है ।

हृदय को शान्ति प्रदान करने के लिये मृगनाभ्यादि वटी (स्वास्थ्य रक्षा) १ से २ गोली (१२५ से २५० मि ग्रा) मलाई या दूध के साथ (गाय का दूध) प्रतिदिन दो वार सेवन कराये । यदि इसके साथ सिद्ध मकरध्वज (निर्माता—निर्मल आयुर्वेद सस्थान, अलीगढ) ३० से ६० मि ग्रा प्रति मात्रा मिला दी जाय तो और भी उत्तम और प्रभावशाली लाभ प्राप्त होगा ।

हृदयावरण शोथ को दूर करने के लिये पुनर्नवा मण्डूर या यवक्षार अथवा दुग्ध वटी (भैषज्य रत्नावली) आवश्यकतानुसार १२५ से २५० मि ग्रा की मात्रा मे भोजन के वाद दिन और रात मे पुनर्नवादि क्वाथ १५ से ३० मि लि के साथ सेवन कराते रहे ।

यदि उक्त व्याधि से पीडित व्यक्ति का रक्तदाव न्यून हो अथवा न्यून हो रहा हो तो चन्द्रोदय मकरध्वज १२५ मि ग्रा या कस्तूरी भैरव रस (रस राज सुन्दर) १ से ३ गोली (६० से ९० मि ग्रा) जल से अथवा मधु से प्रतिदिन २-३ वार सेवन कराये ।

भोजन के वाद अर्जुनारिष्ट (भैषज्य रत्नावली) तथा पुनर्नवारिष्ट (भैषज्य रत्नावली) प्रत्येक १५-१५ मि लि एकत्र मिला समभाग जल के साथ मिलाकर दिन और रात मे पिलायें तो आमवातज, वृक्कशोथज तथा आघातज

हृदयावरण शोथ एव शूल दूर होकर हृदय स्वस्थ और बलवान बनता है।

प्रतिदिन प्रात हल्के नास्ता के बाद त्रिफलारिष्ट (माधव निदान, गदनिग्रह) २५ से ३० मि लि बराबर जल मिलाकर पिलाने से कोष्ठो की शुद्धि होती रहती है। यदि इसके साथ त्रिनेत्र रस (योग रत्नाकर) मधु के साथ १ से २ गोली (१२५ से २५० मि ग्रा) की मात्रा मे चटाया जाय तो इस व्याधि के शीघ्र शान्त होने मे विलम्ब नही लगता।

हृदय को शक्तिशाली एव पुष्ट बनाने के लिये यूनानी हकीमी दवा 'खमीरा मरवारीद' अथवा 'खमीरा अम्बरी जवाहरवाला' का मैं विधिवम प्रयोग करवाता हूँ जिससे रोग शीघ्र ही नियत्रण मे आ जाता है।

आयुर्वेद मे हृदय पुष्टिकारक एव हृद्शक्तिदायक औषधियो मे मुक्ता पिष्टी, सिद्ध मकरध्वज, प्रवाल पिष्टी या भस्म को मधु के साथ सेवन कराना भी कम महत्व-पूर्ण नही है।

सतर्क रहे कि इस व्याधि मे उग्र विषैली औषधियो का प्रयोग कदापि नहीं अथवा यथासम्भव कम और बडी सावधानी के साथ प्रयोग करायें।

स्वानुभूत प्रयोग—

(१) अर्जुन की अन्तर्छाल, नीम की अन्तर्छाल, श्वेत पुनर्नवा की जड, भृङ्गराज के पत्र, गिलोय काण्ड तथा बाल हरीतकी प्रत्येक समभाग ले छाया मे पूर्णरूपेण सुखा कर कपड़छन चूर्ण करें। प्रात साय १ से ३ ग्राम या आवश्यकतानुसार अधिक मात्रा मे उष्ण जल से खिलाये तो उक्त व्याधि के शोथ, ज्वर, दाह, दर्द और हृदय कम्प का शमन होता है।

(२) नीम की अन्तर्छाल, कटकरज की भुनी मीगी, काण्ड, निम्ब गिलोय, वासा के पत्र, अर्जुन की अन्तर्छाल, छोटी पिप्पली और अश्वगन्धा मूल प्रत्येक २५-२५ ग्राम लेकर छाया मे शुष्क कर वस्त्रपूत चूर्ण निर्माण करे। अब इसमे १६वा भाग (कुल का) मोती भस्म न १ भली भाति मिलाकर योग निर्माण करे। प्रात साय १ से २ ग्राम औषधि मधु से चटाये तो सूखी खासी तेज दर्द, अग्निमाद्य, हृदयावरण शोथ, श्वास कष्ट, दुर्बलता, नासा रक्तस्राव, हस्त-पाद मे शोथ, नाडी की विषम गति, तेज ज्वर आदि दूर होगे तथा हृदय पुष्ट और बलवान बनेगा।

(३) रात मे सोते समय त्रिफला चूर्ण (चरक सहिता) २ से ३ ग्राम उबाल कर ठडे किये हुये जल से अथवा गाय के दूध के साथ सेवन कराये।

(४) कोष्ठबद्धता अधिक होने की दशा मे पञ्चसम चूर्ण (शार्ङ्गधर सहिता) आवश्यकतानुसार ३ से ६ ग्राम की मात्रा मे उबाले ईषत् उष्ण जल के साथ प्रात या रात मे सोते समय सेवन कराये तो कब्ज दूर होगा।

(५) अर्जुन की अन्तर्छाल १ ग्राम, गिलोय काण्ड चूर्ण २ ग्राम तथा द्रोणपुष्पी पत्र चूर्ण सह नीम पत्र चूर्ण ३ ग्राम, इन्हे एकत्र मिला ऐसी एक मात्रा मधु से १२ बजे दिन मे चटाये तो व्याधि के दुष्ट उपद्रव शान्त होगे।

पथ्य-व्यवस्था—

इस व्याधि की आशका होते ही करेला, परवल, बथुआ, मेथी की सब्जी, मूग, कुलत्थ की दाल, हीग, आलू, मट्ठा, मधु, पुराने रक्तशालि, गोधूम (गेहू), मौसम्बी, पपीता, टमाटर, नारियल का जल, सेब, आम, नारगी, लहसुन, अमरूद आदि फल सेवन करना प्रारम्भ तथा नमक, खट्टे पदार्थ, अचार, खेसाडी की दाल, चट-पटी बाजारू चाट, सफेद चीनी, वनस्पति घी आदि का त्याग अवश्यमेव कर देना चाहिये। ब्रह्मचर्यपूर्वक योग-साधना मे मन को लगाना चाहिये। अधिक क्रोध, काम-वासना, क्षोभ, चिन्ता एव कठोर शारीरिक परिश्रम का पूर्णरूपेण त्याग कर देना चाहिये।

प्राकृतिक चिकित्सा—

(१) सम्पूर्ण रूप से मानसिक व शारीरिक विश्राम, सिराहना ऊचा कर दे।

(२) प्रतिदिन ईषत् उष्ण जल का एनिमा, उपवास के पश्चात् सेब, नारगी और गाजर के फलो का रस फिर फल और दूध दे।

(३) प्रतिदिन दो बार १५ मिनट मे क्रमश बढकर एक घण्टा तक हृदय प्रदेश पर बदल-बदल कर ठडी पट्टी तथा अन्त मे उक्त स्थान को सूखे फुलालैन तौलिया या वस्त्र से रगडकर लाल कर देवे।

(४) विशेष व्याकुलता की दशा मे ठडी वस्त्र पट्टी अथवा वर्फ के जल मे वस्त्र भिगो करके निचोडकर उससे पुन -पुन हृदय को ठण्डक पहुँचाये ।

(५) रूखी खासी, खासते समय वक्ष मे दर्द या श्वास कष्ट हो तो पैरो को उष्ण (ऊन वाले) वस्त्रो से लपेटकर पर्याप्त गर्मी पहुँचाये और एक घण्टा तक छाती की गीली पट्टी वाधे । प्रत्येक २० मिनट पर और प्रत्येक वार पट्टी या लपेट हटाते ही उक्त स्थान को सूखे फलालैन वस्त्र से रगड कर लाल करे ।

(२) दर्द का आक्रमण होते ही हृदय प्रदेश पर ५ मिनट तक गर्म जल मे भीगे व निचोडे वस्त्र से सेक कर १५ मिनट तक वदल-वदल कर उक्त स्थान पर ठडी पट्टी को लगाये । ऐसा ४-५ वार करे । वाद मे रोगी को शवासन पर रखे और पूर्ण विश्राम करावे ।

परमाणुविक चिकित्सा—

सर्वप्रथम रोगी को मन और शरीर से पूर्ण विश्राम दे । पथ्य मे मधु या सेव अथवा मौसम्बी का रस प्रतिदिन पिलाये । नीम और गिलोय के पत्तो के क्वाथ से एनीमा देकर आमाशय एव आन्त्र की सफाई करे । प्रात सूर्योदय से पूर्व वालहरीतकी चूर्ण २ ग्राम वासी जल ८-१० चुल्लू के साथ खिलाये, इसके एक घण्टा वाद पैखाना जाने दे । कोष्ठशुद्धि के वाद अर्जुन का अन्तर्त्वक्, नीम का अन्तर्त्वक्, कटकरज की भुनी मीगी, गिलोय काण्ड, श्वेत पुनर्नवा मूल, भृङ्गराज पत्र, गाजर के ताजे फल का वस्त्रपूत चूर्ण प्रत्येक १००-१०० ग्राम तथा इन्ही की भस्म प्रत्येक १०-१० ग्राम तथा इतनी ही मात्रा मे द्रोणपुष्पी पत्र, शरपुङ्खा पत्र, ब्राह्मी पत्र, अमरलता एव वासक पत्र ले और इन सबका खरल करे । तव समस्त द्रव्यो की एकत्र मात्रा का ५०वा भाग कालीमिर्च का वस्त्रपूत चूर्ण मिलाकर दृढ हाथो से ६ घण्टे तक निरन्तर खरल करे । वारितर और समसर्वत्र होने पर काच की वोतल मे सुरक्षित रखे । इसको १ से २ ग्राम समभाग अकीक भस्म के साथ मिलाकर चार मात्राओ मे वाटे । ऐसी १-२ मात्रा उष्णोदक से प्रात , साय एव रात्रि को सेवन करा करके परमाणुविक अस्त्र से व्याधि (हृदयावरण शोथज शूल) पर धावा वोल दे । अपूर्व सफलता मिलेगी ।

ध्यान-योग-साधना चिकित्सा—

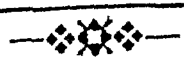
प्रतिदिन नित्य क्रिया से निवृत्त होकर ब्रह्ममुहूर्त के सूर्योदय से पहले तक स्वच्छ, शान्त एव स्वास्थ्यप्रद वायुमण्डल मे सर्वप्रथम शवासन करे । पश्चात् उज्जायी प्राणायाम, योग-निद्रा, अजपाजप, अन्तर्मौन और अन्ततोगत्वा शिथिलीकरण की प्रकिया करे । विशेष जानकारी के लिए लेखक से प्रत्र-व्यवहार करे ।

पाश्चात्य (एलोपैथिक) चिकित्सा—

आजकल हृदयावरण शोथज शूल मे पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र वेत्ता (एलोपैथ) आवसी टेट्रासाइक्लीन और एम्पिसिलीन वाले योग का तथा तीव्र शूल मे एनलजिन, प्रोक्सीवॉन, डाइजेपाम आदि औषधियो का प्रयोग करते है, जिनसे व्याधि से पूर्ण मुक्ति तो नही होती किन्तु रोग, कष्ट एव उपद्रवो मे न्यूनता आकर मृत्यु का भय कम हो जाता है । निम्नाकित दवाये इस व्याधि मे लाभप्रद है—

गुण	औषधि नाम और पैकिंग	निर्माता	मात्रा एव प्रयोग विधि	वक्तव्य
तीव्र शूल	(अ) पेण्टाजासीन इञ्जेक्शन—			
	१ फोर्टविन इञ्जेक्शन एम्पुल—१ मि लि	रैनबैक्सी	१ से २ मि लि (३० से ६० मि ग्रा) मास मे या १ मि लि (३० मि ग्रा) धीरे-धीरे शिरा मे । आवश्यकता पडने पर हर ३-४ घण्टे पर दे सकते है ।	सावधान ! पेण्टाजासीन के अति सुग्राही रोगियो मे, मस्तक क्षत मे तथा इण्ट्राक्रैनियल दवाव मे इसका प्रयोग न करे ।
	२ सासेगान इञ्जेक्शन एम्पुल—१ मि लि	विन-मेडिकेयर		

गुध	औपधि नाम और पैकिंग	निमाता	मात्रा एव प्रयोग विधि	वक्तव्य
	टिकिया—			
	१ फोर्टविन टिकिया	रैनवक्सी	आवश्यकतानुसार १ से ४ टिकिया तक दिन मे ४ वार तक दे सकते है।	
	२ सासेगान टिकिया	विन-मेडिकेयर	१ से २ टिकिया हर ४ घन्टे पर खिलाये।	सावधान ! अधिकतम ६०० मि ग्रा प्रतिदिन से ज्यादा न देवें।
	३ फोर्टाजेसिक टिकिया (पेण्टाजॉसिन तथा पेरा-सीटामोल का योग)	,,	१ से २ टिकिया दिन मे ३-४ वार जल से दे।	
साधारण शूल	(आ) एनाल्जिन			
	इञ्जेक्शन—			
	१ नोवल्जिन इञ्जेक्शन एम्पुल—२ मि लि एव ५ मि लि वायल—३० मि लि	हैक्स्ट	२ मि लि से ५ मि लि मास मे या धीरे-धीरे शिरा मे प्रतिदिन १-२ इञ्जेक्शन लगाये।	सावधान ! अति सुग्राही रोगियो, निपात दशा, यकृत पारफाइरिया, ३ महीने या ५ किलो भार से कम के शिशुओ मे इसका प्रयोग वर्जित है। यकृत या वृक्क क्षत मे भी वर्जित है।
	२ अल्ट्राजिन इञ्जेक्शन पूर्ववत्	ज्यौफ्रीमैनर्स		
	३ पैमाजिन इञ्जेक्शन	अल्केम		
	टिकिया—			
	१ नोवल्जिन २. अल्ट्राजिन २ पैमाजिन	,,	१ से २ टिकिया दिन मे २-३ वार जल से देवें।	
शोथ [सक्रमण जन्य]	(अ) ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन			
	इञ्जेक्शन—			
	१ ऑक्सीस्टेक्लिन इञ्जे० २ टेरामाइसिन इञ्जेक्शन	साराभाई फाईजर	२०० से ३०० मि ग्रा प्रतिदिन १०० मि ग्रा मे वाटकर हर ८ से १२ घन्टे पर मास या शिरा मे इञ्जेक्शन लगावे।	सावधान ! गर्भावस्था, पिलाने की अवस्था मे तथा वच्चो को न दे।
	कैपसूल—			
	१ पूर्ववत नाम २ पूर्ववत नाम	,, ,,	२५० से ५०० मि ग्रा के कैपसूल हर १२ घण्टे पर या ६ घण्टे पर।	
आमवातज	इञ्जेक्शन, कैपसूल, टिकिया—			
	एम्पीसीलिन इञ्जेक्शन एव कैपसूल	हैक्स्ट, रैनवक्सी अल्केम	५०० मि ग्रा से २ ग्राम दिन मे २-४ वार। कैप २५० से ५०० मि ग्रा।	सावधान ! पेनिसिलीन के अति सुग्राही रोगियो मे वर्जित है।



—* स्कन्ध शूल-निदान चिकित्सा *—

कविराज आचार्य हरिवल्लभ मन्नूलाल द्विवेदी शिलाकारी शास्त्री, आयुर्वेद वृहस्पति
स्वामी निरञ्जन निवास, चकराघाट, सागर (म० प्र०)



निदान—

रूक्ष, शीतल, अल्प, लघु अन्न सेवन से, अति स्त्री प्रसङ्ग से, अधिक जागरण से, पचकर्म की क्रिया के विषम उपचार से, मल-मूत्र आदि एव रक्त के निकलने से, अर्थात वमन विरेचन, फस्त के खुलवाने से, अधिक व्यायाम तथा परिश्रम करने से, वहुत जोर से हाथ-पैर चलाकर नृत्य करने से, रसादि धातुओ के क्षीण होने से, चिन्ता, शोक तथा रोग द्वारा दुर्वल होने से,मल-मूत्र आदि के वेग रोकने से, लाठी आदि के आघात से,व्रत-उपवास करने से हृदयादि उन्नीस मर्मस्थानो मे चोट लगने से, हाथी, घोडा ऊट, मोटर साईकिल विक्की, साईकिल आदि शीघ्रगामी वाहनो मे वैठने, उनसे गिरने से प्रकुपित वलवान वायु शरीर के रिक्त स्थानो मे प्रविष्ट होकर सर्वाङ्ग, अथवा एकाग मे होने वाली वात व्याधि को उत्पन्न करता है।

व्याख्या—

अशदेशस्थितो वायु शोपयित्वा सवन्धनम्।
शिराश्चाकु च्यतत्रस्थो जनयेदववाहुकम्॥ (अ० हृ०)

असदेशस्थित (स्कन्धमूलाश्रित) वायु असबन्धन(श्लेष्माण) शोपयित्वात असशोप रोग जनयेत।

कधे मे रहने वाली वायु विकृत होकर स्कन्ध को सकुचित करदे उसको स्कधशोप (स्कधशूल) कहते है तथा जिस रोग मे स्कधस्थित वायु स्कधस्थान की शिराओ को सकुचित कर दे, उसे अपवाहुक वातव्याधि कहा जाता है।

चिकित्सा —

क्रियमत पर सिद्धा वातरोगापहा शृणु।
केवलनिरुपष्टम्भमादौ स्नेहैरुपाचरेत्॥
वायु सर्पिर्वसातैलमज्जपानैर्नर तत।
स्नेहक्लान्त समाश्वास्यपयोभि स्नेहयेत्पुन
यूषैर्ग्राम्याम्बुजानूपै रसैर्वास्नेह सयुतै।
पायसै कुशरैरम्ल लवणै सानुवासनै॥
नावनैस्तर्पणैश्चान्नै सुस्निग्धस्वेदयेत्तत।
स्वभ्यक्तस्नेहसयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसङ्करै॥
तथाऽन्यैर्विविधै स्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत्॥ (च चि)

यदि वायु अनावृत रूप मे अथवा स्तम्भ हीन रूप मे हो तथा अकेली, पित्त-कफ रहित हो तो सर्व प्रथम स्नेहो द्वारा चिकित्सा करना उचित है। इसके लिये रोगी को घृत, वसा, तैल या मज्जा का पान करावे। घृत आदि पान के कारण स्नेह से क्लान्त व्यक्ति को आश्वासन देकर पुन दूध, यूषादि द्वारा स्नेहन देना चाहिए। इसको घृतादि स्नेहन सहित यूष, स्नेह मिश्रित ग्राम्य मास रस, आनूप मास रस, जलज मास रस, स्नेह युक्त तिल-चावलो की खिचडी, स्नेह युक्त पायस, अम्ल-लवण मिलित स्नेह अनुवासनो से, अन्य नस्य तथा तर्पणो से रोगी का स्नेहन करना चाहिये। घृतादि से जब रोगी भली प्रकार स्निग्ध हो जाय तब तैल से अच्छी तरह पीडित स्थान पर अभ्यङ्ग कर स्नेह से सयुक्त नाडी स्वेदादि द्वारा स्वेदन दे एव अन्यान्य प्रकार के समुचित योगो से चिकित्सा करे।

सर्पिस्तैलवसामज्जासेकाभ्यञ्जन वस्तय।
स्निग्धा स्वेदानिवातश्स्थानप्रावरणानिच॥
रसा पयासिभोज्यानिस्वाद्वम्ललवणानिच।
बृ हणयच्चतत्सर्वं प्रसस्तवातरोगिणाम्॥ (च चि)

घृत,तैल, वसा, मज्जा—इनका पान,इन्ही का अभ्यग, वस्तिकर्म (एनीमा), स्वेदन, वातरहित स्थान, घने-भारी वस्त्रो से ढकना, मास रस, दूध, मधुर, अम्ल, लवण भोजन तथा सब प्रकार की वृहण (बलवर्द्धक) विधि स्कन्ध शूल के रोगी को लाभप्रद है।

स्कध शूल के पीडा स्थान पर—

(१) रात्रि मे जौ आदि से वनी घृतादि से स्नेहयुक्त घना लेप करके इसके ऊपर एरडपत्र वाधे। प्रात खोलदे।

—शेषाश पृष्ठ १६७ पर देखे।

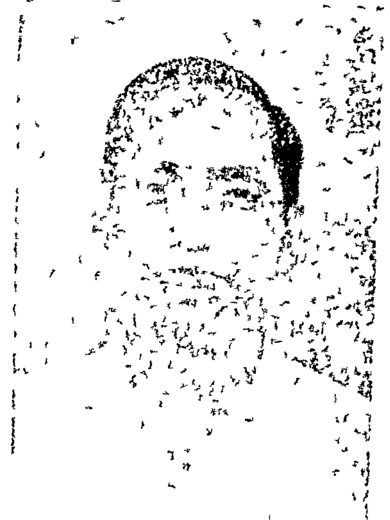
*** पृष्ठशूल ***

डा० दिनेश कुमार एन० श्रीवास्तव एम० डी० (आयुर्वेद)
आयुर्वेदोपचार केन्द्र—गोविन्द भवन के सामने
दाडिया बाजार, बडोदरा (गुजरात)



उत्तर प्रदेश के निवासी डा० श्रीवास्तव जी ने गुजरात को अपना घर मानकर आयुर्वेद द्वारा सेवा कर रहे है। श्रीवास्तव जी गुरुकुल कागडी से बी ए एम एस उपाधि प्राप्त कर कुछ समय तक सस्था सलग्न श्रद्धानन्द रुग्णालय मे सेवा की थी, पश्चात् गुरुकुल आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर मे पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स (M D) शल्य-शालाक्य विषय पर किया। तत्पश्चात् आपने शु० आयु० कालेज, नडियाद (गुजरात) मे ६ वर्ष तक शल्य-शालाक्य विभाग के अध्यक्ष रहे। वर्तमान मे आप सेवा से निवृत्ति लेकर वडौदा मे स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसाय अपनाकर आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा यश प्राप्त कर रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी मजु वहन M D. (आयुर्वेद) हैं और वड़ौदा के आयुर्वेद कालेज मे रीडर है। आपके छोटे भाई श्री अशोक श्रीवास्तव गया (विहार) मे आयुर्वेद के प्राध्यापक हे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज



पृष्ठशूल से सामान्यत करोड रज्जु तथा कटि प्रदेश मे वेदना का अर्थघटन किया जाता है। अत. इसी परिपेक्ष्य मे व्याधि का वर्णन अभीप्ट हे। पृष्ठ शूल एक लक्षण है न कि व्याधि, जिसमे 'लम्वेगो' का भी समावेश होता है। यह लक्षण (व्याधि) आजकल इतनी सामान्य हो गई हे कि लगभग प्रत्येक १० व्यक्तियो मे से एक व्यक्ति मे अल्प या तीव्र रूप मे पाया जाता हे। मुख्यत निदान की दृष्टि से इसके निम्न चार विभाग करते है—

१ करोड रज्जुजन्य (स्पाइनल)
२ आशयजन्य (विसरल)
३. वातनाडीजन्य (नर्वस)
४ शारीरिक कारण (फिजियोलोजिकल)

स्पाइनल—करोड रज्जु (पृष्ठवशास्थि) की कशेरुकाओ के बीच की डिस्क, कशेरुकाओ से सम्वन्धित मासपेशियो-तन्तुओ मे अभिघात से भग्न होने, स्थानच्युति होने, विदार होने, खिच जाने से अथवा कशेरुकाओ की व्याधियो जैसे—ओस्टियोपोरोसिस, ओस्टाइटिस, ओस्टियोमाइलाइटिस, सिफलिटिक ओस्टाइटिस, ओस्टियोमलेशिया, ओस्टियोजेनिक सार्कोमा के कारण वेदना उत्पन्न होती हे जिसे पृष्ठशूल से इगित किया जाता है।

आर्थराइटिस, स्पाइना वाईफिडा, सेक्रेलाइजेशन, लम्वेराइजेशन तथा लम्वो-सेक्रल स्पाडिलाइसिस मे भी पृष्ठशूल प्रधान लक्षण हे।

विसरल—यक्ष प्रदेश, उदर प्रदेश तथा वस्ति प्रदेश के अन्दर स्थित अवयवो (ओरगन्स) के व्याधिग्रस्त होने पर स्थानिक शोथ के कारण पृष्ठ प्रदेश मे शूल उत्पन्न हो सकता है। फुफ्फुस या वृक्क के कारण दक्षिण या वाम प्रदेश जिधर का भाग विकारग्रस्त होगा, उधर के भाग मे शूल होगा जिसे 'होमोलेटरल वेक पेन' कहते है। दोनो वृक्को के विकारग्रस्त होने पर 'डिफ्यूज लम्वर पेन' होगा।

नर्वस—सुषुम्ना काण्ड पर कशेरुका का दवाव पडने से य॰ डिस्क के स्थान भ्रष्ट होने से खिचाव होने पर चोट पहुँचत॰ है, जिससे वेदना उत्पन्न होकर मूर्च्छा-स्तब्धता हो सकती है। कोल्ड ऐब्सिस, सिफलिटिक साइलाटिस आदि व्याधियो के कारण भी सुषुम्ना काण्ड तथा उससे निकलने वाली सज्ञावाही सूत्रो पर दवाव पडता है। यदि पाच ग्रैवेय खण्ड मे व्याधि हो तो चारो शाखाओ मे क्वाड्रीप्लेजिया का लक्षण होता है। ७-ग्रैवेय खण्ड से उरस्तम्भ, ८-ग्रैवेय तथा १-थोरेसिक खण्ड से धड तथा टागो मे, ६-थोरेसिक खण्डो से कोष्ठ तथा टागो मे स्तम्भ के लक्षण मिलते हें। लोअर थोरेसिक तथा अपर लम्बर खण्डो से उरुस्तम्भ के लक्षण मिलते है। इन सभी विकारो मे शूल कम-अधिक मात्रा मे पाया जाता है।

फिजियोलोजिकल—हिस्टीरिया, इन्फलुएञ्जा, स्माल पॉक्स, ब्राइट डिसीज, एनजायटी न्यूरोसिस जैसी सार्वदैहिक व्याधियो मे भी पृष्ठशूल पाया जाता है।

पृष्ठशूल की विशदता को देखते हुए कारण अनुरूप चिकित्सा सौकार्य के लिये क्रमण परीक्षण भी आवश्यक है—१ सामान्य शारीरिक परीक्षण।

२ शूल का इतिहास।
(क) व्यक्तिगत इतिहास।
(ख) परिवार इतिहास जैसे–आमवात।

३ शूल की प्रकृति।

४ विसरल कारणो के लिये अतिसार, वमन, कास आदि लक्षणो पर सम्भावित विचार करना।

५ पृष्ठ प्रदेश का सूक्ष्म निरीक्षण।

६ रक्तवह सस्थान श्वसन सस्थान, का परीक्षण।

७ मूत्र तथा रक्त का परीक्षण।

८ सुषुम्नाकाण्ड स्थित जल का विशेष परीक्षण।

९ एक्स-रे परीक्षण। १० सार्वदैहिक परीक्षण।

चिकित्सा—पृष्ठशूल मे चिकित्सा निदान के आधार पर करनी होती है। भग्न, स्थानच्युति, डिस्क का नष्ट होना या खिसक जाना आदि अस्थिजन्य विकारो मे सम्पूर्ण विश्राम अति आवश्यक हे। पृष्ठशूल मे चिकित्सा के भी दो भेद कर सकते है—

[१] सामान्य चिकित्सा—पृष्ठशूल की तीव्रता को ध्यान मे रखते हुए तात्कालिक चिकित्सा की आवश्यकता होती है, जिससे रुग्ण मूर्च्छित न हो जाये।

(क) यष्टिमधु तथा घृत का मिश्रण किंचिद उष्ण करके पान कराना चाहिए।

(ख) हरिद्रा मिश्रित उष्ण दुग्धपान।

(ग) घृत तथा मधु का प्रयोग। —सु चि १/१२०

(घ) बला तैल या किंचित उष्ण घृत से सिंचन।
—सु चि १/८१

(ङ) मास रस, शालि चावल, दूध, काजी, सौवीरक, मैरेयक तथा सुरा का पान। —सु चि ७/२६

(च) अवस्थानुसार तथा आवश्यकतानुसार अभ्यग, स्वेदन, विम्लापन, उपनाह, परिषेक, भेदन आदि।

[२] विशेष चिकित्सा—विशेष चिकित्सा के पुन दो भेद कर सकते है—

(अ) दोषानुसार चिकित्सा—वातज मे घृत, तैल, काजी तथा वातघ्न औषधियो के उष्ण क्वाथ का पान-परिषेक करना। पित्तज मे मधु, दुग्ध, इक्षु रस, क्षीरी वृक्ष के शीतल क्वाथ का पान-परिषेक-अभ्यङ्ग करना। कफज मे तैल, गोमूत्र, क्षारयुक्त जल, शुक्त, सुरा आदि कफघ्न औषधियो के उष्ण क्वाथ का प्रयोग करना।

(आ) व्याधि अनुरूप चिकित्सा—भग्न मे संधान चिकित्सा। स्थानच्युति मे स्वस्थान मे लाना। अस्थि विकारो मे तदनुरूप चिकित्सा करना। विद्रधि, प्रमेह, पिडिका मे भेदन कर्म करना। वातनाडी के विकार मे वात शमन के उपाय करने चाहिए।

दशमूल क्वाथ, योगराज गुग्गुल (लघु अथवा महा), रास्नादि क्वाथ, निर्गुण्डी पत्र पिण्ड स्वेदन, वातविध्वस रस, बृहत् वातचिन्तामणि रस, वातगजाकुश रस, चित्रकादि वटी, कनकासव, दशमूलारिष्ट आदि योगो का पृष्ठ शूल मे उपयोग लाभदायक है।

आधुनिक मतानुसार भग्नच्युति की स्थिति मे प्लास्टर ऑफ पेरिस के द्वारा स्थान की गति को स्थिर कर पूर्ण विश्राम के साथ-२ वेदनाहर तथा शोथघ्न औषधि जैसे—सैलिसिलेट, एस्प्रीन, पेरासीटामोल, ब्रूफेनका प्रयोग करे। अति वेदना मे निद्राजनन औषधियाँ दे। आवश्यकतानुसार शस्त्र कर्म भी करे। स्थानिक वेदना मे ईथर स्प्रे अथवा सिग्नोकेन १% अथवा २% सूचिकाभरण दिया जाता है। रक्तस्राव, डिहाईड्रैशन, मूर्च्छा, अङ्गघात की विशिष्ट सफल चिकित्सा की जाती है। *

※ विश्वाची स्थान विशेष शूल अनुभवात्मक विवेचन ※

वैद्य किरीट भाई सी० पण्डया डी एस ए सी, सेनेटर–गुजरात आयु० वि० वि०
सुश्रुत क्लिनिक, ई–ब्लाक, केपीटल कोम. सेन्टर, अहमदावाद–९ (गुजरात)





अहमदाबाद नगर मे प्रतिभा सम्पन्न एवं शास्त्रीय वैद्यो मे श्री किरीट भाई पाण्डया का नाम अग्रिम स्तर पर लिया जाता है। भूतकाल मे आप गुजरात आयुर्वेद स्नातक मण्डल, गु प्र वैद्य मण्डल, अखिल गुजरात वैद्य मण्डलादि अनेको सस्थाओ मे सक्रिय थे एवं विविध पदो पर रहकर आयुर्वेद की सेवा की है। आप पिछले १५ वर्षो से गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय के सेनेट-सिण्डीकेट मेम्बर हैं। वर्तमान मे आप स्पेस एप्लीकेशन सेन्टर I S R O, फिजीकल रिसर्च लेवो P. R L, तथा प्लाज्मा फिजीक्स केन्द्र के मानद वैद्य (चिकित्सक) हैं। म्यु कार्पोरेशन अहमदाबाद के भूतपूर्व पंचकर्म चिकित्सक भी रह चुके है। आप S S C बोर्ड गुजरात के सदस्य भी थे। वर्तमान मे आप स्वतन्त्र चिकित्सालय में पचकर्म पर ज्यादा ध्यान देते है। चर्म रोगों पर आपने सशोधन कार्य किया है—और आज तो समग्र अहमदाबाद एवं गुजरात मे त्वक् रोग निष्णात का नाम पा लिया है।

श्री पण्डया जी ने 'चामड़ी ना रोगो' तथा 'वृक्षो मानव जानना मित्रो' ग्रन्थ भी लिखे हैं। आयुर्वेद प्रचार एवं प्रसार हेतु आपने विदेश यात्रा के दौरान स्विटजर्लेन्ड, इटली, फ्रांस, इन्गलेण्ड, स्पेन पुर्तगाल, जर्मनी, वेलयिम, होलेण्ड एवं अमरीका आदि देशो मे आयुर्वेद प्रवचन भी दिया है। हम श्री पण्डया जी से गौरवान्वित हैं। सतत परिश्रम कर आयु में अनुसन्धानात्मक प्रयोग कर दिखाते। मैं पण्डया जी से आग्रह करूंगा कि आप बार-बार धन्वन्तरि माध्यम से देश के वैद्य समाज को मार्गदर्शन दें।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

'हाथ की इस जकडाहट से अब तो मै त्रस्त हो गया।' स्पेस एप्लीकेशन सेन्टर अहमदावाद केन्द्र के हेड केन्टीन कुक श्री नैयर के ये शब्द थे जब वह पेहली बार मेरे पास आये थे।

श्री नैयर के वाम हस्त की कार्य करने की क्षमता मे कुछ कमी आ रही थी और साथ मे वाहु मे तीव्र वेदना भी थी। करीब दो साल से यह रोग उनके पास घुमराता रहता था, कभी ज्यादा, कभी कम, पूरी तरह से वो जाता नही था अव तो कभी दर्द असह्य बन जाता था।

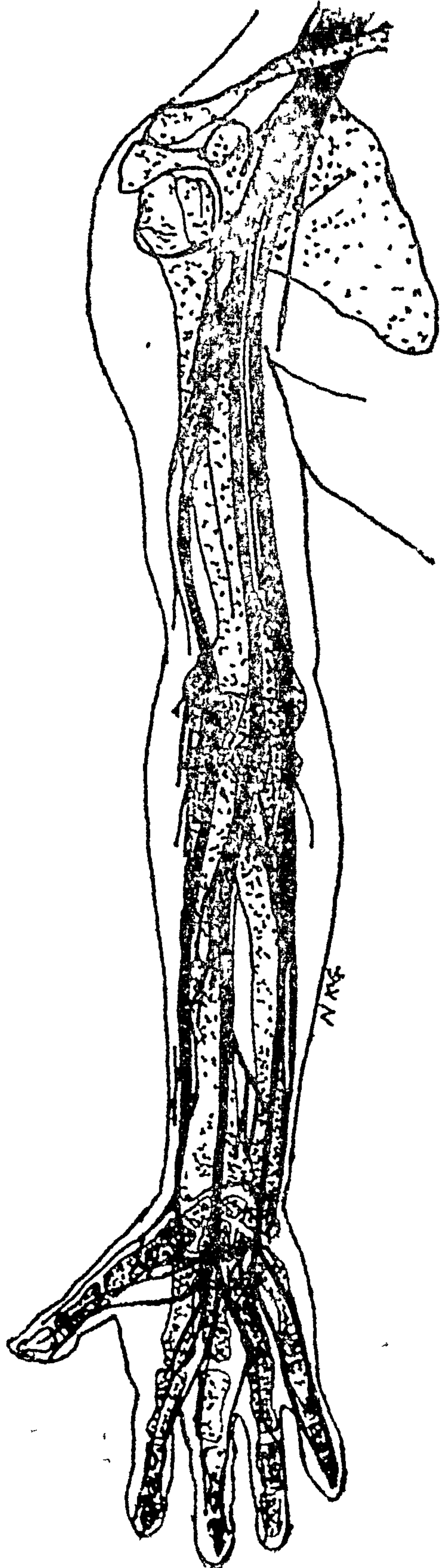
उत्तरोत्तर हाथ उठाकर शिर की ओर ले जाने मे बहुत कठिनाई पा रहे थे, हाथ को पीठ की तरफ पीछे ले जाने मे असमर्थ बन गये थे।

श्री नैयर को साथ मे मधु प्रमेह की शिकायत भी थोडी आ रही थी। (पी पी वी एम १५०-१८० मि ग्रा)

आयुर्वेद चिकित्सा मे वायु की बीमारिया पूर्णरूप से ठीक करने की मूलगामी चिकित्सायें और उस दर्द की पुष्टि के लिए श्री नैयर आयु चिकित्सा केन्द्र मे आये थे।

मेरे निदान मे उनको विश्वाची था। विश्वाची मे अशसंधिगत वायु का प्रकोप होता है, वायु के जितने भी गुण का दर्शन आयुर्वेद मे निदान चिकित्सार्थ किया है से चलगुण की महत्वपूर्ण विकृति यहां देखने को मिलती है।

विश्वाची मे पीडा-वेदना दर्द हाथ के मूल मे लेकर



कभी-कभी अंगुलियो तक चलता रहता है। कभी-कभी हाथ मे झनझनाहट चलती रहती है हाथ सुन्न सा लगता है। अगर आप हाथ उठाते है तो सीने तक तो हाथ आसानी से उठ जाता है, लेकिन उससे ऊपर हाथ को उठाने में आपको बड़ा कष्ट होता है। हाथ को सिर से पीछे ले जाने मे कभी-कभी आप असमर्थ हो जाते है।

सिर मे कंघी लगाना है तो बडी मुश्किल की बात हो जाती है, कपडे पहनना, कपडे के बटन लगाना आदि काम मे बड़ा दर्द मालूम पड़ता है। आप साईकिल, स्कूटर या कार चलाने मे असहाय बन जाते है। कोई चीज ऊपर से उठाना है तो ऐसे काम आप कर नहीं पाते।

इंग्लिश वैदिक मे इसे Frozen Shoulder कहते है। जैसे फ्रीज मे रखा पानी जमकर बर्फ जैसा बन जाता है वैसे ये कन्धा जैसा जम जाता है, कोई काम आसानी से नही कर पाते।

मेरे अनुभव मे मैने देखा है कि अधिकतर ४० से अधिक उम्र वालो मे यह रोग विशेष मिलता है। जिन लोगो के एयरकण्डीशन मे अधिक रहना होता है उनको भी यह रोग अधिक जकड लेता है।

निदान चिकित्सात्मक अध्ययन मे यह रोग प्राय कफ और वायु होता रहता है।

प्रायः यह विश्वाची रोग निज-अपने शारीरिक कारणो से ही सम्पन्न होता हे, फिर भी कभी हड्डियो मे–करोटि रज्जु मे एक्सीडेन्ट से मोच आती हे, हड्डी टूट जाती है या हड्डी मे भारी दबाव आ जाता है तो उन आगतुक-बाह्य कारणो से भी रोग होता है।

अश प्रदेश से प्रारम्भ होने वाला यह रोग कभी-कभी ज्यादा चले तो अश प्रदेश को सुखा भी देता है।

आयुर्वेद के ग्रन्थो मे वात रोगाधिकार मे उसके बारे मे ज्यादा जानने को मिल सकता हे।

विश्वाची की चिकित्सा मे मैने जो इलाज श्री नैय्यर के लिये किया और ६०-७०% सुपरिणाम प्राप्त किया है वह आपके सामने रखता हूँ—

रोग के दोषो मे कफ वात है। रोग की अवस्था आमवाली (साम) हे। इन दोनो को नजर रखते हुए कुछ निरामीकरण होना चाहिये।

ससर्जन क्रम—२ दिन सिर्फ उबाला हुआ पानी ही लेना। तीसरे दिन मूग जो सिर्फ बोइल्ड ही लेना, चौथे दिन मूग और सूखे हुए चावल का खूब पतला पानी (ओसामय)

५ वें दिन मूग-भात (पेयवत) ६ वे दिन मूग भात—शब

७ वें दिन मूग भात, रूखी रोटी (खाखरा)

सब्जी का शूप—८ दिन मियत आहार क्रम शुरू।

पथ्यपालन — मूग के सिवा कोई दाल लेना मना है— मूगफली का तेल, सिगतैल, मूगफली मिंग बिलकुल बन्द तली हुई चीजे नही ले सकते, जरूरत पर तिल तेल, घृत ले सकते है। ठंडी चीजे (कोल्ड) बिलकुल बन्द, आटा, मैदा आटा और मिठाइया बिलकुल बन्द भारी और नही पचने वाला सब खुराक बन्द।

विरुद्ध आहार और विहार भी पेशन्ट को समझाया।

समर्जन क्रम के बाद निम्न औषधि लम्बे काल तक दी गई थी —

(१) अश्वगन्धा चूर्ण ३ ग्राम, एकागवीर रस २५० मिग्रा, बृहद वातचिंतामणि १२० मि ग्रा, दिन मे दो बार रास्ना सप्तक काढा के साथ।

नोट-बृ० वात चितामणि की मात्रा मे कभी कम कर लेता था, कभी अश्वगन्धा के साथ आधा भाग कर शुण्ठी चूर्ण भी प्रयोग किया गया।

(२) सिंहनाद गुग्गुल—२५० मिग्रा १ गोली, २ गोली (छोटी) २ बार, सहिजन पानी के साथ।

(३) भल्लातक घृत— ५ मिली, गर्म पानी के साथ रात्रि को सिर्फ १ बार, घृत पान के बाद गर्म दूध १ कप उसके बाद कोई भी चीज नही ले सकते है।

नोट—(अ) पित्त प्रकृति वाले रोगियो को यह प्रयोग नही किया जाता या पूर्ण सावधानी से अल्पावधि अल्प मात्रा से शुरू करना।

(बी) अगर गर्मी के दिन है तो यह प्रयोग नही करना—शुद्ध नारायण तैल (पान के योग्य) मिला सकते है।

(४) बाह्य भाग मे मालिश अभ्यगार्थ महावातास्त्र तैल की मालिश करना और हल्के हाथ मे वालुका स्वेद कराना।

श्री नैयर को जो रोग दिन प्रति बढ रहा था वह तो रुक गया तथा आगे चलकर ६०-७० % लाभ हुआ।

चिकित्साक्रम दर्दी की प्रकृति अनुसार किया गया था। सुज्ञ वैद्य अपने क्रम से भी लाभ पा सकते है। वात रोगो मे मूलगामी चिकित्सा आयुर्वेद शास्त्र मे सबसे अच्छी है। ✶

— विश्वाची—स्थान विशेष शूल—अनुभवात्मक विवेचन — पृष्ठ १६२ का शेषाश —

(२) तिल, सरसो अलसी आदि को काजी के साथ साथ पीसकर शीतल लेप तथा शीतल उपनाह करना।

(३, वायुतुम्बी, नीम, असगन्ध, अजवाइन, सरसो, इनको समान भाग लेकर जौकुट कर गर्म पानी मे डाल कर निर्वात-स्थान मे वफारा देना और इसी से सेक करे।

(४) महाविषगर्भ तैल, महानारायण तैल, दोनो को मिलाकर मर्दन करना चाहिए।

(५) मालकागनी का तैल, सरसो का तैल, तारपीन का तैल, तीनो समान भाग लेकर थोडा देशी कपूर मिलाकर स्कधशूल पर मालिश करनी चाहिये।

(६) बृहद् वातचिन्तामणि रस आधा रत्ती, महावात विध्वस रस १ रत्ती, अश्वगध चूर्ण ३ माशा सबको मिला एक पाव गौदुग्ध द्वारा दिन मे ३ बार देवे।

(७) महायोगराज गुग्गुलु ४ रत्ती, वातगजाकुश रस २ रत्ती महारास्नादि क्वाथ के साथ ३-४ बार देवे।

(८) अश्वगधारिष्ट दशमूलारिष्ट, १-१ चम्मच, २ चम्मच पानी मिलाकर भोजनोत्तर देवे।

कैंसर के शूल की चिकित्सा—

अन्नप्रणाली का कैंसर, उदरच्छदा और उदर का केसर, कठ एव सिर के कैन्सर मे उपसर्ग रूप मे शूल की उत्पत्ति होती है। अतएव शूल के उपस्थित होने पर सर्व प्रथम यह द्रव्य प्रयोग करने चाहिए —

१ ईसबगोल की भुसी १ चम्मच, त्रिफला चूर्ण एक चम्मच दोनो मिलाकर गुनगुने जल या दूध से देवे।

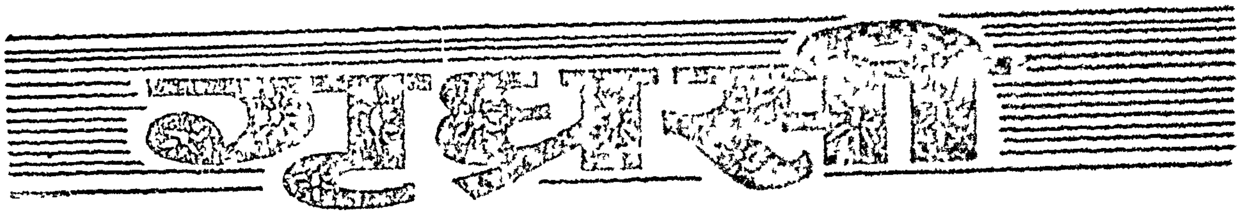
२ एरड तैल का एनीमा देकर उदर शुद्धि के उपरात बृहत्वातचिन्तामणि रस १/२ रत्ती, महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती-दोनो को १ चम्मच मलाई मे मिलाकर ऊपर से औटाया हुआ १ पाव गौदुग्ध पिलावे। इस प्रकार दिन मे ३ या ४ बार तक देवे।

३ शूलवज्रिणी वटिका १ गोली, शङ्ख भस्म २ रत्ती अथवा हिंग्वाष्टक चूर्ण ३ माशे, शङ्ख भस्म २ रत्ती मिला कर उष्णोदक के साथ आवश्यकतानुसार देवे।

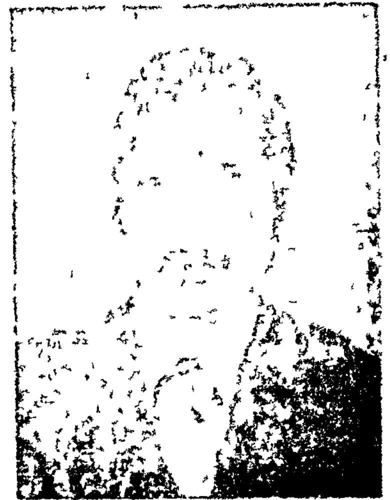
४ मधुयष्टी का चूर्ण—घृत मे गरम कर कपडे की पोटली के सेंक से अन्नप्रणाली के कैंसर का शूल शात होगा।

५ स्थानीय—दशाग लेप मे गुग्गुल मिलाकर दूध मे पीसकर गरम कर लेप करें, ऊपर से एरण्ड पत्र बाधें।

६ अमृताञ्जन का प्रलेप करना हितकर है। ✤



वैद्य भानु प्रताप आर मिश्रा, आयु० मध्यमा, बी एस ए एम.
विवेचक–श्री बाला हनुमान आयु० महाविद्यालय, लोदरा महेमाना (गुज०)



श्री मिश्रा जी सचमुच हो आयुर्वेद के विकास प्रसार एव प्रचार में तन-मन-धन से ओतप्रोत बनकर तपश्चर्या करते देखे जाते हैं। आप जो विषय अपने हाथो मे लेते हैं उन पर अनुसन्धान कर प्रयोग कर, सिद्ध कर, पश्चात् परिणाम को देखकर समाज को दर्शन कराते है। आप उच्चकोटि के स्वास्थ्य लेखक है। उत्तम निदानज्ञ एवं सफल चिकित्सक है। भानु नाम सूर्य का है– आप सचमुच आयुर्वेद जगत के 'भानु' ही है। मैं श्री मिश्रा जी से अपेक्षा करता हूं कि धन्वन्तरि द्वारा आप निरन्तर अपने ज्ञान का लाभ देते रहे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे गृध्रसी को सायेटिका (Sciatica) कहते है। सायेटिका ज्ञानतन्तु (Sciatica Nerve) के प्रसारण मे शूल होता है। इसीलिए यह वातव्याधि है। क्योकि शूल इसका मुख्य लक्षण है। आयुर्वेद मे कहा गया है कि ग्राहते नास्ति रजा अर्थात् वायु के विना शूल नही उत्पन्न होता। इसलिए सायेटिका नर्व के कोर्स मे शूल होने के कारण इसका नाम सायेटिका पडा। सायेटिका नर्व को आयुर्वेद मे गृध्रसी नाडी कहते है। इस रोग में रोगी गिद्ध की भाति चलती है।

गृध्रसी के कारण—आयुर्वेद के ग्रन्थो मे गृध्रसी रोग के कारणो का स्वतन्त्र वर्णन नही मिलता है। परन्तु वातव्याधि के सामान्य कारणो से गृध्रसी की उत्पत्ति हो सकती है। इसलिये यहा वातव्याधि के आधार पर गृध्रसी के कारणो का विवरण दिया जायेगा—

१ लघनप्लवन अर्थात कूदना अथवा अन्य किसी प्रकार से शरीर मे झटका लगे इस प्रकार का हलन-चलन।

२ अति अध्वगमन अर्थात अधिक चलना।

३ अति व्यायाम अर्थात अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम अथवा कसरत करना।

४ अति विश्चेष्टन अर्थात किसी भी प्रकार से शारीरिक हलचल अधिक प्रमाण मे करना।

५ दु ख शैया और आसन अर्थात दु खकारक हो ऐसे विस्तर अथवा आसन का प्रयोग करना।

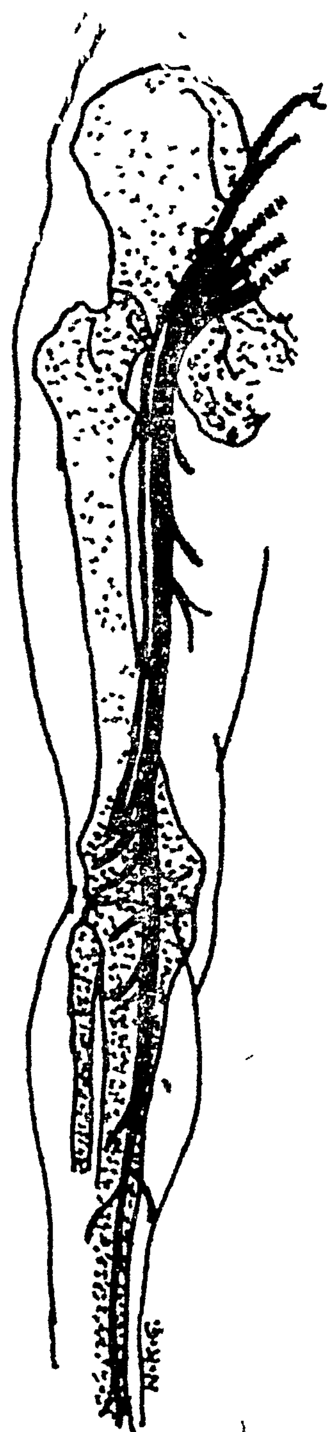
६ मर्माघात अर्थात शरीर के विभिन्न मर्मो पर आघात अर्थात चोट लगना।

७. पृष्ठयान पर अधिक बैठना अर्थात ऊट, घोडा, साईकिल, स्कूटर आदि पर अधिक बैठना।

८. प्रपतन अर्थात गिर जाना जिससे कि कटि, स्फिक्, पृष्ठ जैसे भाग पर चोट लगे।

९ वेग संधारण अर्थात मल मूत्र जैसे आवेगो को रोकना जिससे अपानवायु के क्षेत्र मे अवरोध और प्रपीडन की स्थिति उत्पन्न हो।

१० अन्य हेतुओ अर्थात अधिक प्रमाण मे जागना। वमन, विवेचन जैसे शोधन उपचारो का अधिक उपयोग करना। दस्त, उल्टी, योनिगत रक्तस्राव गुदा द्वारा रक्त स्रावो अथवा अन्य कारणो से शरीर के धातुओ का क्षय होना। चिन्ता, शोक, कोध जैसे मानसिक कारण भी गृध्रसी उत्पन्न करने मे कारणभूत हैं।



गृध्रसी की सम्प्राप्ति—उपरोक्त कारणो से प्रकुपित वात अथवा वातकफ स्फिक्, कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जङ्घा तथा पाद मे स्थान सश्रय करके वहा वेदना उत्पन्न करते है। उसे गृध्रसी कहा जाता है। गृध्रसी को आधुनिक चिकित्सा निदान मे सायेटिका (Sciatica) कहते है।

दोष—वातकफ   दूष्य—रस

स्रोतस्—रसवह   अधिष्ठान—पाद

स्रोतोदुष्टि लक्षण—संग

गृध्रसी सामान्य लक्षण—वेदना स्फिक् मे प्रारम्भ होती है। पश्चात् वेदना क्रमश कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जङ्घा तथा पाद की तरफ जाती है। रोगी पैर सीधा करते समय वेदना का अनुभव करता है। कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जङ्घा तथा पाद मे वेदना स्तम्भ, तोद तथा स्पन्दन होता है। गृध्रसी प्राय रोगियो के एक ही पैर मे होती है। परन्तु कभी-२ रोगियो के दोनो पैरो मे भी गृध्रसी देखने को मिलता है।

गृध्रसी के विशेष लक्षण—आयुर्वेद के ग्रन्थो मे गृध्रसी के दो प्रकार बताये गये है। एक वातज गृध्रसी तथा दूसरा वातकफ गृध्रसी। वातज गृध्रसी मे सुई के चुभने के समान वेदना होती है तथा शरीर टेढा हो जाता है। घुटने, कटि तथा उसकी सधियो मे फडकन अथवा जकडाहट रहती है तथा गृध्रसी के सामान्य लक्षण जो आगे बताये गये हैं वे सभी विद्यमान होते है।

वातकफज गृध्रसी मे अग्निमाद्य, गौरव, तन्द्रा, मुख से लालास्राव एव भक्तद्वेष हो जाता है। इसके अतिरिक्त गृध्रसी के सभी सामान्य लक्षण विद्यमान होते है।

गृध्रसी रोग की परीक्षा—गृध्रसी का रोगी गिद्ध के समान चलता है। रोगी को सीधा लिटाकर पैर ऊंचा करने के लिये कहा जाय तो रोगी पैर ऊंचा नही उठा सकता। यदि चिकित्सक स्वय अपने हाथ से रोगी का पैर उठाता है तो रोगी के पैर मे काफी वेदना होती है। इसका कारण गृध्रसी नाडी का शोथ है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से रोगी को स्क्रीनिंग, क्ष-किरण फोटो तथा मूत्र परीक्षा कराना अत्यन्त आवश्यक है। स्क्रीनिंग मे कटि कशेरुका मे कौन सी विकृति है जिसके कारण सायेटिका नर्व के उद्‌भव स्थान मे विकृति या दवाव हो तो उसे देखना अत्यन्त आवश्यक है। स्क्रीनिंग के साथ ही क्ष-किरण फोटो लिया जाय तो अति उत्तम होगा। क्योकि बहुत सी चीजें स्क्रीनिंग मे हम अच्छी तरह नही देख सकते जो क्ष किरण फोटो मे स्पष्ट दिखाई देती हैं। विशेषत पाचवी कटि कशेरुका अथवा उसकी गद्दी (Fifth Lumber Vertebra or its disc) आगे चली आई हो तो उसका दवाव गृध्रसी नाडी पर पडेगा। इसके परिणामस्वरूप गृध्रसी नाडी मे वेदना होगी। इसके अतिरिक्त मधुमेह के लिये मूत्र परीक्षा करनी चाहिये। क्योकि गृध्रसी को उत्पन्न करने मे मधुमेह सहयोगी हो तो गृध्रसी के साथ ही मधुमेह की भी चिकित्सा करनी चाहिये। इसलिये आधुनिक विज्ञान के चिकित्सक गृध्रसी के रोगी को उपरोक्त तीन परीक्षाये कराकर ही चिकित्सा प्रारम्भ करते है।

चिकित्सा सूत्र—

गृध्रसी की चिकित्सा बताते हुए आचार्य भावप्रकाश मिश्र ने भावप्रकाश मे लिखा है कि—

गृध्रस्याऽऽर्तम् नर सम्यग् रेकैण वमनेन वा ।
ज्ञात्वानिराम दीप्ताग्नि वस्तिभि समुपाचरेत् ॥
नावीवस्तिविधिकुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुध्यति ।
स्नेहोनिरर्थक स स्याद्रस्मन्येत हुत यथा ॥
तैलमेरण्डज प्रात गोमूत्रेग पिवेन्नर ।
मासमेक प्रयोगोऽय गृध्रस्यूरुग्रहापह ॥
(भावप्रकाश)

गृध्रसी वात से पीडित मनुष्य को अच्छी तरह से विरेचन और वमन कराना चाहिए । आमरहित और अग्निप्रदीप्त होने पर वस्ति देनी चाहिए । जहा वमन रूपी उर्ध्व शोधन न हो वहा राख मे हवन के समान स्नेह वस्ति वेकार हो जाती है । प्रात काल गोमूत्र के साथ एरण्ड तैल एक महिना तक पीने से गृध्रसी तथा उरुग्रह दूर हो जाता है । आचार्य चक्रदत्त ने गृध्रसी मे शस्त्रकर्म, अग्निकर्म तथा शिरावेध का उपदेश दिया है ।

स्नेहन हेतु अश्वगधाघृत १० से २० ग्राम यथा आवश्यक गर्म दूध के साथ दिया जाय तो अति उत्तम है। स्वेदनहेतू निर्गुण्डी वाष्प स्वेद सर्वाङ्ग दिया जाय ठीक होगा। वमन कराने के लिए सर्व प्रथम रोगी को ५ लीटर दूध पिलावें । इसके वाद वमन औपधि मे मदनफल, छोटी पीपर, वचा, सेधव के चूर्ण का योग ६ से १२ ग्राम तक युक्तिपूर्वक देना चाहिए । तत्पश्चात् यष्टिमधु फाट और सेधव साधित उष्ण जल दो-दो लीटर मिलाकर वमन कार्य पूरा करना चाहिए । विरेचनार्थ एरण्ड तैल २० से ४० ग्राम शु ठी क्वाथ के साथ देना चाहिए । दशमूल तैल की आठ अनुवासन वस्ति देनी चाहिए । सहचर क्वाथ अथवा दशमूल क्वाथ की पन्द्रह निरूह वस्ति देनी चाहिए। एक अनुवासन वस्ति देने के वाद निरुह वस्ति दिया जाय तो अति उत्तम होगा । अभ्यग हेतु नारायण तैल का उपयोग करना हितावह है । सशमन चिकित्सा हेतु भल्लातक अवलेह, महारास्नादि क्वाथ, योगराज गुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल, समीरपन्नग रस, वातविध्वस रस, एकागवीर रस, वृहद वातचिन्तामणि रस, वातारि रस आदि प्रयोग करे।

गृध्रसी की अनुभूत चिकित्सा—

यह केस जनवरी १९८७ का है । उस समय मैं अहमदावाद मे चिकित्सा व्यवसाय करता था । गुप्ता जी ने गिद्ध की तरह चलते हुए चिकित्सालय मे प्रवेश किया । उनके चालन पर ही मैंने गृध्रसी का निदान कर लिया था ।मैंने पूछा कि राधेश्याम गुप्ता जी आपकी कमर से दर्द प्रारम्भ होता है और वह उरु,जाघ, घुटनो मे होते हुए पैर की अ गुलियो की तरफ जाता है। राधेश्याम गुप्ता जी ने कहा आप सही कह रहे हैं ।

औषधि उपचार निम्नलिखित दिया गया—

१ आमपाचक वटी २-२ गोली प्रात शाम भोजनोत्तर पानी के साथ देना चाहिए ।

२ महायोगराज गुग्गुल २-२ गोली प्रात शाम पीस पीसकर महारास्नादि क्वाथ के साथ देना चाहिये ।

३ महारास्नादि क्वाथ १० ग्राम का क्वाथ वनाकर प्रात शाम महायोगराज गुग्गुल के साथ दिया ।

४ वृहद वातचिन्तामणि रस १/८ ग्राम प्रात शाम दोपहर शहद के साथ देना चाहिए ।

५ नारायण तैल का अभ्यङ्ग प्रात शाम कराये ।

६ निर्गुण्डी वाष्प स्वेदन देना चाहिये ।

पथ्यापथ्य का पालन कराते हुये उपरोक्त १ महीना की चिकित्सा मे ही ३ महीना पुराने गृध्रसी से गुप्ता जी को छुटकारा मिल गया ।

गृध्रसी मे पथ्य—मधुर, अम्ल, लवण रस वाले आहार का सेवन करना चाहिये । स्थिर, उष्ण, स्निग्ध वृष्य, वृ हण तथा गुरु गुण वाले पदार्थो का सेवन हितकर है । गेहूँ, चावल, दूध, घी, तिल तैल, सरसो का तेल, वसा, मज्जा, परवल, अण्डा, शराव, धनिया, जीरा, मेथी, लहशुन, सहिंजन, अनार, आम, वेर, काली द्राक्ष, नारङ्गी आदि गृध्रसी मे पथ्य है । सुखकर निद्रा, तैलादि की मालिश, दूध, तेल, घी आदि का परिषेक, गर्म जल से स्नान, गर्म कपडा धारण करना आदि पथ्य है ।

गृध्रसी मे अपथ्य—भुना हुआ चना, चावल जैसे रूक्ष आहार, आइस्क्रीम जैसे शीत आहार, शुष्क, शाक, मास, सावा, कौदव, मू ग, मसूर, मटर, आलू आदि अपथ्य आहार हैं । अल्प मात्रा मे भोजन करना, लघु अन्न का सेवन करना विरुद्ध एव असात्म्य आहार का सेवन गृध्रसी मे हानिकारक है । अधिक मैथुन, रात्रि जागरण, उपवास, तैरना,अत्यधिक चलना,अधिक व्यायाम चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, दिवास्वप्न मल मूत्रादि वेगो को रोकना, चोट, लगना आदि गृध्रसी मे अपथ्य है । ★

गृध्रसी

वैद्य मोहरसिंह आर्य, (मिसरी भिवानी) हरियाणा





गृध्रसी के भेद—यह दो प्रकार की होती है ।

१—वातजन्य— इसके प्रमुख लक्षण असह्य वेदना, स्तम्भ तोद तथा स्पन्दन ।

२—वातकफ जन्य——इसमे तन्द्रा, गौरव, अरुचि तथा स्तब्धता रहती है । स्पन्दन नही होता ।

लक्षण —

गृध्रसी रोग मे रोगाक्रमण प्राय स्फिक् प्रदेश, कुल्हे से प्रारम्भ होकर उरु की पश्चिम पृष्ठ, जङ्घा की वाह्य तथा पश्चिम पृष्ठ और पैर के वाह्य पार्श्व मे वेदना होती है । पाव मे जकडाहट,वेदना,तोद (सुई चुभने जैसी पीडा) और वार-बार इन प्रदेशो मे स्पन्दन हुआ करता है । इसे शुद्ध वातिक गृध्रसी कहते हैं । किंतु वातकफ जन्य गृध्रसी मे तन्द्रा भारीपन तथा अरोचक लक्षण भी रहते हैं ।

गृध्रसी का प्रत्यात्म लक्षण शूल तथा 'स्पर्शासह्यता' है । पीडा का प्रारम्भ विशेप प्रकार के कम्पन तथा स्पर्श ज्ञान के परिवर्तन अथवा सहसा होता है । ऐसा अनुभव होता है कि पीडा गम्भीर प्रविष्ट होती जा रही है, यह पीडा छेडती हुई सी प्रतीत होती है । यदा-कदा शूल दाह जलन के साथ होती है ।

रोग का आक्रमण तीव्र रूप मे अथवा मृदु रूप मे होता है, प्रारम्भ मे पीडा वेग के रूप मे रह रह कर होती है । किंतु रोग पुराना पडने पर पीडा निरन्तर रहती है । यह पीडा दिन मे कुछ कम रहती है तथा रात्रि को वढ जाती है । आतुर घुटना मोडे रहता है, चलते समय झुक कर तथा लगडा कर चलता है । दूसरे पार्श्व की ओर आतुर कुछ झुक कर चलता है । मासपेशियो मे आकुचन तथा कम्पन रहते है । मासपेशिया धीरे-धीरे सूखने लगती है, त्रिक का पृष्ठ वश स्तब्ध वन जाता है । गृध्रसी का आक्रमण प्राय एक पार्श्व (एक ही टाग) मे होता है । कभी-२ उभय पार्श्व मे भी हो सकता है ।

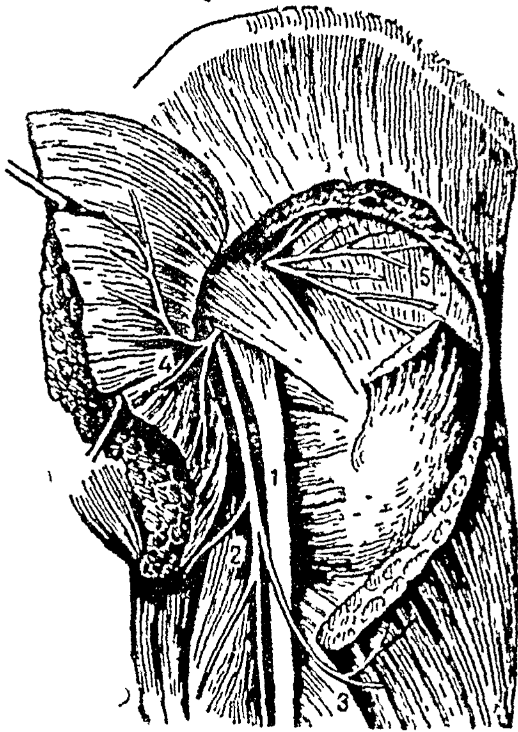
त्रिक का पृष्ठ वश स्तब्ध वन जाता है । जानु का उत्क्षेप वढ जाता है, गुल्फ का उत्क्षेप वदल जाता है । आतुर सीधा उत्तान लेटकर उठने लगता है तो पीड़ा होती है ।

चिकित्सा —

१ वातारि स्नेह——आतुर को एक सप्ताह पर्यन्त वातारि स्नेह को दुग्ध मे दें ।

२. वाह्य स्नेहनार्थ—महाविषगर्भ तेल का अभ्यङ्ग सम्पूर्ण शरीर विशेषत स्फिक् प्रदेश से पादतल तक करें ।

३ स्वेदन—स्वेदन के साथ-साथ ही स्थानीय स्वेदन करते रहे । एतदर्थ—एरण्ड वीज की लुगदी बना, गर्मकर सेक करने से वातज गृध्रसी मे लाभ होता है । वातकफ जन्य गृध्रसी मे लवण की पोटली से सेंक करें ।



गृध्रसी नाडी

४ सम्भालु पत्र, शेफाली, मदार, धत्तूरा पत्र, महानिम्ब, सहिजन, एरण्ड मूल या पत्र ले गर्म कर सम्पूर्ण पाव पर बाधे। अथवा इन द्रव्यो को यवखण्ड कर पानी मे उबाल बाष्प द्वारा सेक करे।

५ वमन—मदनफल चूर्ण ६० ग्राम को एक लिटर पानी मे उबाले, जब पानी आधा बाकी रहे तो उतार कर छान लें। फिर इसमे पीपल चूर्ण ६ ग्रा तथा मधु ६० ग्रा मिला पिला दें।

६ विरेचन—निशोथ चूर्ण ६ ग्राम को सेहुण्ड दुग्ध मे घोटकर ताजा पानी के साथ दे। अथवा वातारि स्नेह ६० मि लि गर्म दूध मे मिलाकर देवे।

रोग की प्रथमावस्था मे कोष्ठ शुद्धि करे। एतदर्थ—वातारि स्नेह दे।

योग—महारास्नादि क्वाथ मे एरण्ड स्नेह को स्नेह पाक विधि से सिद्धि करले, मात्रा—छोटे चम्मच से बडे चम्मच तक। प्रात साय काल दे। यह साधारण योग गृध्रसी मे बहुत लाभप्रद हे। कुछ दिन नियमित सेवन करें। (स्व प० शिव शर्मा)

सूचना—इस तैल को सात दिन तक देना चाहिये। पुन अन्य औषधि दें।

प्रारम्भिक तीव्र वेदना के लिये अहिफेन वटी अथवा अहिफेनासव दे। इससे स्थाई लाभ की आशा नहीं कुछ समय के लिये शूल शमन हो जाता है।

कोष्ठ शुद्धि के उपरांत—

१ गृध्रस्यादि गुग्गुल—वत्सनाभ (अशुद्ध) धत्तूर बीज (अशुद्ध) काली मिर्च शुद्ध कुपीलु ५-५ भाग, शुद्ध गुग्गुल १० भाग, चारो को कूट पीस सूक्ष्म चूर्ण करलें। (गुग्गुल को यथाविधि त्रिफला कषाय मे पिघला कर कपडछन कर कडाही मे डाल मन्दाग्नि पर शुष्क कर पीस लें, यही गुगुल इस योग मे डालें।) फिर गोघृत से स्नेहाक्त कर कूटे। गोघृत २० ग्राम समाप्त करे। पीछे ४ दिन खरल कर घृत के हाथ से चने प्रमाण गोलिया बना लें। मात्रा—१ गोली से २ गोली। प्रात सायकाल। अनुपान—गर्म दूध।

उपयोग—इन गोलियो से गृध्रसी रोग निश्चयपूर्वक ठीक हो जाता है।

२ गृध्रसीहर गुटिका—महायोगराज गुग्गुल ८० ग्रा घी मे भुनी हीग ८० ग्रा, जिह्वा निकाली हुई एरण्ड के बीज की गिरी २० ग्रा ले। इन सबको रास्नादि क्वाथ (रास्ना, बलामूल, गोखरु, शालपर्णी, पुनर्नवा समभाग लें यवखण्ड कर ८ गुने जल मे यथाविधि क्वाथ बनालें।) मे ६ घण्टे खरल करे। अनुपान—उष्णोदक। दिन मे २ बार दे।

३ पीतमल्ल प्रयोग—पीला सखिया ६० ग्राम लें। यवखण्ड कर एक पोटली बना दोलायन्त्र विधि से भेड़ के २ लिटर दूध मे स्वेदन करे। दूध के सूख जाने पर पुनः २ लिटर दुग्ध मे स्वेदन करे। इस प्रकार ७ बार करे। फिर सखिया को सुरक्षित रख ले। यह शुद्ध सखिया १ ग्रा, १० वर्ष पुराना गुड १२ ग्रा मिलाकर १२५ मि ग्रा. प्रमाण की गोलिया बना ले। मात्रा—१ गोली। अनुपान—हलुवा प्रात सायकाल। गृध्रसी की विशेष औषधि है।

४ अभ्यङ्गार्थ—महाराज प्रसारणी तैल, महावातराज तैल, महाविषगर्भ तैल।

—०❖०—

❋ गृध्रसी रोग, लक्षण, निदान, सम्प्राप्ति, चिकित्सा ❋

डा० नागेन्द्र कुमार पाडेय एम डी (आयु०)
प्रोफे० एल एन शर्मा, विभागाध्यक्ष—रसशास्त्र
राष्ट्रीय आयुर्वेद सस्थान, जयपुर (राज०)



निरुक्ति—

गृध्यति मासमभिकाक्षति सततम् इति ।

गृध्र कन् गृध्रो मास लोलुपो मनुष्य त स्यति पीडयति नाशयथिधा सो क डीप् वातरोग विशेश ।

स्फिक् पूर्वा कटि पृष्ठोरू ज्ञानजघा पद क्रमात् ।
गृध्रसी स्तम्भ रुक् तोदै गृह्णाति स्पन्देत मुहु ॥
वातात् वातकफात् तन्द्रा गौरवा रोचकान्विना ॥
—च० चि० २८

लक्षण—

वेदना स्फिक से आरम्भ होती है । वेदना की गति कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जघा एव पाद की ओर होती है। रोगी पैर को मोड़ने या सीधा करते समय वेदना या कष्ट का अनुभव करता हे । कटि, पृष्ठ, उरु, जानु, जङ्घा एव पाद मे वेदना, स्तम्भ, तोद तथा स्पन्दन होता है । रोगी को पीठ के वल शयन कराकर उसे पैर को ऊपर उठाने को कहेगे, वेदना या कष्ट अनुभव करने पर या नही उठा पाने पर उस रोग को पहचानना चाहिए । गृध्रसी प्राय एक ही ओर होता है, कभी-२ दोनो ओर भी देखा जा सकता है । कफवातयुक्त गृध्रसी मे तन्द्रा, गौरव एव अरोचक के लक्षण प्राप्त होगे । रोगी लगडा कर चलता हे । रात्रि मे सोते समय या तूफानी वरसात इत्यादि मौसम मे वेदना वढ जाती है। खासने छीकने पर भी पीडा वढ जाती है ।

निदान—

रूक्षाहार, मलिन आहार, अपरिमित आहार, लङ्घन या हीन मात्रा आदि आहार से शरीर की धातुओ विशेषकर नाडी पोषक तत्व की न्यूनता होती है जिससे गृध्रसी नाडी को पोषक तत्व नही मिलते है । परिणाम स्वरूप धातु क्षत होकर गृध्रसी नाडी मे वेदना होती है । शुष्क वेरी-वेरी मे उत्पन्न गृध्रसी मे यही मुख्य हेतु है ।

आवरण द्वारा भी गृध्रसी रोग होता है । यथा गुरु, अति भोजन, दिवाशयन आदि से अग्नि की विषमयता होकर आमरसोत्पत्ति होती है । उस आमरस का तत्रस्थ स्रोतो मे अवरोध के कारण वात प्रकोप होता है । यथा त्रिकसन्धि के आमवातिक शोथ के कारण समयान्तर से गृध्रसी नाडी मे भी आमवातिक शोथ हो जाता है ।

कटित्रिक कसेरुकाओ पर आघात या भारति वहन से अन्तस्थ चक्रिका का स्थानभ्रम होकर गृध्रसी नाडी मूल शूल एव नाडी पर दवाव पडने से वेदना होती है । आघात के द्वारा रक्त एव वात का प्रकोप होता है तथा वात ही शूल एव मुख्य रूप से गृध्रसी का कारण है ।

रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, विशद, खर, गुण के कारण मुख्य रूप से वात प्रकोप होता है एव शूल उत्पन्न होता हे । अत इन गुणो से युक्त आहार विहार भी गृध्रसी के हेतु है ।

सम्प्राप्ति गृध्रसी सम्प्राप्ति सघटना

१ उद्भव—पक्वाशय

२ सचार—रसायनिया अपानवायु क्षेत्र मे ।

३ अधिष्ठान—पृष्ठ, कटि, स्फिक् सम्पूर्ण गृध्रसी नाडी

४ दोप—वात एव वात से अनुवन्धित श्लेष्मा

५ दूष्य—रस, माम, मज्जा

६ स्रोतस—मज्जावह रसवह, (सज्ञावह, चेष्टावह नाडी)

७ अग्नि—जाठराग्नि एव धात्वाग्नि

८ आम—जाठराग्नि जन्य एव धात्वाग्नि जन्य ।

गृध्रसी सम्प्राप्ति मे मुख्य रूप से वात प्रकोप एव वातश्लेष्म प्रकोप, अग्निमान्द्य, आमोत्पत्ति तथा स्रोतोदुष्टि अनिवार्य है । साथ ही वात के क्षयजन्य या आवरण जन्य प्रकोप से गृध्रसी नाडी मे अपनय एव शोथ होता है ।

—शेषाश पृष्ठ १७४ पर देखे ।

✻ कड़ लगना या कसका लगना ✻

डा० रामचन्द्र शाकल्य आयु० चिकित्साधिकारी, शासकीय आयु० औषधालय,
रूपादेह (सिवनी मालवा) जिला होशंगाबाद (म० प्र०)

—०★✶✶०—

यह रोग एकाएक ही मनुष्य को एक झटके मे ग्रस लेता है। रोगी दर्द के मारे छटपटाता है। वैसे तो उठ नही सकता, उठे तो बैठ नही सकता। कहने का मतलब है कि वह दिन रात बेचैन करने वाला होता है। प्राय देखने मे आया है कि इस रोग पर शूलनाशक इन्जेक्शन व गोलिया व्यर्थ सिद्ध हुई है। कई-कई दिनो व मास तक रोगी छटपटाता रहता है। कभी-२ तो यह असह्य होजाता है तथा रोगी जीवन से निराश हो जाता है। इस पर मालिश भी उतनी कारगर सिद्ध नही होती है। इसे बैठाने वाले उस्ताद (गावो मे विशेष रहते थे) अब नही मिलते है। ऐसी स्थिति मे मैंने प्राय निम्न चिकित्सा सफल पाई है जो निम्नानुसार है—

कड़ या कसका लग जाने पर—चाहे वह शरीर के किसी भी भाग मे हो, रविवार, बुधवार को प्रातः ५ बजे उठकर शरीर के उस भाग को घर के प्रमुख दरवाजे (दोनो चौखट) से ५ बार छुओ या रगड़ो। इस टोटके से रोगी रोगमुक्त होते देखा गया है। अथवा—

भैंस के खूंटे पर ५-७ बार रविवार-बुधवार पीड़ित भाग को छूओ या रगड़ो। अथवा—

रोगी के उस पीड़ित भाग पर हल्दी का रस लगायें।

वैसे आयुर्वेदानुसार तेल मालिश व सेंक से भी कष्ट कम करती है तथा यदि कोई जानकार इसका वैठाने वाला मिल जावे तो तुरन्त आराम देता है। ✲



❖ गृध्रसी रोग, लक्षण, निदान, सम्प्राप्ति चिकित्सा ❖ — पृष्ठ १७३ का शेषांश —

को प्राप्त हुआ दोष कटि, त्रिक, स्थित अन्तश्चक्रिका मे शोथ, भ्रंश या केशिकाओ मे अवरोध उत्पन्न करते है तथा गृध्रसी नाडी पर दवाव डालकर वेदना पैदा करते है।

चिकित्सा—

रोगी ३-४ सप्ताह तक पूर्ण विश्राम करे। स्नेहन स्वेदन करा कर यथावश्यक वमन विरेचन। दीपनपाचन योगो से जाठराग्नि प्रदीप्त करे। वस्ति का प्रयोग अति लाभप्रद है। कफावृत्त मे लवण पोटली परिसेक तथा वातज मे एरण्ड वीज पोटली परिषेक करे। पीडा की अवस्था मे निर्गुण्डयादि उपनाह एव कोलादि लेप करे। सिरोवेध एव दाहकार्म का भी प्रयोग प्रसस्त है।

लशुन, एरण्ड, व शेफाली इस रोग की विशिष्ट औषधिया है। लशुन की गूदी २० ग्राम, गोदुग्ध ८० मि ली जल २८० मि ली मे पकाकर दूध मात्र शेष रहने पर छानकर पिलाये।

एरण्ड तेल २० एम एल, गोदुग्ध ५८ एम एल एक साथ एक माह तक पिलाये अवश्य लाभ होगा।

वातविध्वंसन रस या सिंहनाद गुग्गुल २ गोली प्रात साय रास्नादि क्वाथ से।

रास्नायास्तू पलन्चैव पन्चकर्पाणि गुग्गुलो।
सर्पिषा वटिका कृत्वा भक्षयेत् गृध्रसी हरीम्॥

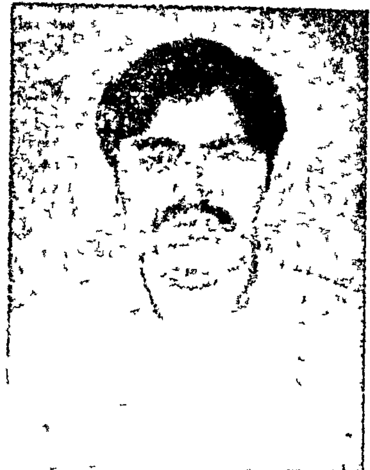


एक विशेष प्रकार का शूल

कदर

डा० महेश भाई तलायिया B S A M.,
नेसडी वाया—सावर कुण्डला
(भावनगर) गुजरात





कदर नामक व्याधि क्षुद्र रोगाधिकार मे वर्णित है। कदर का स्थान सिर्फ पाव के तलवो तथा हस्ततल मे है। यह रोग चिरकाल तक चलने वाला विशेष शूलजनित व्याधि है। पण्डित भावमिश्र जी ने कहा है कि—

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभि ।
ग्रन्थि कोलवदुत्सन्नो जायते कदरस्तु स ॥

अर्थात् रेत वाली जमीन मे चलने से अथवा कण्टक लग जाने से पाद मे वदरी फल (कोल) सदृश उत्सन्न ग्रन्थि होती है उसे कदर कहते है। भावार्थ यह है कि अति चक्रमण किया करने से, नग पाव घूमा करने से, ऊवड-खावड जमीन पर चलने से, कठिन जूता या चप्पल पहनकर चलने से एव कण्टक लगने से, वालुका लगने से इत्यादि कारणो से पादतल की त्वचा, मास प्रदेश आदि स्थानो मे वायु की वृद्धि होती है। रूक्ष गुण से त्वचा व मास को सकुचित कर ग्रन्थि पैदा हो जाती है। वह ग्रन्थि छोटे गोलाकार पत्थर के सदृश, वदरीफल सदृश हो जाती है। यह ग्रन्थि पादतल आभ्यन्तर त्वचा मे गहराई मे हो जाती है। कभी-कभी कदर हस्ततलो मे भी हो जाती है।

लक्षण—पाव को जमीन पर रखकर चलने से असह्य वेदना होती है। यह वेदना कीलवत्, कण्टकवत् होती है। क्योकि ग्रन्थि स्वय कीलवत् धारदार-अणीवत् होती है। अत पादतल मे दवाव आने से चुभनवत् पीडा होती है। ग्रन्थि को हाथ से दवाने पर भी इसी तरह की वेदना होती है। इस वेदना से व्यक्ति लगडा हो जाता है, उसकी चाल लगडा जैसी होती है। ठीक तरह से पाव को जमीन पर रख नही सकते। यह कदर ग्रन्थि तन्तुओ मे लम्वे समय तक विद्यमान रहती है। उसके आस-पास की त्वचा शून्यवत् हो जाती है। प्रथमावस्था मे ग्रन्थि त्वचा के वाह्य प्रदेश मे दिखाई देती है, धीरे-धीरे यह ग्रन्थि मास एव त्वचा को ग्रथित कर आभ्यन्तर प्रदेश मे चली जाती है। अत यह कदर ग्रन्थि चिरकाल तक पीडा देती रहती है।

नाम—सस्कृत-कदर, हिन्दी-कदर-कणी, गुजराती-कपासी-कणी।

इसमे इसके नाम जैसा ही गुण है। कपासी का अर्थ है, कपास के वीज सदृश ग्रन्थि एव कणी का अर्थ है, धारदार गोल पदार्थ जैसी ग्रन्थि।

महर्षि सुश्रुत जी ने विशेष प्रकाश डालकर कहा है कि—

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभि ।
मेदोरक्तानुगैश्चैव दोषैर्वा जायते नृणाम् ॥
सकील कठिने-ग्रन्थिर्निम्नमध्योन्नतोऽपि वा ।
कीलमात्र सरुक्स्रावी ज्ञायते कदरस्तु सा ॥

अर्थात् पाव मे ककर (वालुका) लग जाने से, कण्टक इत्यादि से व्रण हो जाने से, अथवा मेद एव रक्त से व्याप्त दोषो से छोटे कोल (वदरी फल) सदृश, कठिन, वेदनायुक्त, स्रावयुक्त, आभ्यन्तर शल्य वाली एव नीची और उत्सेधयुक्त ग्रन्थि होती है, उसे कदर कहते है। सुश्रुत जी ने यहा रक्त एव मेद को दूषित होना दर्शाया है। अत त्वचा, मास, मेद और रक्त दूषित होकर ग्रन्थि वन

—शेषाश पृष्ठ १७८ पर

 वात कण्टक ❊

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस ए एम,
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात

—❖०❖—

वात कण्टक मे वात (वायु) और कण्टक दो शब्द है। कण्टक चुभनवत जिस व्याधि मे वेदना होती है उसे वातकण्टक कहा जाता है। एव जिस व्याधि मे वायु-कण्टकवत पीडा करता है उसे वातकण्टक कहा जाता है।

निदान व कारण —

अति मार्ग गमन करने से, नगे पाव चलने से, ऊवड़-खावड जमीन पर चलने से, पाव की एडी से ककर, पत्थर आदि द्वारा आघात लगने से, पाव की एडी मे वात दोष की वृद्धि हो जाती है। एव शीत ऋतु से, वातवर्धक आहार से, जागरण करने से, पौष्टिक आहार न लेने से–इत्यादि कारणो से भी वात दोष की वृद्धि होती है। इस वात वृद्धि से वायु विकृत होकर एडी मे स्थान सश्रय लेकर पीडा किया करता है।

लक्षण —

पाव की एडी मे कण्टकवत पीडा होती है। गुल्फ सन्धि मे वेदना होती है। कहा गया है कि—

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ –भा प्र.

अन्यश्च—

न्यस्ते तु विषम पादे रुज कुर्यात्समीरण।
पादकण्टक इत्येष विज्ञेय खुडुकाश्रित ॥ –सुश्रुत

अर्थात् विषम ढग से पग जमीन पर पड जाने से, वात वृद्धि से, गुल्फ सन्धि मे एव खुडक (एडी की अस्थि) मे वेदना होती है–उसे वातकण्टक कहा जाता है। इस रोग मे–जमीन पर पाव मुडने से एडी मे तीव्र (कण्टकवत्) पीडा होती है। ठीक तरह चलने मे तकलीफ होती है साथ-साथ गुल्फ सन्धि एव आसपास भी वेदना होती है। वात के साथ कफ वृद्धि होगी तब गुल्फ सन्धि मे शोथ भी मिलता है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि एडी मे अस्थि की वृद्धि होती है और अस्थि कटकवत् होती है, अत वेदना होती, शल्यकर्म से ही यह रोग ठीक होता है। आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार सिर्फ वायु की वृद्धि से ही यह रोग होता है और यह रोग वातव्याधि ही है। और आभ्यन्तर औषधि चिकित्सा से साध्य है।

सम्प्राप्ति घटक—

नाम–वातकण्टक, खुडुक वात,
आग्ल नाम–स्ट्रेन (Strain)
लोकबोली–गुल्फ वेदना, मोच आना, एडीनोवा
दोष–वात, किंचित कफ,
दूष्य–अस्थि, स्रोतस्–अस्थिवह स्रोतस्, स्रोतसदुष्टि–सङ्ग, मार्ग–मध्यम रोग मार्ग, स्थान–एडी, गुल्फ।

चिकित्सा विमर्श—

पथ्यापथ्य का सेवन —

१ नगे पाव चलना बन्द। २ गद्दीयुक्त चप्पल या बूट पहनना चाहिये। ३ वातवर्धक आहार-विहार बन्द। ४ अति परिश्रम, मार्गगमन बन्द।

बाह्योपचार—

१ वालुका स्वेद से आराम मिलता है। २ एरण्ड तैल उष्ण कर उसकी पट्टी बाधे। ३ शोथ न हो तब विषगर्भ तैल से अभ्यङ्ग।

अनुभूत आभ्यन्तर औषधि उपचार—

सुबह मे खाली पेट दो चम्मच कच्चा मेथीदाना (मेथिका) पानी से निगलना। ६ मास तक। एरण्ड तैल दो चम्मच और १ चम्मच शुण्ठी चूर्ण मिलाकर सुबह शाम चटाये। अजमोद चूर्ण १ माशा, शृङ्ग भस्म २ रत्ती अश्वगन्धा चूर्ण १ माशा, उष्मन चूर्ण ४ रत्ती, नारसिह चूर्ण ४ रत्ती पुडिया बनाकर १-१ पुडिया ३ बार दे।

महावातविध्वस रस, सिहनाद गुग्गुल ये २-२ गोली जल से। अत्यधिक वेदना हो तो वृहत् वातचिन्तामणि रस की १-१ गोली शहद से।



✻ सन्धि शूल—स्थान विशेष शूल ✻

वैद्य धीरेन्द्र वी० त्रिवेदी बी एस ए एम , ५३/शिशक्ति सोसायटी, नेत्र अस्पताल के सामने
हाथसणी रोड, सावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात—३६४५१५





सावर कुण्डला नगर के सिद्धान्तवादी लोकसेवक श्री भानुप्रसाद जी त्रिवेदी के सुपुत्र वैद्य श्री धीरेन्द्र भाई हमारे परमप्रिय वैद्य मित्र है। श्री त्रिवेदी जी १९७० मे अखण्डानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय अहमदावाद द्वारा बी एस ए एम स्नातक उपाधि प्राप्त कर विभिन्न राजकीय औषधालयो मे सेवा दे रहे है। वर्तमान मे आप भावनगर जिला पचायत मे वैद्यकीय अधिकारी है। आप मितभाषी, साहसी एवं सदा हसमुख स्वभावी हैं। आपका प्रथम हिन्दी लेख शुचि मे प्रकाशित हुआ था, पाठको ने सराहा भी था। 'धन्वन्तरि' पुरुष रोग चिकित्साक मे आपका सक्षिप्त लेख प्रकाशित हुआ है। यहा आपने सन्धि शूल पर अनुभव दिया है। श्री त्रिवेदी जी से अनुरोध है कि इस तरह आप बार-बार 'धन्वन्तरि' माध्यम से मार्गदर्शन दें एव 'धन्वन्तरि' को सहयोग करे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

हन्ति सन्धिगत सन्धीन शूलशोथौ करोति च।

अर्थात् सन्धि मे शूल एव शोथ पैदा होकर सन्धि को नष्ट करते है। तात्पर्य वात दोष एव कफ दोष से है। वातात्मक सन्धि शूल मे सिर्फ सन्धि वेदना मिलेगी तथा वात के साथ कफ दोष की विकृति सन्धि प्रदेशो मे होगी तव शोथ एव शूल मिलता है। अत सन्धि शूल दो प्रकार का माना गया है—(१) वातज सन्धि शूल, (२) वातकफज सन्धिशूल।

निदान व कारण —

सामान्यत वातवर्धक आहार जैसे—बटाटा, अरहर, बाजरा, ज्वार, लाल मिर्च, फरसाण, तले हुए पदार्थ, वासी आहार, शीत पदार्थ, अत्यधिक लवण रस आदि लेने से तथा अधिक परिश्रम, दौडने से, तैरने से, वाहन की मुसाफरी से, आघात से, अत्यधिक मैथुन से, दिवास्वाप से, रात्रि जागरण से, अल्प भोजन व लघन से, जीर्ण ज्वर, आमवातिक ज्वर, अम्लपित्त इत्यादि से सन्धि शूल होता है।

लक्षण—हाथ-पग की अगुली की छोटी अस्थियो की सन्धियो मे वेदना होती है। गुल्म, जानु, कटि, मणिवन्ध, अस सन्धि इत्यादि मे वेदना पायी जाती है। जब कफ से अनुबन्ध होगा तब सन्धि स्थानो मे शोथ भी मिलता है। ठीक तरह से कार्य नही हो सकता। निद्राल्पता, विबन्ध, उर शूल, पार्श्व शूल भी मिलता है। हृदय प्रदेश मे भी वेदना मिलती है।

विचार विमर्श—उपरोक्त कारणो से मन्दाग्नि होती है, परिणामत आमोत्पत्ति होती है। वायु की वृद्धि तो होती ही है, यह अधिक विकृत वात उस आम को चल गुण से सारे शरीर मे अपने साथ ले चलता है। सन्धि स्थानो मे स्थान सश्रय करता है तब आम से शोथ हो जाता है। विकृत कफ मे रस धातु भी विकृत होती है, अत कफात्मक सन्धि शूल मे साथ-साथ जलीय अश का प्रमाण अधिक मिलता है। जबकि केवल सन्धि शूल मे सिर्फ वात दोष की अधिकता होने से कण्टकवत् अथवा वृश्चिकवत् वेदना मिलेगी।

शका—आमवात और सन्धिगत शूल दोनो अलग ही है। आमवात को वात व्याधि मे नही लिया गया, जबकि सन्धि शूल को स्थान विशेष शूल मानकर उसे वात व्याधि मे लिया गया है। आमवात मे आम और

वात का महत्व है, पित्त भी मिलेगा। सन्धि शूल मे वात और कफ का महत्व है। पूर्व मे जो आमोत्पत्ति दर्शायी गई है वह मन्दाग्निजनक होने से आमोत्पत्ति होने से तथा अत्यधिक कफ वृद्धि से भी मन्दाग्नि होती है उसका यहा तात्पर्य समझना जरूरी है।

चिकित्सा—

(१) वातात्मक आहार-विहार बन्द करे।

(२) मूग, मेथी दाना, दुधी, तुरई, करेला, शिग्रु, बैंगन, लहसुन, आर्द्रक, सोंठ, हल्दी, अजवायन पथ्य हैं।

(३) प्रात काल मे खाली पेट एक चम्मच मेथी दाना पानी से निगलवाये।

(४) सुबह, शाम १-१ चम्मच एरण्ड तैल मे आधा चम्मच सोठ का चूर्ण मिलाकर चाटे।

(५) इन्द्रायण की जड का चूर्ण, पीपर और गुड समभाग मिलाकर १-१ चम्मच दो बार लें।

(६) शोथयुक्त सन्धि शूल मे बालुका स्वेदन करे।

(७) सिर्फ सन्धि शूल मे [विना शोथ का] महानारायण तैल या विषगर्भ तैल को गर्म कर मालिश करे।

आभ्यन्तर औषधि चिकित्सा—

(१) अजमोदादि चूर्ण १ माशा, त्रिकटु चूर्ण १ रत्ती, बंग भस्म २ रत्ती, नारसिंह चूर्ण ४ रत्ती, शृंग भस्म २ रत्ती की १-१ पुडिया दिन मे तीन बार जल से।

(२) महायोगराज गुग्गुल की १-१ गोली दिन मे तीन बार जल से।

(३) महावातविध्वंस रस की १-१ गोली दिन मे तीन बार जल से।

(४) आर० पायरिन (बानमार्क-राजकोट) की २-२ गोली दिन मे तीन बार जल से।

(५) महारास्नादि क्वाथ, रास्ना सप्तक क्वाथ भी देने से शीघ्र फल मिलता है।

(६) अत्यधिक वेदना हो तो बृहत् वातचिन्तामणि रस की गोली वैद्य के परामर्शानुसार दे।

अन्य शास्त्रीय योगो मे सिंहनाद गुग्गुल, त्र्योदशाग गुग्गुल, गोक्षुरादि गुग्गुल, वातगजांकुश रस, वातारि रस, अश्वगन्धा चूर्ण, चोपचिन्यादि चूर्ण उपयुक्त है। ●●

विशेष प्रकार का एक शूल कदर । [पृष्ठ १७५ का शेषाश]

जाती है, उसको आभ्यन्तर शल्य कहा है। शरीर मे शल्य रहने से पीडा बनी रहती है। साथ-साथ अन्त मे कहा है कि ग्रन्थि मे स्राव होता है। यहा तात्पर्य यह है कि लम्बे समय के पश्चात् दोषो की अधिकता खास करके पित्त की होती है, तब साथ मे वायु भी विकृत होती है, उस समय पाक हो जाता है और पानी जैसा प्रवाही स्राव होता है और वेदना मे अधिकता होती है। कभी कदर ग्रन्थि एक होती है तो कभी-कभी सख्या मे अनेक होती है।

चिकित्सा –

शास्त्रो मे शल्य कर्म, दाह कर्म चिकित्सा का निर्देश किया है। शल्यकर्मविधि से शल्य कर्म कराने से ग्रन्थि बाहर निकाली जा सकती है। बाद मे व्रणोपचारवत् रोपण चिकित्सा करने से आराम मिलता है।

अग्निकर्म—घृत, तैल आदि स्नेह को उष्ण कर ग्रन्थि पर बार-बार लगाने से ग्रन्थि नष्ट हो जाती है।

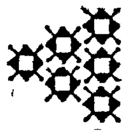
बाह्य प्रदेश की त्वचा को काटकर, उष्ण जल से धोकर उसमे उष्ण स्नेह का पिचु धारण करके पट्टी बाध दे। यह क्रिया कई दिनो तक करनी जरूरी है।

बाह्य त्वचा को गोलाकृति काटकर उष्ण जल से धोकर, तांबे का पतला तार गर्म करके उस गर्म तार से गोलाकृति बनाये व्रण मे दाह कर्म करने से ग्रन्थि का नाश होता है। यह क्रिया बार-बार करे। दाह कर्म के बाद जात्यादि तैल या निर्गुण्डी तैल से व्रणोपचार करें।

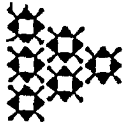
एक ईंट का टुकडा लेकर उसे स्वच्छ जल से धो ले। कदर ग्रन्थि प्रदेश की त्वचा को काटकर उसे गर्म जल से धोकर उस ईंट के टुकडे से ग्रन्थि प्रदेश पर घर्षण करे। ईंट के टुकडे से घर्षण करने से त्वचा, मास, मेद दूर होकर ग्रन्थि स्पष्ट दिखाई दे तब उस पर भी घर्षण करे। बाद मे दाह कर्म करने से ग्रन्थि का नाश हो जायेगा। पश्चात् रोपण चिकित्सा करे।

कदर की स्पेशल केप्स (पट्टी) आती है। यह केप सख्ती से बाधकर ६-७ दिन तक पट्टी बधी रखनी जरूरी है। इस केप से भी ग्रन्थि स्वय बाहर निकल आती है। अगर ग्रन्थि दृष्टिगोचर हो तो विधिवत् बाहर निकाल कर व्रणोपचार करें।





पिण्डकोद्वेष्टन (पेशीगत शूल)



वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज, आयुर्वेदाचार्य, भारद्वाज औषधालय,
स्वामीनारायण मन्दिर, सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात



शरीर के मासल प्रदेश मे मासपेशिया एव कण्डरा विद्यमान है। यह पेशिया आपस मे मिलकर स्थित है। जघा मे पेशिया होती है। जानु सधि और गुल्फ ,सधि के बीच मे—उसके पार्श्व प्रदेश मे स्थित हे, उसे पिण्डिका या पीडलिया कहते है। पिण्डिका मे जव दर्द होता है तव उसे जघा सदन तथा पिंडकोद्वेष्टन नाम से जाना जाता है। निम्नोक्त कारणो से पिण्डिका मे वेदना होती है—

अति मार्ग गमन से, साईकिल चलाने से, प्रहार से अति लङ्घन से, दौडने से, अति परिश्रम से वायु की वृद्धि होती है,अधिक वातवृद्धि पेशी मे स्थित होकर पेशी मे आकुञ्चन तथा प्रसारण को वढाकर वेदना पैदा होती है। पेशिया ऊपर नीचे आ जाती है, तथा कठिन हो जाती है।

अतिसार, ज्वर,प्रमेह, मूत्रातिसार, विवन्ध,उरुस्तम्भ, वातरक्त, खल्ली, प्रवाहिका, आमदोष, ग्रहणी, विशूचिका, श्वेतप्रदर, रक्तक्षय—पाडुता, दौर्वल्यता, मेदो रोग, रक्त-चाप, अजीर्ण, मन्दाग्नि इत्यादि रोगो मे पिंडकोद्वेष्टन मिलता है। शरीर मे रस धातु व जलीय अश का क्षय होता है, तव वातदोष की वृद्धि होकर ऐठन पैदा होकर वेदना होती है।

लक्षण —

दोनो पैरो की पिंडलियो मे ऐंठन होती है। असह्य वेदना होती है। प्राय देखा गया हे कि पुलिस सिपाही को खडे रहकर फर्ज निभाना होता है, तव उसकी पिंडलियो मे दर्द होता है। इसलिए उनकी जङ्घा पर पट्टिया वाधी जाती है। सुवह मे जागते समय सोते-सोते ही आलस्य व अङ्गडाई लेने से भी पिण्डिकोद्वेष्टन हो जाता है। हाथो से दवाने से भी वेदना वढती हे, नेत्रो मे अश्रु आ जाता है—इतनी भारी वेदना होती है। चलने मे, वैठने मे, सोने मे तकलीफ महसूस होती है। सकोचन एव प्रसारण क्रिया वायु पर ही निर्भर होती है, अत यह पीडा वात जन्य ही है। विष भक्षण से भी ऐठन होती है। अफीम खाने से पिण्डिकोद्वेष्टन होता है।

चिकित्सा —

वातनाशक चिकित्सा करना आवश्यक है। अभ्यङ्ग, परिसेक एव आभ्यन्तर औषधोपचार करने से दर्द दूर होता है।

(१) अभ्यङ्ग—महानारायण तेल, विषगर्भ तेल गर्म कर पिंडलियो पर मालिस करे।

(२) गर्म जल से परिसेक करे।

(३) वाष्प स्वेद करे। निर्गुंडी पत्र से सेक करें।

(४) पिंडलियो पर कपडे की पट्टी सख्ती से वाधे।

आभ्यन्तर चिकित्सा—

१ अजमोदादि चूर्ण १ माशा, त्रिउष्मन चूर्ण ४ रत्ती, श्रृङ्ग भस्म २ रत्ती, नारसिंह चूर्ण ४ रत्ती। मात्रावत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया तीन वार दें।

२ अग्नितुण्डी वटी—२-२ गोली तीन वार दे।

३ महायोगराज गुग्गुल दो गोली तीन वार दे।

४ अत्यधिक वेदना मे वृहत् वातचिन्तामणि रस देना चाहिये।

५ मूल रोग की चिकित्सा करे।



स्नायु शूल

वैद्य श्री पी एस अशुमान एच. पी ए, रीडर—कायचिकित्सा विभाग
सेठ जी प्र सरकारी आयु॰ कालेज, १४६–ए।४।१ कृष्ण नगर, भावनगर (गुज०)



स्नायुशूल—यह सज्ञा न्यूरल्जिया का अनुवाद है। जब वात नाडी या स्नायु या उनकी शाखाओ मे सतत कष्टकारक तीव्र पीडा होती है तब उसको स्नायु शूल के रूप मे जाना जाता है। यह शूल सम्बद्ध नाडी के उद्भव स्थान एवं कार्यक्षेत्र के अनुसार विविध लक्षण एव प्रकार के रूप मे हो सकता है। शिर, उभय बाहु, उभय उरु-जङ्घा-पादादि, अन्य शेष शरीर कही भी उस-२ क्षेत्रस्थ नाडी मे विकृतिया होने पर उसके (नाडी के) सम्बद्ध क्षेत्र मे पीडा को करता है। फिर भी मुख्य रूप मे ऊर्ध्वाङ्ग मे शिर और उसका अर्धभाग, बाहु एव अधो शाखा मे होने वाले शूल इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद मे वर्णित अनन्तवात, विश्वाची, गृध्रसी की तुलना इन शूलो से की जा सकती है।

स्नायुगत बात—स्नायुगत वात के लक्षणो मे चरक ने बाह्य एव अन्तरायाम, खल्ली कुब्जता, सर्वाङ्ग के वात विकार होना लिखा है जबकि सुश्रुत के अनुसार स्तम्भ, कम्प, शूल, आक्षेप लक्षण कहे गये है। वाग्भट ने आयाम और कुब्जता के साथ-२ गृध्रसी होना इसके लक्षण कहे है। इस प्रकार यह वर्णन स्नायुगत वात को अत्यन्त विस्तृत विचार क्षेत्र प्रदान करते है।

कारण –

नाडी शोथ, क्षीणता से उत्पन्न नाडी शूल के अनेक कारण हो सकते है।

(क) सामान्य कारण –

यह कारण सभी नाडी शूलो से सम्बद्ध हो सकते है—

१ कोई बाह्य या आभ्यन्तर विष प्रभाव–सोमल, सीसक मद्य आदि विष के दुष्प्रभाव से या अन्त्र मे उत्पन्न किसी विष प्रभाव से।

२ कोई सक्रमण—वेक्टीरिया या वायरस के दुष्प्रभाव से।

३ गभीर व्याधियो के द्वारा यथा मधुमेह, आमविष, वातरक्त (गाऊट) कैंसर के दूषित प्रभाव के कारण।

४ शरीर मे कही पर पूय केन्द्र होने पर पूयविष के कारण। फिरङ्ग, कुष्ठ, पूयदत आदि मे। इन रोगो के प्रभाव से भी यह होता है।

५ विषम ज्वर आदि रक्त को हानि करने वाले रोगो द्वारा।

६ विटामिन बी काम्पलेक्स की कमी, धमनी काठिन्य जैसे क्षीणता–क्षय कारणो से।

७ वात प्रकोपक कारण, नाडी पर पडने वाले निज आगन्तुक दवाव आदि।

८ भग्न, आघात, च्युति (स्लिप डिस्क, या डिस्क हर्निया।)

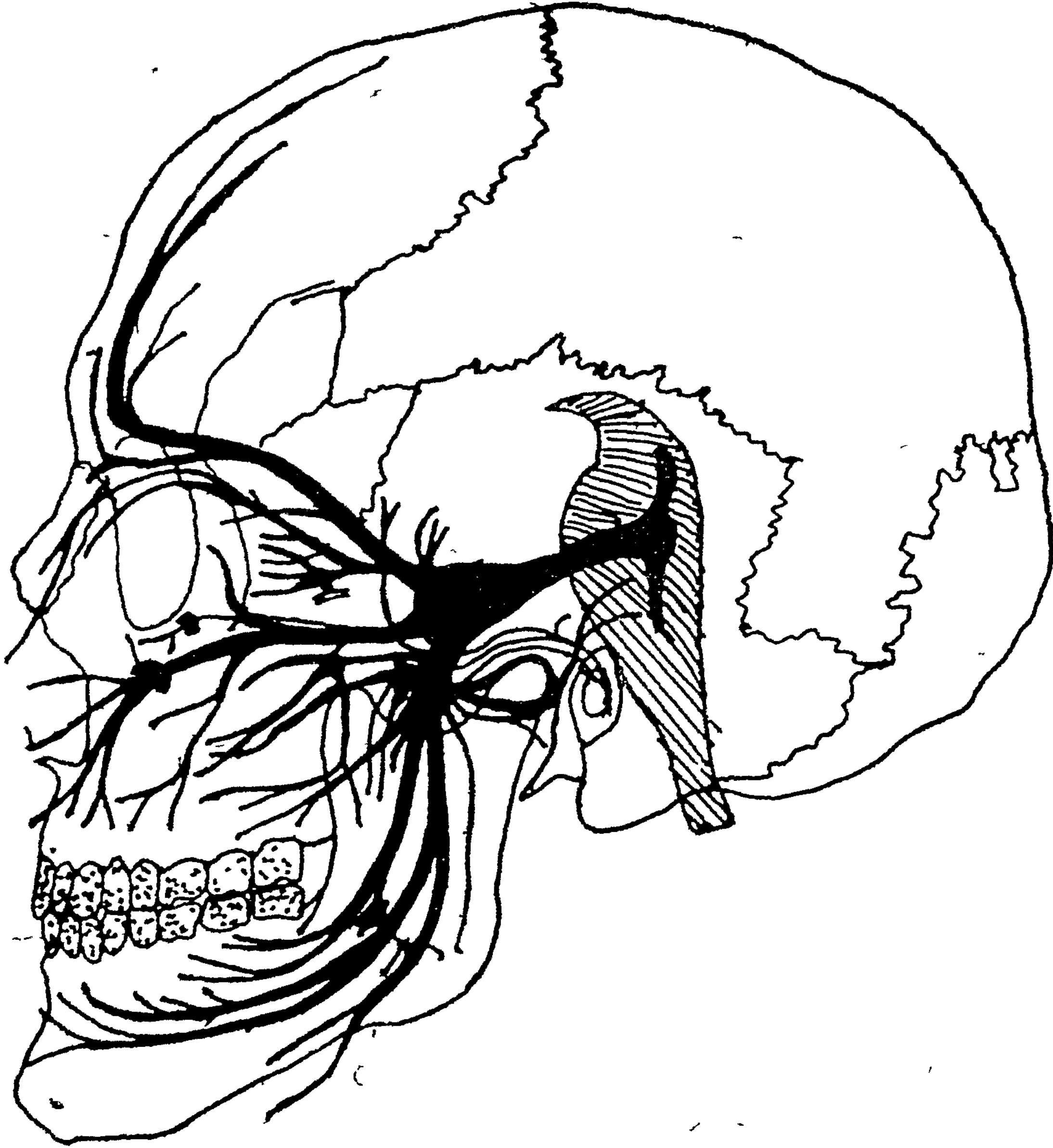
(ख) विशिष्ट कारण –

ऊर्ध्व-अर्ध-अधो स्नायु शूल के कुछ विशिष्ट कारण भी माने जाते है। इनमे से कुछ प्रमुख निम्नानुसार है—

(अ) ऊर्ध्व नाडी शूल के जो विशिष्ट निदान कहे गये हैं उनमे—(१) बलक्षय, रक्तक्षय, (२) वृक्क एव मस्तिष्क विकार (३) अजीर्ण, दन्त रोग (पूयदन्तादि) मधुमेह, चिरकालीन विबध (४) शिरोरोग मे कहे गये तीक्ष्ण पान, रूक्ष सेवन, उपवास, अति कर्षण, प्रजागरण, अतिव्यवाय, उच्चभाषण, अतिभाषण, वेगनिग्रह, अभिघात, वमन विरेचनातिरेक, भय, शोक, त्रास जैसे कारण (५) शूल वेगारम्भ के लिये भी निदान बनते हैं यथा मु ह धोना (शीत जल स्पर्श) गाल पर अगुली दबाना या हवा के थपेडे लगना, हिलना-डुलना आदि।

(ब) अर्ध नाडी शूल के लिये, १ आर्द्र भूमि सेवन, दूषित वायु, शीत वायु सेवन, ३ वात प्रकोपक आहार, ४ दुष्ट प्रतिश्याय, जीर्ण शिरोरोगादि तथा वातातिक शिरो रोग एव अनन्तवात के कारण।

(स) अधो नाडी शूल के लिये (१) विबध, आमवात



त्रिशाखा नाडी

Trigeminal Nerve)

(२) श्रम, प्रपतन (३) शीत सेवन (४) अभिघात, भग्न, च्युति, डिस्क च्युति वृद्धि शोष (५) कटि कशेरुक के अर्बुद एव रोग, (६) कटि कशेरुक, प्रोस्टेट बस्ति क्षेत्र के कैंसर आदि।

विकृति —

नाडी शूल उत्पन्नकारक विकृति विज्ञानीय कुछ बातें निम्नानुसार हैं—

[क] १. वात नाडी मे प्रथम शोथ हो सकता है। यह शोथ आभ्यन्तर (इन्डोन्यूरियम) तथा वाह्य (पेरीन्यूरियम) स्नायु तन्तु मे होता है।

२ कालान्तर मे इनके माईलिन-आवरण मे क्षीणता हो जाती है तथा उसके बाद।

३ वास्तविक वातसूत्र (एक्सिस सिलिन्डर्स) मे भी क्षीणता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रारम्भिक अवस्था को वातिक नाडी शोथ भी कहा जा सकता है।

[ख] १ पूर्वोक्त शोथ के कारण उत्पन्न द्रव (ऐक्स्युडेट) तथा स्थूल बने स्नायु तन्तु वृद्धि कर नाडी सूत्रो को दबाते है।

२ अत कालान्तर मे नाडी क्षीणता उत्पन्न होकर वास्तविक नाडी शोथ को करते हैं।

इस अवस्था मे शोथ की अपेक्षा क्षीणता प्रमुख होती है। मूलभूत रूप से यह नाडी विकृति या न्यूरोपैथी ही है फिर भी पोलीन्यूराईटिस(पेरीफेरल) कहा जाता है।

लक्षण —

सम्बद्ध स्नायु की विकृति के अनुसार शूल स्थान एव प्रतीक के लक्षण मिलते है। ऊर्ध्व, अर्ध या अध प्रकार के प्रमुख नाडी शूलो के लक्षण सक्षेप मे निम्नानुसार हैं–

ऊर्ध्व नाडी शूल को उभय ऊर्ध्व एव अर्ध ऊर्ध्व भेद से दो प्रकार का कल्पित किया जा सकता है। वस्तुत यह त्रिधारा नाडी शूल ही है जो मस्तिष्क की ५ वी नाडी एव उसकी ३ शाखाओ से सम्बन्धित है।

(१) ट्राइजेमिनल न्यूरल्जिया —

इसके उभय ऊर्ध्व प्रकार मे नासा छिद्र से शुरू हो ललाट, नेत्र पुटक एव उसके नीचे के मध्यभाग, गण्डस्थल ओठ, दात, अधर और जिह्वा पार्श्व मे वेधनवत् तीव्र शूल एव तप्त दग्ध स्पर्शवत् तीव्र वेदना अनुभूति होती है। यह वेदना एक पार्श्व से शुरू होकर दूसरे पार्श्व तक क्रमश बढती हुई चली जाती है। शीत वायु स्पर्श, देह कम्पन, हलन-चलन से शूल बढ जाता है। इसमे दौरे तीव्र शूल या मन्द तोद के रूप मे पड सकते हैं।

इसके अर्ध भेद मे शूल मुख मण्डल के एक ओर अर्ध शूल मे और अधिकतर वामपार्श्व मे होता है। तप्त बाण विद्ध जैसी अनुभूति होती है। शूल वेग के रूप मे आता है जो कुछ क्षण से लेकर घण्टो या दिनो तक बना रह सकता है। युवा एव वृद्धावस्था मे तथा स्त्रियो मे इसको अधिक पाया जाता है।

इसी प्रकार के शूल का आरम्भ चेहरा दबाने से, होठ या नाक मे या गले से अचानक शुरू होता है।

इस शूल मे नाडी या गण्डिका मे कोई विकृति देखने मे नही आती। शूल इसकी तीनो शाखाओ से सम्बन्धित रहता है। शूल शुद्ध वातिक प्रकार का होता है। यह रुक-रुक कर सतत चालू रह सकता है। पीडा प्रत्येक दौरे मे तीव्र बनती जाती है। दो दौरो के बीच का समय घटता जाता है। दो दौरो के बीच के मोक्ष काल मे भी तोद बना रह सकता है। नाडी की तीनो शाखायें एव तज्जन्य शूल की कुछ विशेषताये निम्नानुसार होती हैं—

(१) आफ्थैल्मिक ब्राच—का क्षेत्र कपालार्ध, ललाट, भ्रू, अक्षिगर्त, नासा मूलभाग, ललाटास्थि, अक्षिकोटरावरण है अतः इसमे शोथयुक्त होने पर पीडा इन पूरे क्षेत्र मे होती है। यह अक्षि-स्राव, शूल के रूप मे भी मिल सकता है। नेत्रस्राव, नासास्राव मिल जाता है।

(२) सुपीरियर मैक्झीलरी शाखा या मैक्झी ऊर्ध्व हन्वस्थि के ऊपर मुख-गह्वर की त्वचा, कपोलभाग, ऊर्ध्वोष्ठ, नासाग्र भाग, मसूडा, तालु, शंखक, ऊर्ध्वजिह्वा है अत पीडा भी इसी क्षेत्र मे होती है। हनु-मन्या-गण्डास्थिशूल इसके विशेष लक्षण है।

(३) मैन्डीब्युलर (या इन्फीरियर मैक्झीलरी) ब्रान्च का क्षेत्र अधरोष्ठ अधोहन्वस्थि, चिबुक, गण्डपार्श्व, शंख, बाह्यकर्ण, कर्णमूल ग्रन्थि, मुख का तल-फर्श, लाला ग्रन्थि, अधोहन्वस्थि के दात और जिह्वा है। अत पीडा भी इसी क्षेत्र मे होती है। हनु-गण्डपार्श्व-शंख शूल होता है।

(२) अधोभेद संज्ञक स्नायुशूल—

स्फिक, ऊरु एव जानु की सन्धियो मे, पैर के पिछले भाग मे तथा जघा मे यह शूल होता है। अधिकाशतया एक ही पैर मे होता है। रात्रि मे बढता है। अधिकतर प्रौढो मे पाया जाता है।

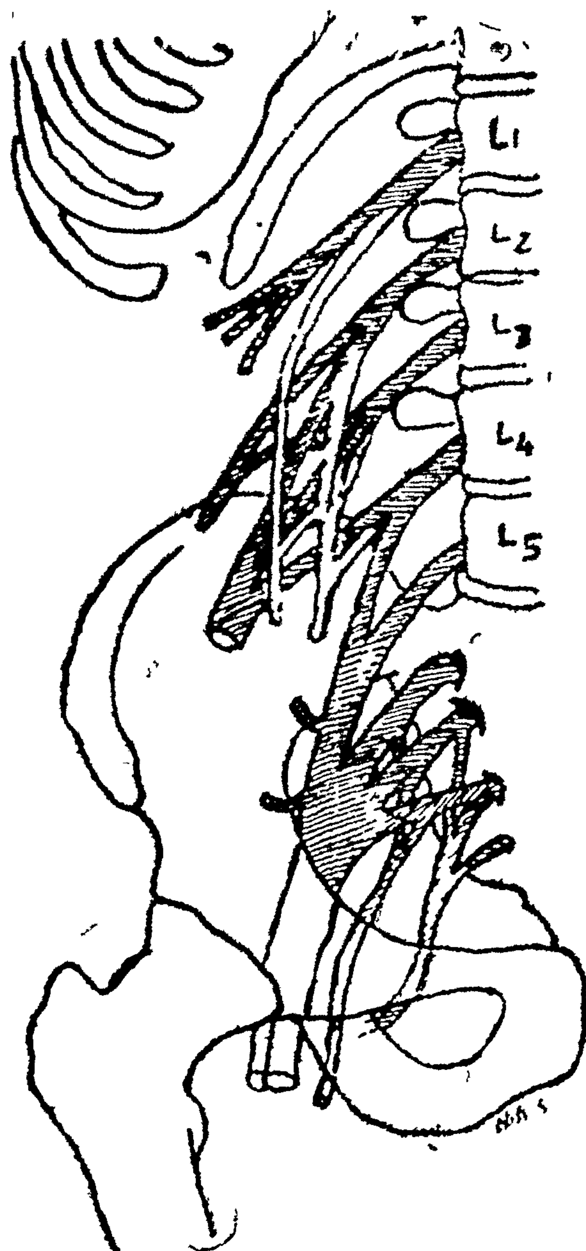
कटित्रिक (लम्ब्रोसेक्रल) चक्र के नाडी शोथ (Neuritis) ऊर्ध्वजघा निर्बलता, जघा सकोच-प्रसार असमर्थता, प्रपतन, ऊर्ध्वजघा का बाहरी पृष्ठ, पैर के अन्दर की ओर सज्ञानाश, झनझनाहट, या शूल हो सकते हैं।

गृध्रसी नाडी मे शोथ होने पर गृध्रसी रोग (Sciatica) हो जाता है। यह यदि बस्ति देशीय कैंसर या उरु अस्थि भग्न से सम्बन्धित हो तो मासपेशीघात भी मिलता है। इस अवस्था मे पाद सदन (गिरा सा रहना) तथा सुप्ति जैसे लक्षण भी मिल सकते है। गृध्रसी स्वय एक स्वतन्त्र रोग होने से यहा इसका उल्लेख कर दिया जाता है। गृध्रसी क्षेत्रीय स्फिक, उरु, जानु, जघा, गुल्फ, पाद आदि मे वेदना मिलती है। और गृध्रसी मे कहे लक्षण मिल सकते हैं।

(३) बाहु नाडी शोथ जन्य शूल (Brachial Neuritis)—

नाडी बाहु शोथ सम्बद्ध शूल मे जो लक्षण मिलते हैं उनमे कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार है—

१ कधे मे शूल होना, स्कन्ध पेशियो मे घात हो



कटि एव त्रिक् नाड़ी जाल

सकता है, दर्द १०-१२ दिन तक बना रह सकता है। यह प्राय मध्यमायु के रोगियो मे विशेष रूप से मिलता है। इसमे बाहु को बाहर फैलाने, उठाने आदि मे बाधा होती है। कालान्तर मे पेशियो मे क्षीणता हो जाती हैं। (सी ५-६ के दोष से)।

२. हथेली नीचे न कर पाना, अगुष्ठ एव उसके समीपस्थ (२।।) अगुलियो को सिकोडने या बाहर फैलाने मे बाधा, या घात, ग्रहण असमर्थता होना।

झनझनाहट, सुप्ति, दर्द हो सकते हैं(सी ६-७-८, थो १ के दोष ग्रस्त होने पर)

३ अगुलियो का एक दूसरे से अलग न हो पाना, मुट्ठी घुमाने, बाधने मे बाधा, हस्त-तल दोष, सज्ञा नाश एव शूल हो सकता है।(सी-५-८,थो-१ दोष ग्रस्त होने पर)

४ मणिबध शैथिल्य, अगुल–बाहु प्रसारण मे बाधा, ग्रहण शैथिल्य एव शूल हो सकता है।(सी-५-८, के दोष से)

चिकित्सा सूत्र—

स्नायुशूल मे चिकित्सा उपक्रम की दृष्टि से निम्नलिखित उपाय उपयोगी हैं —

(१) दीपन पाचन, औषधि सेवन करायें।

(२) बल्य-बलवर्धक औषध दे, रसायन (वातघ्न) प्रयोग करें।

(३) वातघ्न एव वातानुलोमन उपचार करे।

(४) वातव्याधि के कल्पो द्वारा चिकित्सा करे, वातघ्न घृत, तैल।

(५) ऊर्ध्व सज्ञक स्नायुशूल मे वातिक शिर शूल, अनन्तवात उर्ध्वार्ध सज्ञक मे अर्धावभेदक एव सूर्यावर्तक, अध सज्ञक मे गृध्रसी के अनुसार, बाहुगत स्नायुशूल मे विश्वाची अवबाहुक की चिकित्सा की जा सकती है।

(६) स्वेदन, परिषेक, शूलघ्न कल्कलेप (कोष्ण)। तीव्र विरेचन, स्नेहपान करायें।

(७) बधन, व्यधन, अग्निकर्म का उपयोग किया जा सकता है। सिरावेध एव जलौका प्रयोग किया जा सकता है। इनसे लाभ भी होता है। ऊर्ध्वार्ध मे शिर शूलोक्त, नासासमीपस्थ, ललाट-अपाग-शिरागत सिरा, अधोस्नायुशूल मे गृध्रसीवत जानु से ४ अगुल ऊपर, बाहु शूल मे विश्वाची अवबाहुकवत कूर्पर या अस मध्य सिरा व्यधक है। (सु० ११-८-१७)

(८) शूल स्तम्भनार्थ–शूलस्तम्भक विविध उपचार यथा ६०% मद्य का नाडी मे सूचीवेध देना, या शस्त्रकर्म द्वारा नाडी छेदनकर शूल लक्षण की शाति प्रदान करना।

औषधि कल्प—

स्नायु शूल मे निम्नलिखित औषधि कल्पो का प्रयोग कहा गया है—

१ चूर्ण–स्नायुशूलहर चूर्ण (भै. र) शु कारस्कर चूर्ण २ रत्ती,अमृतसारलोह चूर्ण, शु सोमल चूर्ण १/३ रत्ती

२ क्वाथ—शुण्ठी क्वाथ, दशमूलक्वाथ, रास्नादि क्वाथ मे एरण्ड तैल रसोन कल्क।

३ घृत—शतावरी घृत, दशमूलाद्यघृत, यमक स्नेह, शतपाकी बला तैल आदि पानार्थ।

४ तैल—सुरवल्लभ तैल, सैंधवादि तैल, चन्दनाद्यादि तैल, महानारायण, महामाष तैल अभ्यङ्गार्थ।

५ आसव/अरिष्ट—मद्य, बलारिष्ट, दशमूलारिष्ट आदि

६ रस/वटि—मिहिरोदय रस, स्वर्णसिंदूर रस, रसराज रस, वृ वातचिन्तामणि रस, महावातविध्वंसन रस, कुमारी वटी, महारजतवटी, वातनाशिनी वटी, विषतिन्दुक वटी, शिवागुग्गुल, पथ्यादिगुग्गुल, विश्वादिगुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल, पचामृत लोह गुग्गुल, त्र्योदशाग गुग्गुल।

७ क्षीरपाक—लशुन क्षीरपाक, एरण्ड बीज खीर।

८ कल्प (वर्धमान) चिकित्सा—गु जा १ से १० तथा १० से १ प्रमाण मे (भा प्र) गुग्गुलवर्धमान, एरण्डबीज, वर्धमान (१ से १०)। एक कली का रसोन वर्धमान (३ से ३०) —अनुभूत।

स्नायुशूल मे अग्नि कर्म —

यद्यपि सभी शूलप्रधान स्थितियो मे अग्निकर्म का उल्लेख मिलता है। फिर भी स्नायुशूल के सदर्भ मे इस विषय पर सक्षेप मे विचार लेना उचित ही होगा।

स्नायुगत वात की दृष्टि से दग्ध—स्नायु शूल को स्नायुगत वात मानने पर और स्नायुगत वात की चिकित्सा के सदर्भों को देखने पर सभी स्नायुगत स्थितियो मे अग्नि कर्म का उल्लेख मिलता है। स्नायुगत वात की स्थिति मे वाग्भट (अ हृ चि २१-२२) चक्रदत्त (वात व्याधि २२।९) ने इस का स्पष्ट उल्लेख किया है। यो वातव्याधि के चिकित्सा उपक्रमो मे भी अग्निकर्म का उल्लेख मिलता है (भा प्र म ख २४।१७ तथा भै र २६।६१२) इसी प्रकार वातजन्य स्तम्भ शूल, स्तब्धता आदि मे भी अग्निकर्म करने को कहा गया है (च चि २५।१०१, सु सू १२।१२०, अ स सू ४०, सु उ ४०।१४६, भा प्र म २४।१७)।

स्नायुशूल की दृष्टि से दग्ध—प्रत्येक स्नायुशूल की दृष्टि से उपरोक्त आधार एव रोग विशेष की साम्यता के आधार पर भी अग्निकर्म उपयोगी हो सकता है यथा-

ऊर्ध्व एव अर्ध स्नायुशूल मे दग्ध—ऊर्ध्व एव अर्ध स्नायु शूल जोकि त्रिधारा नाम से प्रसिद्ध है मे शिरोरोग की दृष्टि से अग्निकर्म किया जा सकता है। वातज एवं कफज रोगों मे अग्निकर्म का विधान मिलता है (च चि २६।१८०, सि. ९।८३, अ हृ, उ २४।९) साथ ही अर्धावभेदक (च सि ९।८३, अ हृ. उ २४।९) भ्रू रुजा (अ स सू ४०) ललाट रुजा (अ स. सू ४०) शिरो रुजा (अ स. सू ४०) तथा सूर्यावर्तक (सु उ २६।९-११) मे भी अग्निकर्म करने को कहा गया है। शिरोरुजा मे जहा वेदना आधिक्य हो वहा अग्निकर्म किया जा सकता है यथा—यत्र शूल तत्र दहेत्। प्राचीन परम्परा के अनुसार लोह शलाका या शरकाण्डा द्वारा ललाट मे भ्रू पर दग्ध का समर्थन चक्रपाणि भी करते है यथा—दहन चात्र तन्त्रान्तरप्रत्ययात् ह्ययम् ललाट प्रदेशेषु शरकाण्डादिना ज्ञेया (च सि. ९।८३ पर चक्र०) एक अन्य पाठान्तर के अनुसार भी—दहन चात्र शस्यते इति तन्त्रान्तर प्रत्ययात् भ्रू स्थान ललाटयोर्हो स प्रदिष्टे शलाकादिना दहन ज्ञेयम् (चक्र) आदि के रूप मे भ्रू, ललाट पर शलाका द्वारा दहन का सकेत किया गया है। इसके समर्थन मे सुश्रुत का सदर्भ इन्होंने प्रस्तुत किया है यथा—सुश्रुत वचनात् ललाट शङ्ख प्रदेशे दाह कर्तव्य (च ति २६-१६४ पर चक्र०) शिरोरोगाधिमंथयो भ्रू ललाट शङ्ख प्रदेशेषु दहेत् (सु सू १२।९)।

अर्धावभेदक की दृष्टि से भी इन अवस्थाओ मे दग्ध कर्म किया जा सकता है। क्योकि अन्य उपचारो के निष्फल होजाने पर अर्धावभेदक मे भी दग्धकर्म करने को कहा है (च सि ९।७९, अ हृ उ २४।९) इसका समर्थन चक्रपाणि ने भी किया है यथा—दहनं तत्रशस्यते इति तन्त्रातर प्रत्यात् भ्रू स्थान ललाटयो हो सप्रदिष्टे शलाकादिना दहनोज्ञेयम् (च चि ९।१९ पर चक्र) अर्धावभेदक मे दहनार्थ पीपली, अरणी, शरकण्ड (भै स २२।३३) यथा शर, अजाशकृत (अ हृ उ २४/११।९) का वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार भ्रू, ललाट शङ्ख या शिरान्त ललाटान्त पर दग्धकर्म किया जा सकता है (सु सू १२।९, भै चि २२-२३-३५)।

सूर्यावर्तक मे अर्धावभेदक के समान उपचार होने से तदनुसार भी अग्निकर्म किया जा सकता है।

—शेषाश पृष्ठ १९० पर देखे।

* अस्थि संघातजन्य शूल एवं उसका शामक उपचार *

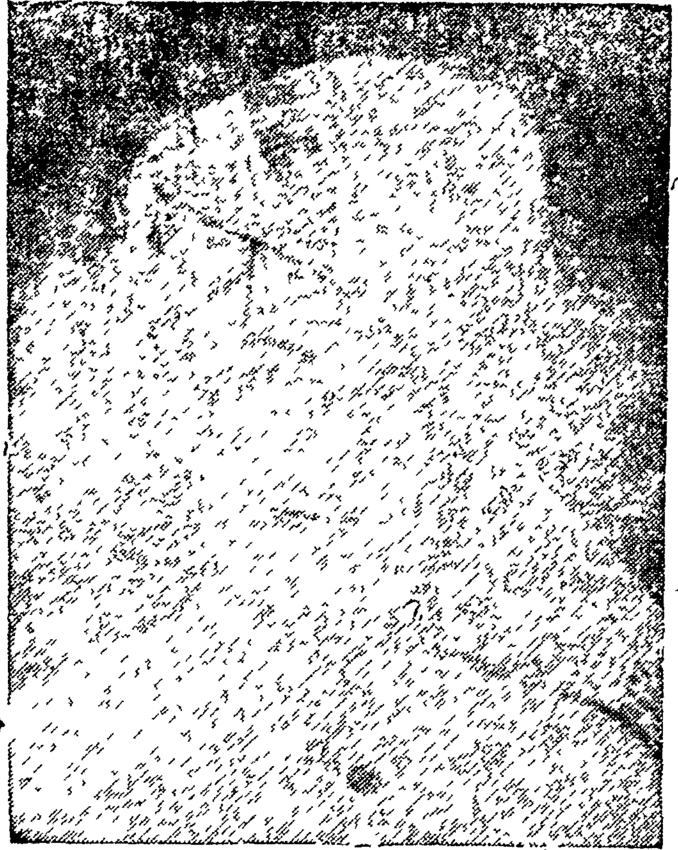
वैद्य श्री अम्बालाल जोशी आयुर्वेद केशरी, एव वैद्य पुखराज डागा
मकाराना मोहल्ला, जोधपुर (राजस्थान)



यो तो शूल शब्द सम्पूर्ण रोगो मे प्रयोग किया जा सकता है। ज्वर, अतिसार, अर्श आदि सभी शूल रूप ही हैं। परन्तु मेरी समझ मे शूल निदानाक मे जिस शूल का सार्थक उपयोग किया गया है वह उग्र पीडा ही है। हम यहा अस्थिघात द्वारा होने वाली उग्र पीडा पर विचार करेगे। सर्व प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि अस्थि सपीडन का निदान तथा उसके प्रकार क्या है, कितने हैं ?

सुश्रुत ग्रन्थ के मतानुसार "पतन पीडन प्रहारा प्रक्षेपण स्याल मृगदशन प्रभृतिभिघात विशपेरन्नेक विधिमस्थाना भग्नमुपदिशन्ति" से तात्पर्यार्थ– पडने से, चोट लगने से, पीडक स्थिति मे आक्षेप से, स्याल, मृग के काट खाने से, आघात आदि अनेक कारणो से भग्न (अस्थि टूटना) हो जाता है।

आग्ल मत भी इन कारणो का समर्थन करते हुए प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष आघात डण्डे या लाठी का लगना तथा मासपेशी मे तनाव (यह अधिकतर वृद्ध व्यक्तियो मे कास, हिक्का, जृम्भा लेते हुए होता है), कडी चोट तथा उसके झटके से भग्न को होना मानता है।



यह भग्न तीन प्रकार का होता है–(१) सादा भग्न, (२) कम्पाउण्ड भग्न, (३) कम्प्लेक्स भग्न। भग्न पूर्ण तथा अपूर्ण दो प्रकार का होता है। हड्डी का स्पष्ट टूट जाना पूर्ण भग्न है और अस्पष्ट टूटना (क्रैक होना) अपूर्ण भग्न है। पूर्ण भग्न अनुप्रस्थ, तिर्यग, अनुदैर्ध्य, अनुवेल्लित, अवशीर्ण, अन्तराविष्ट, बहु भग्न आदि स्थिति के प्रकार से माने गये हैं तथा अपूर्ण भग्न जिसमे पूरी अस्थि नही टूटती–नवशाखा भग्न, अवनत भग्न, रन्ध्रित भग्न स्थिति प्रकार से बताये गये है।

सुश्रुत के मतानुसार अस्थि भग्न १२ प्रकार के होते हैं–(१) कर्कट, (२) अश्वकर्ण, (३) चूर्णित, (४) पिच्चित, (५) अस्थिच्छल्लित, (६) काण्ड, (७) मज्जानुगत, (८) अतिपातित, (९) वक्र, (१०) छिन्न, (११) पाटित, (१२) स्फुटित। —नि० अ० १५/८

यो सामान्यत अस्थि भग्न मे पीडा, वातवाहिनी नाडियो मे शूल, आघात चिह्न, चर्म स्खलन, मासपेशी सूत्र भग्न, अङ्ग स्खलन, क्रियाशीलता का नाश, अस्वभाविक अस्थिरता, भग्न स्थान पर ध्वनि होना आदि स्पष्ट होते हैं।

इन भग्नो मे स्तब्धता, ज्वर, मासपेशी सचालन मे रुकावट, रक्त सचरण मे अवरोध, वसाविकिरण, प्रलाप, सज्ञाशक्ति का ह्रास आदि लक्षण हो जाते है।

उपरोक्त सभी आघातजन्य अस्थि रोगो मे प्राथमिक तथा विशिष्ट उपचार तो होते रहना आवश्यक ही है, परन्तु उतना ही आवश्यक शूलशामक उपचार भी है। यहा हम उन उपचारो पर विचार प्रस्तुत करेगे जो सभवत इस विशेषाक का मूल उद्देश्य है।

अस्थि सघात लगते ही यदि रोगी चिकित्सक के पास पहुँच जावे तो पीडा स्थान पर शीतल जल या शीतल पदार्थो का परिषेक करे। आघात के साथ यदि व्रण हो तो घृत तथा मधु मिश्रित कर व्रण प्रक्षालन करे। तदनन्तर वातशामक तैलो का उपयोग करे।

रोगी यदि चिकित्सक के पास विलम्ब से पहुँचे तो आघात स्थान पर तिल तथा ग्वार को कूटकर समभाग मिला तिल के तैल मे पकाकर बधवाये जिससे वह स्नेहित हो जावे और अस्थि सधान सुगमता से हो सके। न्यग्रोधादिगण का शीतल परिषेक भी ऐसी अवस्था मे स्मरणीय है। अस्थि सधान करने के लिए नीचे दबी अस्थि को ऊपर उठावे तथा ऊपर उठी हुई अस्थि को नीचे दबावे। इस प्रकार भग्न अस्थि यथास्थान स्थापित हो जावेगी। फिर इसे यथा स्थान रखने के लिये निम्न उपचारो मे से कोई भी उपचार कर मजबूत बन्धन कर देना चाहिए—

(१) मजिष्ठा तथा मुलहठी को काजी या पानी मे पीसकर लेप कर दे।

(२) सौ बार धुले हुए गोघृत मे चावल का आटा मिलाकर मोटा लेप करे।

(३) तिल, ग्वार, आवा हल्दी, रोहितक त्वक्, महुवा त्वक् प्रत्येक १०-१० ग्राम को चूर्ण कर जल मे पकावे। सम्यक् पक जाने पर ५० ग्राम दूध का मावा मिलाकर गर्म करके भग्न स्थान पर बाध दे। इससे अस्थि भग्न मृदु हो जाता है और यथास्थान बैठाने मे सुविधा रहती है। शूल भी कम होता है।

(४) आवा हल्दी, मैदा लकडी, रसौत, छोटी हरड प्रत्येक समभाग, फिटकरी तथा एलुवा आधा-आधा भाग पीसकर बडी गोली बना ले। यह चोट की गोली के नाम से प्रसिद्ध है। आवश्यकता पडने पर इसे पानी मे घिसकर आघात स्थान पर लेप कर दे।

विशेष अवस्था मे स्थानिक स्पर्श मे सुन्नता लाने के लिये वेदनाशामक औषधियो का प्रयोग करना चाहिए। जिससे स्पर्श सवेदना मस्तिष्क तक नही पहुँचे तथा पीडा का अनुभव कम हो। इसके लिये अन्त क्षेपण द्वारा औषधि पहुँचाना उचित है।

शूल शमन के लिये निम्न आयुर्वेदीय उपचार करना उपयुक्त रहेगा—

सेंक तथा पुल्टिस—

(१) पञ्चवल्कल के क्वाथ का पीडा स्थान पर सेक करने से शूल शमन होता है।

(२) तिल की खली को खूब पीसकर तिल्ली के तैल मे मिश्रित कर पकावे। फिर इसको भग्न स्थान पर सेंक कर बाध दे।

(३) गधे की लीद ५० ग्राम, सज्जी खार २० ग्राम, सरसो का तैल १०० ग्राम मिलाकर दो भाग कर ले। एक भाग को गरम करके पोटली बनाकर पीडा स्थान पर सेंक करे। जब तक गर्म रहे सेक करते रहे, ठण्डा होने पर इसे हटाकर गर्म कर ले तथा पूर्व गर्म भाग का सेक करने लगे। फिर दोनो का मिश्रण कर सुखोष्ण बाध दें। इससे शीघ्र ही पीडा शमन होती है।

प्रलेप—

(१) सरपुखा के ताजे पत्तो को पीसकर बकरी के दूध मे गर्म करके प्रलेप करे। कुछ ही घण्टो मे शूल कम हो जाता है।

(२) एरण्ड बीज की गिरी और काले तिल को खूब पीसकर तिली के तैल मे मिलाकर भग्न स्थान पर लेप करने से पीडा शान्त हो जाती है।

(३) आवा हल्दी, मैदा लकडी, कालीजीरी, रसौत, एलुवा, अफीम का लेप पीडा स्थान पर करने से पीडा शमन होती है।

(४) विजयसार की लकडी को पानी मे घिसकर पीडा स्थान पर लेप करने से पीडा शमन होती है।

तैलाभ्यङ्ग—

पीडाशामक तैल (रस तन्त्रसार, सिद्ध योग सग्रह)—उत्तम पीडा शामक तैल है।

उदर सेवनीय औषधिया—

(१) तगर का चूर्ण १ ग्राम, खुरासानी अजवायन १/२ ग्राम का फाण्ट बनाकर पिला दे।

(३) वेदनान्तक रस [रस तरगिणी] सेवन करावे।

(३) समीर गजकेशरी सेवन करायें ।

(४) नाग भस्म यथा मात्रा मे मक्खन या मलाई मे चटावे ।

(५) भग्न मे कण हो तो शिलाजतु वटी का प्रयोग करावें ।

(६) सैंधव ३ माशा मे चीनी मिलाकर शीतल जल से पिलाने पर पीडा शमन होती है ।

(७) रक्त स्फटिक चूर्ण भी पीडाशामक है ।

(८) हज्रल यहूद भस्म देने मे शूल कम होता है ।

(९) अफीम, गांजा, खुरासानी अजवायन, धत्तूरपत्र पीसकर १-१ रत्ती की गोली वना ले । वेदना शमनार्थ १ गोली दुग्ध के साथ दे ।

(१०) सेके हुए गेहूँ का चूर्ण शहद के साथ प्रयोग करने से पीडा शमन होती है ।

(११) विजयसार की लकडी का चूर्ण कर ५ ग्राम की मात्रा मे दूध के साथ सेवन करने से वेदना शमन होती है ।

अस्थि भग्न के पश्चात् अस्थि के यथास्थान स्थित हो जाने पर निम्न औषधियों से उपचार करना उपयुक्त है—

सेंक तथा पुल्टिस—

(१) एरण्ड बीज मज्जा—भग्न के स्थान के ठीक हो जाने पर यदि उसमे गठन वाकी रह जावे तो एरण्ड बीज मज्जा को जल मे पीसकर गर्म करके बाधने से शूल शमन होता है तथा गठाने विखर जाती है ।

(२) प्याज तथा हरिद्रा को पीसकर पोटली बनावें, फिर सरसो के तैल मे पकाकर सुहाते-सुहाते सेंक करें । ठण्डा होने पर पुन गर्म तैल मे तर कर सेंक करें ।

(३) प्रियंग्वादिगण तथा अम्बष्ठादिगण को पानी मे उबाल कर उस क्वाथ मे कपडा भिगोकर गर्म सेंक करे ।

(४) अस्थिदोषहर (सिद्ध योग सग्रह) सेंक करे ।

(५) न्यग्रोधादिगण के क्वाथ का सेक करें ।

(६) स्वल्प पचमूल के क्वाथ का सेक करें ।

प्रलेप—

(१) गुग्गुल को पानी मे पीस गर्म करके लेप करें ।

(२) गुड तथा चूना मिश्रित कर भग्न स्थान पर लेप करें ।

(३) मधु तथा विना बुझा चूना मिश्रित पीस कर लेप करे ।

(४) महुवे की छाल के लेप से भग्न स्थान की पीडा शान्त होती है ।

(५) जवा हरड १०० ग्राम, आवला ५० ग्राम, सुरा खार २० ग्राम, तुत्थ १० ग्राम, सबको पीसकर गोले बना लें । ये गोले पानी मे घिसकर पीडा स्थान पर लगाने से शोथ शमन होता है । इसे शोथहर गुटिका कहा है ।

—र० त० सा०

(६) कडवे बादाम की गिरी, पुरानी हड्डी १-१ तो०, सीप भस्म, समुद्र फेन, लाल फिटकरी को समान भाग पानी मे पीसकर लेप करे ।

(७) आगन्तुक क्षतान्तक लेप—एरण्ड तैल के नीचे की गाद, गुड, हल्दी, सिर के बाल, सबको सयुक्त गर्म करे । फिर कपडे मे डालकर सुहाता-सुहाता सेंक करे तथा बाद मे इसी का लेप चढा दे ।

(८) आवा हल्दी, मैदा लकडी, रसौत, छोटी हरड सभी १-१ भाग, फिटकरी व एलुवा १/२-१/२ भाग पीसकर हल्का गर्म करके लेप करे ।

(९) गेरु, सुपारी, सफेद चन्दन १०-१० ग्राम, रसौत ५ ग्राम, एलुवा ५ ग्राम को हरी मकोय के रस मे पीस कर लेप करे ।

(१०) एलुवा ३ माशा, खतमी के बीज ६ माशा, बनफशा पत्र ६ माशा, लाल चन्दन ६ माशा, सफेद चन्दन ६ माशा, भटवास ६ माशा, नाखुना ६ माशा, इन सबका चूर्ण कर मुर्गी के अण्डे की जर्दी मे पीसकर गुनगुना लेप करे ।

(११) काला तिल, सरसो, गेरू १-१ तोला, सभालू के पत्ते १॥ तोला, मकोय के पत्ते १॥ तोला पानी मे पीसकर गरम लेप करे ।

(१२) शृङ्ग भस्म ३ माशा, लोवान ३ माशा, भटवास का चून २ माशा, गूदा बबूल ६ माशा, कडवे बादाम की गिरी ६ माशा पीसकर लेप करे ।

(१३) मजीठ तथा महुवा पानी मे पीसकर पीडा स्थान पर लेप करे ।

(१४) मैदा लकडी, आवला, तिल समान भाग ठडे जल मे पीसकर लेप करे ।

(१५) अस्थि सहार को पीसकर उसकी लुगदी को गर्म करके पीडा स्थान पर लेप करे।

(१६) श्वेत सहिजने की छाल को घृत मे मिलाकर लेप करे।

(१७) इमली के बीजो को पानी मे भिगो दे, फूलने पर पीसकर पीडा स्थान पर लेप करे।

(१८) चमेली की जड को कूट-पीसकर शहद मे मिला पीडा स्थान पर लेप करे।

(१९) सन्धि वृक्ष की छाल को कुचलकर टूटे स्थान पर लेप करने से भग्न स्थान स्वच्छ होता है। इस पेड के पत्ते को बीच मे से चीरकर छोड देने से स्वय वापिस जुड जाता हे।

(२०) रोहितक वृक्ष की छाल को पीसकर ताजे घृत के साथ लेप करने से भग्न ठीक होकर पीडा शमन हो जाती है।

(२१) एलुवा, मैदा लकडी, फिटकरी, रेवन्द चीनी का शीरा, हीरावोल, सज्जीखार, गुग्गुल, लोध्र, ईशस, माजू फल सभी ५-५ तोला, आवाहल्दी २० तोला पीसकर चूर्ण वना ले और गर्म पानी मे मिलाकर लेप करे।

स्नेह प्रयोग—

(१) शुद्ध तिल का तैल कच्ची घानी का गर्म करके भग्न स्थान पर मालिश करे।

(२) महा स्नेह तैल [सिद्ध योग सग्रह] की मालिश करे।

(३) व्रणशोधक तैल [सिद्ध योग सग्रश] मालिश करे।

(४) खुरासानी यजवायन १० तोला, कायफल चूर्ण १० तोला, पके आम के पत्ते २५ (वारीक कतर कर) तिली के तैल मे पकावे। फिर सखिया चूर्ण १/२ तोला डाल उवाल कर छान ले। यह तैल जर्राही तैल के नाम से प्रसिद्ध है।

(५) घावनाशक तैल—त्रिफला १ तोला, निम्व पत्र ३ तोला, सभालू पत्र २ तोला, पानी ६० तोला मे क्वाथ कर छान ले। फिर गुग्गुल २ तोला, राल २ तोला, शिला रस २ तोला, मोम २ तोला, गन्धा विरोजा २ तोला, तिल का तैल २० तोला मिलाकर तैल सिद्ध करे। फिर ठण्डा होने पर छानकर कपूर ३ तोला डाल दें। कार्वोलिक एसिड १/२ तोला डालें।

उदर सेवनीय शास्त्रीय योग—

(१) लाक्षादि गुग्गुल, (२) आमा गुग्गुल, (३) त्रयोदशाग गुग्गुल, (४) व्रणान्तक गुग्गुल [सि यो स]।

अन्य अनुभूत योग—

(१) वाखडी गाय के दूध को गरम कर उसमे लाख का चूर्ण डालकर पीवें।

(२) रोहितक त्वक् चूर्ण ५ ग्राम दूध मे डालकर पीने से लाभ होता है।

(३) नाग भस्म अस्थि कणो मे लाभदायक है।

(४) प्रवाल पचामृत १ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक १ रत्ती, मण्डूर भस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म (१०० पुटी) १ रत्ती प्रात' साय दूध के साथ सेवन करे।

(५) वबूल के बीजो का चूर्ण मधु के साथ लेने से लाभ होता है।

(६) पीत कपर्द २-३ रत्ती कच्चे दूध मे पिलावे।

(७) पीत कपर्द भस्स, स्वर्ण माक्षिक, अभ्रक भस्म शतपुटी मिलाकर मक्खन मे दे। नाग भस्म भी मिला सकते हैं।

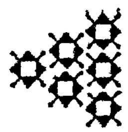
(८) बेर-पीपल की लाख, काहू की छाल, गेहूँ पीस कर हलवा वना खाने से अस्थि सधान होता है।

(९) गेहूँ को मिट्टी के वर्तन मे जलाकर उसकी राख को शहद मे चटाने से लाभ होता है।

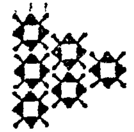
(१०) लाख, काहू की छाल, असगन्ध, खरैंटी, गूगल की गोली वनाकर दूध मे सेवन करें।

(११) पीपल के पत्ते २१ पीसकर उनमे गुड मिला कर २१ गोली वना ले। प्रतिदिन ३ गोली गोदुग्ध के साथ सेवन करे।



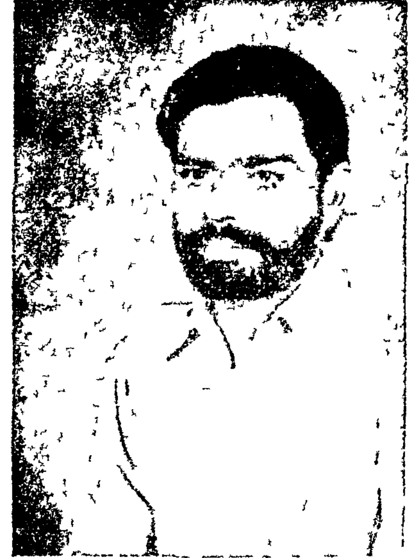


नासापाक एवं नासागत शूल



वैद्य धनेश रावल बी एस ए एम, चिकित्साधिकारी–राजकीय आयु० दवाखाना,
मु० गुन्दीयाला, ता० वढवाण, जि० सुरेन्द्र नगर (गुजरात)

—✶❖✶—



श्री वैद्य धनेश रावल कुछ कर दिखाने वाले युवा वैद्य हैं। आप साहित्यकार, कवि, लेखक, विचारक एव वैद्य हैं। आपकी अनेको रचनाएं आकाशवाणी राजकोट, अहमदावाद एव बडौदा द्वारा प्रसारित होती रहती हैं। आयुर्वेद विषयक लेखो–निरामय, आयु० डायजेस्ट, स्वस्थवृत्त, आयुर्मणी, रगतरग तथा आरोग्य प्रकाश (सभी गुजराती) जैसे मासिको मे प्रकाशित हुए हे। भूतकाल मे आप सुरेन्द्र नगर जिला वैद्य मडल के पदाधिकारी थे। वर्तमान मे आप सुरेन्द्र नगर जिला आयुर्वेद प्रेम परिवार के संचालक एवं मार्गदर्शक हैं। आप सतत चिन्तन करते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा मे विशेष श्रद्धा रखते हैं। मेरे प्रिय मित्रो मे आपका स्थान विशेष रूप से है। यहा श्री रावल जी ने नासापाक एवं नासागत शूल पर विवेचन किया है, जो उपयोगी होगा। मै श्री रावल जी से अपेक्षा रखता हूँ कि आप 'धन्वन्तरि' मासिक को अपनी पत्रिका समझकर सर्वाङ्गीण मदद करे। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

घ्राणाश्रित पितमरु गि कुर्याद्
यस्मिन्विकारे वलवाश्च पाक ।
त नासिका पाकमिति व्यवस्येद्
विक्लेदकोथावपि यत्र दृष्टौ ॥
—सु उ अ २२

नासा मे स्थित पित्त व्रण उत्पन्न करता है। नासा मे क्लेद और दुर्गन्ध रहने लगती है। उसको हम नासापाक कहते है।

नासापाक रोग मे एक और दूसरे कारण से नासा मे पाक होता है। सुश्रुत मतानुसार नाक मे स्थित पित्त अरु पिका उत्पन्न करता है। चरक के मतानुसार नासा-पाक मे रक्त और पित्त प्रधान रूप से है। क्लेदयुक्त फुन्सी होती है और उसमे शोथ तथा पाक होने लगती है। उसके साथ ही नासापुट पक जाता है। त्वचा और मास मे शूल होने लगता है। नासा मे दर्द, शोथ जैसे व्रणशोथ के लक्षण देखने को मिलते हैं।

नासापाक चिकित्सा—

नासापाके पित्तहृत्स विधान
कार्यं सर्व वाह्याभ्यन्तर च ।
हृत्वा रक्त क्षीरवृक्षत्वचश्च
साज्या सेफा योजनीयाश्च लेपा. ॥

नासापाक मे पित्तहरण करने वाली वाह्य और आभ्यन्तर क्रिया करनी चाहिए। अभ्यङ्ग और सिंचन जैसी वाह्य क्रिया और आहार तथा स्नेहपान जैसी आभ्यन्तर क्रिया करनी चाहिए और साथ ही रक्त का स्रावण करके घृत मे मिश्रित करके वड आदि क्षीरी वृक्षो की छाल का लेप करना तथा सिंचन भी उसका ही करना चाहिए।

अर्थात् स्नेहन, स्वेदन, परिषेक, आलेप, रक्तमोक्षण शोथवत् उपनाह, वाह्य और अन्त पित्तशामक उपायो द्वारा आमावस्था मे, अपक्व व्रण शोथवत् लघनादि

उपक्रमो से पक्व होते ही पक्व व्रण की शोथवत् और उसके वाद व्रणवत् उपचार करना चाहिए।

घृतपान, क्षीरपान, अणु तैल नस्य, स्नेहिक धूम आदि चिकित्सा करना। उसके बाद पित्तजन्य विसर्प की तरह लेप, रक्तमोक्षणादि करना। दशाग लेप, मधुसर्पि, जात्यादि तैल, शोधन तैल आदि चिकित्सा करना। रक्त-पित्त की चिकित्सा भी कर सकते है। कैशोर गुग्गुल, त्रिफला गुग्गुल, काचनार गुग्गुल, आरोग्यवर्धिनी रस, गन्धक रसायन, मजिष्ठादि क्वाथ, सारिवाद्यासव, खदिरारिष्ट कल्प प्रयोग मे जरूरी है।

नासा रोग मे सामान्य उपचार क्रम—

(१) स्नेहन, स्वेदन, शिरोविरेचन, शिरोभ्यङ्ग, वमन, धूपन, धूम्रपान, घृतपान, नस्य, नासा प्रक्षालन करना।

(२) नासा मे नित्य तैल या घृत की बूंद डालना। अणु तैल-षडविन्दु तैल अथवा अन्य उपचार उपयोगी है।

(३) घृत-तैल-धूप और गन्ध द्रव्य, मधुर द्रव्य और घृतकृत धूम अथवा इगुदीवर्ति कृत धूप, कटफल नस्य, सैंधव नस्य अच्छी उपयोगी क्रियायें है।

(४) लवगादि चूर्ण, शुठ्यादि चूर्ण, व्योषादि वटी, विदिग्धादि कषाय, चित्रक अवलेह, च्यवनप्राशावलेह, पंचामृत रस, नारदीय लक्ष्मीविलास और महा लक्ष्मी-विलास रस आदि कल्प भी उपयोगी है।

नासा रोग से बचने के लिए शरीर को स्वस्थ रखना और स्वस्थवृत्त निर्दिष्ट सामान्य नियमो का पालन करके ऋतुचर्या, ऋतुसधिचर्या और ऋतु अनुसार विहार करना उपयुक्त है। पथ्य पालन और पथ्य भोजन भी अति उपयोगी है। 

[पृष्ठ १८४ का शेषाश] | स्नायु शूल

अधोसज्ञक स्नायु शूल मे दग्ध—अधोसज्ञक स्नायुशूल मे गृध्रसी के आधार पर अग्निकर्म किया जा सकता है। गृध्रसी मे गुल्फ की अन्त कण्डरा पर दग्ध का विधान चरक ने किया है (च चि, २८-यथा अन्तरा कण्डरा गुल्फे अग्निकर्म) गुल्फ से चार अगुल ऊपर तिर्यग दाह का विधान हारीत ने दिया हे (हा स ३।२५।८९ यथा दहेल्लोह शलाकाया पादरोगेषु सर्वेषु गुल्फोर्ध्वचतुरगुले तिर्यग दाह प्रकुर्वीत दृष्ट्वा पादे शिरा दहेत्) यही पाठ अन्यत्र भी कुछ परिवर्तन के साथ मिलता है (यथा व्याधि निग्रह २७८, यो चि मणि ११०) कुछ ने पादकनिष्ठिका पर दग्ध विधान किया है (चक्र ५।५४, वै वि ६।४९, यो र पृ ४४८ वगसेन ५९७ आदि) सकल ग्रन्थो मे गृध्रसी नाडी मूल, नितम्व के नीचे, घुटने से १२ अगुल ऊपर, पाद कनिष्ठिका से २ अगुल ऊपर दग्ध वर्णन मिलते है।

गृध्रसी निर्माणकारक नाडी तन्तु उदय स्थान कटि एव त्रिक कशेरुका सधियो पर भी दग्ध करने का प्रचलन हे (देखे-गृध्रसी मे अग्निकर्म, सुधानिधि १।८४ लेखक-पी० एस० अशुमान, एच वी राज्यगुरु तथा कटिगत वात मे अग्निकर्म, वात व्याधि सेमीनार-अकोला २-८४ मे प्रस्तुत शोध पत्र ले० एच०वी० राज्यगुरु एव पी० एस० अशुमान) इनके अतिरिक्त ग्रीक पद्धति के अनुसार कटि, नितम्व, उरु, जानु, जघा पर भी दग्ध विधान मिलते है (सर्जिकल इन्स्ट्रूमेन्टस आफ हिन्दूज)।

वाहु नाडी शूल मे दग्ध—वाहु नाडी शूल मे अववाहुक एव विश्वाची के अनुसार दग्धकर्म किया जा सकता हे। अववाहुक मे वाहुशिर से २ अगुल पर (व रा प्र ६ यथा अववाहुके भुजशिरसोर्द्धयगुले)। अस मध्य मे, वाहु पर तथा ग्रीवा कसेरुका सधि स ५, ६, ७ पर अग्निकर्म परम्परा अनुसार है। देखे अववाहुक मे अग्निकर्म पी एस अशुमान, एच वी राज्यगुरु, धन्वन्तरि ४।८६)।

इसी प्रकार विश्वाची मे कहे अनुसार भी वाहु नाडी शूल मे दग्ध कर्म कर देखा जा सकता है तदनुसार—कूर्पर से ४ अगुल ऊपर (वा र प्र ६), हस्त की कनिष्ठिका एव अनामिका पर तिर्यकदग्ध (अ हृ उ १३)। व्यवहार मे अववाहुक के स्थानो पर भी दग्ध किया जाता है अत ग्रीवा कशेरुका सधि, अस मध्य, बाहुशिर, वाहु, मणिवध, कनिष्ठका-अनामिका आदि पर दग्ध किया जा सकता है (देखे विश्वाची मे अग्निकर्म, पी एस अशुमान, एच वी राज्यगुरु–धन्वन्तरि ४-८५)।



* दन्तशूलयुक्त पायोरिया—स्वानुभूत चिकित्सा *

वैद्य शातारास कस्तुरे आयुर्वेद भिषक् C T S (झासी), आयुर्वेदालकार,
मत्री—नगर वैद्य सभा, अमरावती; पन्नालाल नगर, अमरावती—५ (महाराष्ट्र)





वैद्य श्री शांताराम जी कस्तुरे अमरावती (महाराष्ट्र) के जाने-माने अनुभवी चिकित्सक हैं। ८७ वर्षीय वैद्य जी ने अपने जीवन के अधिक वर्ष आयुर्वेद प्रचार-प्रसार मे व्यतीत किये है। आयुर्वेद प्रचार हेतु आपने भारत के अधिकाश प्रदेशो का दौरा किया है। अनेक जगहो पर आपने सेवा औषधालयो की स्थापना की है। भूतकाल मे आपने राजनैतिक पार्टी मे रह कर जनता की सेवा की है। आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित एव आयुर्वेद मर्मज्ञ हैं। वर्तमान मे अस्वस्थता होते हुए भी आपने अनेको अनुभवो मे से पायरिया पर स्वानुभूत लेख दिया है, जो अत्युपयोगी होगा। विशाल दृष्टि रखकर यह लेख लिखा है। मै भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना करता हू कि आप शतायु बनकर जीवन पर्यन्त आयुर्वेद की सेवा करे।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज



वैद्य बधू! दन्तशूलयुक्त पायोरिया की आपबीती सत्यकथा वैद्य अशोक भाई तलाविया जी की आज्ञानुसार आयु के सत्यहत्तर वर्ष मे पदार्पण करते हुए लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। बात सन् १९३२ की है, जब हम ऑल इण्डिया बाहुबली जैन धर्मार्थ औषधालय मे प्रधान इन्स्पेक्टर के रूप मे भारतवर्ष मे घूमकर धर्मार्थ औषधालयो की स्थापना करते थे।

एक देहात मे जन्म होने के कारण सस्कारवश कडो की राख से दात साफ करते थे। जब शहरो की बडी-बडी धर्मशालाओ तथा लाजो मे ठहरना पडा, तो एजेण्टो आदि को ब्रुश तथा टूथपेस्ट से दात घिसते हुये देख प्रभावित होकर उस समय के एक आने का एक सख्त ब्रुश तथा एक आने का एक सफेद खडिया मिट्टी से बना (दन्त मजन) पाउडर खरीदकर इससे देखा-देखी दातो पर कसरत करने लगे - वे पाच मिनट, तो हम दस मिनट हार्ड ब्रश से दात घिसने लगे। अनभिज्ञता के कारण हार्ड ब्रश ने शीघ्र मसूढे खराब करना शुरु कर दिया। धीरे-धीरे मसूढो से खून आने लगा। जब खून जमीन पर गिरता था, तो चट से पानी डालकर उसे बहा दिया जाता था, कि कोई देख न ले।

करीब दो माह बाद हमारे एक मित्र अमरावती निवासी डॉ० जैन डेण्टिस्ट को दिखाया तो एक दात उखाडने की सलाह दी। ६ माह बाद दिखाया तो ६ दात जल्दी उखाडने को कहा गया। हम भी एक नये वैद्य बन बैठे थे। बदल-बदल कर पेस्ट या मजन का उपयोग करते रहे, किन्तु अपनी हार्ड ब्रश के उपयोग की बात छिपाते ही रहे।

६ माह के बाद तो मुह से पीप आने लगा था। मुह तथा श्वास से दुर्गन्ध आने लगी। इतनी कि पाच कदम पर खडा या बैठा आदमी मुह मोडने लगा। लज्जावश फिर डा० जैन डेण्टिस्ट साहब से मिले, तो बैठे मरीजो को छोड मेरा हाथ पकडकर कमरे मे ले गये और कहा कि उखाडने तो पडेंगे ज्यादा दात, किन्तु आज आप बिना हिचके ६ दात निकलवा लीजिये, अन्यथा कफन बाधकर तैयार रहिये। फिर भी हमारे दिमाग मे नही आई। अगले २-३ माह के बाद तो यह हालत हुई, कि शरीर मे

क्षीणता बढी, हड्डिया तपने लगी, खासी का ठसका चलने लगा। दातो मे भयानक दर्द तथा मसूढो मे रक्त-पीप की मात्रा बढती ही रही। घबराकर एक्स-रे दो बार कराया, किन्तु ...य के माफिक टी बी नही थी।

कुछ समय बाद हमारा दौरा बम्बई, पूना से होकर अहमदाबाद हुआ, तो स्वर्गीय आयुर्वेद पचानन प० गगाधर शास्त्री गुणे, सस्थापक–आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लि० अहमद नगर का स्मरण होकर कारखाना देख उनसे प्रत्यक्ष मिले। सारा वाकिया सुनाया तो उन्होने निम्न प्रकार औषधि का सेवन करने तथा "पायोरियाहारी" मजन जो हमे उनके लडके श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम के स्व० देवकीनन्दन जी शास्त्री से प्राप्त हुआ था। जिसका उपयोग करते रहने को कहा। इस मजन का हम कोई दो माह से प्रयोग करते आ रहे थे। इससे दात-मसूढो की वेदना मे, रक्त तथा पीप मे कमी आकर मुह की दुर्गन्ध कम होने लगी। इसी के साथ हम इरिमेदादि तैल का प्रयोग करते रहे जिससे दर्द मे लाभ होता रहा।

जब दन्तशूल सहित पायोरिया के सकट मे रुग्ण फस जाता है, तो खाते-पीते रक्त तथा पीप का अश आमाशय मे पहुँचकर मदाग्नि कर देता है तथा फेफडो मे जाकर वहा छोटी-छोटी फुसिया (छाले) बना देता है। इस कारण वहा का सिक्रीशन (स्राव) रुककर एक क्षयी बीमारी जैसी खासी-ठसका शुरू कर देता है।

इसके लिए स्वर्गीय आयुर्वेद पचानन प० गगाधर शास्त्री जी गुणे, अहमद नगर की योजना अत्यन्त लाभकारी रही। इसका वर्णन उनके द्वारा लिखे "औषधि गुण-धर्म विवेचन भाग–५" मे भी आया है। वाचनीय, पठनीय, मननीय है।

(१) सितोपलादि चूर्ण ३ माशा, सुवर्ण भस्म १/१६ रत्ती, मृगशृङ्ग भस्म २ रत्ती, प्रवाल भस्म (चन्द्रपुटी) १॥ रत्ती, सत् गुर्च ४ रत्ती, अभ्रक भस्म (१०० पुटी) आधी रत्ती→एक मात्रा।

इसी प्रमाण मे पुडिया बनाकर प्रात साय गोदुग्ध तथा मिश्री मिलाकर या दो चम्मच दाडिमावलेह मे मिलाकर सेवन करे।

भोजनोपरान्त—दोनो समय द्राक्षासव ४-४ चम्मच समभाग जल मिलाकर लेते रहे।

इसके पश्चात् खदिरादि वटी २-२ रत्ती दिन मे ४-६ बार चूसकर खावे।

दोनो समय खाने से पहिले—निम्न पायोरियानाशक क्वाथ के गरारे करे।

पायोरियानाशक क्वाथ—बेर, बबूल, खैर, आम, निम्ब, सैतुक, इमली तथा मौलसरी की छाले समभाग लेकर कूट लेवे तथा सोलह गुना पानी स्टील या कलई किये बर्तन मे डालकर मदाग्नि पर पकावे। १/४ भाग काढा शेष रहने पर उतार कर शीशे मे रख ले। एक कप क्वाथ लेकर इसमे फिटकरी (सौराष्ट्री-तुवरी) का सफूफ तथा अच्छे कत्थे का सफूफ (बारीक वस्त्रपूत पावडर) ४-४ रत्ती मिलाकर गरारे करे।

पायोरियाहारी मजन—जो हमारे ४० साल के अनुभव से सैकडो रोगियो को लाभान्वित करने वाला आयुर्वेद का एक चमत्कार है—

१ रीठे के छिलके ५० ग्राम, २ तवाखीर अच्छा २० ग्राम, ३ स्वर्णगैरिक (जिसमे गोदुग्ध के ३ पुट लगे हो) ५० ग्राम, ४ हरी इलायची के दाने १० ग्राम, ५ कपूर कचरी २० ग्राम, ६. अस्मानि तारा (पुदीना सत्व) २ ग्राम, ७ अजवायन का फूल २ ग्राम, ८ कपूर ६ ग्राम ९ नीलगिरी ६ ग्राम, १० बायविडङ्ग २० ग्राम।

न ६, ७, ८ को शीशी मे मिलाने से पानी या तैल जैसा बनता है, उसमे नीलगिरी मिलाकर रख ले तथा अन्य वस्तुओ का कपडछन चूर्ण बनाकर इसमे उक्त तैल मिला अच्छी डाट वाली शीशी मे पैक कर रख लेवे।

इसी से प्रात तथा रात्रि को दात माजे यानि दन्त मजन कर गरम पानी से गरारे करे। पानी बासा या ठण्डा न लेवे तथा रात के मजन के बाद कुछ भी सेवन न करे।

असह्य दन्तशूल युक्त पायोरिया मजन जिसने हमे ही नही, सैकडो को जीवनदान दिया, जिसकी वेदना या कष्ट एक भुक्तभोगी ही जान सकता है। योग लिख दिया है, अवश्य बनाकर अनुभव को सूचित करे।

सन् १९६७ मे नागपुर निवासी Retired Dy S P श्री सोपले साहब की धर्मपत्नी को गम्भीर प्रकार का पायोरिया हुआ, जिनको नागपुर के दो मशहूर डेन्टिस्टो ने पूरे दात उखाडने की सलाह दी दी। इसी मजनादि

ोटमेंट से पूरी तरह ठीक हो गयी। श्री सोपले साहब ने ी ६ आफीसरो को देकर लाभान्वित किया। इसके उपलक्ष मे श्री सोपले साहब ने गुणगान कर एक प्रमाण त्र भी दिया।

खदिरादि वटी—कत्था सफेद १०० ग्राम, चिकनी सुपारी २० ग्राम, कपूर २० ग्राम, जायफल २० ग्राम, शीतलचीनी २० ग्राम, इलायची २० ग्राम को कूट-पीस कपडछन चूर्ण बना जल से चने प्रमाण गोलिया बनावे। यह दातो को मजबूत बनाती है। इससे मुह के छाले, गले के रोग, खांसी और स्वरभग मे भी लाभ होता है।

इरिमेदादि तैल—इरिमेद की छाल ४०० ग्राम को १॥ लिटर जल मे पकाकर क्वाथ करें। चतुर्थांश रहने पर दुग्ध १०० ग्राम, लाक्षा रस १०० ग्राम, तैल १०० ग्राम तथा लोध्र त्वक्, कटफल त्वक्, मजिष्ठ, पद्म काष्ठ, पद्म केशर, चंदन, उत्पल पुष्प, मधुयष्टि, धातकी पुष्प प्रत्येक १-१ ग्राम लेकर कल्क करके सबको मिलाकर तैल पाक (सिद्ध) करें। इस तैल के गण्डूष करने से दन्त चाल, दारुण शूल, हनुमोक्ष, कपालिका, शीताद, शौषिर एवं मुख रोग नष्ट होते है।

दातो की दुर्गन्ध हटाने के लिये प्रथम कॉस्टर ऑयल देकर पेट साफ करा दे। तत्पश्चात् छोटी इलायची, जायफल, जावित्री, लौग का समभाग चूर्ण दातो पर दोनो समय मले।

(२) पायोरिया-दन्तशूल पर शीघ्र आराम पहुँचाने वाला मजन—सफेद कत्था १०० ग्राम, नीलाथोथा भस्म १५ ग्राम, तेलिया सुहागा ६० ग्राम, कपूर ३० ग्राम, माजूफल १५० ग्राम, सिरकी नवसादर ३० ग्राम, सैंधा नमक १०० ग्राम, स्वर्ण गैरिक १०० ग्राम। सबको कूट पीस छानकर मजन बना ले। प्रात तथा रात्रि को मजन करें। जल कुनकुना ही ले तथा सारी सूचनाये प्रथम लिखे मजनानुसार ही बरतें। यह पीप, वेदना बन्द करके मुह को साफ रखता है।

(३) हिलने वाले दातो को पक्का बनाने वाला शास्त्रोक्त प्रभावी मजन—

त्रिफला, त्रिकुटा तूतिया तीनो नोन पतग।
दन्त वज्रसम होत हैं माजूफल के सग॥

हरड, बहेडा, आवला, सोठ, मरिच, पीपल, तुत्थ (नीलाथोथा–यह भस्म बनाकर लेवे), सैंधा नमक, काला नमक, साभर नमक, पतग (बहुत हल्की लकडी आती है) तथा माजूफल समभाग लेकर कूट-पीस छानकर मजन बना ले। उक्त मजन के समान उपयोग करे।

नोट—हम इसमे माजूफल १० गुना डालते हैं। लाभकारी है।

समस्त शूलादि दन्तरोग पायोरिया मे—रुक्षान्न सेवन, पचने मे कठिन गरिष्ठ पदार्थो का त्याग, अम्ल तथा दूषित पदार्थों का त्याग करना आवश्यक है।

पायोरिया होने के कुछ कारण—

(१) विकृत पेस्ट-पावडरो का उपयोग करना।

(२) हार्ड-कठिन तथा गन्दे ब्रशो का विकृत रूप से प्रयोग करना।

(३) दातो को साफ न रखना।

(४) गरमागरम तथा ठडे पदार्थों का अधिक सेवन।

(५) विटामिन सी की मात्रा भोजन मे कम होना।

(६) मीठा, शक्कर आदि का अत्यधिक सेवन करना।

(७) मासाहार तथा चाय-पान का अधिक सेवन।

(८) खासकर पान का बीडा खाते-खाते सो जाना। इससे पान की सख्त सिराये तथा सुपारी के कठिन छिलके दो दातो के बीच मे फसकर मसूढो मे सडन पैदा कर देते है और मसूढो से खून-पीप का निकलना शुरू हो जाता है।

एलोपैथी मे दन्तोत्पाटन के अलावा कोई सफल इलाज नही सुना है। हम दावे के साथ कहते हैं कि उक्त चिकित्सा आयुर्वेद की एक महान सफल देन है। इस चिकित्सा क्रम से सैकडो मरीजो ने आरोग्य लाभ लिया है। आप भी बनाकर यश के भागीदार बने।

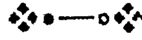
इस विषय मे जो भी शका हो या पूछना चाहे तो अवश्य लिखे। सहर्ष जवाब दिया जावेगा।

'शूल रोग विशेषाक' मे कई प्रकाण्ड विद्वान् वैद्यो के निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, सप्राप्ति, प्रकार आदि पर विशेष प्रकाश डालने वाले लेख अवश्य आवेंगे। अत हमने इसमे एक सत्यकथात्मक रूप से चिकित्सा ही लिखने का प्रयास किया है।



※ वाताष्ठीला, अष्ठीला और मूत्रग्रंथि ※

वैद्य रघुवीर शरण शर्मा टी-१५० भजनपुरा, दिल्ली-५३



आज मैं इन रोगो पर विचार करना चाहता हूँ और वैद्य समाज से उनके निर्णय की आशा भी करता हूँ। जिनका आज तक मेरे विचार से निर्णय नही हुआ है और उनकी मैंने किसी भी प्रचलित या प्रसिद्ध ग्रन्थो मे चिकित्सा भी नही देखी है।

इनका नाम है अष्ठीला वाताष्ठीला प्रत्यष्ठीला। कुछ विद्वानो ने अष्ठीला को प्रोस्टेट ग्लेण्ड बताया हे तो कुछो ने वाताष्ठीला को कुछो ने अष्ठीला को। किन्तु उक्त विद्वानो का कथन शास्त्र से और प्रसिद्ध व्यवहार से मेल नही खाता है जिसके प्रमाण ये है—

अष्ठीलावद् घन ग्रन्थिरुर्ध्वमायत उन्नत।
वाताष्ठीलाविजानीयाद् वहिर्मार्गविरोधिनीम्॥
एताभेवरुजायुक्ता वाताविण्मूत्ररोधिनीम्। ८७
प्रत्यष्ठीलामितिवदेञ्जठरेतिर्यगु त्थिताम्।

—सुश्रुत वातनिदान (वातष्ठीला)

अष्ठीला के समान ठोस ऊपर को फैली हुई उन्नत और वाहर के मार्ग को रोकने वाली ग्रन्थि (गाठ) को वाताष्ठीला समझना चाहिए। वाहर मार्ग रोकने वाली का अर्थ मलमूत्र को रोकने वाली है (प्रत्यष्ठीला) पेट मे तिरछी उठी हुई अधो वायु मल और मूत्र को रोकने वाली और विशेष पीडा देने वाली इसी ग्रन्थि को प्रत्यष्ठीला कहते है।

वक्तव्य—अष्ठीला एक प्रकार का पत्थर हे। उत्तरायवेदी वर्तुल पापाण विशेष व (डल्हण) अष्ठीला वाताष्ठीला प्रत्यष्ठीला वात रोग हे और उदर के है। यह भी स्मरण रहे इनका उल्लेख चरक और वाग्भट मे नही है।

वातष्ठीला आयुर्वेद विज्ञान वात निदान—

नामेरधस्तात् सञ्जात—सञ्चारीयदि वाऽचल।
अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थि रुर्ध्वमापत उन्नत॥
वाताष्ठीलाविजानीयाद वहिर्मागावरोधनीम्।
एतामेवरुजो पेता वात विण्मूत्ररोधिनीम्॥
प्रत्यष्ठीलामितिवदेञ्जठरेतिर्यग्रथिताम्।

यही पाठ माधव निदान वात निदान मे है और यही पाठ योग रत्नाकर मे है। अजन निदान मे थोडा सा अन्तर है।

रुट् नाभेरधोग्र थिरष्ठीला रुद्धमूत्रविट्।
प्रत्यष्ठीलोदरे चेत् सा मपीडातिर्यग्रक्षिता॥

अञ्जन निदान ने अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला लिखा है। आचार्य शार्ङ्गधर ने वाताष्ठीला और मूत्र ग्रन्थि दो नाम मूत्राघात मे लिखे है।

वात कु डलिका पूर्वा वाताष्ठीला तत परा। ५३
मूत्रोत्सर्ग सप्तम स्याम् मूत्र ग्रन्थिस्तथाष्टम। ५५

अव तक हमने वात रोगो के अन्तर्गत वाताष्ठीला प्रत्यष्ठीला नाम की ग्रन्थियो का (गाठो का) वर्णन किया है। अञ्जन निदान मे वात रोगो मे वजाय वाताष्ठीला के अष्ठीला नाम लिखा है। किन्तु आचार्य शार्ङ्गधर ने वाताष्ठीला मूत्र ग्रन्थि दोनो को मूत्राघात रोग मे लिखा है, इन सवको हम लिख चुके है। अव मूत्राघात मे वर्णित अष्ठीला ग्रन्थि का वर्णन कर रहे हैं।

आध्मापयन् वस्तिगुद रुध्वावायुश्चलोन्नताम्।
कुर्यात तीवार्तिमष्ठीला मूत्र विण्मार्गरोधिनी॥

—आयुर्वेद विज्ञान

कुपित वायु मल और मूत्र को रोककर एक अष्ठीला नाम की ग्रन्थि (गाठ) उत्पन्न करता है। इसमे भारी कष्ट होता है। यह स्थिर नही रहती है और ऊची भी होती है। क्योकि यह अष्ठीला के समान कठोर होती है अत इसका नाम अष्ठीला है।

आध्मापयन्नास्ति गुद रुध्वावायुश्चलोन्नताम् कुर्यात तीव्रार्तिमष्ठीला मूत्रविण्मार्गरोधिनी।

—माधव निदान

माध्मापयन् वस्तिगुद रुध्वावायुश्चलोन्नताम्।
कुर्यातीव्रार्तिमष्ठीला मूत्र विण्मार्गरोधिनीम्॥

—योगरत्नाकर

वक्तव्य—समझने और समझाने के लिये पूरा ही लिखना चाहिये।

अत्र हम मूत्र ग्रन्थि का वर्णन कर रहे है।

अन्तर्वस्ति मुखे वृत्त स्थिरोऽल्प सहसाभवेत्।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थि मूत्रग्रन्थि उच्यते ॥

—आयुर्वेद निदान

मूत्र ग्रन्थि वस्ति (मूत्राशय) के भीतर रहती है। वृत्त आकार गोल होता है स्थिर रहती है वाताष्ठीला के समान चलती नही है। अल्प क्षुद्र आमलक प्रमाणम्(धातु निदान) छोटे आमले के बरावर होती है। सहसा (एक साथ) होती है अर्थात् इसकी उत्पत्ति शनै शनै नही होती हे। जब यह बढ जाती है तव इसमे अश्मरी (पथरी) के समान कष्ट होता है। ये है मूत्र ग्र थि के लक्षण।

प्रश्न—ननु स्थान वेदना कारणामभिन्नेऽपि अश्मर्या-सह अस्य को भेद। स्थान, वेदना और कारण मूत्र ग्रन्थि और अश्मरी के अभिन्नय हे। फिर अश्मरी के साथ इस का क्या भेद है ?

उत्तर—अश्मरी क्रमश सञ्चयेनस्यात् अयतु सहसा भवेदिति भेद। अश्मरी का सचय धीरे-२ होता है और मूत्र ग्रन्थि की उत्पत्ति एक साथ होती हे। यह भेद है। अपरो भेद अश्मर्या पित्तादिक कुप्यति अत्रतु रक्तमेव। यत उक्त तत्रान्तरे रक्तवात कफाद्दुष्ट वस्ति शारे सुदारुणम् ग्रन्थि कुर्यात् सकृच्छ्रेणस्रजेन् मूत्र यदावृतम्।

अर्थ—रक्त वात और कफ से दुष्ट (विकृत) होकर वस्ति (मूत्राशय) के द्वार पर अर्थात बाहर कष्टप्रद ग्र थि को उत्पन्न करता हे और ग्रन्थि जव यह ढक जाती है, अर्थात जव इसका मुख वन्द हो जाता है, तव मूत्र त्यागने मे वडा कष्ट होता है।

अन्तर्वस्ति मुखेवृत्त स्थिरोऽल्प सहसाभवेत्।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिमूर्त्र ग्रन्थि स उच्यते ॥ —माधव

अन्तर्वस्ति मुखे वस्तिमुखस्याभ्यन्तरे। ग्रन्थि गुडकाकार। मधुकोपव्याख्या। यह ग्र थि के मुख के भीतर होती है। इसका आकार अर्थात वर्ण गुड के समान लाल है। ननु स्थान वेदना कारणानामभिन्नत्वाद् अश्मर्या-सह कोभेद। उक्त हि तत्रान्तरे

रक्त वात कफाद्दुष्ट वस्ति द्वारे सुदारुणम्।
ग्र थि कुर्यात् स कृच्छ्रेण स्रजेन् मूत्र तदावृतम् ॥
अश्मरीसम शूलहि रक्तग्र थि प्रचक्षते।

—मधुकोश व्याख्या।

अन्तर्वस्तिमुखेवृत्त स्थिरोऽल्प सहसा भवेत।
अश्मरी तुल्यरुग्रथि मूत्र ग्र थि स उच्यते ॥

—योग रत्नाकर

वक्तव्य—माधव निदान मधुकोषव्याख्या मे विषय सूची से भी पूर्व वैद्यक यूनानी और अग्रेजी मे रोगो के नाम दिये है। उसमे अष्ठीला का नाम अग्रेजी मे इन्लार्जमेंट आफ प्रोस्टेट लिखा है। मूत्रग्रन्थि को कैंसर आफ दि ब्लैडर लिखा है। अर्थात् मूत्राशय का कैंसर।

पारिवारिक भेपज तत्व वगला या वगला लिपि मे है लेखक है। च भट्टाचार्य। इसको निघण्टु समझना चाहिये इसमे पृष्ठ ८१२ पर यह लिखा है।

मूत्र ग्रथि मूत्राशय मुख स्थाई हे।

मूत्रग्रन्थि पर अर्थात् मूत्रग्रन्थि के बढने पर मूत्रप्रदाह शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है मूत्र ग्रथि शोथ। इस पर आर्सेनिक डिजिटेलिस सलफर थू जा आदि औषधिया भी लिखी है।

डा० त्रिलोकी नाथ वर्मा ने हमारे शरीर की रचना पुस्तक लिखी है। इसमे लिखा हे कि वस्ति से १ इञ्च के फासले से मूत्र प्रणाली के नीचे मूत्र ग्रन्थि हे। इसने मूत्र प्रणाली को सव तरफ से घेर रक्खा है। मूत्र मूत्रग्रथि मे होकर जाता हे। वृद्धावस्था मे यह किसी-२ को वढ जाती हे।

वक्तव्य—मै उक्त दोनो ग्र थो मे जो लिखा है उसी को स्वीकार करता हूँ। मूत्रग्र थि जिसका भाषान्तर प्रोस्टेट ग्लेण्ड हे। इतना लिखने के बाद इसका निर्णय मेरे विचार से यह हे कि वाताष्ठीला या अष्ठीला प्रोस्टेट ग्रन्थि के जो लक्षण लिखे है। उनको स्वीकार करता हूँ।

अन्तर्वस्ति मुखे वृत्त स्थिरोऽल्प सहसाभवेत्। अश्मरी तुल्य रुग्ग्रथि मूत्रग्र थि स उच्यते ॥ ग्र थि स्थिर है वृत्त है (गोल हे) अल्प हे अर्थात् छोटे आमले के समान मान लेने पर वजन १ तोला मान ले। जब मूत्रग्र थि मे शोथ हो जाता है तव मूत्र कष्ट से आता है, तव इसमे अश्मरी के समान कष्ट होता है। किन्तु इससे दो आपत्ति है एक तो ग्रन्थि का वस्ति के भीतर लिखा है, दूसरी है सहसा होना। सहसा होने का अर्थ है रोग का चिह्न और मूत्र ग्रथि का अर्थ हे शरीर का अग।

यदि इस प्रकार पाठ करदे तो दोनो आपत्ति समाप्त हो जायेगी। — शेषाश पृष्ठ १६७ पर देखें।

दन्तशूल की आत्ययिक चिकित्सा

लेखक—वैद्य शोभन वसाणी, २१२—सर्वोदय कोम सेन्टर, रिलीफ सिनेमा और
जी पी ओ के बीच, सलापस रोड, अहमदाबाद (गुजरात)
अनुवादक—वैद्य भानुप्रताप आर० मिश्र, विवेचक श्री वाला हनुमान आयु० महाविद्यालय,
लोदरा ता विजापुर महेसाना गुजरात

वर्तमान समय मे गुजरात मे शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधरो में वैद्य श्री शोभन भाई वसाणी जी का नाम अग्र स्तर पर है। आप वर्षो से आयु का झण्डा लहराने के लिये अथक परिश्रम कर रहे हैं। आप गुजराती आयुर्वेद के सर्वोत्तम लेखक हैं, आज तक आपने कुल मिलाकर ६० ग्रन्थ लिखकर जनता के सामने पेश किया है । आप उत्तम वक्ता भी है । अनेको परिषदो मे आप आयुर्वेद विषयक वक्तव्य देते है । श्री शोभन जी स्वप्नदृष्टा हैं, आप सरल स्वभावी, निरभिमानी और सवेदनशील है । उत्तम संशोधनकर्त्ता भी हैं । आप द्वारा अनेको स्नातकों ने प्रेरणा ली है । सचमुच आप ऋषि समान कार्य करते हैं । यहां आपने दन्त शूल पर सक्षिप्त मे उत्तम मार्गदर्शन दिया है ।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज



दन्त शूल की आशुकारी चिकित्सा करना अनिवार्य है। फिर भी इसकी चिकित्सा करना अत्यन्त आवश्यक है। बहुत ही सडे हुए दात तथा हिलने वाले दात को किसी निष्णात दन्त वैद्य से निकलवाना ही सर्वोत्तम इलाज है ।

दन्त शूल के स्वावलम्बी उपाय निम्नलिखित है—

(१) उच्चकोटि की हीग के टुकडे या चूर्ण को दात के खोखले भाग मे भरना चाहिए। या हीग के विलयन मे रुई को भिगोकर दात मे रखना चाहिये। पीठी से घिसना चाहिये या बाहर के प्रदेश मे शोथ हो तो हीग को पानी मे मिलाकर गरम करके लेप करना चाहिये ।

(२) लवङ्ग, अजवायन (अजमोद), वचा, पिप्पली, तज, कुमारी घन इत्यादि दात पर रखना चाहिये ।

(३) अफीम मिल सकती हो तो उसको खोखले भाग मे रखकर लालास्राव बाहर निकालना चाहिये । अफीम का उपयोग अति अल्प मात्रा मे बहुत ही सावधानीपूर्वक करना चाहिए क्योकि यह विष है ।

(४) लवङ्ग, अजवायन (अजमोद), पिप्पली हीग का तैयार अर्क हो तो उसका कुल्ला (गडूष) करे ।

(५) इरिमेदादि तेल नामक औषधि बाजार मे तैयार मिलती है । इस इरिमेदादि तेल का कुल्ला करना चाहिए तथा रुई को इसमे भिगोकर दात के खोखले भाग मे रखे । इसे गर्म पानी मे मिलाकर कुल्ला करे । इस तेल के अभाव मे तिल तेल का उपयोग कर सकते है ।

(६) त्रिफला, विडग, शुद्ध फिटकरी, शुद्ध टकण तथा नीम के रस से कुल्ला करे ।

(७) कर्पूर हिंगु वटी बाजार मे मिलती है। उसे लाकर दात के खोखले भाग मे रखने से दन्त शूल मे शीघ्र लाभ होता है ।

उपरोक्त सभी उपायो से अच्छा, आशुकारी और हमेशा के लिए लाभकारी निम्नलिखित प्रयोग है । साधन सम्पन्न रोगियो को यह प्रयोग अवश्य कराये—

भाटा (बैंगन) के जैसे पत्र, फल, फूल वाली भटकटैया सर्वत्र उत्पन्न होती है । जिसे सस्कृत मे कटकारी, हिन्दी मे भटकटैया, गुजराती मे भोयरिंगणी तथा अग्रेजी मे येलो-बेरीड नाइटशेड (Yellow-berried Night Shade) कहते हैं, गर्मी की ऋतु मे इसके फल पकते हैं। पीला पका हुआ फल सुखाकर या आर्द्रता वाला हो तो उसमे से बीज निकालकर तेल मिश्रित करे। तेल मे सरसो, करज, निम्ब तेल उत्तम है। इन तेलो को मिलाया जाय तो अति उत्तम है। एक छोटी-सी गगरी लेकर उसको उल्टी रखकर उसके तले (पैंदी) मे १ इच व्यास

का एक गोल छिद्र करे, गगरी के वगल मे किसी भी जगह २ या ३ इन्च लम्बा और १ इन्च चौडा एक लम्ब गोल छिद्र करे। तत्पश्चात् इस गगरी को पानी से भरी थाली मे खडी रखना चाहिए,एक लोहे की करछुल मे निर्धूम अग्नि रखकर उस पर तेल वाला वीज आवश्यकतानुसार रखे। जव धुवा निकलने लगे तव तुरन्त उसे लम्ब गोल वाले छिद्र से करछुल को गगरी मे प्रवेश करे, ऊपर से गोल छिद्र मे से जव तक धुआ निकले तव तक छिद्र पर मुह खोलकर दर्द करते हुए दात को धूनी देवे। मुंह के आस-पास कपडा रक्खे जिससे धुआ वेकार न निकल जाय, ५-१० मिनट धुआ देने से तथा लालास्राव वाहर निकाल देने से भयकर दन्त शूल भी अवश्य मिटता है, सूजन उतरती है। इस प्रकार २-३ वार दुखते हुए दात को धूनी देने से कितने ही रागियो को जीवन भर के लिये दन्त शूल से मुक्ति मिलती है। लालास्राव पडने से अग्नि बुझ न जाय, इसका ध्यान चिकित्सक को रखना चाहिये। रोगी की नाक,आख को धुआ से वचाना चाहिये। उपरोक्त दोनो सावधानिया चिकित्सक को रखनी अनिवार्य है। ✶

❖ वाताष्ठीला अष्ठीला और मूत्र ग्रन्थि ❖

वहिर्वस्ति मुखेवृत्त स्थिरोऽल्प सहजाऽभवत्।
अश्मरी तुल्य रुग्ग्रन्थि मूत्रग्रन्थि स उच्यते ॥

अर्थ—यह वस्ति के वाहर के मुख पर होता है और जन्म के साथ होती है।

अनुभव या आपवीती—

सन् १९८६ ४ अक्टूवर की रात के ४ वजे मेरा पेशाव रुक गया भारी कष्ट रहा। ५ अक्टूवर प्रात काल ८ वजे डाक्टर ने इन्जेक्शन लगाया। और पेशाव हो गया। लेकिन पेशाव की स्थिति यह रही कि पेशाव वैठ कर या खडे होकर नही होता था, खाट पर लेट कर ही होता था यह स्थिति १५ दिसम्वर तक अर्थात् १ मास २० दिन तक रही। इस समय ५ अक्टूवर से २५ अक्टूवर तक डाक्टर की औषधि से लाभ कुछ भी न रहा। परन्तु मूत्र की मात्रा काफी वढ गई और आता भी जल्दी-२ था। ५ मिनट मे अधिक समय नही लगता था। इस वीच मे मैने होम्योपैथी डाक्टर श्री रफीक सद्दीक वुलन्दशहर को लिखा। ये सज्जन है और मेरे परिचित हैं। उन्होने सैवाल्सेरुलटा नाम की होमियोपैथी की औषधि लिखी, मात्रा ३ वूद से ५ वूद तक दिन मे तीन वार। इससे लाभ न हो तो डी २२ प्रोस्टोकौल H२ का सेवन करो। मात्रा ३ वूद से ५ वूद तक दिन मे ३ वार। मैंने २५ अक्टूवर की शाम से सैवालसेरुलेटा का सेवन आरम्भ किया। इसके सेवन से ही कुछ लाभ मालूम होने लगा। मूत्र की मात्रा फिर भी अधिक रही। सैवालसैरुलेटा की शीशी ३० नवम्वर तक चली इससे लाभ भी रहा। फिर १ दिसम्वर १९८६ मे डी २२ प्रोस्टोकौल H L२ आरम्भ कर दिया। इसके सेवन से १५ दिसम्वर

— पृष्ठ १९५ का शेषाश —

१९८६ को मुझे पूर्ण लाभ होगया। लेकिन पूर्ण लाभ होने पर भी मैने औषधि वन्द नही किया। इस पर भी ११ फरवरी १९८७ को मूत्र कुछ कष्ट से आने लगा।

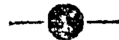
आयुर्वेदिक औषधि का सेवन—

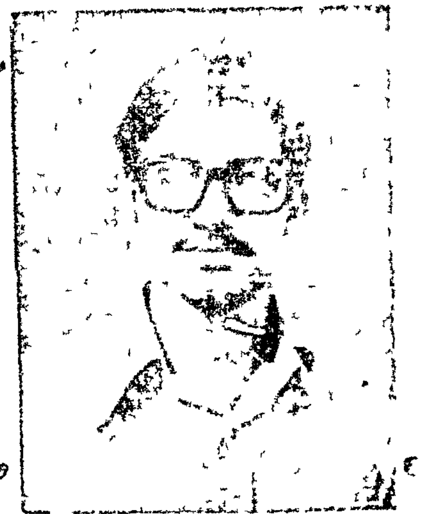
अव मैंने आयुर्वेदिक औषधियो का सेवन आरम्भ किया। नवायस लोह पुनर्नवा के क्वाथ के साथ आरोग्यवर्धनीवटी पुनर्नवा के क्वाथ के साथ पाषाणवदरी(हिज्रलयहूद) शीतल पर्पटी और गोक्षुर क्वाथ अकेला दोनो समय पिया पर लाभ कुछ नही हुआ। नवायस लोह मे त्रिफला त्रिकुटा, विडङ्ग, चीते की जड की छाल और नागरमोथा पडता है। इसके वरावर लोह भस्म। मैं इसमे कुटकी और पुनर्नवा १-१ तोला मिलाता हूँ और पुनर्नवा के क्वाथ की ३ भावना भी देता हूँ। अव इसका नाम एकादशलोह हो जाता है। स्मरण रहे भेल सहिता, चरक सहिता और काश्यप सहिता मे लोह चूर्ण डालना लिखा है। आरोग्यवर्धनी मे शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म, ताम्र भस्म अपनी वनी डालता हूँ।

शिलाजतु भी पत्थर से स्वय निकाली हुई वज्रक्षार शीतल पर्पटी अश्मवदर पिष्ठी (हिज्रल यहूद) आदि का भी सेवन किया किंतु लाभ कुछ भी न हुआ। अन्त मे ६ मई सन् १९८७ को डा० श्री रफीक सद्दीक के पास वुलन्दशहर समाचार वताया। तव डा० साहव ने सेवाल सेरुलेटा और एमोसाइनम को मिलाकर ५-५ वूंद दिन मे ३ मात्रा पानी से और डिजिटेलिस ०।५। की २ या ३ गोली १ तोला पानी मे दिन मे ३ वार, इसके सेवन से ३-४ दिन मे पूर्ण लाभ होगया। लेकिन औषधि अव भी सेवन कर रहा हूँ। ❖

दांत दर्द की होम्यो चिकित्सा

विद्यारत्न डा० प्रकाशचन्द्र गगराडे वी एस सी, टी फार्मा आयु वारिधि
९०२, एन-२, हनीव गज, भोपाल-४६२०२४,





डा० प्रकाशचन्द्र जी 'धन्वन्तरि' के स्थाई लेखक हे। आपके अनेक विषयो पर अनुभूत लेख 'धन्वन्तरि' मासिक मे प्रकाशित होते रहते हे। आप जिस विषय पर लेखनी उठाते है उस पर विद्वता से लिखते है। आप होम्यो पद्धति के विद्वान, प्रचारक एव प्रसारक है। साथ-२ आयुर्वेद पर विशेष श्रद्धा रखते हैं। हिन्दी भाषा की अनेको मासिक पत्रिकाओ मे आप निरन्तर लिखते हैं। यहा आपने सर्वविदित व्याधि दन्त शूल पर होम्यो चिकित्सा का विवेचन किया है, जो पाठको को उपयोगी होगा। मै श्रीमान गगराडे जी से आशा करूगा कि आप इस तरह हर समय धन्वन्तरि मासिक को सहाय करें।

— अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

होम्योपैथी मे दात की पीडा मे सामान्य रूप से प्लैन्टेगो Q दात पर लगाने और इसी की ३ शक्ति की दवा आन्तरिक सेवन से वहुत लाभ होता है। यदि इसका मदर टिंचर क्रियाजोट और कैम्फर का मदरटिंचर बराबर-बराबर की मात्रा मे अच्छी तरह मिलाकर रुई के फाहे से दत के स्थान पर लगाया जाये तो दर्द मे तुरन्त राहत मिलती है।

दन्तक्षय के अलावा यदि दात पर कालिमा भी दिखाई दे तथा ठडा पानी लगता हो तो स्टेफीसेग्रिया ३० और जव ठडे पानी से दात दर्द मे आराम मिले तो काफिया ३० दे। दन्तक्षय के कारण यदि दात की जडो मे शोथ हो तो मर्कसाॅल ३० लाभप्रद होगी। जब शोथ के साथ-साथ मसूढे भी फूले दिखाई दे तब एपिस ३० का सेवन कराये। लेकिन यदि शोथ और मसूढों मे फूलन नजर न आये ओर केवल दतक्षय की वजह से दात मे दर्द हो तो क्रियाजोट ३० का आतरिक सेवन लाभप्रद होता है।

जव रोगी को कुछ भी गर्म वस्तु खाने या पीने से दात दर्द की पीडा वढती हो और ठडी हवा या पानी पीने से दर्द मे आराम मिले तो ऐसी तकलीफ मे पल्सेटिला ३० का सेवन कराए। यदि ठडा पानी पीने या ठडी हवा के सपर्क मे आने पर विशेष आराम मिले और खाना खाते वक्त ही दत पीडा हो तो कल्केरिया कार्व ३० उपयोगी होगी।

दात दर्द की पीटा मे विशेष रूप से उपयोगी होम्योपैथिक दवाये यहा मुख्य-मुख्य लक्षणो के साथ दी जा रही है। आशा हे, होम्योपैथी मे रुचि रखने वाले चिकित्सक इनसे लाभ उठायेगे।

प्लेन्टेगो मेजर—इसकी क्रिया दात के स्नायुओ पर विशेष रूप से होने के कारण वैसे तो दात के हर तरह के रोग मे इसके सेवन से फायदा होता है। लेकिन डा• ह्वेल का कहना है कि दात के दर्द के लिये प्लेन्टेगो के समान अन्य कोई औषधि नहीं हे। इसका फाया बनाकर पीडित दाढ पर वाह्य प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रमुख लक्षण समय-समय पर दर्द होना, मामूली कारण से दर्द का वढ जाना यहा तक कि छुरा भोकना या भाला भोकने जैसा तेज दर्द महसूस होना, साथ मे गालो का फूला होना प्रकट करते है कि इनमे प्लेन्टेगो मेजर का आतरिक सेवन लाभप्रद होगा।

क्रियाजोट—यदि दात मे कीडा लगने के कारण दर्द हो तो इस दवा का वाह्य और आतरिक दोनो तरह से प्रयोग करे। दुधिये दातो के पुष्ट होने के पहले ही क्षत्र की अवस्था हो तो ऐसी दशा मे यह औषधि उपयोगी होगी। इसके प्रमुख लक्षणो मे दूध के दातो मे कीडा लगभा, मसूढो मे निरन्तर दर्द रहना, उनका सूजन, स्पंज की तरह फूल जाना, ठडे पानी के पीने मे दात के दर्द का बढना और गर्म पानी या भोजन के सेवन से दर्द का होना आदि देखे जा सकते हैं।

मर्कसॉल—दात के दर्द मे दूसरी औषधियो की अपेक्षा इस दवा का अधिक प्रयोग होता है। इसके विशेष लक्षणो मे दपदपाने वाला दर्द, रात को और ठण्डी मीली आवहवा मे दर्द का वढना, चेहरे पर धीरे-२ रगडने से आराम मिलना, दात काले होकर गिर जाना, दांतो का हिलना, मसूढो पर फोडा होना, मुंह से सदा दुर्गन्धि आते रहना आदि आते हैं।

स्टेफिसेग्रिया—दात क्रमश काले होने लगना, उगते ही टूट जाना, मसूढो से अलग होना, सडे दात की जड मे कुतरने जैसा दर्द जो पूरी पक्ति मे फैल जाता है। ऋतुस्राव के समय और गर्भधारण के समय होने वाला दात दर्द, ठडे पानी से आराम व गर्म पानी से तकलीफ का वढना जैसे लक्षणो मे लाभप्रद है।

केमोमिला—जव दात का दर्द समूची दन्त पक्ति मे फैल जाये जो असहनीय प्रतीत हो, रुक-रुक कर दर्द का दौरा पडना, दर्द का कानो तक फैलना, गर्म खाद्य पदार्थ खाने या पीने से दर्द निरन्तर वढना, दर्द का रात्रि मे वढ जाना और गर्म सिकाई से रोग मे वृद्धि होना जैसे लक्षणो मे केमोमिला लाभप्रद है। इसके विशेष मानसिक लक्षणो मे क्रोधी होना, चिडचिडापन, मामूली वात पर चिल्लाना पाये जाते हैं।

काफिया—रोगी जव दात दर्द की तीव्र वेदना से पागलो की तरह यहा-वहा दौडता फिरता है तो यह दवा उसके कष्ट को दूर करती हे। उसका दर्द डसने वाला, झटका देने वाला और रह-रह कर उठता हो, गर्म पेय पीने पर दर्द वढना और ठडा पानी पीने पर दर्द एकदम कम होना, स्वभाव से अत्यन्त नाजुक प्रकृति के लोगो मे उपरोक्त लक्षण मिले तो यह एक उत्तम औषधि होगी।

हेक्लालावा—दात और मसूढो पर इस औषधि की प्रमुख क्रिया होती है। दात मे कीडा लगकर उसका क्षय या मसूढे के चारो ओर सूजन के साथ दात मे दर्द का होना, दात निकलवा देने के वाद उसका टुकडा मसूढे मे रह गया हो तो उससे उत्पन्न तकलीफ मे हेक्लालावा लाभप्रद है।

आर्निका—वनावटी दात लगाने से दर्द होना और सूजन की अवस्था उत्पन्न होना, दात निकाल लेने या गड्ढा भरने से दर्द मालूम पडना, दात निकालने पर अधिक खून वहना, सवेरे, शाम और रात्रि को ठडक लगने से दात का दर्द वढना आदि लक्षणो मे आर्निका का सेवन गुणकारी है।

वेलाडोना—जव दत मज्जा मे प्रदाह हो, सूजन के कारण दात का दर्द वढे, दर्द की अनुभूति जलने व थप-थपाने जैसी हो, कोई चीज चवाने खुली हवा मे घूमने से दर्द का वढना, स्नायुविक उत्तेजना के साथ चेहरा तमत-माया हुआ हो तो वेलाडोना देना लाभप्रद होगा।

साइलिशिया—दात ढीले मालूम पडना, दातो की जडो मे फोडे होना, दांत का नासूर, दन्त क्षय ठीक न होना, गर्म पदार्थ खाने-पीने मे, ठडी हवा मुह मे चली जाने से दात का दर्द वढना जैसे लक्षणो मे साइलिशिया लाभप्रद है।

स्पाइजेलिया—जव दात मे नासूर हो और उसमे फाडने या पीटने जैसा दर्द हो, यही दर्द गाल की हड्डी मे फैल जाये, तेज दात के दर्द के मारे रोगी विछौने से उठकर यहा-वहा भागे, खाने, धूम्रपान करने व आराम करने पर दर्द शुरू हो, कीडे लगे हुए दातो मे दर्दनाक झटके तथा ठडक या ठडे पानी से दर्द मे वृद्धि जैसे लक्षणो मे स्पाइजेलिया दें।

इनके अतिरिक्त प्रमुख लक्षणों के आधार पर निम्न औषधिया भी लाभप्रद पाई गई हैं—

गर्भवती महिलाओ मे दात के दर्द के लिए मैग्नेशिया कार्व विशेष तौर पर उपयोगी है। ऐसी स्थिति मे सीपिया भी अमोघ औषधि मानी गई है।

जव दात धीमी गति से वढे और दन्त क्षय तेजी से होने लगे तो कैल्केरिया फास दे। कमजोर वच्चो के दात दर्द की पीडा मे भी यह दवा लाभप्रद है।

दातो के हिलने और उसमे जरा सा धक्का लगने पर दर्द होने मे कैल्केरिया फ्लोर गुणकारी है।

दन्तशूल : अनुभूत प्रयोग

डॉ० भागचन्द जैन आयुर्वेद वृहस्पति, जनता आयुर्वेद औषधालय,
परकोटा, सागर सभाग (म० प्र०)

-★❀★-

(१) नित्य काले तिल या सरसो के तैल के कुल्ले करो अथवा पिसा हुआ महीन सैंधा नमक तैल मे मिला कर उससे दातो को मलो। 'चरक' मे लिखा है कि दातो को निरोग और मजबूत रखने वाली ससार मे जितनी औषधिया है, उनमे तैल के कुल्ले सर्वोपरि हैं।

(२) सोठ, सरसो, हरड और आवला के काढे के कुल्ले करने से शीघ्र आराम हो जाता है।

(३) हल्दी महीन पीसकर कपडे मे रख दात के नीचे रखने और हल्दी को ही दातो पर मलने से दात के दर्द मे आराम हो जाता है।

(४) अदरक के पतले कतलो पर नमक लगाकर दर्द वाले दातो के नीचे रखने से सर्दी से होने वाला दर्द ठीक होता है।

(५) काली मिर्च और तुलसी के पत्तो को पीसकर गोलिया वना लो। इन गोलियो को दात के नीचे रखने से सर्दी की दन्तपीडा मे आराम हो जाता है।

(६) विनौला गरम करके दातो के नीचे दवाकर सोने से अथवा विनौले के काढे से कुल्ले करने से सर्दी की दन्त पीडा नष्ट हो जाती है।

(७) मजीठ लगाने से सर्दी की दन्त पीडा नष्ट हो जाती है।

(८) अजीर के दूध मे रुई भिगोकर दातो तले दवाने से दन्त पीडा नष्ट हो जाती है।

(९) छोटे वालक का गिरा हुआ दूध का दात जन्तर मे मढवाकर पास रखने से दात का दर्द मिट जाता है।

(१०) सज्जी और काली मिर्च पीसकर मलने से सर्दी की दन्त पीड़ा मे आराम होता है।

(११) रेवन्द चीनी पीसकर उसमे वरावर मिश्री मिला लो और दांतो पर मलो। इसके लगाने मे दन्त पीडा फौरन ठीक होती है।

(१२) राई को पीसकर दातो पर मलने से दन्त पीडा ठीक हो जाती है।

(१३) वटादि पचक्षीरी वृक्षो का काढा वनाकर उसमे शहद, घी और मिश्री मिलाओ तथा उस काढें से कुल्ले करो, शीघ्र आराम हो जाता है।

(१४) मौलसिरी की छाल चवाने से हिलते हुए दात जम जाते हैं।

(१५) दशमूल के काढ मे तैल या घी पकाकर और शहद मिलाकर दन्तधावन के लिए कवल धारण करना चाहिए। इससे दातो के हिलने आदि मे लाभ होता है।

(१६) शहद, पीपर और घी को एकत्र मिलाकर मुंह मे रखने से दातो की पीडा और उनका हिलना फौरन ही नष्ट हो जाता है।

(१७) चमेली के पत्ते, मैनफल, कटेरी, गोखरू, लोध्र, खैर, मजीठ और मुलहठी समभाग को तैल मे पकाकर लगाने से दन्त शूल शान्त हो जाता है।

(१८) लौंग का तैल लगाना चाहिए।

(१९) शहद या सरसो के तैल अथवा कांजी के गरारे-कुल्ले करने से मसूढो के सव रोग नष्ट होते हैं।

(२०) थूहर की जड चवाकर दात के नीचे दवाने से कीडा निकल जाता है।

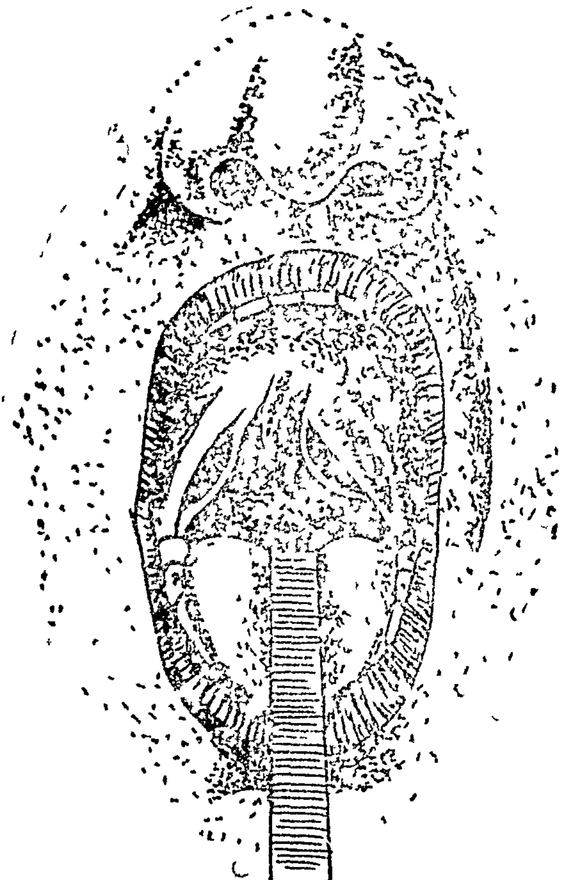
(२१) काली मिट्टी का मंजन करने से दातो के समस्त रोग ठीक हो जाते हैं।



तुण्डिकेरीजन्य कंठशूल

वैद्य श्री भानुप्रताप आर० मिश्र, विवेचक–श्री वाला हनुमान आयुर्वेद महाविद्यालय,
मु पो –लोदरा, ता –विजापुर, जि –महेसाना (गुजरात)

आयुर्वेद सहिता ग्रन्थो मे तालु रोग, कठ रोग या मुख रोगो मे सहिताकारो ने टासिल का समावेश किया है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र मे इसके लिए तुण्डिकेरी और अध्रुश शब्दो का प्रयोग किया गया है। तुण्डिकेरी की चिकित्सा न की जाय तो वह आगे बढकर अध्रुश के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। मेरे मतानुसार तुण्डिकेरी की दूसरी अवस्था ही अध्रुश है। तुण्डिकेरी एव अध्रुश का वर्णन आयुर्वेदीय सहिता ग्रन्थ सुश्रुत, शार्ङ्गधर सहिता, अष्टाग हृदय तथा माधव निदान मे मिलता है।



बांई ओर की टासिल फूली हुई है।

तुण्डिकेरी प्राकृतिक अवस्था मे मुख के पीछे के भाग मे जिह्वा के पार्श्वीय भागो मे वन-कपास के फूलो जैसी दो ग्रन्थिया होती है। शरीर के उपसर्गो द्वारा रक्षा करने का कार्य भी बहुत कुछ इन ग्रन्थियो पर निर्भर करता है। इन ग्रन्थियो का शोथ भी शरीर के सक्रामक रोगो से रक्षा करने के कारण होता है।

तुण्डिकेरी के कारण

१ आइसक्रीम, कुलफी, वर्फ, श्रीखण्ड, फ्रिज अथवा कूलर का अतिशीत जल या अन्य शीत खाद्य वस्तुओ के सेवन से।

२ दूध, घी, दही जैसे गुरु आहार के सेवन से।

३ मिठाई, विस्कुट, चाकलेट, सेकरीन जैसे अति मधुर पदार्थो के सेवन करने से।

४ टमाटर, नीवू, बेर, अमरूद, केला जैसे मधुराम्ल फलो का अति उपयोग करने से।

५ नालो की गैस, तीक्ष्ण धुआ आदि अशुद्ध वातावरण मे रहने से।

६ अति भाषण और अति गाने से।

७ दिवास्वप्न अर्थात् दिन मे सोने से तथा अति शीतल हवा का सेवन करने से।

८ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से स्तम्भक गोलाणु (Staphylo cocci), माला गोलाणु (Strepto cocci), फुफ्फुस गोलाणु (Pneumo cocci) के उपसर्ग से तुण्डिकेरी रोग की उत्पत्ति होती है।

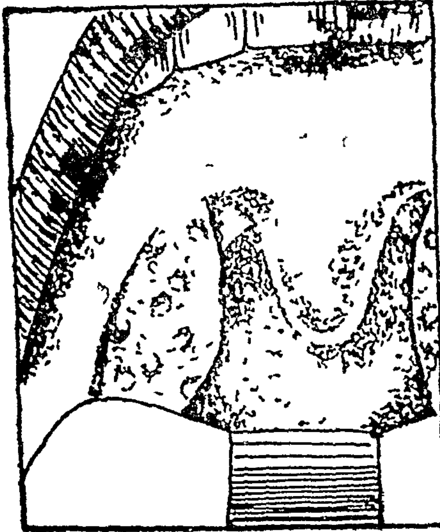
तुण्डिकेरी के लक्षण—

(अ) प्रारम्भिक अवस्था—१ गले मे दर्द होता है। २ खासी आया करती है। ३ कभी-कभी सिर दर्द की फरियाद रोगी करता है। ४ वार-वार सर्दी हो जाती है। ५ रोगी को भोजन मे कभी-कभी अरुचि रहती है।

(ब) जीर्णावस्था—१ गले के आन्तरिक भाग मे खुजली आती है। २ गले मे दर्द अधिक होता है। ३ लगातार खासी आया करती है। ४. श्वास लेने तथा खाने-पीने मे तकलीफ होती है। ५ सिर दर्द होता है। ६ जी मिचलाता है अर्थात् उल्टी होगी ऐसा लगता है। ७ कनपटी (कर्णमूल) मे दर्द होता है। ८ बार-बार सर्दी हो जाती है। ९ १०१ से १०२ अश फा० बुखार (ज्वर) रहता है। १० सम्पूर्ण शरीर के जोडो मे दर्द (सधि शूल) होता है।

सापेक्ष निदान—

इसका सापेक्ष निदान रोहिणी, स्कार्लेट ज्वर, कठ तालुगत विसर्प से किया जायेगा।

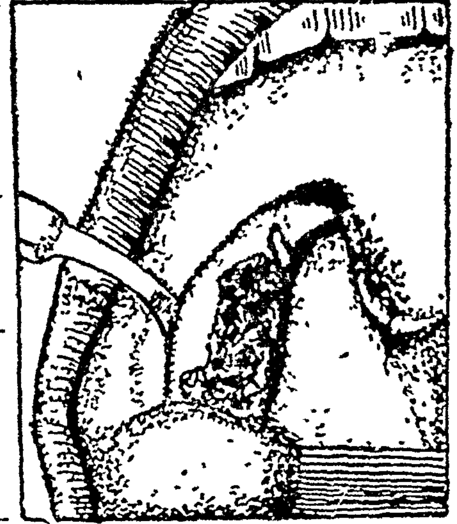


←

तुण्डिका शोथ (Acute Follicular Tonsillitis)

तुण्डिका शोथ का दूसरा प्रकार (Vincents Angina)

→



कठ-तालुगत विसर्प	तुण्डिकेरी
१ इसमे दाने निकलते है।	१. इसमे दाने नही निकलते।
२ इसमे कठ-तालु मे तुण्डिकेरी की अपेक्षा शोथ कम होता है।	२ इसमे कठतालु मे इतना अधिक शोथ होता है कि पानी पीना मुश्किल होता है।

रोहिणी	तुण्डिकेरी
१ इसका प्रारम्भ मन्दगति से होता है।	१ इसका प्रारम्भ एकाएक होता है।
२ इसमे दर्द कम होता है।	२ इसमे दर्द अधिक होता है।
३ इसमे ज्वर तुण्डिकेरी की अपेक्षा कम रहता है।	३ इसमे ज्वर १०१ से १०२ डिग्री फा० रहता हे।
४ इसमे नाडी की गति ज्वर के अनुपात से अधिक होती है।	४. इसमे नाडी की गति ज्वर के अनुपात से कम होती है।
५. इसमे झिल्ली के सूक्ष्म परीक्षण से रोहिणी के दण्डाणु अणुवीक्षण यन्त्र मे देखने को मिलते है।	५ इसमे झिल्ली के सूक्ष्म परीक्षण से कारण मे बताये गये जीवाणु अणुवीक्षण यन्त्र मे देखने को मिलते है।

स्कार्लेट ज्वर	तुण्डिकेरी
१. इसमे दाने निकलते हैं।	१ इसमे दाने नही निकलते हैं।
२ इसमे जिह्वा लालिमायुक्त होती हे।	२ इसमे जिह्वा मलयुक्त होती है।
३ इसमे गले की लसिका ग्रन्थियो का शोथ कम होता है।	३ इसमे गले की लसिका ग्रन्थियो का शोथ अधिक होता है।

तुण्डिकेरी के उपद्रव—

इसके उपद्रव के स्वरूप मे सधि शोथ, मध्यकर्ण शोथ, लसिका ग्रन्थि शोथ, अन्तर्हृच्छेद, पेशी शोथ, वृक्क शोथ, परितुण्डिका विद्रधि आदि विकृतिया होती हे।

विमर्श—तुण्डिकेरी या टासिल की शस्त्रक्रिया करनी चाहिए कि नही ?

मई १९८१ मे श्री सोमनाथ शर्मा जी ने लुधियाना से उपरोक्त प्रश्न पूछा था और इसका उत्तर अनुभव के आधार पर मागा गया। मै एक चिकित्सक तथा आयुर्वेद का प्राध्यापक एव लेखक होने के नाते मैंने अपने अनुभव मे जो देखा है तथा जो कुछ इस विषय मे अध्ययन किया है, उसके आधार पर उपरोक्त प्रश्न का निम्नलिखित उत्तर दिया। इस विषय मे हमारी कोई कमी रही हो तो अन्य विद्वान वैद्यगण हमे उचित मार्गदर्शन देने का कष्ट करेगे। यह हमारी विनम्र प्रार्थना है।

आजकल टासिल का कोई रोगी आधुनिक चिकित्सक के पास जाता हे तो पहले वे उसे दवाने के लिए दो-चार दिन चिकित्सा देते है। फिर कहते हैं कि तात्कालिक आपरेशन करना ही पडेगा। यह विचार हमारे आधुनिक चिकित्सक मित्रो का है। सैकड़ो टासिल के केसो मे दो-चार गम्भीर केस हो सकते हैं। ऐसे गम्भीर केसो का हमारे मतानुसार शस्त्रकर्म करना चाहिए। यह हमारा ही नही, आयुर्वेद के महान शल्य वैद्य आचार्य श्री सुश्रुत का विचार है जो हम आगे देखेगे।

जब कोई केस आधुनिक चिकित्सको के पास से लौट कर आयुर्वेद चिकित्सको के पास आता है, तब वैद्य जी तुण्डिकेरी अर्थात टासिल की स्थिति पर विचार न करके विना शल्यकर्म के मिटाने का दावा करते हैं। लेक्नि हमारे मतानुसार टासिल का केश गम्भीर न हो तो शस्त्र कर्म कराने की कोई आवश्यकता नही रहती है। अगर केश गम्भीर है तो तुरन्त टासिल का शस्त्र कर्म करा देना चाहिए। इस विषय मे आचार्य श्री सुश्रुत जी ने कहा है कि—

> तुण्डिकेर्यध्रषे कूमे सधाते तालुपुप्पुटे।
> एप एव विधि कार्यो विशेप शस्त्रकर्मणि॥
>
> —सु० सं० चि० अ० २२/५७

तुण्डिकेरी, अध्रुप, कूर्म, मास सघात तथा तालुपुप्पुट मे उपर्युक्त विधि का प्रयोग तथा विशेष रूप से शस्त्र कर्म करना चाहिए अर्थात् गलशुडी की तरह तुण्डिकेरी (टामिल) की चिकित्सा करनी चाहिए। परन्तु गलशुडी और तुण्डिकेरी के शस्त्र कर्म मे अन्तर है। उसका उल्लेख आचार्य श्री सुश्रुत ने सुश्रुत सहिता के पच्चीसवे अध्याय सूत्र स्थान मे विस्तारपूर्वक कहा है। उसे जिज्ञासु पाठक मित्र सुश्रुत सहिता मे देखे। सक्षेप मे मास सघात और अध्रुश (टोसिलाइटिस) का छेदन कर्म करना चाहिए।

उपरोक्त चर्चा से यह निश्चय होता है कि गम्भीर अवस्था मे तुण्डिकेरी और अध्रुप मे आयुर्वेद के महान् शल्य चिकित्सक आचार्य सुश्रुत ने भी शस्त्र कर्म करने की अनुमति दी है। गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस के आयुर्वेद विभाग के शल्य शालाक्य विभाग मे टासिल एव टोसिलाइटिस पर आयुर्वेद पद्धति से शस्त्र कर्म किया जाता है।

तुण्डिकेरी का आपरेशन नही करना चाहिए। इस विषय मे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने जो अनुसन्धान किया है उस विषय मे अब आगे मार्गदर्शन दिया जायेगा।

आज से ४० वर्ष पहले "रीडर्स डायजेस्ट" नामक पत्रिका मे एक विद्वान् डाक्टर का लेख प्रकाशित हुआ था। लेखक महोदय ने लिखा कि वच्चो के टासिल की शस्त्रक्रिया कराना उनके माता-पिता के लिए महान् पाप है। क्योकि ऐसा करने से उनकी जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सक श्री धर्मचन्द्र सरावगी का कहना है कि मैंने टासिल के सैकडो रोगियो को विना शस्त्रकर्म के ठीक होते देखा है। इटालियन कल्चरल न० १, २, ३, १९५५ जो इटालियन कोसोलेट वम्बई से प्रकाशित होता है। उसमे एक विशेप सशोधन सम्बन्धी लेख प्रकाशित हुआ था। उसका शीर्षक था 'विना टासिल के लोगो मे पुरुषत्व की कमी'। इस सशोधन को करने वाले दोनो डाक्टरो का नाम है—नोसेन्ट और गाइड कलोरोली। ये दोनो इटली के वेरगामी स्थान के निवासी है और जगविख्यात केनिया यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं। इसके अतिरिक्त इनका सम्बन्ध निकोलिया, मेडला और

विजोवान्स के प्रसिद्ध डाक्टरो मे से हैं। बर्लिन और वियाना की यूनिवर्सिटी मे काम कर रहे है।

टासिल की शस्त्रक्रिया करने मे पुरुषत्व की कमी हो जाती है और स्त्रीत्व के कुछ लक्षण आने लगते है। इस विषय मे १९७३ मे कोल्डेरोली के विद्वानो ने यह खतरा लोगो के सामने रखा और इटली मे एक स्पेशल कमेटी की स्थापना हुई। इसमे दस विद्वानो ने ग्रेट ब्रिटेन यूनाइटेड स्टेट्स के लाखो पुरुषो का परीक्षण किया। सशोधन के अन्त मे जानने को मिला कि जिन लोगो ने टासिल की शस्त्रक्रिया कराई थी, वे हमेशा थकावट का अनुभव करते थे। पुरुषत्व की कमी के कारण जातीय सुख मे बाधा आती थी। वे बार-बार बीमार होते थे। युद्ध के समय मे जवानो के परीक्षण मे ज्ञात हुआ कि जिन जवानो ने टासिल का शस्त्र कर्म कराया था, वे बन्दूक चलाने मे कमजोरी का अनुभव करते थे।

तुण्डिकेरी की अनुभूत चिकित्सा —

(१) यह केस अप्रैल १९७८ का है। उस समय मै अहमदाबाद मे अपना चिकित्सा व्यवसाय करता था। कान्तिलाल अपनी दस वर्षीय सुपुत्री सुमित्रा को लेकर चिकित्सा कराने आये थे। कान्तिलाल ने सुमित्रा के रोग का इतिहास बताना शुरू किया। वैद्य जी सुमित्रा के गले मे दर्द होता है। पानी पीने मे तकलीफ होती है। बोलने मे तकलीफ होती है। बुखार भी आता है और थोडी सर्दी भी है। मैने काफी डाक्टरी दवायें कराई हैं, परन्तु कोई फायदा नही हुआ। अब डाक्टर महोदय कहते है कि इसे टासिल हो गया हैं, इसका आपरेशन करना पड़ेगा।

सुमित्रा को पास की कुर्सी पर बैठाया तथा मुह खुलवाकर जीभ बाहर निकालने को कहा। देखा तो जिह्वा के पार्श्वीय भाग मे वन-कपास के फल जैसी दोनो लसिका ग्रन्थियो मे सूजन थी। उनका वर्ण रक्त रग का था। यह देखकर अष्टाग सग्रह का यह श्लोक याद आया—

हनुसन्ध्याश्रिय कण्ठे कार्पासीफल सन्निभ ।
पिच्छिलो मन्दरुक् शोफ कठिनस्तुण्डिकेरिका ॥

—अष्टाग हृदय

गले मे हनुसन्धि के आधार पर रहा हुआ वन-कपास के फल जैसा चिकना और मन्द वेदना वाली जो कठोर सूजन (शोथ) होती है, उसे तुण्डिकेरी कहते है।

हमारा रोग निदान था तुण्डिकेरी। मैंने कान्तिलाल को पथ्यापथ्य का विस्तारपूर्वक मार्गदर्शन दिया और सुमित्रा को हल्दी का चूर्ण ५ ग्राम शहद के साथ प्रात दोपहर शाम खाने को बताया। पानी को गरम करके उसमे थोटा नमक डालकर दिन मे ४-५ बार कुल्ला करने को कहा।

आठ दिन के बाद कान्तिलाल सुमित्रा को लेकर आये तो कान्तिलाल ने प्रसन्न चित्त से कहा, सुमित्रा अब बिल्कुल ठीक हो गई है। बोल सकती है, खाना खा सकती है। अब उसे गले की कोई तकलीफ नही है। पिता और पुत्री दोनो काफी प्रसन्न दिखाई देते थे। मैंने दो सप्ताह और हल्दी का प्रयोग करने को कहा। इसके बाद सुमित्रा कभी भी टासिल का कष्ट लेकर हमारे चिकित्सालय मे नही आई।

गरीबो के टासिल की चिकित्सा मैं हल्दी से ही करता हूँ। अब तक मैंने हल्दी द्वारा सैकडो रोगियो को अच्छा किया है। बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री अमृत वासुदेव शास्त्री अहमदाबाद से प्रकाशित अखण्ड आनन्द जुलाई १९६१ के अङ्क मे लिखते है कि मैंने हल्दी के प्रयोग से २००० टासिल के रोगियो को बिना शस्त्रकर्म के अच्छा किया है।

(२) यह केस मार्च १९७९ का है। हमारे मित्र निलेश जी एक दिन अचानक रास्ते मे मिले और कहने लगे—मुझे थोडी सी सर्दी हो गई है तथा खासी भी आती है। गले मे दर्द होता है, पानी पीने तथा बोलने मे तकलीफ होती है। अभी मैंने ई एन टी के निष्णात डाक्टर को दिखाया था। डाक्टर महोदय ने टासिल बताया है और शस्त्र कर्म कराने की सलाह दी है। मैं शस्त्र कर्म नही कराना चाहता। मैंने कहा कि यदि आप शस्त्र कर्म कराना नही चाहते तो आयुर्वेद की दवा करो। निलेश जी ने कहा—आप ही हमारी दवा करे तो अति उत्तम होगा। मैंने उत्तर दिया—दवा तो करू गा ही, परन्तु मै परहेज का पालन बहुत कडाई से कराता हूँ। निलेश जी ने कहा—आप मुझे शस्त्रक्रिया से बचा ले, आप जैसा कहेगे वैसा करू गा। दूसरे दिन निलेश जी घर पर पधारे। मुह खोलकर देखा तो तुण्डिकेरी थी। सबसे पहले तो पथ्यापथ्य का विस्तृत मार्गदर्शन दिया। मैंने दो दिन मात्र

गर्म पानी पीकर उपवास करने को कहा और निम्न औषधिया चिकित्सा हेतु दी गई —

१ सितोपलादि चूर्ण १ ग्राम, वालचातुर्भद्र चूर्ण, शुद्ध टकण, त्रिकटु चूर्ण प्रत्येक आधा-आधा ग्राम।

उपरोक्त औषधियां खरल मे घोटकर खरल मे ही मिश्रित कर ले। ऐसी एक-एक मात्रा प्रात दोपहर साय को शहद के साथ दे।

२ महालक्ष्मीविलास रस (नारदीय) २-२ गोली सुवह दोपहर साय पानी के साथ खाने को दे।

३ यष्टिमधुघन वटी ८ से १० गोली तक चुसावे।

४ शुद्ध टकण, शुद्ध सौराष्ट्री, यष्टिमधु चूर्ण तथा हल्दी का चूर्ण समान भाग लेकर पानी मे उवालकर छान ले ओर इससे दिन मे ४-५ वार कुरला करने को दे।

५ दशाग लेप तथा रसाजन को समान भाग लेकर उसमे थोडा सा घी तथा यथावश्यक पानी मिलाकर थोडा गरम करके गले के वाहरी भाग पर लगाने हेतु दे।

उपरोक्त चिकित्सा निलेश जी को एक सप्ताह की दी और एक सप्ताह वाद पुन. मिलने को कहा। एक सप्ताह वाद जव मिलने आये, तव वे कह रहे थे–मिश्रा जी अव हमारा स्वास्थ्य विल्कुल ठीक हो गया है। सर्दी-खासी भाग गई है, गले मे अव विल्कुल तकलीफ नही है।

मैंने पचासो रोगियो पर उपरोक्त चिकित्सा की हे, सभी रोगी ठीक हुए है। टासिल के रोगी को पथ्यापथ्य का मार्गदर्शन ठीक प्रकार से देना चाहिए। मात्र पथ्या-पथ्य से रोगी का आधा रोग स्वय मिट जाता हे। इसलिए अव आगे हम पथ्यापथ्य का विस्तृत मार्गदर्शन देंगे।

तुण्डिकेरी मे पथ्य—

गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, वाजरा, चना, अरहर, करेला, परवल, मूली, काद, भाटा, सहिजना, हल्दी, आर्द्रक, लहसुन, धनिया, जीरा, तिल का तैल, शहद, मट्ठा, काली द्राक्षा, अनार, मूग, आर्द्रक का अचार, हल्दी का अचार, गरम पानी, लघु भोजन यह सव टासिल के रोगी के लिए हितकारी आहार है।

प्रात उठना, दिन मे न सोना, गरम पानी का कुल्ला व दातुन करना, शरीर मेदस्वी हो तो कसरत करना चाहिए। दर्द के समय गले पर सेक करावे।

तुण्डिकेरी मे अपथ्य—

मधुर, अम्ल तथा लवण रस प्रधान आहार टासिल के रोगी के लिए अहितकर हैं। गुड, चीनी, ईख, घी, दूध, मक्खन, मैदा, केला, आम, चीकू, पिपरमेट, चाकलेट, कुल्फी, आइसक्रीम, दही, टमाटर, इमली, नीवू, वर्फ, फ्रिज तथा कूलर का पानी, ठडा पेय पदार्थ, श्रीखड, मासाहार, विस्कुट, मिठाई तथा अति गुरु आहार टासिल के रोगी के लिए अहितकर हे।

कफ और मन्दाग्नि उत्पन्न करे, ऐसे विहार से टासिल के रोगी भी दूर रहना चाहिए। दिवास्वप्न, अति स्नान, शीतल पानी से स्नान, ठडी हवा मे घूमना, पखा की हवा का सेवन, अधिक गाना, अधिक रोना, धूल एव धुआ का सेवन टासिल रोगिग्रो के लिए अहितकर है। ❖❖

❊ दन्तशूल : अनुभूत प्रयोग ❊

डा० कपूरचन्द जैन आयुर्वेद वृहस्पति, सुभाप चिकित्सालय, हीरापुर [सागर] म० प्र०

१ सोनगेरु १०० ग्राम, काली मिर्च २० ग्राम, लौंग का तैल २ ग्राम, अजवायन का सत् २ ग्राम, नागर मौथा २० ग्राम, त्रिफला २० ग्राम, माजूफल २० ग्राम। सवको कूट-छानकर सुवह शाम मजन करे। दात और मसूढो का कैसा भी दर्द हो तुरन्त वन्द हो जाता है।

२ त्रिफला त्रिकुटा तूतिया पाचो नोन पतग।
दात वज्र हो जात है माजूफल के सग॥

३ काली मिर्च का मजन किया करे। इससे दात साफ होते है तथा मसूढे पुष्ट होते है।

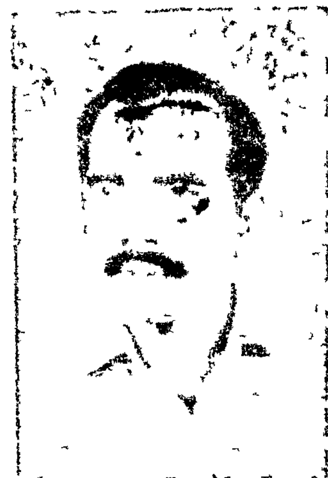
४ वादाम छिलका, अखरोट छिलका, इलायची का छिलका ५०-५० ग्राम, कपूर १० ग्राम। सभी को कूट छानकर मजन करे, वदवू कभी भी पास नही आ सकती। दात साफ रहेगे, मुह का जायका ठीक रहेगा। दातो मे किसी प्रकार का दर्द नही होगा।

५ सोनागेरू १५० ग्राम, काली मिर्च १० ग्राम, इलायची १० ग्राम, कपूर १० ग्राम, शुद्ध तूतिया ५ ग्राम, समस्त द्रव्यो को कूट छानकर मजन वनावे। इससे दात साफ करने से मुह की वदवू नष्ट होती है। ❖❖

❊ आंत्रप्रणालीगत शूल रोग ❊

वैद्य दिलीप कनकराय दल एम डी (आयु०)
कन्सल्टिंग रूम एण्ड गैस्ट्रो एण्ट्रोलोजी सेन्टर, दीवानपरा रोड, राजकोट (गुजरात)





राजकोट (गुजरात) के उत्साही युवा वैद्य श्री दिलीप भाई दल आयुर्वेद के परम ज्ञाता हैं। आप सशोधनात्मक चिकित्सा करते हैं। अपने क्षेत्र मे उदर के विविध रोगों के आप निष्णात हैं। आपके पिता जी वैद्य श्री कनक भाई दल सौराष्ट्र के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य हैं। अत आप आयुर्वेद परिवार के सदस्य होकर आयुर्वेद की अपनी परम्परा निभा रहे हैं। यहा आपने आत्र प्रणाली गत-परिणाम शूल तथा अन्नद्रव शूल पर संक्षिप्त मे सुन्दर-सशोधनात्मक विवेचन दिया है जो उपयोगी होगा। 'धन्वन्तरि पुरुष रोग चिकित्साक' मे भी आपने इच्छित सन्तान पर लेख दिया था, जो उपयोगी एव मार्गदर्शक रहा है। मै आशा करू गा कि भविष्य मे भी आप विशेष सशोधन कर 'धन्वन्तरि' द्वारा वैद्य समाज को मार्गदर्शक बनेंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलावियां भारद्वाज

आत्रप्रणाली अर्थात् प्राणीमात्र मुह से जो अन्न-पानी सेवन करता है उस अन्न जल को शरीर अन्दर पचाना, उसमे से सार-किट्ट का विभाजन करना, शरीर को पुष्ट करना आदि कार्य करने वाले अवयव जिस प्रणाली मे है उसे आत्रप्रणाली कहते है। शरीर मे यह काफी लम्बी और महत्वपूर्ण है।

'शूल' अर्थात् वेदना। कुछ समय के लिए वेदना होकर शात हो जाय तो उसे केवल 'वेदना' ही समझना चाहिए लेकिन वेदना शात न हो और अन्य उपद्रव भी होने लगे तो समझना कि यह शूल है।

यहा आत्रप्रणालीगत शूल रोग मे से अन्नद्रव शूल तथा परिणाम शूल के बारे मे वर्णन किया जा रहा है।

मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम यह चार प्रकार की जठराग्नि के कारण आत्रप्रणालीगत शूल रोग की उत्पत्ति होती है। कुछ लोग अन्नद्रव शूल को एक मानते हैं। लेकिन यह दोनो अलग हैं ऐसा मेरी ५ साल की प्रेक्टिस के बाद पाये हुए अनुभव के आधार पर निश्चितता से करता हूँ।

अन्नद्रव शूल	परिणाम शूल
(१) पित्त प्रधान वात दोष	(१) त्रिदोषज
(२) भोजन के साथ कोई सम्बन्ध नही है।	(२) भोजन पच जाने के बाद।
(३) अम्लता का क्षय	(३) अम्लता की वृद्धि
(४) लक्षण—आध्मान, बेचैनी, दाह, तृषा, वमन, हृल्लास, शिर शूल, नेत्र दाह, उदर गौरव	(४) लक्षण—आध्मान, बेचैनी, दाह, तृषा, वमन, हृल्लास, शिर शूल, नेत्रदाह, उदर गौरव
(५) रक्तचाप की अल्पता।	(५) रक्तचाप की वृद्धि।

हम देख सकते है कि दोनो मे समान लक्षण है अत रोगी जव चिकित्सक के पास जाकर यह लक्षण वताता है तव चिकित्सक के लिये निश्चित निदान करना मुश्किल होता है। शायद इसे ही दोनो को एक साथ माना गया होगा।

कुशल चिकित्सक सूक्ष्मता से देखे तो प्रधान विभेदक निदान समझ मे आता है कि अन्नद्रव शूल भोजन लेने के वाद २-३ घण्टे मे शुरु होता है फिर भी उसका भोजन के साथ कोई सम्वन्ध नही है और पथ्य अपथ्य से भी शूल का सम्वन्ध नही होता। लेकिन रोगी को जव वमन होता है तव शूल का शमन होता है। जवकि परिणाम शूल मे भोजन पूर्णतया पच जाता है तव शूल उत्पन्न होता है। भोजन करने से शूल का शमन हो जाता है।

जव रोगी चिकित्सक को अच्छी तरह अपने रोग के वारे मे वता न सके या चिकित्सक को निश्चित निदान करने मे कठिनाई महसूस हो ऐसी परिस्थिति मे आर्द्रक स्वरस का प्रयोग फलदायक होता है।

आर्द्रक स्वरस ३ वार केवल एक ही दिन ५ मि लि. की मात्रा मे देना। दूसरे दिन इस प्रयोग से रोगी को लाभ हो या कोई फर्क न देखने को मिले तो अन्नद्रव शूल समझना। अगर अद्रक स्वरस से रोग के लक्षण मे वृद्धि हो तो उसे परिणाम शूल समझना चाहिये।

चिकित्सा—

अन्नद्रव शूल—

लघन एव वमन चिकित्सा से लाभ होता है। अन्नद्रव शूल के लक्षण देखकर कुछ चिकित्सक अम्लपित्त की चिकित्सा करते हैं। जव तक यह चिकित्सा रोगी करता है तव तक अन्नद्रव शूल मे आराम पाया जाता है लेकिन उसका मूल कारण दूर नही होता अत चिकित्सा प्रयोग वन्द कर देने से फिर अन्नद्रव शूल के लक्षण का उद्भव होता है।

अन्नद्रव शूल मे अम्लता (पाचक रस) का क्षय होता है और जठराग्नि मन्द होती है, अत इसकी चिकित्सा मे पाचक रस की वृद्धि करने वाली औषधि का प्रयोग लाभदायक होता है जवकि अम्लपित्त मे पित्त का शमन करने वाली औषधि का प्रयोग किया जाता है। इसलिए अम्लपित्त की चिकित्सा से अन्नद्रवशूल मे कोई लाभ नही होता।

अन्नद्रव शूल मे दीपन पाचन औषधि का प्रयोग करना चाहिए। जैसे कि—

१ हिंग्वाष्टक चूर्ण—घृत के साथ मिलाकर आहार के प्रथम ग्रास के साथ लेना चाहिए।

२ अविपत्तिकर चूर्ण २ ग्राम, सर्जिका क्षार ५०० मि ग्रा, शङ्ख भस्म ५०० मि ग्रा मिलाकर नीवू स्वरस के साथ ३ वार।

३ शङ्खवटी या चित्रकादि वटी २-२ गोली ३ वार।

४ कुमारी आसव २० मि लि ३ वार जल के साथ।

परिणाम शूल—

परिणाम शूल मे शूल की उत्पत्ति होने पर तुरन्त भोजन करने से आराम मिलता है।

परिणाम शूल की चिकित्सा अम्लपित्त की चिकित्सा के समान करनी चाहिए। क्योंकि परिणाम शूल अम्लपित्त जन्य होता है जिसमे रक्तगत अम्लता की वृद्धि होती है।

परिणाम शूल मे पित्तघ्न औषधि का प्रयोग करना चाहिए। जैसेकि—

१ शतावरी क्षीर पाक—सुवह शाम दो वार।

२ आमलकी रसायन १५ ग्राम अविपत्तिकर १५ ग्रा, सर्जिकाक्षार ५०० मि ग्रा, प्रवालपिष्टी २५० मि ग्रा. मिलाकर ३ वार दूध के साथ।

३. शङ्ख वटी २-२ गोली ३ वार।

पथ्यापथ्य—

अन्नद्रवशूल—

अपथ्य—दही, छाछ की वनावट, केला, कदमूल, शिम्बी धान्य, भिंडी आदि। पिष्ट, धान्य, चिंता, भय, क्रोध। भोजन के वाद २-३ घण्टे तक चिंता, भय, क्रोध शोक पर कावू रखना। वारवार भोजन, अधिक भोजन, अजीर्ण मे भोजन।

पथ्य—आर्द्रक या आद्रक स्वरस नीवू के रस के साथ। लशुन, नीवू पानक, उष्ण जल, उपवास लङ्घन।

परिणामशूल—

अपथ्य—विरुद्ध अन्नपान, विषमाशन, रूक्ष, तिक्त, कषाय, लवण, मद्य, शिम्वीधान्य, क्रोध, चिंता आदि। उष्ण द्रव्य, अति शीतल द्रव्य।

पथ्य—दुग्ध की वनावट, स्निग्ध, मधुर, गुरु भोजन, दुग्ध श्रेष्ठ पथ्य है।

उदर-कृमिजन्य शूल

डा० डाह्या भाई के० पटेल डी एस्-सी ए, एल पी ए मी (बम्बई)
'पुष्कर' १५-बी, पचवटी सोसायटी, हाउसिंग बोर्ड वसाहत के नजदीक
कालावड रोड, राजकोट (गुजरात)



गुजरात-सौराष्ट्र मे राजकोट नगर की उत्तम प्रतिष्ठा नगर के विभिन्न विद्वानो मे है। राजकोट मे उच्च कोटि के आयुर्वेदज्ञ थे, वर्तमान मे भी प्रतिभासम्पन्न आयुर्वेद विद्वान मौजूद हैं उनमे डा० श्री डाह्या भाई पटेल निष्णात आयुर्वेदज्ञ है। आप सौराष्ट्र के रत्न समान हैं। आपने संस्कृत कोविद, संस्कृत मध्यमा अंग्रेजी के साथ उत्तीर्ण कर डा० पोपट युनि० आफ आयुर्वेद बम्बई द्वारा एल पी ए सी उपाधि प्राप्त की है। नि० भा० आयु० विद्या० द्वारा आयुर्वेदाचार्य एवं आयु० रत्न (हि० सा० म०) आयु० बृह० (झांसी) से सम्मानित है। वर्तमान मे आप राजकोट वैद्य सभा के अध्यक्ष है तथा श्रीकृष्ण आरोग्य भवन डिस्पेन्सरी के प्रधान चिकित्सक है। आप भूतकाल मे गुज० स्टेट आयुर्वेद नर्सिंग काउन्सिल के उपाध्यक्ष तथा धन्वन्तरि आयुर्वेद संस्कृत पाठशाला के भूतपूर्व प्रधानाचार्य है। वर्तमान मे बान लेब्स, बान फार्मा के मेनेजिंग डायरेक्टर तथा अधीन फार्मा के सलाहकार है। यहा कृमिरोग पर वैज्ञानिक आयु० विवेचन देकर उपकृत किया है। आपसे धन्वन्तरि को अनेको अपेक्षायें है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

चिकित्सा जगत मे आभ्यन्तरिक कृमिरोग एक जटिल समस्या है। रोग का निदान टीक ढग से नही होता या गलत होता हे तो चिकित्सा फलप्रद नही होती। यदि समय पर निदान व चिकित्सा नही होती तो कृमिरोग जन्म से मृत्यु पर्यन्त कष्टदायक बनता रहता है। आत मे रहने वाले कृमि कभी-कभी एक समूह मे ग्रंथि स्वरूप बन जाते है तो शस्त्र क्रिया करके निकाला जाता है। जीर्ण दमारोग व कुष्ठ रोगो का कारण कृमिरोग बन सकता है, कृमिरोगो के कारण अनेको उपद्रव मिलते है। उसके कारण शूल, शिरोरोग, हृदय रोग, वमन, प्रतिश्याय उपस्थित होता हे और हृल्लास, मुखस्राव, अरुचि, अविपाक, ज्वर, मूर्च्छा, जृम्भा, छीक, आनाह, अङ्गमर्द, कार्श्य और परुपता उत्पन्न होती है।

हेतु एवं सम्प्राप्ति—

अजीर्ण होने पर भोजन करना, अध्यशन, असात्म्य भोजन, विरुद्ध भोजन और दोषकारक अन्न का भोजन, अति गुरुपाकी, अतिस्निग्ध और अति शीतल द्रव्य का भोजन, उडद मटर, पिष्ठान्न, अनेक प्रकार की दाल, मसीडा, कमलकन्द, कशेरु, पत्रशाक, सुरा, सिरका, दधि, दुग्ध, गुड, गन्ना, तिलकल्क, आनूप मास, चूडा आदि द्रव्यो का भोजन और स्वादु तथा अम्लद्रव्य पदार्थो का पीना, श्रम शून्यता और दिवा निद्रा प्रभृति कारणो से श्लेष्म और पित्त प्रकुपित होकर आमाशय और पक्वाशय मे अनेक प्रकार के कृमि उत्पन्न करते है। विरुद्ध भोजन या अजीर्ण होने पर भोजन करने पर और रक्त को दूपित करने वाले आहारो से रक्तज कृमियो की उत्पत्ति होती है। क्षीर, गुड, तिल, मत्स्य, मास आनूप देशज मास, पिष्टान्न, हविस्यान्न, कुसुम का तेल, अजीर्ण होने पर भोजन, दुर्गन्धित, पर्युपित, सडा हुआ पथ्यापथ्य, मिश्रित भोजन, विरुद्ध भोजन और असात्म्य भोजन करने से ऊपर नीचे की ओर अथवा दोनो तरफ फैलने वाले कफजन्य कृमि आमाशय मे उत्पन्न होते है।

आभ्यन्तर कृमि प्रकार—

बाह्य-आभ्यन्तरीय २० प्रकार के कृमियो की ३ प्रकार से उत्पत्ति होती हे।

१ पुरीषजन्यक्रमि, २. कफजन्यक्रमि, ३ रक्तजन्यक्रमि ।

१ पुरीषजन्यक्रमि —

भेद–१ ककेरुक, २ मकेरुक, ३ लेलिह (सर्पाकार) ४ सशूलाख्य (Entamoeba Histolytica) ५ सौसुराद और नया उलकमुख Giardia Lamblia ।

पुरीषज क्रमियो का आकार, सूक्ष्म गोलाकार, परिणाहयुक्त, श्वेतवर्णयुक्त लम्बे ऊन के तुल्य, स्थूल गोलाकार, कृष्ण, नील, हरित और पीले रग वाले होते है ।

हेतु–उडद, मटर, पिट्ठी की बनाई हुई वस्तुये, लवण, गुड और शाक, मास, दूध, सिरका आदि सेवन करने से पुरीषजन्य क्रमि उत्पन्न होते है ।

लक्षण—

पुरीषजन्य क्रमि रोग उत्पन्न हो जाने पर शूल, अग्निमान्द्य, पाण्डुवर्णता, कृशता, पुरीष भेद, परुषता और रोमाञ्च होता है और वे क्रमि गुदा मे पहुँच कर सुई चुभाने के तुल्य वेदना उत्पन्न करके कण्डू उत्पन्न करते है और गुद के मुख पर पहुँच कर गुद से बाहर बार-२ निकलते है । मुख से जल का स्राव होता है, अरुचि और कभी हृदय रोग भी हो सकता है । आत्र मे रहने वाले वैकारिक एक कोशिकी जीवाणु 'अमीबा' (amoeba) अदृश्य क्रमियो मे अनेक रोगो का खास कारण बनता है ।

चिकित्सा —

नागरमोथा, मूसाकानी, त्रिफला, देवदारु और सहजने के क्वाथ मे पीपल और वायविडङ्ग का कल्क मिला कर पीने से ककेरुक, मकेरुक, लेलिह और सौसुराद नष्ट होता है ।

वायविडङ्ग, सेंधा नमक, हीग, हरड, सफेद निशोथ, सचरनमक और पीपर इन सबका चूर्ण ३ ग्राम मात्रा मे गुनगुने जल के साथ लेने से पुरीषज क्रमि नष्ट होता है ।

लोह भस्म, ताम्र भस्म, शङ्ख भस्म, नाग भस्म समभाग मिश्रण करके विडग के क्वाथ की ७ भावना देकर त्रिफला के क्वाथ की ७ भावना दे । १ रत्ती मधु के साथ प्रात साय सेवन करने से सशूलाख्य क्रमि (Entamoeba Histolytica) और अन्य पुरीष तथा कफजन्य क्रमि नष्ट होते ह ।

उलूकमुख क्रमि (Giardia Lamblia)—

अरुचि, अफारा, उदरशूल, हृल्लास, प्रवाहिका, मरोड आना और अकस्मात पतला तथा दुर्गन्धयुक्त होता है । यह क्रमिरोग केवल आयुर्वेद चिकित्सा से दूर होता है और स्थाई लाभ मिलता है । इन्द्रजव, कुडाछालघन, कमीला, ईसबगोल बीज, शिरीष बीज, विडङ्ग समभाग चूर्ण ३ ग्राम मात्रा मे प्रात , साय जल के साथ लेने से उलूकमुख क्रमि नष्ट होते है । आधुनिक चिकित्सा मे मेट्रोनिडाझोल, टिनडाझोल डिलोक्सानाइड फ्यूरोऐट, डायोडोहाईड्रोक्सीक्वीनोलीन, फ्युरोझोलीडीन आदि औषधिया चिकित्सक द्वारा ही दी जाती है । इससे उलूक मुख क्रमि नष्ट होता है ।

२ कफजक्रमि —

भेद—१ अन्त्राद, २ उदरावेष्ट, ३-हृदयाद, ४ महागुद, ५ चुरवे, ६ दर्भकुसुम तथा ७. सुगन्ध । कफजक्रमि आमाशय मे रहते है । वहा से बढकर ऊपर या नीचे की ओर अथवा दोनो तरफ फैल जाते है । इस क्रमि का आकार चपटा, किसी-किसी का चर्म की रस्सी के समान होते है । कोई-कोई केचूवा के आकार के गोल तथा परिणाहयुक्त, श्वेत वर्ण वा ताम्र के समान रक्तवर्ण के होते है । कोई छोटा, कोई लम्बा, कोई तन्तवाकृति वाले और कोई अकुर की आकृति तुल्य होते है ।

हेतु—क्षीर, गुड, तिल, मत्स्य, मास, आनूपदेशज मास, पिष्टान्न, हविष्यान्न, कुसुम का तेल, अजीर्ण होने पर भोजन, दुर्गन्धित, पर्युषित, सडा हुआ पथ्यापथ्य मिश्रित भोजन, विरुद्ध भोजन और असात्म्य भोजन करने से कफज क्रमि उत्पन्न होते है ।

लक्षण और चिकित्सा—

१ अन्त्राद-अकुशमुखक्रमि—

रोग लक्षण–अन्त्राद क्रमि—अतिसार, श्वास, शोथ, पाडु, शूल, दौर्बल्य, यकृत की वृद्धि और हृदय का विस्तार करता है । अग्निमाद्य, क्षुधा का अभाव, रक्ताल्पता और अन्त मे मृत्यु हो जाती है ।

चिकित्सा–वमन-विरेचन से शरीर की शुद्धि कर के औषधियो का सेवन करे । अजवायन का सत्व (Thymol) २५० मि ग्रा गर्म जल से लेना चाहिए, अन्त्राद क्रमि की महौषधि है । मुसब्बर (Aloes) १ भाग, वायविडङ्ग २ भाग, पलास के बीज २ भाग, कबीला १ भाग, हीग भुनी हुई १/४ भाग सबको जल से घोटकर

२५० मि ग्रा की गोली बनावे। प्रात साय १ गोली गर्म जल से लिया जाय, अन्त्राद कृमि के लिये अनुभूत है। भोजन के वाद १ औंस विडङ्गारिष्ट पीने से लाभ होता है।

२ उदरावेष्ट-कद्दूदाना कृमि (Tap worm)—

भेद से—१. शूकरपट्टिकाकृमि (Taenia Solium)

२ गोपट्टिका कृमि (Taenia Skinata)

३ मत्स्य पट्टिका कृमि (Taenia Lata)

४ पट्ट कृमि (Taenia Echinococus)

५ वामनस्फीतकृमि–(Hymenolepus Nana)

शूकरपट्टिका, गोपट्टिका, मत्स्यपट्टिका, और पट्टिकृमि रोग का ज्ञान परीक्षण से होता है। रोग लक्षणो मे अन्त्रक्षोभ, रक्तालपता, रक्तक्षय अन्त्रगतविकृतिया, उदर पीडा, पुरीपवन्ध या पुरीपभेद, क्षुधामाद्य या क्षुधाधिक्य, मुखस्राव, नासा और गुदा के पास कण्डू, वमन वालको के शरीर का वजन वढना, शिर शूल, आक्षेप, युवा पुरुषो की मानसिक दौर्वल्यता प्रभृति लक्षण होते है। कभी-२ अतिसार भी होता है।

चिकित्सा—

उपरोक्त उदरावेष्ट कृमि की चिकित्सा के पूर्व रोगी की आवश्यक तैयारी ठीक से करनी चाहिए, रोगी को पाखाना अलग वर्तन मे कराना चाहिए जिसमे आधा जल भरा हो ताकि कृमि की पहचान आसानी से की जा सके। खुरासानी अजवायन, नागरमोथा, पीपल, काकडासिगी, वायविडङ्ग, अतीस का समभाग चूर्ण वनाकर २ ग्राम माना मे मुस्तादि क्वाथ प्रात साय दिया जाय। इससे कफज कृमि नष्ट होते है। वायविडङ्ग चूर्ण, अजवायन चूर्ण, इन्द्र जौ, पलाश वीज चूर्ण, कम्पिल्लक चूर्ण समभाग मिश्रण करके ३ ग्राम मात्रा मे प्रात साय विडगारिष्ट के साथ लेने से कफजकृमि नष्ट होते है। कद्दू के वीज की गिरी और कवीला समभाग चूर्ण वनाकर ७५० मि ग्रा मात्रा मे विडगारिष्ट के साथ दो समय पीने से उदरावेष्ट कृमि नष्ट होता हे। औपधि सेवन करने के वाद रोगी को विश्राम करना आवश्यक है। चिकित्सा से पूर्व और वाद मे विरेचन देने से लाभ होता है। वामन-स्फीतकृमि चूहे से स्वस्थ मनुष्य पर सक्रमण करता है और कभी कभी उदर मे विह्वलता, प्रवाहिका और अपस्मार के तुल्य आक्षेप, तिर्यक्दृष्टिप्रभृति लक्षण उत्पन्न होता है, इसके अधिकतर कोई लक्षण उत्पन्न नही होते है। वामन स्फीत कृमि मे कफजकृमि की चिकित्सा से लाभ मिलता है।

३ हृदयाद कृमि के सबध मे स्पष्टचित्र नहीं मिलत परन्तु लक्षण और चिकित्सा कफजकृमि में बतायी है वही समझनी चाहिए।

४ महागुदकृमि (Round worm)—

भेद से–१. गडुपद कृमि (Ascaris Lumbricoid)

२ प्रतोदकृमि (Whip Worm)

गडुपद–यह कृमि केचुवा के समान होता है, इसके अण्डे पीने के जल के साथ-साथ खाद्य पदार्थो के साथ मनुष्य की अतडियो मे पहुच जाते है वहा वडा होकर कभी सौ-सौ की सख्या मे मल और मुख द्वारा वाहर निकल जाते है और यकृत से फुफ्फुस मे जाकर वृद्धि प्राप्त करके श्वास प्रणाली द्वारा गले मे होकर फिर अन्त्रमार्ग मे पहुँच कर यकृत, पित्तकोप मे अथवा अन्त्र मे क्षत होने से उस क्षत-पथ से उदयकिला (Peritoneum) मे पहुच जाते हैं। ऐसा रूप होने पर सब स्थानो मे स्फोट और सूजन हो जाती है। मन्द ज्वर, नासाकण्डू, दन्तघर्षण, कामला, अतिसार, प्रवाहिका, आत्रशूल, नाभि प्रदेशशूल, वमनेच्छा, मुख मे दुर्गन्धि, क्षुधामाद्य और सामान्य आध्मान होता है।

चिकित्सा—अनार की जड की छाल के क्वाथ मे तिल का तेल मिलाकर पीने से कृमि मर जाते हैं। खदिर, इन्द्रजव, नीम की छाल, मीठीवच, सौंठ, मिर्च, पीपल, आवला, हरड, वहेडा, निशोथ। इन औपधियो को समान भाग मे लेकर गौमूत्र मे क्वाथ वनावे, १ सप्ताह तक सेवन करने से कृमि नष्ट हो जाते है।

प्रतोद कृमि—

इनका सक्रमण अन्तडियो मे होकर कृमि उत्पन्न होता है और चावुक की भाति दिखाई देता है। ये लवाई मे दीर्घ होकर मल के साथ वाहर निकलते है। अण्डे भी मल के साथ निकलते है, ये अण्डे फिर आहार्य और पेय पदार्थो के साथ मुख के द्वारा महास्रोत मे प्रविष्ट होकर उण्डुक मे आने पर आवरण से युक्त हो वहा की श्लेष्मिक त्वचा मे चिपट जाते है। प्रतोदकृमि रोग मे कोई प्रधान लक्षण उत्पन्न नही होता है। किन्तु कभी-२ प्रत्याक्षेपजन्य

लक्षण शीतपित्त प्रभृति पैदा हो जाते है।

चिकित्सा—इस रोग को मूलरहित करना कठिन है। प्रथम नमक के पानी की वस्ति (Enema) देकर आन्त्र शुद्धि करनी चाहिये, खाली पेट जगली अञ्जीर ५० ग्रा मिलाकर २-४ घटे वाद खारी लोन नमक (Sodae Sulphas) २ औस पिलावे, इस प्रयोग से प्रतोद कृमि निकल जाते है। सैंटोनीन (Santonin) ३ ५ ग्रेन और चेनोपीडियम तेल (Oil Chenopodium) १ सी सी का मिश्रण कैपसूल मे भरकर प्रात समय देने से गडूपद और प्रतोद कृमि मे अधिक लाभदायक है।

५ चुरवे (चुन्ने) कृमि (Thread Worm)—

ये चुरव कृमि—मूतकृमि (Pin Worm) छोटे छोटे धागो के समान होते हैं। इनका दूसरा पर्यायवाची नाम Oxyuris Vermicularis है। मल द्वारा इसके अण्डे वाहर निकलते है और फिर पयादि पदार्थों के द्वारा मनुष्य के शरीर मे पहुँच जाते है। यह कृमि पहले क्षुद्रान्त्र मे वढता है और मलाशय से वाहर निकलते हैं। ये निकलते समय कण्डू उत्पन्न करते है, कण्डू इतनी तीव्र होती है कि रोगी खुजलाते-२ गुदा को छील डालता है।

चिकित्सा—रोगी को अलग शैया पर लिटाना चाहिए, नख कटवा देने चाहिए। स्वच्छता पर विशेष ध्यान रखे। प्रथम कोष्ठ की शुद्धि करें फिर चिकित्सा करे। वायविडङ्ग चूर्ण १ भाग, निम्व का वीज १ भाग, इन्द्रायन २ भाग, सेंधानमक और हीग का फूला १/४-१/४ भाग मिश्रण करले। २ से ३ ग्राम मात्रा मे उष्णोदक जल से देने से चुन्नेकृमि नष्ट होते हे। गुदा कण्डू के लिये कण्डुघ्न मरहम लगावे।

सूतकृमि के अन्य भेद है—

रुढधान्याकुराकार कृमि—१ (Bilharzia Haematobia)

२ तनुसूत्राकारकृमि—(Filaria Bancrofti),

३. गोलपरजीवी श्लीपदकृमि—(Filaria Medinensis),

रुढधान्याकुराकारकृमि मे उदरशूल, अतिसार, ज्वर, पाडु, कास यकृत-प्लीहा, वृक्क शोथ, और रक्तमेहादि लक्षण होते है। तनु सूत्राकार और श्लीपदकृमि मे विपमेह, पिष्टमेह और श्लीपद आदि लक्षण होते है। चिकित्सा मे सहदेवी, अपामार्ग, सोमल द्रव्यो का अच्छा प्रभाव पडता है। श्लीपद गजकेशरी, समीरपन्नग, नित्यानन्द रस, माणिक्य और हरताल भस्म का उपयोग फायदेमन्द है। डायइथिल कार्वामिझाइन (Diethyl carbamazine) का उपयोग खास उपयोगी है।

६. दर्भकुसुमकृमि तथा—

७. सुगन्ध कृमि—

यह कृमि सूत्रवत पतले होते है। उदरशूल, शोथ, ज्वर, दाह, स्नायुवेदना, अतिसार, खिचाव, श्वेतकणवृद्धि और रक्तस्राव आदि लक्षण होते हैं। चिकित्सा चुरव कृमि के अनुसार करना चाहिए।

रक्तजकृमि (Vascular Worms)—

नाम भेद से ये ७ प्रकार का है—१ केशाद, २. लोमाद ये दो असाध्य वताये हे। ३ लोमद्विप, ४ सौरस, ५ औदुम्वर, ६ जन्तुमार रक्तकृमियो के नाम हैं। विरुद्ध भोजन या अजीर्ण होने पर भोजन करने और रक्त को दूषित करने वाले आहारो से रक्तजकृमियो की उत्पत्ति होती है। इनका स्थान रक्तवाहिनी शिराओ मे होता है, आकार सूक्ष्म, वृत्ताकार, पाददीन और ताम्रवर्ण के तुल्य होता है, रक्त मे कृमियो की उत्पत्ति होजाने पर रक्ताश्रित सम्पूर्ण रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शिरके वाल, श्मश्रु, नख, लोम, पक्ष्म आदि विध्वसक और व्रण मे झनझनाहट, कण्डू, सूचीवेध के तुल्य वेदना और जव अधिक वढ जाता है तव त्वचा, मास, सिरा, स्नायु और तरुणास्थियो का भक्षण करता है। रक्तज कृमियो की चिकित्सा कुष्ठ रोग के तुल्य की जाती है।

आभ्यन्तर कृमिरोग सामान्य चिकित्सा—

वे द्रव्य जो उदरगत क्रिमि को नष्ट कर देते है अथवा वाहर निकाल देते है उन्हे क्रिमिघ्न कहा जाता है। इसके तीन प्रधान भेद है—१ कृमिघ्न, २ कृमिप्रशमन ३ क्रिमिविकारघ्न।

कृमिघ्न आयुर्वेदीय पेटेण्ट औषधि 'क्लियर-कैपसूल' (वासु फार्मास्युटिकल्स वाजवा (वडौदा)—प्रति कैपसूल ४५० मि ग्रा है। निम्न प्रकार समिश्रण समाविष्ट है। कृमिघ्न चूर्ण १५७-५०, कृमिशत्रु चूर्ण १५७-५०, खुरासानी अजवायन २२-५०, कालीजीरी २२-५०, काकडासिंगी २२-५०, कलव २२-५०, हिंगुपत्र १८, रससिंदूर ९,

कृमिमुदगर रस, ९, कृमिकुठार रस ९ । १ कैपसूल प्रात साय चिकित्सक के निर्देशानुसार लेने से आत के कीडे निकाल कर सभी प्रकार के उदर कृमि को नष्ट करता है । उ न प्रभावी और अनुभूत औषधि है ।

कृमिनाशक शास्त्रीय योग —

१ कृमिमहाकषाय (चरक) २ कृमिशत्र्वादि क्वाथ (वृ नि रत्नाकर), ३ खदिरादि क्वाथ (वृ नि रत्नाकर), ४ अतिविषादि चूर्ण (योगरत्नाकर), ५ कृमिघ्न चूर्ण (रसायनसार), ६ कृमिघातिनी गुटिका (रसराजसुन्दर), ७ अग्नितुण्डी रस (रसरत्नसमुच्चय), ८ कीट मर्दरस । (र र स), ९ कृमिकालकूट रस (रसायन सार), १० कृमिकालानलो रस (रसराज), ११ कृमिकालोनलोरस (रसेन्द्रसार सग्रह), १२ कृमिकुठार रस (योगरत्नाकर),१३ कृमिकुठार रस,१४ आखुकर्यादियोग, १५ मुस्तादि क्वाथ, १६ विडगादि चूर्ण, १७ दाडिमक्वाथ, १८ भल्लातकादि चूर्ण, १९ रस रत्नसमुच्चय—कृमिघ्न रस, २० जन्तुघ्नीगुटिका (रसराज सुन्दर) २१ कृमिदावानलोरस, २२ कृमिधूलि जलप्लवो रस, २३ कृमिमुद्गर रस, २४ कृमि रोगारि रस, २५ कृमिविनाशनो रस, २६ विडङ्गलोह, २७ गजेन्द्रसार सग्रह—कृमिहरी रस, २८ कृमि विनाश रस, २९ कम्पिल्लकाद्यो योग—गदनिग्रह, ३० कदली कन्द योग, ३१ मुस्तादि क्वाथ, ३२ विष्णुप्रयादि क्वाथ, ३३ मुस्ताद्य चूर्ण, ३४ विडङ्गादियोग, ३५ निर्गुड्यादि क्वाथ, ३६ कन्जादि क्वाथ, ३७ भूनिम्बादि क्वाथ, ३८ पारसीक यमानी योग, ३९ भल्लातकादि योग, ४० विम्वीघृत, ४१ पुष्पक योग, ४२ छोहराद्य चूर्ण, ४३ त्रिफलाद्यघृत रसप्रकाश सुधाकर, ४४ कृम्यकुशोरस, ४५ मातुलुङ्गादि कल्क (हारीत सहिता), ४६ वचादि चूर्ण, ४७ वगसेन—विडङ्गादि चूर्ण, ४८ त्रिववादि क्वाथ (वैद्य जीवन) ४९ त्रिफलादि क्वाथ (शार्ङ्गधर सहिता), ५० तालमूलादि लेप योग (वैद्य मित्र) सुश्रुत के औषधिगणो जो कृमिघ्न है अर्कादिगण, सुरसादिगण, लाक्षादिगण ।

आधुनिक चिकित्सा —

१ पिपराझाइन फॉस्फेट व साइट्रेट २ लेवामिसोल (Levamisole) ३ टेटरामिसोल, ४ मेवेण्डाझोल, ५ आलवेण्डझोल, ६ पाइरेण्टल पामोएट ।

उदरशूल नाशक पेटेन्ट औषधि—प्लुगिट कैपशूल (Plugit Capsule) ५०० मि ग्रा कैपसूल मे घटक द्रव्य इस प्रकार है—महारास्नादि क्वाथघन १००, पथ्यादिघन १००, शूलगजकेशरी रस-७५, शूलवज्रिणी रस-७५, शृङ्ग भस्म ७५, अभ्रक भस्म-१५, रससिदूर-१५, शङ्ख भस्म-१५, गोदन्ती भस्म-१५ । उदर पीडाहर-दर्द निवारक अनुभूत औषधि है। निर्माता—वासु फार्मास्युटिकल्स वाजवा (वडौदा) । चिकित्सक के निर्देशानुसार देवे ।

कृमि चिकित्सा मे अपकर्षण—सबसे प्रथम सब कृमियो को शरीर से वाहर निकालने की क्रिया करनी चाहिए । इसके वाद कृमि नष्ट होने का उपाय करना चाहिए। इसके अनन्तर जिन कारणो से कृमियो की उत्पत्ति हुई हो उनका सर्वथा त्याग करना चाहिए । अपकर्षण यन्त्र की सहायता से अथवा हाथ से ग्रहण करके शरीर से पृथक करे । आमाशय, पक्वाशय और मलाशय मे व्याप्त कृमियो का अपकर्षण औषधि से करना चाहिए ।

पथ्य धूम्रपान, कफनाशक पदार्थ, शरीर को शुद्ध करने वाले द्रव्य, पुराने लाल चावल, परवल, लशुन, बथुआ, सरसो, कटेली फल, कडवी चीजे, निम्बपत्र, तिल या सरसो का तेल, सौवीर काजी, दही का तोड, शहद, गोमूत्र पान, ऊट का मूत्र, घी और दूध, हीग, जम्वीरी नीबू का रस, कडवे, कसैले और चरपरे ये तीन रस, करेला, गूलर, वकरी का दूध, सावूदाना, अरारोट और लघु पथ्य द्रव्य सव कृमि रोग मे पथ्य है ।

अपथ्य—पिठ्ठी के वने भारी पदार्थ, मीठे पदार्थ, गुड आदि उडद, दही, ज्यादा घी, अधिक पतले पदार्थ, मास, दिन मे सोना, मल-मूत्र का वेग रोकना, वमन करना, विरुद्ध अन्नपान, अजीर्ण मे भोजन करना, अधिक जल पीना, पत्तो के साग, खटाई और मीठे रस ये सव कृमि रोग मे अपथ्य है।

कृमिजन्य उदर शूल

डा० वी० एन० गिरि ए एम बी एस, शिशु रोग विशेषज्ञ,
इन्द्रपरी आयुर्विज्ञान चिकित्सालय, डगरा (गया) विहार

मान्यवर वैद्य श्री गिरि जी बिहार प्रान्त के परमादरणीय विद्वान आयुर्वेदज्ञ हैं। आज तक आपके अनेक लेख 'धन्वन्तरि' पत्रिका मे प्रकाशित हो चुके है। आप स्वतन्त्रता सैनानी भी हैं, अत आप लोकसेवाभावमुखी हैं। सारे देश में आप घूमा करते हे और देश की दिभिन्न सस्कृति का अभ्यास किया करते हैं। यहा आपने कृमिजन्य उदर शूल का विशिष्ट विवेचन किया हे। खास करके शिशुओं मे होने वाले कृमि पर आपने ध्यान दिया है, जो चिकित्सको एव पाठको को उपयोगी सिद्ध होगा। मैं डा० श्री गिरि जी से अपेक्षा रखता हूं कि आप बार-बार 'धन्वन्तरि' द्वारा अपना विस्तृत अनुभव का लाभ देते रहें और 'धन्वन्तरि' के विकास-प्रचार और प्रसार मे मदद करें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आन्त्र मे उत्पन्न होने वाले कृमियो को चरक सहिताकार और सुश्रुत सहिताकार पुरीषज कृमि के नाम से वर्णन किये है। आचार्य चरक सहिताकार ने इसके पाच भेद बतलाये हैं। किन्तु आचार्य सुश्रुत ने इसके सात भेद बतलाये है।

ककेरुका मकेरुका लेलिहा सशूलका सौसुरादाश्चेति।

—च० वि० अ० ७

अर्थात् ककेरुक, मकेरुक, लेलिह, सशूलक एव सौसुराद।

सुश्रुत सहिता के अनुसार सात भेद इस प्रकार हैं—

अजवा विजवा किप्याश्चिप्या गण्डुपदास्तथा।
चुरवो द्विमुखाश्चैवज्ञेया सप्त पुरीषजा॥

—सु० उ० त० अ० ५४।

इनके अनुसार अजवा, विजवा, किप्य, चिप्य, गण्डुपद, चूरु एव द्विमुख नाम के कृमि होते है। किन्तु यहा पर निम्नांकित कृमियो का ही वर्णन किया जायेगा—

१ सूत्र कृमि
२ गण्डुपद अथवा गोल कृमि
३. स्फीत कृमि (Tape worm) [इसके ३ भेद हे]
४. अंकुश मुख कृमि (Hook worm)

कारण—

अपरिपक्व फल मूल, अधिक पका हुआ केला, बाजार के बने सडे-गले पदार्थ विशेषकर मिठाइयां, मीठे पदार्थो का विशेष खान-पान, चाय के साथ नमकीन बिस्कुट खाना, बिस्कुट का विशेष सेवन, अपरिपक्व अन्न एव मास, मछली, मिला-जुला भोजन जिसमे कुछ हितकर और कुछ अहितकर पदार्थ हो। कच्चा चावल, उडद आदि पिट्ठी के बने पदार्थ। अस्वास्थ्यकर स्थानो मे रहने, दूषित जल के पीने आदि कारणो से कृमि उत्पन्न होते है।

१ सूत्र कृमि

इसे पिन वर्म और औक्सीयूरिस वर्मीकुलेरिस, चुन्ना, सूत कृमि तथा तन्तु कृमि भी कहते हैं। इस कृमि का निवास स्थान क्षुद्र आन्त्र का अन्तिम भाग है, किन्तु स्थूलान्त्र मे भी पहुँच जाता है। बच्चो मे विशेषकर पाया जाता है।

कभी-कभी इतनी विशेष सख्या मे हो जाते हैं कि जल मे गति करते दिखाई देते है। यह नर और मादा के रूप मे पाये जाते है। पुरुष कृमि १/६ इञ्च लम्बे थोथी गोल तथा कटकयुक्त पुच्छ के होते हैं। स्त्री कृमि १/२ इञ्च लम्बी पतली नोकदार पुच्छ, सूत के धागे के समान श्वेत वर्ण की होती है। सुश्रुत सहिताकार लिखते हैं—

श्वेता सक्षमात्तुदन्त्येते गुद प्रति सरन्ति च ।
तेषामेवा परे पुच्छै पृथवश्च भवन्ति हि ।।

—सु० उ० त० अ० ५४

ये कृमिया रग मे श्वेत सूक्ष्म तथा गुद मे चुभते है और गुदा मार्ग की ओर जाते है। इनमे से कुछ कृमि पुच्छ पर चपटे होते है। यह उदर मे शूल, अग्निमाद्य, विष्टम्भ आदि लक्षण उत्पन्न करते है।

लक्षण—

इसमे प्राय यह लक्षण पाये जाते है—नाक के अग्र भाग मे खुजली, मलद्वार मे कण्डु, श्वास-प्रश्वास मे दुर्गन्ध, मलत्याग के समय कष्ट होना, मलद्वार मे निरन्तर खुजली रहने के कारण निद्रा का नही आना, निद्रावस्था मे दात किट-किटाना, उदर मे तीव्र शूल अथवा मन्द शूल, शीत-पित्त आदि लक्षण होते है।

शूलाग्निमान्द्य पाण्डुत्व विष्टम्भ वलसंक्षया ।
प्रसेकारुचि हृद्रोग विड भेदास्तु पुरीषजै ।।

—सु० उ० त० अ० ५४

ये पुरीपज कृमि उदर मे शूल, अग्निमाद्य, पाडु रोग, विष्टम्भ, वल का नाश, मु ह मे पानी भर आना, अरुचि, हृदय रोग, अतिसार आदि लक्षण उत्पन्न करते है। कभी-कभी उदर मे तीव्र शूल उत्पन्न होता है जो चिकित्सक को निर्णय करने मे भी सन्देह हो जाता है कि यह शूल कृमि के कारण है अथवा अन्य रोग के कारण। ये कृमि अनजाने मे बालिका के मलद्वार से निकल कर योनि मे प्रवेश कर जाते हैं। परिणामस्वरूप दाह उत्पन्न होकर योनि से पूय स्रवित होने लगता है और योनि मे व्रण हो जाते है तथा योनि का ऊपरी भाग अरुण अथवा लाल वर्ण का दिखाई पडता है और उसमे शोथ हो जाता है। ऐसा होने पर कई चिकित्सक भ्रमवश इसे श्वेत प्रदर समझ लेते हैं। किन्तु वास्तव मे यह बात नही, इसका मूल कारण सूत्र कृमि होते हैं। ये कृमि विशेपकर वच्चो मे ही पाये जाते है। सारी रात वच्चा गुदा मार्ग को खुजलाता रहता है जिसके कारण उसे निद्रा नही आती। कभी-कभी इन कृमियो के कारण वच्चो मे आक्षेप भी होते देखे गये है।

२. गोल अथवा केंचुए कृमि—

इसे सस्कृत मे गण्डुपद अथवा महागुदा कहते है। गेंडुरी के समान होने से गोल कृमि अथवा गण्डुपद महा-गुदा नाम पडा है। इसका निवास स्थान क्षुद्रान्त्र है। यह नर और मादा दो प्रकार के होते है। मादा कृमि लगभग १० से १६ इञ्च लम्बा तथा नर जाति प्राय ६ से १० इञ्च लम्बी होती है। यह गोल चमकदार और कुछ मोटे केंचुए के समान गोल तथा किनारो पर पतले एव नुकीले होते है। इनका रग हलका पीलापन अथवा धूसर गुलावी मायल होता है। मादा की पू छ सीधी और लम्बी होती है किन्तु नर जाति का पू छ वाला अन्तिम भाग घूमा हुआ टेढा रहता है।

रक्ता गण्डुपदादीर्घा गुदकण्डु निपातिन ।

—सु० उ० त० अ० ५४

लक्षण—

क्षुद्रान्त्र मे रहकर ये जो लक्षण एव क्षोभ उत्पन्न करते हैं उससे वचपन मे कै होना, मिचली होना, उदर मे मन्द अथवा तीव्र शूल होना, मन्द-मन्द शूल होना, दात कटकटाना, विभिन्न प्रकार के पतले दस्त होना, नाक के अग्रभाग एव गुदा मार्ग मे खुजलाना, कण्डु होना, निद्रा मे बच्चे का एकाएक चिटक उठना, उदर कडा और गर्म, शरीर दुवला, पीला चेहरा, आखो की पुतली फैली तथा आम मिश्रित मल का होना। कभी अत्यधिक भूख लगना तो कभी अरुचि, श्वास-प्रश्वास मे दुर्गन्ध होना, वेहोशी, मु ह मे बार-वार पानी आना, खडिया के समान मूत्र त्याग होना आदि लक्षण होते है। इसके अतिरिक्त वक्र दृष्टि, विछावन पर मूत्र त्याग करना तथा अकडन आदि लक्षण भी हुआ करते हैं।

क्षुद्रान्त्र मे शोथ जिसे अपेण्डीसाइटिस कहते है तथा पित्त प्रणाली मे पहुँच कर कामला रोग उत्पन्न करते हैं। विशेपकर वालको मे वद्धोदर रोग होते देखा गया है जो इनके अधिक सख्या मे बढने के कारण गुच्छा जैसा वन जाने और आतो का मार्ग अवरुद्ध हो जाने से उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी ऐठन अथवा आक्षेप के दौरे पडने लगते हैं। रोग का सन्देह होने पर इसकी वास्तविक पुष्टि मल परीक्षा (जाच) से होती है। कुछ लोग सदिग्ध रोगी को सेण्टोनिन+केलोमल देते है जिससे कृमि मरकर वाहर निकल जाते है।

३. स्फीत कृमि (Tap worm) —

फीते के समान लम्बे होने के कारण इसे फीता अथवा स्फीत कृमि (टैप वर्म) कहते है। सस्कृत मे उदरावेष्टा और हिन्दी मे कद्दू दाना अथवा कद्दू कीडा कहते हैं। इनका निवास स्थान वडी एव छोटी आन्त्र दोनो मे है। इनकी लम्बाई का कोई ठिकाना नहीं है। क्योकि कोई आधा इन्च तो कोई ८ से १० इन्च का और कोई १ से २ फुट तथा इससे भी लम्बे पाये जाते हैं।

छोटे बडे कोई भी हो इनके शिर और शरीर के दो भाग स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसका शिर गाय की पूछ के समान किन्तु छोटा होता है। मुंह पर चूसने का एक अङ्ग होता है तथा उसके चारो ओर गोल हुक जैसे होते हैं जिससे यह आतो मे चिपके रहते है। इस प्रकार के हुक किसी मे दो और किसी मे चार तक होते हैं। इस कृमि का शरीर भी बडा ही विचित्र होता है जो छोटे छोटे एव बडे-बडे टुकडो (पर्व) मे होता हे। शिर के निकट वाला टुकडा छोटा होता है और ये टुकडे जितने ही दूर होते जाते है वैसे-वैसे आकार मे लम्बे होते जाते है। सबसे अन्त का टुकडा पहले की अपेक्षाकृत वडा और सुदृढ होता है। इसी प्रकार शिर के निकट वाले टुकडे मे कुछ निकलता नही। किन्तु दूर होते जाने पर उनमे सस्थान होते जाते है। दूर होने वाले प्रत्येक टुकडे मे अण्डे वृद्धि करते पाये जाते है। यहा तक कि अन्तिम टुकडे मे हजारों की सख्या मे अण्डे होते है। ये सारे टुकडे एक दूसरे से जुड़े हुए और सुदृढ होते हैं। इन्ही टुकडो मे नर एव मादा की जननेन्द्रियां होती हैं।

वास्तव मे ये सारे टुकडे पृथक् एक जीव होते है जो शिर से उत्पन्न होकर बराबर एक साथ जुडते जाते है। यह कृमि अपना भोजन शिर के द्वारा ही ग्रहण करते है। ये टुकडे विभिन्न कृमियो मे विभिन्न सख्या मे होते है जो हजार की सख्या तक पहुँच जाते है। जब यह टुकड अत्यधिक वृद्धि पा जाते है, तो गुदा मार्ग से निकल जाते हैं। ये टुकडे कभी उदर मे ही अथवा कभी उदर के बाहर निकल कर फट जाते हैं और अण्डे फैल जाते है। प्रत्येक अण्डे मे तीन नुकीले प्रवर्धन होते हैं। इन्ही प्रवर्धनो अथवा दात जैसे नुकीले अङ्गो से ये आन्त्र की दीवार से चिपके रहते हैं। अण्डे जब पानी से मिलकर एक हो जाते है तब उसी पानी को पीकर सूअर, मछली आदि जीवो मे जाकर ये वृद्धि पाते है। उन पशुओ की आतो को पार कर ये यकृत् आदि मे और रक्त मे मिलकर मास तक पहुँच जाते है।

वहा पर इनका रूप बदलकर स्कोलैक्स जैसा अर्थात् थैली के रूप मे बन जाता है। इस थैली के भी दो भाग होते है। उनमे एक शिर जो उसी फीता कृमि के समान होता है। पश्चात् कृमि का शिर बन जाता है और पीछे की ओर लगी थैली नही बढती। ये स्कोलैक्स सूअर की आत से उनके मल के साथ बाहर निकलते हैं। परिणामस्वरूप इस मल से जो जल दूषित होते है, उसी जल को पीकर अथवा उन गन्दे पशुओ का कच्चा मास अथवा अधपका मास जो मनुष्य खाता है उसके उदर मे प्रवेश कर जाते है। अतएव जब ये मनुष्य की आत मे चिपकते है तो फिर इनके पीछे की थैली नष्ट हो जाती है और अवशिष्ट उस शिर के टुकडे से फीता कृमि का शरीर पुन निर्माण होने लगता है। यही इनका जीवन चक्र है। अतएव मनुष्य मे पलकर यदि यह कृमि निकलता है तो अण्डे से बदल कर पानी के द्वारा पशुओ मे एव मछलियो के शरीर मे पहुँचकर पुन मनुष्य के आन्त्र मे आ जाता अथवा पशु से सीधे मनुष्य मे आ जाता है। यह चक्र बराबर इसी क्रम मे घूमा करता है। मुख्यतया इनके ३ भेद होते है। जैसे—टिनिया सोलियम, टिनिया सैजिनेटा और टिनिया लेटा।

(क) टिनिया सोलियम—यह सूअर की आतो की एक विशेष प्रकार की कृमि होती है। इसकी लम्बाई प्राय ६ से १२ फुट तक होती है और शिर छोटा होता है, जिसमें चार चूसने वाले अवयव होते है। चूसने वाले अवयव के चारो ओर लगभग २६ हुक जैसे होते हैं। जिनसे यह आन्त्र मे चिपटे रहते हैं तथा समूचे शरीर मे इसके लगभग ५०० टुकडे रहते हैं। इसके अण्डे मनुष्य के मल के द्वारा जल मे जाते हैं और मल के द्वारा सूअर मे जाकर पुन मनुष्य शरीर मे प्रवेश पाते है। सूअर के मास, यकृत, नेत्र एव मस्तिष्क इनके निवास स्थान हैं।

(ख) टिनिया सैजिनेटा—यह भेद गाय, भैंस आदि पशुओ मे रहते है, किन्तु सूअर मे नही पाये जाते है। टिनिया सोलियम की अपेक्षा यह कृमि अधिक बडा होता

है। चूसने वाले अङ्ग ४ ही होते है किन्तु चिपकने वाले [illegible] नही होते। यह प्राय १००० टुकडो का होता है।

(ग) टिनिया लेटा—यह भेद आकार मे सबसे अधिक लम्बा अर्थात् २० से २५ फुट का होता है। टुकडे भी करीब तीन से चार हजार तक होते है। इसका शिर गोल न होकर अण्डे के समान कुछ लम्बा अथवा मुद्गर के समान लम्ब गोल होता है। इसका अण्डा उदर मे न फटकर जल मे भी आकर फटता है। फटने पर उसमे से छोटा सा कृमि निकलता है और प्राय मछली के उदर मे जल के सहारे पहुँचकर वृद्धि पाता है। ऐसी मछली का यदि अधपका अर्थात् अपरिपक्व मास मनुष्य खाता है तो यह उसकी आन्त्र मे पहुँच जाता है। इसके अतिरिक्त इनके और भी भेद पाये जाते है, जिनका उल्लेख यहा पर करना व्यर्थ ही होगा।

लक्षण—

मनुष्य के उदर मे जब यह स्फीत कृमि पहुँचता है तब प्राय ऐसे लक्षण नही होते जो इसके ही द्योतक हो। अन्य उदर कृमियो के समान ही इसमे भी लक्षण पाये जाते है। नाक के अग्र भाग मे खुजली तथा मलद्वार मे कण्डु, उदर मे तीव्र शूल अथवा मन्द-मन्द शूल होना, दात किटकिटाना, मुह मे पानी भर आना, अतिसार होना। किन्तु ये लक्षण अन्य रोगो के भी हो सकते है। फिर भी कभी-कभी भयकर लक्षण भी उत्पन्न होते है, जैसे मस्तक रोग अथवा अत्यधिक भूख का लगना, बुद्धि विकृत होकर मस्तिष्क विकार का होना, हृदय की धडकन बढना, मानसिक अवसाद, शरीर एव हाथ-पैरो मे कम्पन, शिर मे चक्कर आना, कान मे भो-भो की आवाज होना आदि लक्षण होते हैं।

अतएव इन लक्षणो के स्पष्ट होने पर यदि प्रत्यक्ष अन्य रोग के कारण दिखाई नही पडे तो इस रोग का सन्देह अनिवार्य है। ऐसी अवस्था मे रोगी के मल, रक्त की जाच अवश्य करा लेनी चाहिए। जाच के उपरान्त यदि कृमि की उपस्थिति होगी तो अण्डे अवश्य दिखाई पडेंगे। इनके लम्बे-लम्बे टुकडे भी कभी-कभी मल के साथ निकलते हैं। इन कृमियो की उपस्थिति के कारण रोगी को रक्ताल्पता होती हैं। किन्तु विशेष प्रकार की कठिन एव घातक रक्ताल्पता नही होती। टिनिया लेटा मे रक्त की कमी अन्य कृमियो की अपेक्षाकृत अधिक होती है।

४. अंकुश मुख कृमि (Hook worm)—

इसे सस्कृत मे आन्त्रदा और आग्ल भाषा मे हुक वर्म एकिलोस्टोमीया मिम कहते है। इसका निवास स्थान क्षुद्रान्त्र के ऊपरी भाग मे है। यह गोल लम्बा श्वेत अथवा धूसर वर्ण किंचित पीलापन लिए होता है। पुरुष कृमि लगभग १/३ इञ्च लम्बा तथा स्त्री कृमि १/२ इञ्च लम्बा और मुख का भाग नुकीला होता है जिसमे अकुश तथा दात होते है, जिसकी सहायता से आतो की दीवार से यह चिपके रहते है। पिछला भाग मोटा तथा थोथा। पुरुष कृमि का पिछला भाग छत्र के समान होता है। इनकी मोटाई बाल के बराबर होती है। इस कृमि के मुह मे चार गोल दाने जैसे दाग और दो कील जैसे दात होते है। रोगी के मल के साथ इस कृमि के अण्डे अनगिनत सख्या मे निकलकर जल मे मिल जाते है अथवा कीचड युक्त मिट्टी मे रहते है। वही इनके अण्डे फटकर लार्वा वृद्धि को प्राप्त करते है। फिर मनुष्य की त्वचा के द्वारा एव पीने वाले दूषित जल के द्वारा मनुष्य के उदर मे प्रवेश पा जाते है तथा लसिली नसो के द्वारा फेफडे मे पहुँच जाते है। जो रोगी खासकर थूकते नही और निगल जाते हैं, तो इस कफ के सहारे ये उनकी छोटी आन्त्र के ऊपरी भाग मे जाकर चिपक जाते है और वही चिपके रहते है।

शारीरिक विकृति—

ये कृमिया आन्त्र की दीवार को काटती है जिसके कारण उस स्थान पर व्रण उत्पन्न हो जाते है। कृमि का विषैला भाग इसी व्रण के द्वारा निकल कर क्रमश रक्त मे पहुँच जाता है। यह विषैला रक्त यकृत की वृद्धि कर देता है और हृदय की धडकन को बढा देता है। फुफ्फुसावरण और हृदय मे प्रदाह उत्पन्न कर देता है।

लक्षण—

यह कृमि आन्त्र मे रहकर रक्त चूसते है। इस कारण से रोगी मे रक्ताल्पता हो जाना, रोगी मेढक जैसा पीला, रक्त शून्य शरीर दिखाई पडता है। कौडी के स्थान-स्थान मे दर्द, श्वास-प्रश्वास का बढना, अतिसार एव शरीर मे

शोथ उत्पन्न होना, पाचन शक्ति का कम होना, थकावट अनुभव होना, आखो का ज्योतिहीन होना, हृदय का धडकना, पैर एव उदर मे शोथ, हाथ-पैरो मे फोडे तथा खाज-खुजली होना, बच्चो के शारीरिक विकास का न होना आदि लक्षण होते हैं। जांच करने पर यकृत वृद्धि, हृदय धडकते रहना और फेफड़े के आवरण मे प्रदाह उत्पन्न होते पाया जाता है। रक्त परीक्षण मे अम्ल-रंगेच्छु श्वेताणु अधिक वृद्धि करते दिखाई पडते है। यदि रोगी की उग्रावस्था रहती है तो मृत्यु भी हो जाती है।

४. कशा [चाबुक] कृमि (Whip worm)—

इसमे कोई विशेष विकृति नहीं होती और ये बहुत ही कम संख्या मे मिलते हैं। इनका निवास स्थान क्षुद्रान्त्र का अन्तिम भाग स्थूलान्त्र तथा आन्त्रपुच्छ की कला है। पुरुष कृमि लगभग २ इन्च लम्बा चाबुक के समान तथा स्त्री कृमि लगभग २॥ इन्च सीधा होता है। इस कृमि मे कभी-कभी आन्त्रपुच्छ शोथ, रक्ताल्पता बहुत कम तथा आन्त्र शोथ और वातिक लक्षण उत्पन्न होते है।

सांकेतिक निदान लक्षण

(१) यदि बच्चा रात्रि को निद्रावस्था मे दात किट-किटाये अथवा दात पीसे और गुदा मार्ग को बारम्बार खुजलाये तथा नाक खुजलाये, अचानक निद्रावस्था मे चिल्लाकर उठे तो यह लक्षण बच्चे के उदर मे कृमि होने का स्पष्ट संकेत है।

(२) बच्चो मे विशेषकर सूत्र कृमि, केंचुए के समान कृमि एव स्फीत कृमि होते हैं।

(३) छोटी आन्त्र का शूल उदर के ऊपरी भाग मे तथा वृहद् आन्त्र का शूल उदर के मध्य तथा निचले भाग मे होता है।

(४) कृमि के कारण तीव्र उदरावरण शोथ एव अग्न्याशय का शोथ, अजीर्ण, विबन्ध, तीव्र शूल, मन्द शूल, आन्त्रावरोध, वृक्काश्मरी, पित्ताश्मरी और आन्त्रपुच्छ शोथ आदि व्याधिया उत्पन्न होती हैं जिनके कारण बच्चो को शूल हुआ करता है।

(५) अंकुश मुख कृमि मे रोगी की जिह्वा पर काले काले दाग दिखाई पडते है तथा उसकी जिह्वा स्याहीसोख के समान हो जाती है।

(६) उदर मे कृमि उत्पन्न होने पर नाडी की विविध गतिया होती हैं। कभी नाडी स्थिर रहती है, कभी तीव्र गति से चलती है। कभी स्पन्दित होती है और कभी स्पन्दन का अनुभव होता ही नही।

(७) मल मे कृमि अथवा कृमि के अण्डेयुक्त मल का होना आन्त्र मे कृमि होने का स्पष्ट संकेत है।

(८) श्लेष्मायुक्त मल का होना तथा उदर मे मीठा मीठा दर्द (शूल) होना, भूख का अनियमित होना, निर्बलता, रात्रि भय, उत्पादक अङ्गो मे एव नासिका मे तीव्र कण्डु, पेशियो मे अकडन, ऐंठन अथवा आक्षेप आदि आन्त्र मे कृमि होने का संकेत है।

(९) उदर कृमियो से उत्पन्न शूल मे शूल नाशक औषधियो का क्षणिक प्रभाव तो पडता है, किन्तु स्थाई प्रभाव नही पडता।

चिकित्सा सूत्र —

(१) आभ्यन्तर कृमि रोग की चिकित्सा करने के पूर्व रोगी को एक दिन का उपवास कराना चाहिए। यदि उपवास लायक रोगी न हो तो उसे हलका खाद्य पदार्थ देना चाहिए।

(२) कृमि निष्कासन अथवा कृमिघ्न औषधिया देने के पूर्व रोगी को गुड अथवा मीठा पदार्थ अवश्य देना चाहिए।

(३) कृमिघ्न औषधि प्रयोग के पूर्व तथा पश्चात् विरेचक औषधि का प्रयोग अवश्य करे, जिससे मूर्छित अथवा मरे हुये कृमि मल के साथ बाहर निकल जाय।

(४) विरेचनार्थ कैस्टर आयल [एरण्ड तैल] अथवा कोई भी मृदु विरेचक औषधि अथवा सनाय की पत्ती, काला दाना, हरड, सौफ समभाग का क्वाथ बनाकर उचित मात्रा मे देने से हलका विरेचन हो जाता है।

(५) वायविडङ्ग का सूक्ष्म चूर्ण १ ग्राम को मधु के साथ देने से छोटे बच्चे के कृमि नष्ट हो जाते है।

(६) शुद्ध कबीला [कपिला] के सूक्ष्म चूर्ण १ ग्राम मे गुड मिलाकर देने से उदर कृमियो का नाश हो जाता है।

(७) पलाश बीज एव कालीजीरी का समभाग सूक्ष्म चूर्ण ५०० मि० ग्रा० से १ ग्राम तक की मात्रा मे मधु के साथ या गुड के साथ देने से उदर कृमियो का नाश

हो जाता है। इसे लगातार तीन दिन तक देने के बाद औषधि बन्द कर दे और एक सप्ताह बाद पुन प्रयोग करे। ३ ने मे दो बार तक औषधि देनी चाहिए।

(८) कृमिघ्न चूर्ण—करज की गिरी, पलाश बीज, किरमानी अजवायन, कबीला (शुद्ध कपिला), बायविडङ्ग, कालीजीरी प्रत्येक समान भाग लेकर कपडछन सूक्ष्म चूर्ण बना लें।

परीक्षा—कृमिघ्न चूर्ण स्वाद मे तीक्ष्ण, कडवा और हृल्लासकर होता है। पलाश बीज का मुद्गा नामक तैल एव कालीजीरी का तैलीय अश प्रधानतया उदरस्थ कृमियो को मूर्छित कर देता है अथवा मार कर बाहर निकाल देता है। इसका एकमात्र प्रयोग उदरस्थ कृमियो को मारने के लिए होता है।

मात्रा—२ से ३ ग्राम तक दिन मे तीन बार गुड मिलाकर उष्ण जल के साथ अथवा शर्बत के साथ दे।

(९) कृमिमुद्गर रस—शुद्ध पारा १५ ग्राम, शुद्ध गन्धक ३० ग्राम, अजमोद ४५ ग्राम, बायविडङ्ग ६० ग्राम, शख भस्म १५ ग्राम, अजवायन ३० ग्राम, शुद्ध कुचला ५० ग्राम, कालीजीरी ६० ग्राम, पलाश बीज ७५ ग्राम।

निर्माण विधि—सर्व प्रथम पारद और गन्धक की अच्छी प्रकार कज्जली बना ले। कुचला को शोधन करके कूट-पीस कर स्नेहाश रहित कर ले और उसमे मिला दे। फिर शेष द्रव्यो का सूक्ष्म चूर्ण मिला दे और सूखी ही अच्छी प्रकार खरल मे घुटाई करे। पश्चात् स्वच्छ काच के पात्र मे रख ले अथवा कैपसूल मे भर लें।

मात्रा—१२५ मि० ग्रा० से २५० मि० ग्रा० तक, पूर्ण वयस्क को ५०० मि० ग्रा० नागरमोथा के क्वाथ के साथ अथवा शर्बत के साथ दिन मे ३ बार तक दे। इस प्रकार तीन दिन तक औषधि प्रयोग करने के बाद चौथे दिन विरेचक औषधि दे।

सावधानी—यह औषधि उग्र है। अतएव सावधानी के साथ प्रयोग करें और मात्रा पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। क्योकि कृमिघ्न औषधि प्राय उग्र एव अधिक हुआ करती है।

(१०) तीव्र शूल यदि उदर मे हो तो त्रिकुटा चूर्ण १ ग्राम, शख भस्म २ ग्राम, सैंधा नमक ५०० मि० ग्रा०, हिंग्वष्टक चूर्ण १ ग्राम सभी को मिलाकर रख लें और बच्चो को २५० मि ग्रा तथा वयस्को को ५०० मि. ग्रा. से १ ग्राम तक उष्ण जल से दें। तत्क्षण शूल शान्त हो जाता है।

(११) शूल दावानल रस १ ग्राम, शूलवज्रिणी वटी १ ग्राम दोनो की अच्छी प्रकार खरल मे घुटाई करके रख ले। २५० मि ग्रा से ५०० मि ग्रा तक की मात्रा मे गर्म जल से दे। आवश्यकतानुसार दिन मे तीन-चार बार तक दे सकते है। इससे किसी भी प्रकार का शूल हो तत्काल ठीक हो जाता है।

(१२) शूलान्तक चूर्ण [धन्वन्तरि सफल सिद्ध प्रयो० १९७४)—सफेद जीरा, स्याह जीरा, भर्जित डीकामाली, धनिया, छोटी हरड भर्जित, सनाय पत्ती, बायविडङ्ग, सैंधा नमक प्रत्येक ५०-५० ग्राम तथा सोठ २५ ग्राम सभी का सूक्ष्म चूर्ण कर ले और इसके बराबर सूक्ष्म चीनी चूर्ण (बूरा) मिला दे। २ से ३ ग्राम तक की मात्रा मे उष्ण जल के साथ दिन मे तीन-चार बार तक दे। यह किसी भी प्रकार के उदर शूल को तथा कृमिजन्य उदर शूल मे उत्तम लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह वायु का अनुलोमन कर शौच भी साफ लाता है।

(१३) कृमि निकल जाने के उपरान्त कुछ दिनो तक विडङ्गारिष्ट १५ से २० मि लि मे बराबर जल मिला कर भोजनोपरान्त दोनो समय देने से विशेष लाभ मिलता है और कृमियो का नाश होकर उदर की शुद्धि हो जाती है।



* नाभि-शूल या नाभि चक्र या केन्द्र चक्र *

आचार्य डा० गजेन्द्रसिंह, छौकर आयुर्वेदाचार्य ए, एम बी एस ,एम ए एम एस
पचवर्षीय योग क्रिया तथा योगासन के विशेषज्ञ, गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय हरिद्वार (सहारनपुर)
रजत पदक प्राप्त आयुर्वेद अकादमी विजयवाडा आंध्र प्रदेश, चिकित्सक, शोध ग्रन्थ लेखक, प्रकाशक
और औषधि निर्माता, ओम् आयु रक्षक फार्मेसी तथा आयु रक्षक प्रतिष्ठान, सादाबाद (मथुरा) उ०प्र०



शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग तथा नस नाडिया आदि अपना-२ महत्व रखते है। प्रत्येक अङ्ग एक दूसरे के साथ इस प्रकार गु था हुआ है कि किसी छोटे से छोटे तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग मे विकार होने पर सारे शरीर पर उसका प्रभाव पडता है। शरीर मे स्थूल नाडियो के साथ-साथ सूक्ष्म नाडिया भी विद्यमान रहती हैं। शरीर का अध्ययन हम उसके कुछ प्रमुख भागो मे कर सकते है जैसे मस्तिष्क, हृदय, नाभि–इत्यादि।

गर्भस्थ शिशु के रक्त-सवहन सस्थान का अध्ययन करने पर नाभि क्षेत्र वह है जहा अपरा अपरा नाभि-नाल जुडा होता है जिसका सम्बन्ध सेतुशिरा (Ductus Venosus) द्वारा यकृत से व मवाहिनी (Hypogastric Artery) मे होता है। उस समय नाडी का पोषण द्वार के रूप मे महत्व होता है रोगकारक के रूप मे नही।

जमीन पर सीधे लेटकर, नाभि को अ गुष्ठ से दबायें तो नाभि (Navel) के नीचे हल्का स्पन्दन अनुभव होता है। यह स्पन्दन यदि नाभि मे ऊपर नीचे, दायें-बायें अनुभव हो, पेट मे मरोड रहती हो, मीठा-मीठा दर्द होता है अथवा रहना है, अतिसार या पेचिस हो, मल मे रक्त आता हो या मवाद आती हो। आतो मे सूजन हो तो नाभि टलना (Navel Displacement) रोग समझना चाहिए। और धीरे-धीरे कब्ज रहते-२ रोगी को एक प्रकार की आदत सी हो जाती है और वह इस विकार से उत्पन्न नाना प्रकार की बीमारियो का कारण डाक्टर वैद्य द्वारा निर्धारित निर्णय को ही मानकर दु ख भोगता रहता है। अन्त मे चिकित्सकों का निर्णय यहा तक चरम सीमा पार कर जाता है कि तुम्हारी आते सड गई है अत कार्य करना बन्द कर दिया है इसलिए इन आतो को शल्यक्रिया से निकलवा कर दूसरी आते बकरी आदि किसी की लगवा लो तभी जीवित रह सकते हो। ऐसा मैंने बहुत से चिकित्सको का अन्तिम निर्णय लिखित मे पढा है। इसलिए शरीर मे पेट सम्बन्धी या अन्य कोई खराबी मालूम होने पर अथवा कोई योगिक साधन, आसन, व्यायाम आदि प्रारम्भ करने से पूर्व किसी योग्य नाभि के जानकार से नाभि परीक्षा करा लेनी चाहिए। परम पुनीत उपनिषदो मे भी इसके विषय मे बहुत कुछ लिखा है—

तन्नाभि मण्डले चक्र प्रोच्यते मणिपूरकम्।
ऊर्ध्वं मेढादधो नाभे कन्दे योनि खगाण्डवत ॥
तत्रनाड्य समुत्पन्ना सहस्राण द्विसप्तति।
तेषु नाडिसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृता ॥
प्रधाना प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दशस्मृता ॥

अर्थात उदर के मध्य नाभि सस्थान मे मणिपूरक नाम का चक्र है। मेढ् अर्थात स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर और नाभि के नीचे एक गोलाकार कन्द है। उसके बीच मे पक्षी के अण्डे के समान नाडियो का उद्गम स्थान है। इसी स्थान मे बहत्तर नाडियो की उत्पत्ति हुई है। इनमे प्राणवाही ७२ नाडिया प्रमुख है और उनमे भी १० नाडिया मुख्य है जिनकी विशेष जानकारी के लिए अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

सौर मण्डल या मणिपूर-चक्र (Coeliac, Solar or Epigastric Plexus)—तीनो स्वतन्त्र नाडी चक्रो मे यह सबसे बडा पृष्ठवश के आगे स्थित है। यह प्रथम कटि कशेरुक के आगे नाडी सूत्र तथा ग्रन्थियो का एक जाल सा है जो दोनो अधिवृक्क ग्रन्थियो के बीच के स्थान मे महाधमनी तथा महाप्राचीरा मूलो के सामने होता है। यह अर्द्धोदरिका धमनी (Coeliac artery) के स्थान मे महाधमनी तथा महाप्राचीरा मूलो के सामने होता है। यह

अर्द्धोदरिका के धमनी उदय स्थान के चारो ओर होता है। अर्द्धेन्दु या मणीपूर ग्रन्थिया दो ही प्रधान रूप से होती है जो शरीर मे सबसे बडी नाडी ग्रन्थिया है। दक्षिण ग्रन्थि अधरा महाशिरा के पीछे होती है। प्रत्येक ग्रन्थि के ऊपरी सिरे मे अपनी ओर की पर्य्याशयिकी वृहती नाडी (Greater Splenic nerve) आकर मिलती है। नाडी चक्र से असख्य नाडी-तन्तु सूर्य से रश्मियो की भाति गौड नाडी चक्रो मे भाग लेने के लिए जाते है। उदर के आशयो के चारो ओर स्थित गौड नाडी चक्र सख्या मे १०-१० होते है। नाभि चक्र या मणिपूर चक्र के हटने से ये दस नाडी चक्र भी हट जाते हैं और उदर मे दस स्थानो या आशयो मे शूल उत्पन्न हो जाता है।

[१] अनुकोष्ठिका नाडी चक्र (Phrenic Plexus)—अर्द्धेन्दु ग्रन्थि से निकले सूत्र अनुकोष्ठिका नाडी सूत्रो से मिलकर महाप्राचीरा के पीछे इस नाडी चक्र का निर्माण करते हैं। इसके सूत्र महाप्राचीरा की ओर जाते है। इस मणिपूर चक्र या नाभि हटने से महाप्रचीरा शूल होगा। क्योकि नाभिचक्र अपने केन्द्र से हट गया है।

[२] याकृती नाडीचक्र (Hepatic Plexus)—अभियाकृती धमनी तथा उनकी शाखाओ के चारो ओर यह नाडीचक्र स्थित है। इसमे वाम प्राणदा नाडी तथा दक्षिणानुकोष्ठिका नाडी के सूत्र आकर मिलते है। आमाशयतल तथा ग्रहणी मे इसके सूत्र पहुँच कर विपरीत हो जाते है। अत नाभि चक्र के हटने से शोथ एव शूल इन अङ्गो मे अवश्य होगा। जो याकृती नाडी चक्र के सूत्रो से जो अवयव सम्वन्धित हैं तो नाभि हटने से शोथ एव शूल अवश्यम्भावी है।

[३] प्लैहिक नाडी चक्र (Splenic or Lienal Plexus)—दक्षिण प्राणदा नाडी के सूत्र तथा वाम मणिपूर ग्रन्थि के सूत्रो के मिलने से यह वनता है। इस नाडी चक्र के सूत्र अभिप्लीहिका धमनी और उसकी शाखाओ के साथ जाकर प्लीहा मे प्रविष्ट हो जाते हैं। तथा कुछ सूत्र आमाशय पर भी फैलते है। अत नाभि चक्र के हटने से सम्वन्धित सभी अवयवो मे शोथ एव शूल होगा।

[४] महाधमनिका नाडी चक्र (Aortic Plexus)—औदरीय महाधमनी के सामने तथा पार्श्वो मे उत्तरान्त्रिकी तथा अधरान्त्रिकी धमनीमूलो के वीच के स्थान मे यह नाडीचक्र होता है। इसके निर्माण करने वाले तन्तु सौर मण्डल, मणिपूर, ग्रन्थियो और अनुकटिका नाडी ग्रन्थियो से आते है। इसमे उत्थित सूत्र अनुवृपणिका, अधरान्त्रिकी तथा अधिवास्तिक नाडी चक्रो मे जाकर मिलते है। इन सूत्रो का अधरा महाशिरा पर प्रसरण होता है। अत नाभि चक्र या नाभि टलने से या हटने से सम्वन्धित अवयवो मे शोथ एव शूल अवश्य होगा।

[५] उत्तरान्त्रिक नाडी-चक्र (Superior Mesentric Plexus)—सौरमण्डल के सूत्र तथा दक्षिण प्राणदा के सूत्र मिलकर इसे वनाते है। उत्तरान्त्रिकी धमनी और उसकी शाखाओ का ये सूत्र अनुसरण करते है। अन्त्याशय क्षुद्रान्त्र तथा वृहदन्त्रो मे इनका वितरण होता है। अत नाभि हटने से सम्वन्धित अङ्गो या अवयवो मे शोथ एव शूल अवश्य होगा।

[६] अधरान्त्रिक नाडी चक्र (Inferior Mesentric Plexus)—और मण्डलो के सूत्र मिलने से यह वनता है। अवरोही वृहदन्त्र और गुद नलिका के चारो ओर इसके सूत्र प्रसरित होते हैं। इसके अन्तर्गत तीन गौड चक्र और होते हैं जिन्हे वाम वृहदान्त्रिक परिकुण्डलिका और परिगुदक नामो से पुकारा जाता है। अत नाभिचक्र के हटने से सम्वन्धित अवयवो मे शोथ एव शूल अवश्य होगा।

[७] पर्य्यामाशयिक नाडी चक्र (Superior Gastric Plexus)—वाम प्राणदा तथा सौर मण्डल के सूत्रो से इसका निर्माण होता है। इसके सूत्र वामा आमाशय कोडिका धमनी का अनुसरण करते है। अत नाभि चक्र के हटने से सम्वन्धित अवयवो मे शोथ एव शूल अवश्य होगा।

[८] अनुवृपणिक-नाडीचक्र (Spermatic Plexus)—परिवृक्क नाडीचक्र तथा महाधमनीक नाडीचक्रो से सूत्र आकर इसका निर्माण करते हैं। इसके सूत्र वृहण वन्धनो का अनुक्रमण करके वृपणान्त तक फैले होते है। तथा अपने नाम की धमनी और शिरा के पुरुष शरीर मे अनुसरण करते है। स्त्री शरीर मे यह चक्र अनुवीज कोशिका (Ovarian Plexus) नाम से पुकारा जाता है। तथा सूत्र वीज कोप तक जाते हैं। अत नाभि चक्र के हटने से सम्वन्धित सभी अङ्गो मे शोथ एव शूल अवश्य होगा।

[९] परिवृक्क नाड़ी चक्र (Renal Plaxus)—सौर मण्डल तथा मणिपूर ग्रन्थि से सूत्र मिलकर इसका निर्माण करते हैं। लघु आशयिकी नाड़ी सूत्र भी इसमे आकर मिल जाते है। इनके सूत्र वृक्कीय धमनी के साथ वृक्क तक जाते हैं। कुछ सूत्र अनुवृषणिक नाड़ी चक्र मे जाकर भाग लेते हैं। नाभि चक्र के हटने से सम्बन्धित सभी अङ्गो मे शोथ एव शूल अवश्य होगा।

[१०] अधिवृक्कीय नाड़ी चक्र (Supra renal Plexus)—सौर मण्डल तथा अर्द्धेन्दु ग्रन्थियो के सूत्रो के मिलने से यह नाड़ी चक्र बनता है। दोनों आशयिकी नाडियो तथा अनुकोष्ठिका नाड़ी के सूत्र इसमे आकर मिलते हैं। इसके सूत्र अधिवृक्क पोषणी धमनी का अनुसरण करते है। नाभि चक्र के हटने से सम्बन्धित अवयवो मे शोथ एव शूल होगा।

अत उदर विभाग मे मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान एव नाभिचक्र स्थित हैं। प्रत्येक चक्र का 'मूल' तथा 'शक्ति केन्द्र' इस सुषुम्ना-काड में है मेरुदण्ड या ब्रह्मदण्ड मे स्थित है। चक्रो के ये नाम ज्ञानवाहक तथा गतिवाहक सूत्रो से बनी नाडियो के है। कुण्डलिनी का निवास आधार चक्र या मूलाधार चक्र को ही माना है। यहा पर योनि स्थान मे एक त्रिकोणात्मक 'अग्निकोण' भी है। इस त्रिकोण योनि मण्डल के मध्यगत 'ब्रह्म नाडी' के मुख मे एक तेजोमय स्वयभू लिंग (पिंड) है तथा ऊपर से सहस्त्रार मे स्थित शिवलोक मे पहुँचने की प्रतीक्षा मे यह 'आद्याशक्ति' इस पिण्ड पर लिपटी सर्पाकार ३॥ वलययुक्ता प्रसुप्त दशा मे शखाकार प्रतीत होती है। इस त्रिकोण का सम्बन्ध सुषुम्ना से है और सुषुम्ना के मध्य मे 'वज्रा' एव वज्रा मे 'चित्रणी' और इस चित्रा के मध्यगत ब्रह्म-नाड़ी का आवास माना जाता है। ये तीनो नाडिया शब्द ब्रह्म की प्रतीक है। इस नाडी-गुच्छक के मध्य मे एक अति छोटे 'लाटू' या काले से अगूर के समान त्रिकोणाकार उभार है। इस स्थान मे इधर-उधर से आकर अनेक ज्ञानतन्तु तथा गति वाहक सूत्र मिलते है। इस कारण यह स्थान एक त्रिकोण मण्डल के समान दीखता है। इस त्रिकोण के एक कोण (१) से इडा (२) से पिंगला (३) से सुषुम्ना निकल कर पूर्व कथित प्रकार से मेरुदण्ड के सामने से देखने पर बायें-दाये और मध्य मे से जा रही है। इस त्रिकोण मे बने विन्दु के स्थान मे स्थित सूक्ष्म अण्डाकृति एक मासपिंड से मकडी के तार के समान अति सूक्ष्म तथा छोटी सी नाड़ी लिपटी है, इसी को हठयोगीगण 'कुण्डलिनी' कहते हैं। शेष वज्रा आदि नाड़िया भी सावेदनिक सूक्ष्म नाडिया है। इस प्रकार ये सब 'चक्र' स्थूल देहगत मकडी के सूक्ष्म तन्तुओ के समान महीन ज्ञानग्राहक-सूत्रो के गुच्छे ही है।

१ मूलाधार या आधार चक्र—यह चक्र गुदा से लेकर अन्दर गणेश चक्र तक बडी आतो का एव वहा पर व्याप्त अश्वपुच्छ के तन्तुओ का, पुच्छास्थि के पृथक तथा सगठित रूप का दर्शन है। यहा पर स्थित 'अपान-प्राण' की यहा पर फँसे 'ज्ञानवाहक' तथा गतिवाहक सूत्रो को मल-मूत्र-विसर्जन के लिए प्रेरित करने आदि की प्रक्रिया को प्रकट करता है। इस चक्र की स्थिति रीट की हड्डी के सबसे नीचे के भाग मे 'कन्द' प्रदेश से लगे गुदा और लिग के मध्य भाग मे है। इस चक्र का जो कमल है वह रक्त वर्ण है और उसमे चार दल है। इन दलो पर व, श ष और स, अक्षरो की स्थिति मानी गई है। इसका यन्त्र पृथ्वी तत्व का द्योतक है और चतुष्कोण है। यन्त्र का रग पीत है बीज ल है और बीज का वाहन ऐरावत हाथी है। यन्त्र के देव और शक्ति ब्रह्मा और डाकिनी है। इस यन्त्र के मध्य मे स्वयभू लिग है जिसके चारो ओर साढे तीन फेरे मे लिपटी हुई सर्पाकार अपनी पूछ को अपने मुख मे दवाये हुए सुप्त कुण्डलिनी शक्ति विराजमान हैं। प्राणायाम से जाग्रत होकर यह शक्ति विद्युल्लता रूप मे मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाडी मे प्रविष्ट होकर ऊपर को चलती है। एक ही विन्दु चतुर्दल मूलाधार चक्र मे मन, बुद्धि, अहकार (चित्त) प्रकृति भेद से चार प्रकार का बन जाता है।

२ स्वाधिष्ठान चक्र—यह चक्र मूलाधार से लगभग ४ अगुल ऊपर मेरुदण्ड के सम्मुखी भाग मे मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय के मध्य में जो शुक्रकोश नामक ग्रन्थि है उसमें आभासित होता है। इसकी षड्दलीय तात्रिक आकृति के साथ दूसरी वास्तविक आकृति भी है। जो शारीरिक विज्ञान के अनुसार 'वीर्यकोष' मे एक स्वर्णमय कटोरे मे भरे दूध के समान है। सात्विक अवस्था में यह नीलम के कटोरे से भरे गगाजल के समान निर्मल, राज-

सिक अवस्था मे यह सोने के कटोरे मे भरे दूध के समान तथा तामसिक अवस्था मे तम से आक्रात होकर धूमिल हो जाता है। इसमे से समस्त देह की तथा प्राणो की तृप्ति और शाति देने वाली वाष्प सी उठकर फैलती रहती है। यह जल तत्व प्रधान है। कफ, शुक्र आदि जलीय विकारो से इसका विशेष सम्बन्ध है। वस्तुत यहा पर नीलिमा लिए हुए श्वेत गाढा सा द्रव 'शुक्र' भरा हुआ है अत इस 'वीर्य कोश' पर सचय करने से 'ब्रह्मचर्य साधन' मे विशेष सहायता मिलती है। यद्यपि यह चक्र भी मलाक्रात तमप्रधान अपान प्राण के प्रदेश मे ही है। फिर भी इस पर दिव्य वैराग्ययुक्त भावना का प्रकाश डालकर साधक काम विजयी बन सकता है।

इस चक्र की स्थिति लिंग स्थान के सामने है। इसका कमल सिन्दूर वर्णवाले छ दलो का है। दलो पर व, भ, म, य, र, ल की स्थिति मानी गई है। इस चक्र का यन्त्र जलतत्व का द्योतक है और अर्धचन्द्राकार है। इस अर्ध चन्द्राकार यन्त्र का रग चन्द्रवत शुभ्र है। बीज व है और बीज का वाहन मकर है। यन्त्र के देव तथा देव शक्ति विष्णु और राकिनी है तथा षड्दल स्वाधिष्ठान मे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्य या मापादि षट्कञ्चुक रूप म वह छ प्रकार का हो जाता है। ये दश विन्दु ही ससार कारण विन्दु है। ये शरीरस्थ दो चक्र ही उपर्युक्त दश विन्दु रूप हो जाते है।

३ मणिपूर-चक्र या नाभि-चक्र भी कहते है। यह नाभि प्रदेश मे मेरुदण्ड के सम्मुखी भाग मे है। 'मानव-देह का केन्द्र विन्दु नाभि है।' यहा पर सहस्रो नाडिया आकर मिलती एव सहस्रो ही यहा से निकल कर ऊपर नीचे सभी प्रत्यङ्गो को जाती भी हैं। जिनसे नाडियो का एक चक्र सा बन जाता है। यह केन्द्र अग्नितत्व प्रधान है। आकार रश्मियो से निकलते सूर्य के समान है। गर्भ-स्थभ्रूण शिशु पिण्ड को पालक रस इसी केन्द्र से मिलता है जिससे गर्भ बढता है। आकार मे किरण की आभा के समान और मध्य मे रक्तवर्ण और चतुर्दिक से नीलाभ शुक्ल रश्मि जाल से घिरे सूर्य विम्ब के समान है।

अब यह स्पष्ट है कि इस केन्द्र के मार्ग से देह मे प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर का विज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यही भाव—

"नाभि चक्रे कायव्यूह ज्ञानम्" (यो० ३-२९) सूत्र का है। "मणिपूर" नाम से भी इसकी विशेषता झलकती है नाभि के ठीक नीचे हमारी छोटी आते है जहा पर भोजन का परिपाक भी होता है। यहा पर 'समान प्राण' की सीमा आकर मिलती है जो जलतत्व प्रधान है। और पाचक रसो मे जल मिलाकर उन्हे कार्यशील बनाता है। इसी चक्र मे इच्छाजन्य अभिघात से शब्द "परा" नाम अव्यक्त स्वरूप प्रकट होता है। 'परा' शब्द का ध्यान 'नाभि चक्र' मे किया जाता है। इससे आगे 'पश्यन्ती' स्वरूप का ध्यान हृदय मे माध्यमा का विशुद्ध चक्रकण्ठ मे होता है। वैखरी' का ध्यान शब्दोच्चार है। 'भुवन-ज्ञान सूर्य सयमात्' (योग ३-२६) सुत्र का अर्थ किसी-२ पिङ्गला सूर्यनाडी में सयम करना ऐसा किया है किसी ने सूर्य का अर्थ सुषुम्ना नाडी भी किया है। और व्यास ने तो अनेक भुवनो के ज्ञान का भाष्य किया है।

मणिपूर तथा हृदय चक्र के मध्य मे 'सूर्य' और 'चन्द्र' नामक चक्र है ऐसी मेरी मान्यता है।

४ सूर्य चक्र—नाभि के कुछ ऊपर दक्षिण भाग जिगर या यकृत मे सूर्य चक्र है। यहअग्नि तत्व प्रधान है। जल तत्व प्रधान 'समान प्राण' के कार्य क्षेत्र मे सूर्य और समान प्राण की सहायता से 'सूर्य-चक्र' भुक्त-पीत आहार के परिपाक मे सहायता करता है। सूर्य विम्बवत होता है।

५ चन्द्र चक्र—यह चक्र नाभि से कुछ ऊपर वाम भाग प्लीहा या तिल्ली मे है। इसका 'पैंक्रियाज' नामक रस चन्द्र चक्र का रस है। जो आमाशयिक रस, जठर रस तथा पित्त रसो से मिलकर हमारे भोजन का परिपाक करता है। इस परिपाक मे 'समान प्राण' इन रसो का प्रेरक होकर परम सहायता देता है। यहा पर इस समान प्राण की रस विभाज नतथा रस प्रेरक शैली का साक्षात करे और यह देखे कि आगे भी हृदय आदि अङ्ग प्रत्यङ्गो को किस रूप मे यह रस प्रदान करता है। इसका रग चन्द्र विम्बवत दीखता है।

यह मणिपूर चक्र नाभि प्रदेश के सामने मेरुदण्ड के भीतर स्थित है। इसका कमल नील वर्ण वाले दस दलो का है। और इन दलो पर ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ अक्षरो की स्थिति मानी गई है। इस चक्र का यत्र त्रिकोण है जो अग्नि तत्व द्योतक है। इसके तीनो पार्श्व

मे द्वार के समान तीन 'स्वस्तिक' स्थित है। यन्त्र का रग वाल रवि सदृश है। बीज र है और वीज का वाहन मेप है यन्त्र के देव और शक्ति वृद्धि तथा लाकिनी है। मूलाधार के चतुर्दल और स्वाधिष्ठा के षट् दल उन दोनो प्रकार के दलो का मिश्रण ही नाभि प्रदेश के दसदल मणिपूर नामक चक्र मे होता है।

— नाभि टलने के स्थान भेद से लक्षण—

नाभि टलना, नाक टलना, नस जाना, धरड डिगना आदि। इस रोग मे प्राय मल अम्लीय होता है। कई वार सग्रहणी के रोगी जैसी स्थिति हो जाती है। परन्तु मल झागदार नही होता है। मल त्याग के समय पट् पट् पट् ट् ट् ट् ट् की आवाज होती है जो निश्चय ही धरण डिगने का रोग है। यह रोग पुरानी कोष्ठवद्धता के रोगियो को अचानक अतिसार की शिकायत होने पर भी देखा गया है। अतिसार, पेचिश आदि रोग के रोगी को नाभि का परीक्षण करने पर स्थनच्युति स्पष्ट परिलक्षित होती है और योगीजन विना औषधि नाभि के माध्यम से पेचिस के रोग को ठीक कर देते है।

कारण भेद से यह लक्षण तीन प्रकार के होते हैं जिसके प्राथमिक लक्षण अलग-२ और अन्तिम लक्षण समान होते है—

१ जव नाभि नीचे को हटती है तो मीठा-मीठा दर्द और दस्त अधिक होते है। २४ घण्टे वाद दस्तो मे खून का आना प्रारम्भ हो जाता है और निरन्तर वढता ही जाता है।

२ जब दाये या वाये हटती है तो इसके सभी लक्षण न० १ के अनुसार मिलते जुलते होते है।

३ जव नाभि ऊपर को हटती है तो पेट दर्द होता है, दस्त नही आते कव्ज अधिक होजाती है।

कारण—दौडना, उछलना फुटवाल, वालीवाल आदि खेल, घुड सवारी या ऊवडखावड रास्ते मे वना या टैक्टरो मे सफर करना, वजन उठाना, खड्डे या नाली में कूद-कर लाघना आदि के कारण झटका लगने से यह रोग पैदा हो जाता है। लघु अन्त्र व उदर की पुरानी वीमारी होने से अतिसार, पेचिस, अम्लपित्तादि, अनाडी व्यक्तियो से वलपूर्वक उदर प्रदेश को मलवाने से नाजुक मिजाज या परिश्रम न करने वाले व्यक्ति को थोडा सा परिश्रम करने से भारी वस्तुओ को वलपूर्वक उठाने से, कूदने फादने या गड्ढे मे पैर चले जाने से नाभि हट जाती है।

दाहिने हाथ से भारी वस्तु उठाने पर यह स्पन्दन नाभि से नीचे वायी तरफ, वायें हाथ से उठाने पर यह स्पन्दन नाभि से नीचे दाहिनी ओर, दाहिने पैर के गड्ढे मे जाने से वायी ओर ऊपर, वाये पैर के गड्ढे के जाने पर दाहिनी ओर ऊपर यह स्पन्दन अनुभव होता है। दोनो पैर एक साथ गड्ढे मे जाने पर यह स्पन्दन नाभि के ठीक ऊपर होता है। दोनो हाथो से वलात भारी वस्तुये उठाने पर यह स्पन्दन नाभि के सही नीचे की ओर परि-लक्षित होता है। प्राय देखा गया है कि वाल्यावस्था मे ही अनेक कारणो से नाभि खराव हो जाती है। खेल कूद करते समय अथवा सीढी से उतरते समय या एक हाथ से अथवा दोनो हाथो से अत्यधिक वोझ उठाने पर नाभि ऊपर को चढ जाती है। दाये वाये तथा तिरछी नाभि टलने का एक मात्र यही कारण है। एक पैर पर ही अक-स्मात भार अथवा झटका पडता हे। यह अधिकतर कूदने से हो जाता है। अनुभव मे आया है कि प्राय पुरुषो की नाभि वायी ओर, स्त्रियो की नाभि दायी ओर हटती है।

नाभि परीक्षा—

पुरुषो मे नाभि परीक्षा—

सर्व प्रथम नाभि हटने वाले रोगी को सीधा उत्तानासन से जमीन पर लिटा लेना चाहिए। फिर एक धागा लेकर उसका एक सिरा परीक्षक उसकी नाभि पर और दूसरा शिरा स्तन की कर्णिका या चुचुक की घुडी पर रक्खे। तत्पश्चात नाभि चक्र पर हाथ स्थित रखते हुए ही दूसरे सिरे को पुन स्तन की दूसरी कर्णिका या चुचूक की घुडी पर रक्खे। यदि दोनो भागो का अन्तर समान ही हो तो समझ ले कि नाभि मण्डल ठीक है। अगर नाप मे कुछ भी कम या ज्यादा मालूम पडे तो समझना चाहिए कि नाभि मडल खराव है। अर्थात नाभि टली हुई है।

स्त्री की नाभि परीक्षा—

पहले स्त्री को उत्तानपादासन करावे। फिर शवासन मे लिटाकर दोनो पावो की एडियो को आपस मे मिलाते हुए पजो की यथासाध्य फैला दे। तत्पश्चात एक धागा लेकर नाभि चक्र की घुडी पर एक सिरे को स्थित रखते

हुये दूसरे सिरे को वाये पैर के अ गूठे पर ले जाये । फिर उसी सिरे को उसी स्थान से पकड़ते हुए दाये अ गूठे पर उसी प्रकार ले जाये। यदि दोनो अगूठे के माप मे अन्तर ज्यादा या कम हो तो समझना चाहिए कि नाभि हट गई है।

विकृत नाभि से उत्पन्न दोष—

यदि किसी की नाभि ऊपर टल गई हो तो तुरन्त ही कब्ज हो जाता है। गैस वनने लगेगी, हृदय के रोग हो जायेगे, दिल मे धडकन का रोग हो जायेगा। यदि नाभि टल जायेगी तो मल इतना कडा हो जायेगा कि अ गुली से निकालने पर मुश्किल से निकल पायेगा। नाना प्रकार के रोग शरीर मे उत्पन्न हो जायेगे। आयुर्वेद मे लिखा है—'सर्व रोगा मलाश्रया'

इसी प्रकार यदि नाभि नीचे की ओर टल गई हो तो पतले दस्त आने लगते है। भोजन नही पचता है। पेट मे दर्द होने लगता है। स्वप्नदोष अधिक होने लगते है। पेट मे इस प्रकार की गडगडाहट होने लगती हे जो वाहर तक सुनाई देती है। यदि नाभि वगल की ओर हट गई हे तो पेट मे तीव्र पीडा आरम्भ हो जाती हे। जो किसी दवा तथा अन्य उपचार से ठीक नही होती। परन्तु नाभि मण्डल को यथास्थान करने पर तुरन्त ही लाभ होता है। इसी प्रकार महिलाओ की नाभि टल जाने से उन्हे नाना प्रकार के रोगो का दुख उठाना पडता है जैसे श्वेत प्रदर, कष्टार्तव, अल्पार्तव, ऋतुधर्म मे गडवडी, मासिक स्राव के रग मे अन्तर और नाना प्रकार के गर्भाशय के रोग हो जाते है। जिसके परिणामस्वरूप अङ्गहीन, अल्पायु, सन्तान का होना तथा वाझपन आदि और भी अनेक रोग शरीर मे प्रवेश कर जाते है। नाभि की खरावी के कारण असमय मे वाल पक जाते हे। पायरिया आदि रोग हो जाते है। नेत्रो की दृष्टि कमजोर हो जाती है।

लक्षण अन्तिम अवस्था मे पहुँचने के वाद तीनो दशाओ मे रक्त मिले दस्त आते है। अङ्ग-प्रत्यग भारी, सारे शरीर मे पीडा, हल्का ज्वर, रक्त की कमी आदि-२।

रक्त आने का कारण क्योकि वार-वार दस्त जाने से और रोगी के कांखने से आतो मे जख्म हो जाते है। जिसमे रक्त आना प्रारम्भ हो जाता है। भूख विल्कुल नही लगती है और सारे शरीर मे टूटने जैसी पीडा रहती है। प्रतिदिन १० से १२ दस्त आते है। दस्तो मे मल का भाग कम कचलहू अधिक आता है। पेट मे हर समय मीठा-मीठा दर्द बना रहता है। दस्त होते समय कांखना अधिक पडता है।

इस रोग के चरण सीमा तक पहुँचने से भूख लगनी वन्द हो जाती है। अगर रोगी कुछ खाये तो पचता नहीं वरना दस्तो के साथ चला जाता है। इस कारण रक्त रस की कमी हो जाती है और जिगर वढ जाता है। वुखार हर समय रहने लगता है। वह नाभि च्युति मनुष्य स्त्री वालको की का कारण वनती है।

उपचार—

१ माजूफल और फिटकरी का लेप करें।

२ होम्योपैथिक की पल्सेटिला ३० × का सेवन करे।

३ वैठ कर पैर की एडिया वारी-२ मे मु ह तक लाना।

४ आसनो मे अ गुष्ठपादासन, धनुरासन, उष्ट्रासन, उत्तानपादासन, चक्रासन, मत्स्यासन, सुप्तवज्रासन आदि

५ नकछिकनी १ ग्राम २ रत्ती गुड के साथ गोली वनाकर पानी से निगलवाये लाभ होगा।

६ पेचिस मरोड मे छोटी दुधी का रस ३० ग्राम रस मे २ या ३ ग्राम काला नमक डालकर रोगी को पिलावे। मरोड पेचिस मे लाभ होगा।

७ रक्त या खूनी पेचिस मे नागरमोथा २ तोला, सौंफ २ तोला, वेलपत्र की गिरी १ तोला तीनो को एक पाव पानी मे पकावे। एक छटाक पानी शेष रहने पर छानकर १ तोला घी मिला कर पिलादे। आत्रो के जख्म ठीक होगे और खून वन्द हो जाता है।

८ होम्योपैथिक की दवा सीपिया २०० × पोटेन्सी की दी जाती है। नाभि च्युति मे लाभ होता है। ★



❋ परिणाम शूल—एक अध्ययन ❋

वैद्य अविनाश बी झोपे एम डी (आयु०), विभागाध्यक्ष—कायचिकित्सा
श्री बाला हनुमान आयु० महाविद्यालय, लोदरा ता वीजापुर (महेसाना गुज



उत्तर गुजरात मे लोदरा स्थित श्री हनुमान जी महाराज केसम्मान मे आयुर्वेद महाविद्यालय चलाया जा रहा है। इस कालेज मे विद्वान एवं सशोधनकर्त्ता वैद्य श्री अविनाश जी झोपे काय चिकित्सा विभाग के अध्यक्ष हैं। आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित हैं। आपके लेख अनेक पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते हैं। आप कुशल निदानज्ञ एव चिकित्सक हैं—अत. रोग पर कुशलतापूर्वक निदान दोषादि भेद को जान कर अनुसन्धानात्मक चिकित्सा देते हैं, जो आपकी विशेषता है। धन्वन्तरि से आपका पुराना सम्बन्ध है। धन्वन्तरि को अपना ही मान आपने यहां प्रचलित 'व्याधि परिणाम शूल' पर अपना चिकित्सकीय अनुभूत अध्ययन प्रेषित किया है। जो उपयोगी एवं मार्गदर्शक होगा। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

परिणामशूल एक ऐसी व्याधि है जिसमे आतुर बाहर से पूर्णत स्वस्थ लगता है किन्तु अन्दर से वह शूल से पीडित होता है। "भुक्ते जीर्यति यच्छूल तदेव परिणामजम्" ऐसी उसकी परिभाषा भी बताई गई है। अर्थात् भोजन के परिपाक काल मे जो शूल होता है उसे परिणाम शूल कहते है। भोजन की पच्यमानावस्था या परिणमन काल मे पित्त की प्रधानता रहती है। परन्तु इस परिणाम शूल मे त्रिदोष की महत्ता है तथा इसमे वायु की प्रधानता है और भोजन की पच्यमानावस्था मे ही होना इसकी अनिवार्यता है।

निदान—

परिणाम शूल के स्वतन्त्र निदान शास्त्र मे वर्णित नही है। रूक्ष पदार्थो का अति सेवन करना, अधिक व्यायाम अत्यधिक मैथुन करना, रात्रि जागरण, अति शीतल जलपान, अध्यशन, विरुद्ध भोजन, शुष्क शाक सेवन करना, मल-मूत्र, शुक्र तथा वायु का वेग धारण करना, शोक, उपवास आदि कारणो से प्रकुपित वायु इसमे कारण बनती है। विशेषत नवयुवक व्यक्ति जो अपने मन मे उच्च ध्येय रखते है और उनको पूरा करने के लिये उसे अधिक श्रम करना पडता है ऐसे व्यक्ति को परिणामशूल होने की सभावना रहती है। ऐसे व्यक्ति अपने उद्देश्यो को पूरा करने के लिये अपनी शक्ति से अधिक कायिक, वाचिक तथा मानसिक श्रम करते है। इससे उनके भोजन मे भी अनियमितता रहती है। तथा अत्यन्त शीघ्रता से खाने वालो को भी यह हो सकता है। कुछ व्यवसाय भी इसमे कारणभूत होते है जैसे कि बस ड्राइवर्स, वेटर्स, मेडिकल प्रेक्टिशनर्स तथा उच्च स्तर के आफीसर्स भी सजोगोवशात् नियमित नही रह पाते है और इस व्याधि का शिकार होते है। जिन्हे मानसिक क्षोभ या उत्तेजना रहती है ऐसे व्यक्ति भी इससे पीडित होते है और इसके कारण परिणाम शूल के आवेग ऐसी अवस्था मे आते रहते है।

सम्प्राप्ति—

उपरोक्त निदानो के सेवन से प्रकुपित वायु स्थान विशेष मे स्थित होने से भोजन के परिणमन काल मे प्रबल होकर कफ और पित्त को आवृत करके शूल को उत्पन्न करता है। भोजन के परिपाक काल मे होना उसका मुख्य लक्षण है। उसीसे उसे परिणाम शूल नाम से जानते हैं। तन्त्रान्तर मे सम्प्राप्ति इस प्रकार बताई है—

स्वस्थान (आमाशय) से च्युत कफ जब विकृत पित्त से सयुक्त होकर वायु को भी क्षुब्ध कर भोजन की पच्यमानावस्था मे कुक्षि, उदरपार्श्व, नाभि, बस्ति प्रदेश, मध्यवक्ष तथा पृष्ठमूल (कटि) प्रदेश मे से किसी एक अथवा अनेक अथवा सभी प्रदेशो मे जिस शूल को उत्पन्न करता है, और जो भोजन करने से, वमन होने से या अन्न का पूर्ण परिपाक होने पर शात हो जाता है, चावलो को खाने से

बढता है उसे परिणाम शूल नामक भयानक रोग समझना चाहिए। यह रसवाही स्रोतसो की विकृति के कारण होता है। इसी को कुछ लोग अन्नद्रव शूल पक्तिदोष पक्तिशूल या अन्नविदाह शूल आदि भी नाम देते है। यह तीनो दोषो की विकृति का परिणाम ही है।

लक्षण –

स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे यह आठ गुना अधिक मिलता है। सामान्यत २० से ३५ वर्ष की आयु मे इस शूल की शुरुआत होती है। इस शूल के आवेग आते रहते है और ये आवेग भोजन की अनियमितता, अधिक श्रम, चिन्ता तथा क्षोभ आदि कारणो से कम अधिक हुआ करते हैं। इसमे आमाशय के स्थान मे शूल होता है जिसमे पीडन अथवा ऐंठन अधिक रहती है। भोजन करने के बाद ३-४ घटे पर जब आमाशय रिक्त होता है अथवा रिक्त होने लगता है तब इसकी शुरुआत होती है। इसी शूल के कारण रात्रि मे दो बजे के आसपास रोगी को शूल शुरु होता है और अन्न लेने पर तुरन्त शात हो जाता है। इस प्रकार यह शूल दिन मे तथा रात्रि मे नियमित समय पर हुआ करता है। कभी-कभी तीव्र शूल होने पर वमन हो जाता है और इससे रोगी को तुरन्त शाति मिलती है। शूल पीछे की ओर पृष्ठ प्रदेश मे प्रसारित होता है। कभी-कभी आन्त्रिक रक्तस्राव होता है जिससे पुरीष मे रक्तदर्शन होता है। रोग अधिक बढने पर आन्त्र मे विदीर्णता होने की सभावना रहती है।

प्रकार—

१ वातिक परिणामशूल—उदर का फूलना गुडगुड करना, मल और मूत्र का अवरोध होना, किसी कार्य मे मन न लगना और शरीर का कापना ये वातिक परिणाम शूल के लक्षण है। यह शूल स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थो के सेवन से शात होता है।

२ पैत्तिक परिणामशूल—तृष्णा, दाह, बेचैनी तथा अधिक पसीने का आना, कटु, अम्ल तथा लवण रस युक्त पदार्थों के सेवन से शूल की वृद्धि होना तथा शीतोपचार से शाति होना ये पैत्तिक परिणाम-शूल के लक्षण है।

३ कफज परिणाम शूल—वमन, उत्क्लेश, मूर्च्छा, चिरकाल तक मन्द-मन्द पीडा होना तथा कटु और तिक्त पदार्थों से शूल शात होना कफज परिणाम शूल के लक्षण है।

साध्यासाध्यता –

त्रिदोषज परिणाम शूल असाध्य होता है। जिस परिणाम शूल से रोगी के मास-बल और अग्नि नष्ट हो जाय उसे असाध्य समझें। बारबार पुनरावर्तन होने पर औषधि चिकित्सा से यह असाध्य बन जाता है। रक्तस्राव या विदीर्णता की अवस्था मे शस्त्र चिकित्सा करने पर साध्य हो सकता है।

चिकित्सा –

परिणाम शूल की शाति के लिये सर्व प्रथम लघन करके तत्पश्चात वमन और विरेचन कराना चाहिए।

अनुभूत चिकित्सा–योग—

(१) शतावरी चूर्ण, आमलकी रसायन, यष्टिमधु चूर्ण तीनो १-१ ग्राम, गुडूची सत्व ५०० मि ग्रा, प्रवाल पचामृत ५०० मि.ग्रा सब मिलाकर ३ बार दूध से।

(२) शिवाक्षार पाचन चूर्ण २ ग्रा, कटुका १ ग्रा, स्वर्जि क्षार ५०० मि ग्रा सुबह-रात्रि गर्म जल से।

(३) त्रिफला घृत २० मि लि. प्रात साय गर्म दूध से

(४) शख वटी २ गोली अथवा अग्नितुण्डी वटी दो गोली भोजनोत्तर प्रात साय गरम पानी से।

वात प्रधान लक्षण अधिक होने पर उपरोक्त योगो के साथ निम्न योग देवें—

१ दशमूलारिष्ट २० मि लि समभाग पानी मिलाकर प्रात· साय भोजनोत्तर। २ बलातैल से सर्वाङ्ग शरीर पर अभ्यग करे।

पित्तप्रधान लक्षण अधिक होने पर उपरोक्त योगो के साथ निम्न योग देवें—

१ अमृतारिष्ट २० मि लि समभाग पानी मिलाकर प्रात साय भोजनोत्तर। २ चदन बला तैल से सर्वाङ्गि शरीर पर अभ्यङ्ग करे।

कफप्रधान होने पर साथ मे निम्न योग देवे।

(१) जीरकाद्यरिष्ट २० मि लि समभाग पानी मिलाकर प्रात -साय भोजनोत्तर।

पथ्यापथ्य—अन्न तथा जल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। तले पदार्थ भोजन मे नही लाने चाहिये। दूध का प्रयोग हितकर है। व्यायाम, मैथुन, मद्य, लवण कटु रसयुक्त पदार्थ, मल मूल के वेगो को रोकना, शोक, क्रोध तथा द्विदल धान्य का त्याग करना चाहिये। ❖

परिणाम शूल

[आमाशय-ग्रहणी व्रण]

आचार्य राजकुमार जैन दर्शनायुर्वेदाचार्य,
एम ए, एच पी ए
प्रथम तल, १ ई/६ स्वामी रामतीर्थ नगर,
नई दिल्ली–११००५५





माधव निदान मे "परिणाम शूल" का निम्न लक्षण प्रतिपादित है—

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायु सन्निहितस्तदा ।
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्वली ॥
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ।
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥

अर्थात् रूक्ष आदि अनेक प्रकोपक कारणो से प्रकुपित वायु स्थान विशेष मे स्थित होने से भोजन के परिणमन काल मे प्रबल होकर कफ और पित्त को आवृत करके शूल को उत्पन्न करता है। यह शूल भोजन के परिपाक काल मे होता है, अत इसे परिणाम शूल कहते है। सक्षेप मे यही उसका लक्षण है।

भोजन की पच्यमानावस्था या परिणमन काल मे पित्त की प्रधानता रहती है। पैत्तिक शूल भी प्राय इसी काल मे होता है। इस प्रकार यद्यपि पैत्तिक शूल और परिणाम शूल मे कोई भेद प्रतीत नही होता, तथापि परिणाम शूल मे पित्तज शूल के समान शूल के प्रकोप व शान्ति के साथ दिन, रात्रि तथा ऋतु का सम्बन्ध न होने से दोनो मे भिन्नता है। इसके अतिरिक्त परिणाम शूल की एक विशेषता यह भी है कि यह शूल केवल भोजन की पच्यमानावस्था मे ही होता है। पैत्तिक शूल अन्य अवस्थाओ मे भी हो सकता है।

अन्य आचार्यो ने परिणाम शूल की सम्प्राप्ति और लक्षण के विषय मे जो विवेचन किया है उसके अनुसार स्वस्थान (आमाशय) से च्युत हुआ कफ जब (विकृत) पित्त से सयुक्त होकर वायु को भी क्षुब्ध कर भोजन की पच्यमानावस्था मे कुक्षि, उदर, पार्श्व, नाभि, वस्ति प्रदेश, मध्यवक्ष तथा पृष्ठमूल (कटि) प्रदेश मे से किसी एक अथवा अनेक अथवा सभी प्रदेशो मे जिस शूल को उत्पन्न करता है और जो भोजन करने मे वमन होने या अन्न का पूर्ण परिपाक होने पर शान्त हो जाता है, चावलो के खाने से बढता है उसे परिणाम शूल नामक भयकर रोग समझना चाहिए। यह रसवाही स्रोतो की विकृति के कारण होता है। इसी को कतिपय विद्वान अन्नद्रव शूल, पक्ति दोष, पक्ति शूल या अन्न विदाह शूल भी कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि परिणाम शूल प्राय तीनो दोषो की विकृति के कारण होता है। उदरगत वात विकृति के कारण ही वस्ति तथा पृष्ठ आदि प्रदेशो मे भी शूल की अनुभूति होती है। चूं कि यह शूल पित्त स्थान मे अन्न के पहुँचने पर उससे क्षुब्ध हुई वायु

के कारण होता है, अत यह परिपाक काल तक ही सीमित रहता है और भोजन करने के तत्काल बाद वमन करने या भोजन के परिपाक होने पर स्वत ही इस शूल की निवृत्ति हो जाती है। कुछ विद्वानो के अनुसार परिणाम शूल और अन्नद्रव शूल मे कोई अन्तर नही है। किन्तु ऐसी बात नही है, दोनो मे पर्याप्त लक्षण भिन्नता पाई जाती है। अत दोनो को एक ही नही माना जा सकता।

निदान—

परिणाम शूल वातादि भेद से पाच प्रकार का होता है। अत शूलकारक हेतु भी वातादि प्रकोपक भिन्न-२ होते हैं।

वातादि परिणाम शूल के हेतु—

(१) अति व्यायाम, अति मैथुन, अति शीतल जलपान।

(२) सवारी पर अधिक चढना।

(३) रात्रि जागरण।

(४) अत्यधिक रूक्ष पदार्थो का सेवन।

(५) आघात।

(६) कषाय तथा तिक्त रस-प्रधान द्रव्यो का अधिक मात्रा मे सेवन।

(७) मल, मूत्र, शुक्र तथा वायु का वेग धारण।

(८) शोक करना।

(९) उपवास अधिक करना।

(१०) अधिक बोलना, अधिक हसना आदि।

पैत्तिक परिणाम शूल के हेतु—

(१) क्षार, अति तीक्ष्ण, उष्ण एव विदाही पदार्थो का अधिक सेवन करना।

(२) तैल, सेम, सरसो, तिल की खली तथा कुलथी के यूष का अधिक दिनो तक सेवन।

(३) चटपटे और खट्टे पदार्थो का अधिक सेवन।

(४) काजी और मद्य का अधिक सेवन।

(५) अधिक क्रोध करना, अग्नि तापना, धूप का अधिक सेवन।

श्लेष्मिक परिणाम शूल के हेतु—

(१) आनूप तथा जलचर प्राणियो के मास का अति सेवन करना।

(२) गन्ने का रस, उडद की पीठी, तिल की कचौड़ी, मास, दूध से बने पदार्थो का अधिक मात्रा मे सेवन।

द्विदोषज एव सन्निपातिक परिणाम शूल के हेतु—

उपर्युक्त दोषानुसार हेतुओ का सेवन करने से द्विदोषज या सन्निपातिक परिणाम शूल उत्पन्न होता है।

लक्षण—विमर्श

वातिक	पैत्तिक	श्लैष्मिक	द्विदोषज	त्रिदोषज
१ उदर का फूलना	१ पिपासा	१ वमन	दो दोषो के मिश्रित लक्षण मिलते हैं।	तीनो दोषो के मिश्रित लक्षण मिलते हैं।
२ पेट में गुड़गुड़ाहट	२. दाह	२ हृल्लास		
३ मल-मूत्र का अवरोध	३ अति स्वेद	३. मूर्च्छा		
४ काम मे मन नही लगना	४ कटु अम्ल तथा लवण रस से शूलोपशमन।	४ चिरकाल तक अल्प वेदना का अनुभव।		
५ शरीर मे कम्पन	५ उपर्युक्त लक्षणो सहित शूलानुभूति	५ कटु-तिक्त पदार्थो से शूलोपशमन।		
६ स्निग्धोष्ण पदार्थो से शूल का शमन।		६ उपर्युक्त लक्षणो सहित शूलानुभूति		
७ उपर्युक्त लक्षणो सहित शूलानुभूति।				

साध्यासाध्यता—

(१) एक दोषज शूल साध्य होता है।

(२) द्विदोषज शूल याप्य होता है।

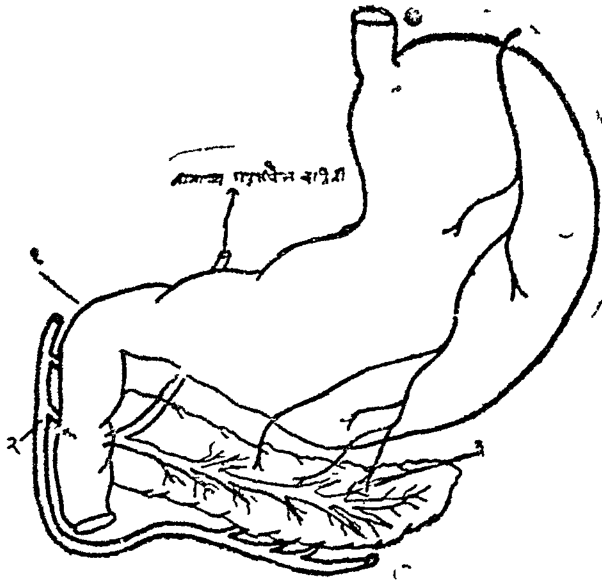
(३) अधिक उपद्रवयुक्त त्रिदोषज शूल असाध्य है।

आधुनिक विमर्श—

आधुनिक परिभाषा के अनुसार यह पेप्टिक अल्सर, गेस्ट्रिक अल्सर आदि सज्ञाओ मे व्यवहृत होता है। इन आधुनिक सज्ञाओ के द्वारा वस्तुत जिस व्याधि का बोध

होता है वह आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से प्रतिपादित मात्र परिणाम शूल नहीं है, अपितु परि॰ाम शूल लक्षणयुक्त आमाशय व्रण, ग्रहण्याशय व्रण, पक्वाशय व्रण हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर परिणाम शूल मे अन्नद्रव शूल का भी समावेश हो जाता है। अत इन सवका वर्णन एक साथ ही किया जाता है।

यह रोग मुख्यत आमाशय-ग्रहणी से सम्वन्धित है। अत आमाशय-ग्रहणी की क्रिया इसमे विशेपत प्रभावित



होती है। आमाशय मे भोजन को पचाने के लिए जो स्राव निकलता है वह आमाशयिक रस कहलाता है। इस आमाशयिक रस मे भोजन को पचाने वाले निम्न तीन पदार्थ होते है—

(१) लवणाम्ल [हाइड्रोक्लोरिक एसिड]
(२) पैपसीन
(३) रैनीन

ये तीनो पदार्थ भोजन मे मुख्यत प्रोटीन को ही पचाने का कार्य करते हैं। जव आमाशयिक रस-स्राव का आधिक्य हो जाता है तो सामान्यत यह रोग उत्पन्न हो जाता है। आमाशयिक रस का आधिक्य सामान्यत निम्न कारणो से होता है—

(१) अनेक व्यक्तियो मे सहज-स्वाभाविक रूप से आमाशयिक रस की अधिकता पाई जाती है। ऐसे व्यक्ति आमाशयिक रसाधिक्य के दुष्परिणामो से प्राय पीडित रहते पाये जाते हैं।

(२) अम्ल-कटु-तिक्त रस वाले पदार्थो का सेवन करने से आमाशय की कला उत्तेजित होती है और उसका स्राव अधिक मात्रा मे होता है। इन पदार्थो का अधिक मात्रा मे सेवन करने से उत्तेजना के स्थान पर क्षोभ होने लगता है, जिससे आमाशयिक कला मे शोथ उत्पन्न हो जाता है। शोथावस्था से आमाशय की सभी क्रियाए प्रभावित होती हैं।

(३) कतिपय मानसिक भाव जैसे—राग, द्वेप, क्रोध, चिन्ता आदि के कारण भी आमाशयिक रस का निर्माण अधिक मात्रा मे होता है।

(४) अत्यधिक मद्यपान और धूम्रपान भी आमाशयिक रसाधिक्य के प्रमुख कारणो मे है।

इन कारणो से आमाशयिक रस का निर्माण जव अधिक मात्रा मे होता हैं तो आमाशय व्रण, ग्रहणी व्रण, परिणाम शूल, अन्नद्रव शूल के होने की सम्भावना रहती है। सामान्यत स्वस्थ अवस्था मे सामान्य रूप से जव आमाशयिक रस का निर्माण होता है तो आमाशय की कला पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पडता। यही आमाशयिक रस गुरु से गुरु द्रव्यो, कठोर से कठोर मास तन्तुओ और अन्य प्राणियो की कला को हजम कर जाता जाता है। मरते समय यदि यह रस आमाशय मे विद्यमान हो, तो मृत्यु के वाद वही रस आमाशय की अपनी कला को ही खा जाता है। जीवित अवस्था मे आमाशयिक रस कितना ही प्रवल या तीक्ष्ण क्यो न हो, अपनी आमाशय की कला पर कोई प्रभाव नही डालता। इसका मुख्य कारण है आमाशय मे श्लेष्मा की उपस्थिति। आमाशय मे निर्मित श्लेष्मा सदैव आमाशयिक रस से कला की रक्षा करता है। किसी कारणवश यदि श्लेष्मा का निर्माण न हो या अल्प मात्रा मे उसका निर्माण हो तो आमाशयिक रस उसे प्रभावित किये विना नही रहता और ऐसी स्थिति मे वहा व्रण होने की सम्भावना रहती है। सामान्यत कला मे दुर्वलता तव आती है जव किसी कारणवश कला की धमनी का अवरोध हो जाता है। धमनी का अवरोध होने से वहा रक्तविहीनता हो जाती है, जिससे वहा की कला मर जाती है।

जीर्ण आमाशय कला शोथ मे भी कालान्तर मे अति क्षीण हो जाती है और वह आमाशयिक रस का शिकार हो जाती है, जिससे उसमे व्रण वन जाता है।

कई बार निरन्तर गुरु, तीक्ष्ण और कटु पदार्थो का सेवन करते रहने से, अधिक मात्रा मे मद्यपान करने से या खाली पेट मद्यपान करने से, अत्यधिक धूम्रपान करने से आमाशय की कला सदैव क्षुब्ध रहती है, जिससे उसकी सहनशक्ति का ह्रास होता है और कालान्तर मे वह दुर्बलता का शिकार होकर उसमे व्रण बनने की सम्भावना रहती है।

साधारणत आमाशयिक रस का निर्माण तब होता है जब आमाशय मे आहार-द्रव्य पहुँचता है, किन्तु किसी व्यक्ति मे रस-निर्माण या रस-स्राव की मात्रा इतनी अधिक होती है कि आमाशय मे भोजन रहे या न रहे, रस का निर्माण होता ही रहता है। ऐसे व्यक्तियो मे जब पेट खाली होता है (विशेषत रात्रि मे) वह रस आहार मिले बिना ही आमाशय की कला के सम्पर्क मे आता रहता है। यह भी एक मानव-शरीर क्रिया या प्रकृति का विधान है कि जहा आमाशयिक रस का निर्माण अधिक मात्रा मे होता है वहा श्लेष्मा का निर्माण अल्प होता है। श्लेष्मा ही मुख्यत आमाशयिक रस से कला की सुरक्षा मे सहायक होती है। श्लेष्मा का निर्माण कम होने और आमाशयिक रस का निर्माण अधिक होने की स्थिति मे आमाशय की कला मे व्रण होने की प्रबल सम्भावना रहती है।

उपर्युक्त विवरण मे यह स्पष्ट है कि जो व्यक्ति स्वभावत पित्त प्रकृति या तीक्ष्णाग्नि वाले होते है और जिनके आमाशय मे स्वाभाविक रूप से श्लेष्मा-द्रव की मात्रा अल्प और एसिड तथा पेप्सिन की मात्रा अधिक उत्पन्न होती है, उन्हे यह रोग होता है। इस प्रकृति के व्यक्तियो का आमाशय भोजन करने के बाद शीघ्र ही खाली हो जाता है। क्योकि इसमे आमाशयिक रस-स्राव की अधिकता के साथ आमाशय की गति भी अधिक तेज हो जाती है। अत इनके आमाशय की श्लेष्मा कला पर आमाशयिक रस (एसिड और पेप्सिन) का पाचक प्रभाव होकर क्षत या व्रण हो जाता है। पेप्सिन के द्वारा उत्पन्न होने के कारण यह व्रण पेप्टिक अल्सर कहलाता है। किन्तु यह आवश्यक नही है कि एसिड और पेप्सिन की मात्रा अधिक होने और श्लेष्मा-द्रव की मात्रा अल्प होने पर व्रण हो ही जावे। जब तक आमाशय की कला स्वस्थ रहती है तब तक वह एसिड और पेप्सीन द्वारा अभिभावित नही हो सकती और जब तक अभिभावित नही होती तब तक उसमे क्षत या व्रण नही हो सकता। अत जब किसी कारणवश आमाशय की श्लैष्मिक कला रुग्ण हो जाती है, उसके पोषण मे न्यूनता आ जाती है और उसकी प्राणशक्ति का ह्रास हो जाता है। वह गल जाती (Necrosed) है, तब ही उसका कोई अश पेप्सिन द्वारा अभिभावित होता है।

इस प्रकार आधुनिक दृष्टि से परिणाम शूल वस्तुत एक व्रण है जो आमाशय की श्लैष्मिक कला मे होता है। इसलिए इसे आमाशय व्रण या ग्रहणी व्रण भी कहा जाता मे। किन्तु मूलत यह पेप्सिन नामक आमाशयिक रस के द्वारा होने से यह पेप्टिक अल्सर कहलाता है।

कारण—

ऊपर जो इस रोग का परिचयात्मक विवरण दिया गया है उसमे अप्रत्यक्षत इस रोग के कारणो का उल्लेख भी किया जा चुका है। फिर भी यहा नैदानिक दृष्टि से इस रोग के कारणो का उल्लेख करना अप्रासगिक नही होगा।

(१) विक्षोभक गुण वाले आहार का निरन्तर सेवन करते रहने से आमाशय की श्लैष्मिक कला मे शोथ हो जाता है। यह शोथ यदि निरन्तर कई दिनो तक बना रहे तो कालान्तर मे वह दुर्बल हो जाती है और उस पर आमाशयिक रस (एसिड या पेप्सीन) का पाचक प्रभाव होकर उसमे क्षत या व्रण हो जाता है।

(२) प्रतिदिन अधिक मात्रा मे आहार लेने, अत्यन्त गुरु पदार्थो का सेवन करने या शीघ्रतापूर्वक बिना चबाये ही भोजन करने से भी आमाशय की श्लैष्मिक कला पर विक्षोभक प्रभाव पडता है, जिससे कालान्तर मे उससे क्षत या व्रण होने की सम्भावना रहती है।

(३) लगातार गुरु, उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल और कटु द्रव्य जैसे—अचार, चटनी, मद्य, सिरका, मसाले आदि का अधिक मात्रा मे सेवन करने से आमाशय की श्लैष्मिक कला के सतत विक्षोभ की स्थिति बनी रहती है जो कला मे शोथ उत्पन्न कर क्षत या व्रण के लिए अनुकूल स्थिति का निर्माण करती है।

(४) चाय और काफी का अधिक सेवन भी आमाशय व्रण का एक कारण हो सकता है। क्योकि निकोटीन

और कैफीन नामक पदार्थ आमाशयिक रस प्रवर्तक तथा उत्तेजक होते हैं।

(५) तम्बाकू का अधिक सेवन भी चिरस्थायी आमाशय शोथ का एक कारण है।

(६) दात, नासिका और गले मे होने वाले चिरस्थायी शोथ या व्रण के कारण भी आमाशय की श्लैष्मिक कला मे शोथ उत्पन्न हो जाता है। क्योकि मुख के किसी भी भाग मे स्थित शोथ या व्रण का पूयद्रव टपक कर आमाशय मे पड जाता है तो अपने विक्षोभक प्रभाव से वहा शोथ उत्पन्न कर देता है।

(७) खाली पेट मे भी यदि आमाशयिक रस का निर्माण होता है, तो वह भी अपने दुष्प्रभाव के कारण आमाशय व्रण उत्पन्न कर सकता है। क्योकि रात के समय जब पेट खाली हो जाता है तो श्लैष्मिक कला की दुर्बलता या रुग्णता के कारण उसके किसी अश पर आमाशयिक रस का पाचक प्रभाव होकर वहा क्षत या व्रण हो सकता है।

(८) मानसिक आवेग या उत्तेजनात्मक भाव जिसका प्रभाव आमाशय की गतिशीलता और आमाशयिक रस स्राव पर पडता है, आमाशय व्रण की उत्पत्ति मे सहायक होते हैं। किसी तीक्ष्णाग्नि प्रकृति के व्यक्ति को यह रोग यदि मन्द रूप मे है, तो व्यवहार मे उसके शीघ्र ही चिन्तित, क्रुद्ध या व्याकुल हो जाने पर या मानसिक आवेशो के दुष्प्रभाव से यह रोग तीव्र रूप धारण कर लेता है।

ऊपर इस रोग के जो कारण बतलाये गये हैं, इससे यह स्पष्ट होता है कि इस रोग की उत्पत्ति मे निम्न तीन कारणो से यदि कोई एक कारण उपस्थित रहता है, तो यह रोग उत्पन्न हो सकता है—

(१) जन्मजात तीक्ष्णाग्नि प्रकृति।

(२) चिरकालिक आमाशय शोथ या आमाशय की श्लैष्मिक कला का दुर्बल रहना।

(३) मानसिक उद्विग्नता।

अन्य आहार-विहार जैसे—मद्यपान, धूम्रपान, कटु, तीक्ष्ण, अम्ल पदार्थ सेवन आदि इस रोग के सहायक कारणो से ही प्रथम मूल कारण प्रभावित होते है। बाद मे उन मूल कारणो से रोगोद्भव होता है।

आमाशय व्रण या ग्रहणी व्रण का यह रोग सामान्यत स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे अधिक होता है। इसका कारण सम्भवत यह है कि स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे मद्यपान, धूम्रपान आदि की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। बाजार मे चाट-पकौडी आदि उष्ण-तीक्ष्ण द्रव्यो के सेवन की प्रवृत्ति भी पुरुषो मे अधिक होती है। इसके अतिरिक्त सासारिक व्यवहार मे लगे रहने के कारण स्त्रियो की अपेक्षा पुरुष ही अधिकतर मानसिक अशान्ति, व्याकुलता या उद्विग्नता के शिकार रहते है। ऐसी स्थिति मे उन्हे यह रोग होना स्वाभाविक है।

लक्षण—

परिणाम शूल की यह व्याधि सामान्यत मध्यम आयु के व्यक्तियो मे होती है। विशेषत १५ से ५० वर्ष की आयु वाले पुरुष ही इस व्याधि से पीडित होते देखे गये है। प्रारम्भ मे यह रोग अज्ञात रूप मे होता है और धीरे धीरे इसकी शुरूआत होती है। कुछ समय बाद यह चिरस्थायी अजीर्ण का रूप धारण कर लेता है, जिससे छाती मे दाह या जलन की अनुभूति होती है। आधुनिक विवेचना के अनुसार परिणाम शूल प्राय तब होता है जब आमाशय या ग्रहणी की श्लैष्मिक कला मे व्रण हो। इसी लिये आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे परिणाम शूल को पेप्टिक अल्सर या आमाशय व्रण या ग्रहणी व्रण की सज्ञा दी गई है। जब आमाशय मे व्रण होता है तो भोजन करने (विशेषत अधिक भोजन करने) के लगभग डेढ घटे बाद उदर मे शूल होता है और यदि ग्रहणी मे व्रण हो तो भोजन करने के करीब २॥-३ घटे बाद उदर मे शूल उठता है। यह करीब १ घटे तक रहता है, उसके बाद स्वय ही शान्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि भोजन करने के १-१॥ घटे बाद भोजन-द्रव्य आमाशय मे जब कुछ आगे बढ जाता है, तब वहा सचित लवणाम्ल का सम्पर्क सीधा व्रण से होता है। उससे व्रण के तल मे विद्यमान मास सूत्रो मे उद्वेष्टन या अकडन (Spasm-Tension) उत्पन्न होने लगती है। परिणामत उसके या शोथ के नाड़ियो पर दुष्प्रभाव पड़ने से शूल की अनुभूति होती है।

चूकि यव शूल भोजन के परिणाम (परिपाक) काल मे होता है, अत आयुर्वेद मे इसे परिणाम शूल की सज्ञा दी गई है।

उदर प्रदेश मे इस शूल का कोई विशेष स्थान नियत नही है। यह भिन्न-भिन्न लोगो मे भिन्न-भिन्न स्थान पर हो सकता है। आमाशय या ग्रहणी मे जिस स्थान पर व्रण होता है, केवल उसी स्थान पर शूल होता है। यदि आमाशय मे व्रण हो तो यह शूल आमाशय प्रदेश मे मध्य रेखा के समीप कुछ दाहिनी ओर हो सकता है। व्रण यदि ग्रहणी मे हो तो मध्य रेखा के कुछ दाहिनी ओर हो सकता है। प्रत्येक रोगी मे शूल स्थान विशेष मे हो सकता है। गुरु या कठिन भोजन करने से शूल अधिक होता है, क्योंकि कठिन पदार्थ व्रण को क्षुभित कर देते हैं। मृदु या तरल भोजन करने से शूल कम मात्रा मे होता है।

जब ग्रहणी मे व्रण होता है तो रात्रि के भोजनोपरान्त लगभग २-२॥ घटे बाद या मध्य रात्रि मे सोते-सोते लगभग १२ बजे भी कभी-कभी शूल अनुभव होता है। ग्रहणी व्रण के कारण रात्रि मे जब शूल विशेष रूप से होता है तो नीद टूट जाती है और जब तक शूल शान्त नही होता बेचैनी बनी रहती है।

शूल की स्थिति मे यदि कुछ खा लिया जाय तो वह मन्द पड जाता है अथवा किसी क्षार का सेवन कर लेने से भी उसका शमन हो जाता है। मद्य, मसाले आदि शूल की वृद्धि मे सहायक होते है।

तीव्र शूल की स्थिति मे भोजनोत्तर वमन होना भी इसका एक सामान्य लक्षण है। यह प्राय भोजन के २-३ घटे पश्चात् हो सकता है। व्रण के स्थान विशेष के अनुसार यह शीघ्र या देर से हो सकता है। वमन प्राय तब होता है, जब शूल अधिक होता है या आमाशय के निम्न द्वार मे प्रबलता से स्तम्भ (Pylorospasm) होता है। वमन के कारण थोडा अम्ल द्रव निकल जाता है, जिसके निकलते ही शूल का शमन हो जाता है। इस पित्त-वमन मे जो थोडा अन्न निकलता है वह पूर्ण पक्व होता है, अपक्व नहीं। इसमे श्लेष्म द्रव न होने मे जी मिचलाने या अरुचि का लक्षण विशेष नहीं होता। जीर्ण शूल मे वमन के साथ कभी-कभी रक्त भी आता है। यह कभी थोडा और कभी अधिक भी हो सकता है।

यह आवश्यक नही है कि रोगी को प्रत्येक ऋतु मे नित्यप्रति यह शूल होता रहे। जब रोगी गुरु, दुष्पाच्य या विक्षोभक आहार लेता है या अधिक मात्रा मे भोजन करता है तो उससे व्रण क्षुभित होता है और शूल का अनुभव होता है। इसी प्रकार ऋतु परिवर्तन काल जैसे शरद् या वसन्त ऋतु मे सामान्य मात्रा मे भोजन करने पर भी कई बार शूल उत्पन्न हो जाता है। इसका कारण यह है कि इस काल मे आमाशय कला शोथ की स्थिति मे ही शूल होता है, अन्यथा नही।

चिकित्सा सूत्र एव सामान्य चिकित्सा—

(१) सर्वप्रथम रोगी को मधुर और तिक्त रसप्रधान द्रव्यो से वमन एव विरेचन कराना चाहिए।

(२) दो-तीन सप्ताह या एक माह तक रोगी के लिए पूर्ण विश्राम अपेक्षित है।

(३) किसी घरेलू खेल मे स्वय को व्यस्त रखकर भी स्वय को अधिकाधिक समय के लिए चिन्तामुक्त रखा जा सकता है। शारीरिक विश्राम की अपेक्षा मानसिक विश्राम अधिक लाभदायक होता है।

(४) प्रोटीन आहार आमाशय के एसिड और पेप्सिन को शीघ्र उदासीन कर देता है। स्निग्ध आहार अर्थात् घृत का प्रयोग आमाशयिक रस के स्राव और आमाशय की गति को मन्द करता है। अत दूध और घी का प्रयोग रोगी के लिए विशेष लाभकारी होता है। घी के स्थान पर मक्खन वा क्रीम का सेवन भी कराया जा सकता है।

औषधीय चिकित्सा—

(क) प्रवाल पचामृत, कामदुधा रस, कपर्दिका भस्म २-२ रत्ती=१ मात्रा, दिन मे तीन बार मधु से दे।

(ख) हरिद्रा चूर्ण १ माशा घृत मे मिलाकर गोदुग्ध के साथ प्रात और रात्रि को दें।

(ग) धात्री लोह आधा ग्राम १×६, दोनो समय भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त मे मधु व घी के साथ दे।

(घ) शम्बूक भस्म १/४ ग्राम, नारिकेल क्षार, समुद्रादि चूर्ण, शुद्ध सर्जिका प्रत्येक १-१ ग्राम। ऐसी २ मात्रा भोजन के बाद दोनो समय उष्ण जल से दे।

(ङ) अविपत्तिकर चूर्ण ४ ग्राम की मात्रा मे प्रात या रात्रि मे पटोलपत्र, पिप्पली व जौ के ५८ मि. लि. क्वाथ मे दे।

परिणाम शूल का निदान-चिकित्सात्मक अध्ययन

डा० जहानसिंह चौहान आयु० वृहस्पति डी ए एम एस, ठठिया (फरुखाबाद) उ प्र.



आधुनिक दृष्टि से—परिणाम शूल की तुलना ग्रहणी व्रण से कर सकते हैं क्योंकि आमाशय मे पाचन होने के बाद पच्यमान अन्न ग्रहणी (Duodenum) मे पहुँचता है तो व्रणयुक्त ग्रहणी के कारण तीव्रशूल होता हे।

अन्न के आमाशय से ग्रहणी मे प्रवेश करने पर नाभि के निम्न भाग व दोनो पार्श्वो मे शूल होता हे। उदर मे पीडा रहती है। इसे बुभुक्षाशूल (Hunger Pain) भी कहते हैं।

आजकल जिसे पेप्टिक अल्सर कहते है वही परिणाम शूल की अवस्था समझें।

सम्प्राप्ति—प्रकुपित वात पित्त और कफ को आवृत करके परिणाम शूल उत्पन्न करता है। यह शूल भोजन के पाचन के समय होता है।

परिणाम शूल के निदान—यह भयङ्कर त्रिदोषज व्याधि है। यह रसग्राही स्रोतो की विकृति के कारण होता है। वातादि दोषो के अनुरूप इसके निम्न उत्पादक कारण है—

(१) वातिक परिणाम शूल के निदान—अति व्यायाम अति मैथुन, अति शीतल जलपान, रात्रि जागरण, रूक्ष पदार्थो का अधिक सेवन, वहुत सवारी करना, आघात, कषाय और तिक्तरस प्रधान द्रव्यो का अधिक सेवन, मल, मूत्र, वायु तथा शुक्र के वेग को रोकना, अधिक हसना तथा बोलना, अधिक शोक तथा उपवास।

(२) पैत्तिक परिणाम शूल के निदान—क्षार, अति तीक्ष्ण, उष्ण तथा विदाही पदार्थो का अति सेवन, कटु अम्ल तथा मद्य का अति सेवन, तेल एव कुल्थी रस का अति सेवन, क्रोध, अग्नि तथा आतप सेवन।

(३) वातज परिणाम शूल के निदान—आनूप प्रदेश का जल और उससे उत्पन्न दधि (तक्र), मास, इक्षु तथा तिल का सेवन, अन्य श्लेष्म प्रकोपक कारण।

आधुनिक दृष्टि से परिणामशूल के उत्पादक कारण

अधिक धूम्रपान, चिंता, मानसिक परेशानिया आदि तनाव परिणामशूल (Duodenal ulcer) उत्पन्न करने मे सहायक होते है। गरीव व्यक्तियो मे रूखी-सूखी रोटी प्याज या चटनी के साथ खाने से, अधिक मसालेदार भोजन करने से, कुछ औषधिया विशेषकर एस्प्रिन ड्यूडेनल अल्सर उत्पन्न करने को दोषी पाई गई है। यह प्रयोगो से देखा गया है कि यदि कोई व्यक्ति ८-१० दिन तक ऐस्प्रिन अथवा ए पी सी औषधिया लेता है तो उसे यह रोग हो जाता है। यह देखा गया है कि १०% ऐसे व्यक्ति हे जिनमे अधिक मात्रा मे और तेज हाइड्रोक्लोरिक एसिड उत्पन्न करने की जन्मजात प्रवृत्ति पायी जाती है वो ही लोग इस रोग से अधिक ग्रसित होते है। आहार विपर्यय, अनियमित दिनचर्या, चाय का अधिक उपयोग, प्रत्येक कार्य में जल्दी करना (विशेषकर भोजन करते समय), मलावरोध, विटामिन 'सी' की कमी, आघात, विषमयता, पूयदन्त (पायरिया), दरिद्रता, व्यापक स्वरूप का दग्ध, खाली पेट धूम्रपान से इस रोग की उत्पत्ति का सम्वन्ध प्रतीत होता है। रोग के पुनरावर्तन (Relapse), सक्रमण, अनियमित आहार, शीत ऋतु आदि से सम्बन्ध प्रतीत होता है। देहातो की अपेक्षा नगरो मे यह रोग अधिक होता है क्योकि शहर का मनुष्य सदैव अशान्त रहता है। व्याकुलता के कारण एड्रीनल कोरटेक्स के सूक्ष्म रस की अधिकता भी रोग का कारण हो सकती है। यह देखने मे आया हे कि तीक्ष्णाग्नि प्रवृति के जो व्यक्ति व्यवहार मे शीघ्र ही चिन्तित, क्रुद्ध या व्याकुल हो जाते है उनमे यह रोग अधिक होता है। सम्भवत विटामिन 'ए' और 'वी' की न्यूनता के कारण आमाशय की झिल्ली मे कोई निर्वलता रहती है जिससे यह रोग उत्पन्न हो जाता है। ACTH तथा कोर्टीकोस्टेराइड का लम्वे समय तक प्रयोग। विद्वानो का विचार है कि ओ व्लड ग्रुप के व्यक्तियो मे यह रोग अधिक मिलता है।

निदानात्मक लक्षण—

परिणामशूल को चिरकारी (Chronic) माने।

आहार की पच्यमानावस्था मे शूल की वृद्धि हो और कुछ खा लेने से शूल मे शाति मिले तो परिणामशूल समझना चाहिये। क्ष किरण (X-Ray) परीक्षण से व्रणो की उपस्थिति भी रोग विनिश्चय मे सर्वाधिक सहायक है।

विभेदक निदान—परिणाम शूल का अम्ल पित्त, विदग्धाजीर्ण, पैत्तिक शूल से विभेद करना चाहिए, क्योकि इनके लक्षण परिणाम शूल से मिलते जुलते है अत विभेदक निदान कठिन हो जाता है। परन्तु समान योगो से चिकित्सा होने से चिकित्सा मे कठिनाई नही होती है।

आधुनिक दृष्टिकोण—

(१) रोग धीरे-धीरे अज्ञात रूप मे होता है तथा चिरस्थायी अजीर्ण के रूप मे रहता है जिसमे छाती मे जलन तथा दाह प्रतीत होता है।

(२) पीडा भोजन करने के अधिक समय बाद (२ से ३ घण्टे बाद) प्रतीत होती है। इस पीडा से ऐसा प्रतीत होता है कि उसे जोर की भूख लगी है। वास्तव में इस समय रोगी भोजन ले ले तो पीडा प्राय समाप्त होजाती है। इसे प्राय भूख की पीडा(Hunger Pain) कहते है।

(३) रात्रि के समय शूल विशेष रूप से होता है जिसके कारण रोगी की नीद टूट जाती है। मद्य और मसालो के सेवन से शूल बढ जाता है, पर क्षार के सेवन से घट जाता है।

(४) भोजन करने पर पीडा शमन हो जाती है। आमाशय के सामने एब्डोमिनल वाल कडी रहती है। भूख उत्तम रहती है।

(५) आमाशय प्रदेश रेखा के कुछ दायी ओर दबाने से सीमित स्थान पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। रोग के वेग काल मे इस स्थान को दबाने पर पेट की मासपेशिया स्तब्ध हो जाती हैं।

(६) रोगी की जीभ साफ दीखती है।

(७) यदि उपरोक्त स्पर्शाक्षमता के अतिरिक्त समय-समय पर शूल होने का लक्षण हो तो इस रोग का निदान हो जाता है।

चिकित्सा सिद्धान्त—

लघन प्रथम कुर्याद्, वमन च विरेचनम्।
वस्तिकर्म पर चात्र पक्तिशूलोपशान्तये॥

पहले वमन, तत्पश्चात् लघन उसके बाद स्निग्ध द्रव्यो से विरेचन दे। उसके बाद वस्ति का प्रयोग करे। तत्पश्चात् दोषानुसार चिकित्सा करे—

१. वातिक परिणाम शूल मे – स्नेह योगो का प्रयोग अर्थात स्निग्ध तथा शूलशामक औषधियो का प्रयोग।

२ पित्तज परिणाम शूल मे—रेचन एवं शीतोपचार।

३ श्लैष्मिक परिणाम शूल मे—वमन तथा तिक्तादि द्रव्यों के सेवन से रोग दूर करे।

४ द्वन्द्वज मे—घृतपान।

५. सन्निपातज मे—स्नेहन, वमन व विरेचन दे।

विशेष व्यवस्था—इस रोग मे अन्नो मे यव, शाकों मे पटोल तथा पेय पदार्थों मे नारियल का जल विशेष लाभकारी होता है।

रोग की तीव्रावस्था मे रोगी को गोदुग्ध, यवमण्ड तथा नारियल जल पर ही रखना चाहिए।

निदान परिवर्जन — आहार सम्बन्धी व्यतिक्रम, शारीरिक तथा मानसिक कार्याधिक्य, शोक, चिन्ता, क्रोध, अति मैथुन, मद्य का सेवन, वेगो का धारण करना, विषम तथा विधिरहित भोजन आदि से दूर करना शूल चिकित्सा का प्रथम चरण है।

आहार व्यवस्था—रोगी को सबसे पहले केवल क्षीराहार पर रखना चाहिए। तत्पश्चात् यवमण्ड तथा आगे दूध तथा रोटी पर रखना चाहिए। क्षारो का सेवन शूलशामक है। घृत आदि स्निग्ध द्रव्यो का प्रयोग विशेष कर मलाईयुक्त दही के साथ सत्तू का सेवन लाभकारी होता है। साथ ही पीने के लिये नारियल का जल उत्तम रहता है।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियो की उपयुक्त आहार व्यवस्था

इस रोग मे दूध तथा घृत या क्रीम अथवा मक्खन—इन दोनो का अल्प मात्रा मे थोडी-२ देर बाद प्रयोग करने से लाभ होता है। अत सबसे पहले रोगी को गर्म जल घू ट-घू ट कर पीना चाहिये। तत्पश्चात—

प्रथम सप्ताह—प्रात ७ बजे साय ७ बजे या १० बजे तक प्रत्येक घण्टे बाद १ औस दूध +१ औस क्रीम पीने को दे। क्रीम न मिलने पर दही का प्रयोग। मात्रा—२-३ औस १-१ घण्टे बाद।

साथ ही—१-२ बार १-१ कप सन्तरे अथवा टमाटर का रस।

द्वितीय सप्ताह—प्रति २ घटे पर १ कप दूध साथ ही ३ औंस टोस्ट + मक्खन।

तृतीय सप्ताह—इसमे दूसरे सप्ताह के भोजन के अतिरिक्त सब्जी का घृत मिश्रण यूष अथवा घृत मिश्रित पिसी हुई सब्जी।

चतुर्थ सप्ताह—प्रति २ घटे बाद दूध + मक्खन या मलाई के १-१ कप के अतिरिक्त प्रात तथा दो भोजन के बीच के समय की मात्रा (आहार वाली) बढा देवे।

चौथे सप्ताह के बाद—चौथे सप्ताह की ही भोजन व्यवस्था।

छ वें सप्ताह तक—१ कप किसी फलो का रस पीने को अन्य व्यवस्था के अतिरिक्त दें।

नोट—इस प्रकार बिना किसी औषधि के प्रयोग के भी केवल विश्राम और उपर्युक्त आहार सबधी चिकित्सा के ६ सप्ताह तक जारी रखने से शूल शात हो जाता है।

नवीनतम शोध के अनुसार—कुछ समय पहले तक ऐसे रोगियो की चिकित्सा के लिये दूध अत्यन्त महत्व का समझा जाता था और इसको प्रत्येक एक या दो घटे के अन्तर से पर्याप्त मात्रा मे लगभग डेढ माह तक भोजन के रूप मे केवल दूध ही दिया जाता था, लेकिन गत वर्ष की गई रिसर्च द्वारा यह देखा गया है कि परिणाम शूल (ड्यूडेनल अल्सर) के रोगियो को दूध से कोई लाभ नही होता है।

अक्टूबर ८६ मे पटना मे हुए पाचक तन्त्र के रोगो के वार्षिक सम्मेलन मे इस विषय पर किये गये शोध कार्य के परिणाम को प्रदर्शित किया गया। इसके अनुसार जिन रोगियो को भोजन के रूप में केवल दूध दिया गया उनको कोई लाभ नही हुआ और जिनको साधारणत' खाने वाला भोजन दिया गया उनको लाभ हुआ।

शोधकर्त्ताओ ने इस बात पर जोर दिया कि ड्यूडेनल अल्सर के रोगी को भोजन के रूप मे केवल दूध ही देना हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

औषधि चिकित्सा—

इस रोग मे सर्व प्रथम कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिए और आमाशय की शुद्धि के लिए वमन का कराना भी अत्यन्त आवश्यक है।

शूल मे कोष्ठ की शुद्धि के लिए प्रशस्त विरेचन योग—अविपत्तिकर चूर्ण ३ से १० ग्रा तक। अनुपान उष्ण जल। इससे कोष्ठ की शुद्धि होती है। कभी-कभी तो इसके द्वारा ही शूल नष्ट हो जाता है। इसके सेवन से मल साफ आता है। हरीतकी खड या पचसकार चूर्ण भी लिया जा सकता है। अनुपान—एरण्ड तेल १/२ औस से १ औस की मात्रा मे दूध या उष्ण जल के साथ देने से २-४ दस्त आकर पेट साफ हो जाता है।

पेट साफ हो जाने के बाद निम्नलिखित योग देना चाहिए—शख भस्म १ ग्राम, अजीर्णघ्न चूर्ण ३ ग्राम, जम्भीर द्राव १ औस (३० मि लि)।

प्रयोग—जम्भीर द्राव मे उपरोक्त दोनो औषधिया डालकर झाग आते ही तत्काल पी जाना चाहिए।

नोट—इस औषधि का प्रयोग दिन मे २ बार भोजन के बाद करना चाहिए।

यदि शूल के साथ खट्टी डकार आकर गले मे जलन पडती हो तो—जम्भीर द्राव १/२ औंस, शख भस्म १ ग्राम, ऐसी १ मात्रा मिलाकर झाग आते ही तत्काल पीवे।

तत्पश्चात् शूल के रोगी की चिकित्सा निम्न प्रकार से करे—साधारण उदर शूल के रोगी मे—रोग की प्रथमावस्था मे निम्न योगो मे से किसी का उपयोग किया जा सकता है—हिंग्वादि गुटिका १ गोली—प्रात साय गर्म जल से। हिंग्वादि चूर्ण १ ग्राम जल से।

नवीन रोग मे शम्बूक भस्म, शम्बूकादि गुटिका, शतावरी, मण्डूर, अग्नि वर्धक अग्निमुख चूर्ण, भास्कर लवण, महा शखवटी, नारिकेल क्षार, तारामण्डूर, नारिकेल खण्ड, खण्डामालकी आदि का उपयोग प्रशस्त है।

तीव्र शूल मे अथवा रोग पुराना होने पर—

तीव्र शूल की स्थिति मे—शूलगजकेशरी १-२ गोली, उष्ण जल एव अदरक स्वरस मे। अथवा शूलवज्रिणी १-२ गोली प्रतिदिन सहिजन की छाल के रस मे।

नोट—इसके साथ ही खण्डामलक या नारिकेल खण्ड का उपयोग सहायक रूप से करने से विशेष लाभ होता है।

रोग प्रबल होने पर—शम्बूकादि वटिका, प्रतिदिन प्रात दें।

रोग पुराना होने पर—इसके साथ ही तारामण्डूर, सामुद्राद्य चूर्ण, शख रस गुटिका, विद्याधराभ्र रस आदि का प्रयोग करे।

जीर्णावस्था मे जब रोगी की मन स्थिति रोगानुकूल हो जाती है तब—

१ पित्तोल्वण अर्थात् पित्त की अधिकता मे—सप्तामृत धात्रीलोह, पथ्यादि चूर्ण, स्वर्णयुक्त सूतशेखर रस का उपयोग लाभकारी होता है।

२ रोग पुराना होने पर—विद्याधराभ्र, तारामण्डूर, धात्री लोह का उपयोग।

रोग मे वातकफोल्वणता मे—त्रिगुणाख्य रस उचित अनुपान के साथ उक्त औषधियो के साथ अथवा अकेले काफी समय तक देने से लाभ मिलता है।

रोग की प्रथमावस्था मे कफ के प्रबल होने पर—शखरस गुटिका अथवा कृष्णाद्य चूर्ण का उपयोग करें।

रोग के जीर्ण होने पर—नृपतिवल्लभ, विद्याधराभ्र, शखादि चूर्ण का उपयोग प्रशस्त होता हे।

परिणामशूल मे दो दोषो की प्रबलता होने पर—तारामण्डूर, रस मण्डूर या चतु सम मण्डूर का उपयोग लाभकारी है।

जीर्णशूल की गम्भीर अवस्था मे—त्रिपुर भैरव रस २५० मि ग्रा, त्रिकुट चूर्ण १ ग्राम, एरण्ड स्नेह १० मि लि दिया जा सकता है।

दोषानुसार विशेष चिकित्सा—

(१) वातोल्वण परिणाम शूल के लिये—शूलगजकेशरी + त्रिगुणाख्य रस।

(२) पित्तोल्वण के लिये—त्रिपुरभैरव रस + वृ विद्याधराभ्र।

(३) कफोल्वण के लिये—शूलातक रस + पथ्यादिलोह।

(४) त्रिदोषोल्वण के लिए—सूतशेखर रस, शूलकेशरी एव चतु समलोह।

नोट—विदग्धाजीर्ण तथा परिणामशूल के वमन, अजीर्ण आदि लक्षणो की शाति के लिये निम्न लिखित योगो मे से किसी का उपयोग दिन मे २-३ वार किया जा सकता है—

१ लीलाविलास रस (यो र)—१/२ ग्राम, दिन मे २ वार।

(२) सूतशेखर रस (भा. भै र)—१ गोली, दिन मे ३ वार।

(३) भास्करामृताभ्र (भै र)

(४) त्रिनेत्र रस (र र समुच्चय)—१२० मि.ग्रा, सुहागे की खील के साथ घृत मधु मे।

(५) शतावरी घृत (भै. र)—मात्रा ५ ग्राम, दूध के साथ।

(६) प्रवालपचामृत (यो र)—४८० मि ग्रा.की मात्रा।

(७) त्रिफलामण्डूर (भै र)—१/२ ग्राम मधु घी से।

(८) धात्री लोह (च द)—एलादि चूर्ण (यो र) भूनिम्बादि चूर्ण (वैद्यजीवन) धान्यकादि चूर्ण (र र) अविपत्तिकर चूर्ण (भै र) द्राक्षादिघृत (भै र) खडामलकी (ग नि)।

परिणामशूल नाशक अनुभूत चिकित्साक्रम—

व्यवस्थापत्र न० १—धात्रीलोह १/२ ग्राम १ × ६, दोनो समय भोजन के पूर्व, मध्य तथा अन्त मे मधु एव घी के साथ।

२ शम्बूक भस्म १/४ ग्राम, नारिकेलक्षार, सामुद्राद्य चूर्ण, शुद्ध सर्जिकासत्व तीनो १-१ ग्राम, १ × २, भोजन के २ घण्टे वाद गर्म जल से।

३ अविपत्तिकर चूर्ण ४ ग्राम, १ ग्राम, रात्रि मे या प्रात पटोलपत्र, पिप्पली + जौ के ५८ मिलि क्वाथ मे।

व्यवस्थापत्र न० २—शूलान्तक रस १ गोली १ मात्रा × मूली स्वरस के साथ प्रात ६ वजे।

२ शम्बूकादि वटी २ गोली, १ मात्रा × गर्म जल से प्रात ८ वजे।

३ तारामण्डूर १ ग्राम, २ मात्रा, घी मधु असमान मात्रा मे भोजन के पूर्व, मध्य और बाद मे।

४ शम्बूक भस्म ४८० मि ग्रा, नारिकेलक्षार २ ग्रा १ मात्रा × जल के साथ दिन मे २ वजे।

५ आमलकी खण्ड ५ ग्रा, १ मात्रा × गो दुग्ध के साथ ४ वजे।

६ लोह भस्म २४० मि ग्रा, १ मात्रा × गोघृत के साथ साय ६ वजे।

७ सामुद्राद्य चूर्ण ६ ग्रा, १ मात्रा × रात्रि को भोजन के बाद गर्म जल से।

❖

परिणाम शूल-चिकित्सा

डा० गणेश चन्द्र देव शर्मा डी ए एम एस, आयुर्वेद शास्त्री
प्रवक्ता–द्रव्य-गुण विभाग, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, गुवाहटी (असम)



लेखक महोदय श्री शर्मा जी गुवाहाटी (असम) स्थित राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्वान प्राध्यापक हैं। आयुर्वेद के विशेष ज्ञान हेतु आप वर्तमान मे पुरी-उडीसा के गोपबन्धु आयुर्वेद महाविद्यालय मे पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स कर रहे है। कहा जाता है कि आयुर्वेद तो सागर है, जितना ज्ञान ले सको–अधूरा ही होता है। लेखक महाशय की ज्ञान पिपासा तीव्रतम है–धन्यवाद के पात्र है। श्री शर्मा जी ने प्रचलित व्याधि परिणाम शूल की चिकित्सा विधि का ज्ञानवर्धक सुन्दर विवेचन किया है, जो पाठक वर्ग एवं आयुर्वेद समाज को सदा उपयोगी होगा। मै श्री शर्मा जी से अनुरोध करता हूं कि आप वार-वार इस तरह 'धन्वन्तरि' की मदद करें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

(क) सामान्य चिकित्सा—

वमन तिक्तमधुरैर्विरेकश्चापि शस्यते ।
वस्तयश्च हिता शूले परिणामसमुद्भवे ॥

—चक्रदत्त २५४/१

(१) परिणाम शूल मे दोष आमाशयगत होने पर वमन और लघन कराना चाहिए। कफ प्रधान शूल मे तिक्त द्रव्यो द्वारा वमन कराना चाहिए।

(२) दोष पच्यमानावस्था मे हो तो विरेचन (पित्त प्रधान होने पर मधुर द्रव्यो से विरेचन कराना है) तथा निरूह वस्ति यथावश्यक देनी चाहिए।

(३) दोष जव पक्वाशयगत हो तव अनुवासन वस्ति देनी चाहिए।

(ख) विशेष चिकित्सा—

(१) मटर के यूप के साथ यव आदि धान्य के सत्तुओ को घोलकर सात दिन तक पान करने से अत्यधिक पुराना परिणाम शूल भी विनष्ट हो जाता है। इस व्यवस्था को लेने पर अन्य खाद्य पदार्थ उस समय तक छोड दे। कहा भी है—

य पिवति सप्तरात्र शक्तुनेकान कलाययुषेण ।
स जयति परिणामरुज चिरजामपि किमुत नूतनजाम ॥

—चक्रदत्त २४६/१२

(२) मलाईयुक्त दही (यह नूतन हो और खट्टा न हो) के साथ मटर और यव का सत्तु अन्य अन्नादि परिवर्जन कर सेवन करने से शीघ्र ही परिणामशूल तथा प्राय सभी प्रकार के शूल रोग से मुक्त हो जाता है।

उपरोक्त दोनो योग मैंने विगत १७ वर्ष मे वहुत से परिणाम शूल से आक्रात मरीजो को देकर काफी लाभ उठाया है।

(३) अम्लवेतस की फल मज्जा को शीत कपाय वनाकर उसमे भुनी हुई हीग डालकर (कपाय १०० मि लि मे ३ ग्राम हीग लेकर) पुन पुन पीने से परिणाम शूल नष्ट होता है।

(वैद्य चन्द्र शर्मा वामुन्दी नलवा असम)

(४) आमलकी खण्ड—आमलकी, पेठा, पिप्पली, जीरा, सोठ, मरिच, तालीशपत्र, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपत्र, मोथा।

प्रस्तुत विधि—वीजादि रहित उवले हुए आमलकी २॥ किलो को ७६८ ग्राम गोघृत मे भून ले। फिर इसमे मिश्री और आमलकी का रस ३८४ ग्राम तथा पेठे का रस ७६८ ग्राम मिलाकर पाक करे। जव पकते-२ करछी मे लगने लग जाय तो इसमे पिप्पली चूर्ण, जीरा चूर्ण, सोठ चूर्ण, मरिच चूर्ण और तालीशपत्र चूर्ण प्रत्येक को १६ ग्राम एव दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपत्र और मोथा प्रत्येक ३ ग्राम लेकर अच्छी तरह पीसकर इन सभी द्रव्यो को पाक करले तथा पाक द्रव्यो को डालकर, अच्छी तरह मिला ले और उतार ले। ठण्डा हो जाने पर

३८४ ग्राम शहद मिलाकर सुरक्षित रखले ।

मात्रा – १२ ग्राम से २० ग्राम, मात्रा मे दिन मे दो बार नियमित सेवन करने से त्रिदोष जनित परिणाम शूल भी विनष्ट होता है । यह उत्तम रसायन भी है ।

(बगसेन सहिता)

(५) आम्रकल्प—प्रात ८ बजे और शाम को ४ बजे मीठे पके आमो को इतना चूसे कि आधा किलो तक रस पेट मे जावे । ऊपर से २५० ग्राम तक दूध पीवें, जल नही पीवे । यदि प्यास लगे तो आमो को चूसने के १ घटा बाद उबालकर ठण्डा किया हुआ जल पी सकते है। दोपहर के भोजन मे गेहूँ की रोटी अमरस के साथ ले, अन्य कुछ न ले । केवल एक सप्ताह तक इस प्रयोग के सेवन करने से उदरशूल मे विशेष लाभ होता है। पश्चात् इस प्रयोग को १ मास तक जारी रखने से परिणामशूल पुन सिर नही उठाने पाता ।

(आचार्य स्व० कृष्ण प्रसाद त्रिवेदी
धन्वन्तरि बनौषधि विशेषाक)

(६) धात्री लोह—आमलकी चूर्ण ८ भाग, लोहभस्म ४ भाग, मुलेठी चूर्ण २ भाग ।

भावनार्थ—आमलकी क्वाथ ।

प्रस्तुत विधि—उपरोक्त तीनो द्रव्यो को खरल मे अच्छी तरह मर्दन कर आमलकी क्वाथ खरल की औषधि ठीक तरह आलुप्त करके एक रात्रि अर्थात कम से कम १२ घण्टे रख दें । दूसरे दिन १ घण्टे अच्छी तरह घोट कर तीव्र धूप मे रख देवे । इस तरह आमलकी क्वाथ मे ७ दिन ७ भावनाये देकर धूप मे सुखाकर महीन चूर्ण कर रख ले ।

मात्रा – १२५-५०० मि ग्रा मात्रा मे लेकर १० ग्रा गोघृत और ५ ग्रा शहद मे मिलाकर भोजन के पूर्व, मध्य तथा अन्त मे दिन मे दो बार सेवन करने से परिणाम शूल तथा सर्व प्रकार के शूल रोग और अम्लपित्त विनाश होता है ।

(७) शूलान्तक रस—सोठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली, चूर्ण, हरड चूर्ण, बहेडा चूर्ण, आवला चूर्ण, मोथा चूर्ण, त्रिवृत चूर्ण, चित्रक चूर्ण ये १०-१० ग्राम, वायविडङ्ग २० ग्राम, कज्जली (समभाग सहित) ५ ग्राम, अभ्रक भस्म २० ग्राम ।

भावनार्थ—त्रिफला क्वाथ यथावश्यक ।

प्रस्तुत विधि—प्रथम कज्जली, लोह भस्म, अभ्रक भस्म एक बडे खरल मे लेकर अच्छी तरह मर्दन करें, बाद मे बाकी सभी द्रव्य क्रमश १-१ डालकर मर्दन करते रहे । जब सभी मिल जाये तब त्रिफला क्वाथ से भावित कर १२५ मि ग्राम प्रमाण वटिका बना सुखाकर रखलें ।

मात्रा—१ गोली प्रात काल काजी के साथ सेवन करे । शास्त्र मे कहा है कि जैसे अग्नि शुष्क वृक्ष को शेष कर देती है उसी तरह यह योग परिणाम शूल को नाश कर देता है ।

शूलहरण योग—हरड़, सोठ चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, मरिच चूर्ण, शुद्ध कुचला चूर्ण, शुद्ध हीग चूर्ण, सैन्धवलवण, शुद्ध गन्धक १०-१० ग्राम ।

प्रस्तुत विधि—सभी द्रव्यो को खरल मे डालकर अच्छी तरह मर्दनपूर्वक मिश्रण करके जल के साथ भावित कर ५०० मि ग्रा भर की वटिकाए बनाकर छाया मे सुखाकर रख ले ।

मात्रा—भोजन के अन्त मे दिन मे २ बार चूना का पानी (१ चम्मच चूना २५० मि गा पानी में डाल कर अच्छी तरह घोट ले । बाद मे १-२ घण्टे के लिए रख दें । जब पानी साफ होकर चूना पात्र मे नीचे बैठ जाय तब उस साफ पानी को प्रयोग मे लेना चाहिए) ३ चम्मच ठण्डा पानी मिलाकर १ गोली सेवन करने से परिणाम शूल तथा सभी प्रकार के शूल रोग ठीक होते हैं ।

(९) शम्बूक भस्म—शम्बूक भस्म १२५-५०० मि ग्रा मात्रा मे लेकर मुख के भीतर घी लगाकर गर्म जल के साथ सेवन करने से परिणामशूल नाश होता है जैसा भगवान विष्णु ने असुरो को निधन करते हुये कहा भी है—

शम्बूकजभस्म पीत जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
पक्तिज विनिहन्त्येतच्छूल विष्णुदिवासुरासन ॥

(भै र ४५५।६३)

(१०) सप्तामृत लोह—परिणामशूल मे वायु और पित्त की प्रकोपवशत जब नाभि शूल वा वस्तिदेश प्रभृति स्थान मे वेदना एव तत्सगे वमन, दाह, मूर्च्छा और कम्प प्रभृति लक्षण प्रकाश होता है तब यह औषधि सेवन करने से तुरन्त आराम मिलता है ।

उपादान—यष्टिमधु चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, आमलकी चूर्ण, विभीतक चूर्ण ५-५ ग्राम, लोह भस्म २० ग्राम।

भावना—घृत और मधु यथावश्यक।

प्रस्तुत विधि—पहले लोह भस्म खरल मे डालकर अच्छी तरह मर्दनपूर्वक उसमे बाकी द्रव्यो को १-१ कर मर्दन करें। जब सभी द्रव्य ठीक प्रकार से मिश्रण हो जायें तब घी और शहद असमान मात्रा मे देकर मर्दन करें। बाद मे ५०० मि ग्रा मात्रा की वटिका बनाकर छाया मे सुखा कर सुरक्षित रखलें। मात्रा—१ गोली दिन मे दो बार गोदुग्ध वा भृङ्गराज के साथ सेवन करे।

(११) विद्याधराभ्र रस—पैत्तिक, पित्तश्लेष्मिक,वातपैत्तिक, सन्निपातिक एव श्लेष्मिक परिणाम शूल मे जब नाभिमूल, आमाशय और वस्ति प्रदेश प्रभृति स्थान मे वेदना एव वमन दाह, आदि लक्षण प्रकाश होता है। तब इसको नियमित मात्रा मे सेवन करने से स्मरणीय लाभ होता है।

उपादान—विडङ्ग चूर्ण, मोथा चूर्ण, हरीतकी चूर्ण आमलकी चूर्ण, बहेडा चूर्ण, त्रिवृत चूर्ण, चित्रक चूर्ण, सोठ चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, मरिच चूर्ण २-२ ग्राम, कृष्णाभ्र भस्म ८ ग्रा, मण्डूकपर्णी स्वरस (Hydrocotyle asiatica Linn), से मर्दित और वस्त्रपूत पारद १ ग्रा., शोधित गन्धक २ ग्रा., गोमूत्र जारित मण्डूर भस्म ३२ ग्रा, लोह भस्म ३२ ग्रा.।

प्रस्तुत विधि—पहले पारद और गन्धक से कज्जली बना लें और बाद मे असमान मात्रा मे घी और शहद देकर अच्छी तरह मर्दन करिये। अनन्तर घृत पात्र मे सुरक्षित रख लें। मात्रा—१/२ मे १ ग्राम करके दिन मे २ बार चाय-दूध या जल सहित सेवन करिये।

(१२) स्वल्प अग्नि मुख चूर्ण—वातिक, श्लेष्मिक, वातश्लेष्मिक, सन्निपातिक एव वाताधिक्य परिणाम शूल मे यदि कोष्ठवद्धता, उदर में गुडगुड शब्द और वेदना तथा कटि, पार्श्व और पृष्ठ प्रभृति स्थान मे वेदना, उदराध्मान प्रभृति लक्षण प्रकाशित होता है तो इस चूर्ण के सेवन से रामवाण की तरह लाभ होता है।

उपादान—हीग चूर्ण १ ग्रा, वच चूर्ण २ ग्रा पिप्पली चूर्ण ३ ग्रा, सोठ चूर्ण ४ ग्रा, यवानी चूर्ण ५ ग्रा,, हरीतकी चूर्ण ७ ग्रा, कुष्ठ चूर्ण ८ ग्राम। उक्त समस्त द्रव्य एकत्रित कर अच्छी तरह मिश्रित करके सुरक्षित रखले। मात्रा—१ ग्राम से ५ ग्राम की मात्रा मे दिन मे २-३ बार गर्म जलसह सेवनीय।

(१३) दारुषट्क लेप—वायु के आधिक्यवशत परिणामशूल मे जब उदर मे वेदना, गुड-गुड शब्द प्रभृति लक्षण होते है तब इस लेप को प्रयोग करने से शीघ्र ही आराम मिलता है।

देवदारु चूर्ण, वच चूर्ण, यवानी चूर्ण, हीग चूर्ण, सैन्धव चूर्ण—सभी समान भाग, काजी यथावश्यक।

सभी द्रव्य समान परिमाण में लेकर काजी सहित ठीक तरह से वेमनपूर्वक पुन काजी देकर पाक करे। जब गाढी हो जाय तब उतार लीजिये।

उपरोक्त नियम से बना हुआ प्रलेप उदर मे एक पतला कपडा देकर उसके ऊपर आधा इंच ढाक कर दूषित उष्ण अवस्था मे उक्त लेप दे दें। जब सूख जाय तब उसको बदल देना चाहिये और वेदना समाप्त हो जाने पर प्रलेप बन्द कर दीजियेगा।

(१४) परिणाम शूल मे भी जब पित्त या श्लेष्मा का आधिक्य हो एव तृषा, दाह, अपचन, वमन वेग आदि लक्षण दृष्टिगोचर होने पर निम्न योग को सेवन करने से बहुत जल्दी आराम मिलता है—

हरीतकी चूर्ण, सोठ चूर्ण, लोह भस्म १०-१० ग्राम। उक्त तीनो द्रव्यो को खरल मे लेकर अच्छी तरह मर्दन पूर्वक मिश्रण करके सुरक्षित रखले। १ ग्राम से २ ग्राम, मात्र दिन मे २ बार घृत या शहद के साथ सेवन करें।

साध्यासाध्यता—

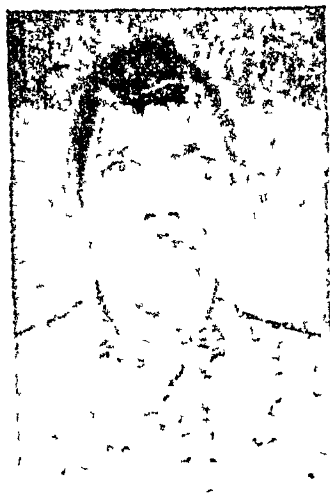
त्रिदोषज परिणाम शूल असाध्य है ऐसा वर्णन शास्त्र मे मिलता है। परन्तु मेरे विचार में सभी प्रकार के परिणाम शूल साध्य हैं यदि निदान वर्णन पूर्वक उपरोक्त चिकित्सा पद्धति के अनुसार चिकित्सा की जाय।

पथ्यापथ्य—पुरातन शाली चावल का आटा वा जवमण्ड (वार्ली) रोगी अवस्थानुसार सेवन करें। पटोल का फल और पत्र, वथुआ (वास्तुक), सहिजन, करेला, वैगन, हरकुच प्रभृति द्रव्य तथा गर्म गो दुग्ध, किश्मिश, उष्ण जल और लघुपाकी द्रव्य तथा आहार इस रोग का पथ्य है।

अपथ्य—रात्रिजागरण, व्यायाम गुरुपाकी द्रव्य, रूक्ष द्रव्य, रूक्ष क्रिया एव स्त्री-सहवास सर्वथा परित्याग करें।❖

परिणाम शूल

आचार्य यमुना वैद्य आयुर्वेद रत्न, साहित्य रत्न, साहित्याचार्य
आयुर्वेदिक औषधालय, ब्लाक न० ५ क्वार्टर न० एच ७३, हिण्डालको कालोनी, रेणुकूट (मिर्जापुर) उ प्र.



१ परिणाम शूल की शांति के लिए सर्व प्रथम लघन तत्पश्चात वमन और विरेचन करना चाहिए। (लघन प्रथम कुर्याद् वमन सविरेचनम् । पक्तिशूलोपशान्त्यर्थ ।।) वमन कराने के लिये मैनफल के क्वाथ के साथ दूध दे। विरेचन के लिये निशोथ, दन्ती एव एरण्ड तैल देना चाहिए। एरण्ड तैल को दूध मे मिलाकर देना चाहिए।

२ विडङ्गादि मोदक के सेवन से परिणाम शूल नष्ट होता है। (वायविडग के बीज, सोठ, गोल मिर्च, पिप्पली निशोथ तथा दन्ती का चूर्ण बनाकर गुड मे मिलाकर मोदक (लड्डू) बना ले। फिर उष्ण जल के साथ सुबह शाम इसका सेवन करे।)

३ शुण्ठ्यादि कल्क के सेवन से परिणामशूल नष्ट हो जाता है। (सौठ तिल और गुड के कल्क को दूध के साथ पीसकर चाटे।)

४ छोटे घोघे की भस्म को उष्ण जल के साथ पीने से परिणामशूल नष्ट हो जाता है।

५ पथ्यादि लोह के सेवन से परिणाम शूल नष्ट हो जाता है। (लोह भस्म, हरड, पिप्पली तथा सोठ के चूर्ण को विषम मात्रा मे मधु और घी के साथ चाटे।

६ नारिकेल क्षार के सेवन से परिणामशूल नष्ट हो जाता है। (जल से भरे हुए नारियल मे नमक भरकर मिट्टी से आवेष्टित कर सुखाकर कण्डे (उपले) की आंच मे पकाकर भस्म करले। उस भस्म का सेवन पिप्पली चूर्ण के साथ करे।

७ अविपत्तिकर चूर्ण (सोठ का चूर्ण, पीपल, गोल मिर्च, आवला, हरड, बहेडा, नागरमोथा, विडग, बडी इलायची, विड्लवण, तेजपात प्रत्यक १-१ तोला, लवङ्ग चूर्ण ११ तोला, निशोथ ४४ तोला, मिश्री ६६ तोला) को ३ माशा से १ तोला तक उष्ण जल से लेने पर परिणाम शूल मे लाभ होता है।

८ भोजन के बाद दो तोला जम्बीरीद्राव मे १ माशे शङ्ख भस्म और ३ माशा अजीर्णघ्न चूर्ण डालकर पीने से परिणामशूल मे काफी लाभ होता है।

९ हिंग्वादि गुटिका (शुद्ध हीग, अतीस, सोठ, गोल मिर्च, वच प्रत्येक १-१ तोला ले, सेधा नमक ६ तोले, हरड १२ तोला को चूर्ण करके सहिजना के छाल के रस मे घोटकर १-१ माशा की गोली बना ले।) की १-१ गोली प्रात -साय भोजनोपरान्त लेने से परिणाम शूल नष्ट हो जाता है।

१० हिंग्वादि चूर्ण (शुद्ध हीग छ आने भर, शख भस्म दो भरी, सेधा नमक दो भरी, सोठ का चूर्ण १/२ तोले, गोल मिर्च का चूर्ण १/२ तोले लेकर सबको मिला कर १ शीशी मे रख ले। फिर इसे) ६ माशा लेकर उष्ण जल से सेवन करने पर परिणाम शूल दूर होता है।

११ शूलगज केशरी (सोठ, गोल मिर्च, पीपल, वराटिका भस्म, यवक्षार, शुद्ध विष—प्रत्येक १-१ तोला लेकर अदरख के रस के साथ ४ माशे की गोलिया बना

— शेषांश पृष्ठ २४३ पर देखे।

❋ रसशास्त्रीय औषधियां और अन्नद्रव शूल ❋

वैद्य सुभाष चन्द्र क० कधारकर बी आई एम एस., अध्यापक–रसशास्त्र,
विभाग प्रमुख–रसशास्त्र-भैषज्य कल्पना, शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, नादेड (महाराष्ट्र)





श्री वैद्य कंधारकर जी विद्वान वैद्य एवं रसशास्त्री हैं। आपको गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार द्वारा 'विद्यारत्न' तथा वेदान्त शास्त्री वाराणसीय संस्कृत महाविद्यालय बनारस द्वारा उपाधि से सम्मानित किया गया है। भूतकाल मे आप पोद्दार वैद्यक महाविद्यालय बम्बई मे रसशास्त्र के प्राध्यापक थे। वर्तमान मे आप नान्देड महाराष्ट्र स्थित शासकीय आयुर्वेद कालेज मे रस शास्त्र विभाग के अध्यक्ष महोदय हैं। यहा आपने परिणाम शूल (अन्नद्रव शूल) पर रसौषधि चिकित्सा का अद्वितीय विवेचन दिया है, जो उपयोगी एव मार्गदर्शक होगा। मै श्री कधारकर जी से अपेक्षा रखता हूं कि आप इस तरह बार-बार धन्वन्तरि को सहयोग दें।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

परिणामशूल का सामान्य चिकित्सा सिद्धात –

वमन तिक्तमधुरैर्विरेकश्चापिशस्यते ।
वस्तयश्च हिताशूले परिणाम समुद्भवे ॥
(च द चि १)

रुग्ण के बलाबल का विचार कर इस व्याधि मे तिक्त मधुर द्रव्यो से वमन देना चाहिये। तदनन्तर ऐसे ही रस प्रधान द्रव्यो से विरेचन देना चाहिये। आवश्यकतानुसार सौम्यवर्ति तथा बस्ति देनी चाहिये। तिक्त रस–वायु+आकाश तत्व प्रधान होता है। ये दोनो तत्व सूक्ष्म होते हैं। सूक्ष्म की व्याख्या 'यस्य विवरणे शक्ति स सूक्ष्म' है। जिसमे सूक्ष्माति स्रोतसो मे जाने की शक्ति होती है, उसे सूक्ष्म कहते हैं। इस प्रकार यह रस सूक्ष्माति सूक्ष्म स्रोतसो मे निरावध जा सकता है, शीत वीर्यात्मक होने से पित्त के उष्णगुणो से सम्वन्धित दाह तथा द्रवगुण कम होते है।

मधुर द्रव्य पृथ्वी+जल तत्व प्रधान होते है। इनसे उत्पन्न कार्यकारी तत्व कफ के स्निग्ध, शीत, मृदु तथा उपलेपादि गुणो से पित्त के उष्ण, तीक्ष्णादि दाह पाकर गुण कम कम हो जाते है, कफ के उपलेप से व्याधिस्थान के पित्त का शमन होता है, कषाय रस (पृथ्वी+वायु प्रधान होते है) रूक्ष होने से पित्त के द्रव का शोषण करता है जिससे रोपण कार्य होता है। इस प्रकार–तिक्त, मधुर, कषाय रसो की (जो पित्त शामक है) योजना इस रोग मे की गई है।

परिणाम शूल जैसे जीर्ण रोग मे रोगोत्पादक दोषो से स्थानीय (आम-पच्यमानाशय) मासमय कोष तथा उसकी कोषिकाऐं (Cells) नष्ट या क्षीण हो जाती है। वहा की श्लेष्मल कला का पाक हो जाता है, जिससे रसो का स्राव विकृत हो जाता है। ऐसी अवस्था मे क्षीण हुए धातुओ, विकृत स्रोतसो तथा विकृत स्रावो को समुचित करने वाले कल्प अधिक उपयोगी होते हैं। इस दृष्टि से केवल वनस्पतिक औषधियो की अपेक्षा रसशास्त्रोक्त कल्प उपादेय है। कारण इन कल्पो मे वानस्पतिक प्राणिज और खनिज द्रव्यो का समन्वय किया गया है।

शरीर निर्मिति के लिये तथा उसे स्थिर करने के लिये खनिज (जो धातु प्रधान होते है) और क्वचित् प्राणिज द्रव्यो की आवश्यकता होती है। जब मनुष्य स्वस्थ रहता है, तब इन सबकी पूर्ति शरीर निर्मिति के लिये वानस्पतिक द्रव्यो से होती है, परन्तु रुग्णावस्था मे विशेषत

रोगों की जीर्णावस्था में क्षीण हुई धातुओं की पूर्ति वनस्पतिज द्रव्यों से हो नहीं पाती तब सीधे खनिज तथा प्राणिज द्रव्य देने पड़ते हैं, इसलिए रोगों की जीर्णावस्था रसौषधियाँ अधिक उपयुक्त हैं।

इस दृष्टि से परिणामशूल में निम्न औषधियों की योजना की जाती है—

१. सूतशेखर (सादा या स्वर्णयुक्त)—यह परिणाम शूल, अम्लपित्त की अव्यर्थ औषधि है। इसके घटक द्रव्य—कज्जली, वत्सनाभ, टंकण भस्म, स्वर्ण भस्म, ताम्र भस्म, त्रिकटु, धतूरबीज, चतुर्जात, बिल्व मज्जा, शङ्ख भस्म तथा कचूर इन औषधियों को समभाग लेकर भृंगराज स्वरस से २१ दिन मर्दन कर १२५ मि.ग्रा. की गोलियाँ बनायें। परिणाम शूल, अन्न द्रवशूल, अम्लपित्त, पित्तज शूल पर उपयोगी है। इन रोगों में पित्त की उष्णता, तीक्ष्णता और द्रवता अधिक हो तो यह रस अच्छा काम करता है तथा तत्रस्थ धातुओं का पोषण कर स्वाभाविक पाचक रसों की उत्पत्ति करता है।

स्वर्ण—धातुपोषक, वातवाहिनियों को बल्य है। इससे आन्त्रों की संकोच-विकासात्मक प्रक्रिया नियमित होती है।

ताम्र—पाचक, यकृत् उत्तेजक तथा तत्रस्थ पित्त सारक है। यह शरीर की कोशिकाओं में कार्बनिक अणुओं के साथ ही साथ एमीनो एसिड में घुलकर धातुओं का पोषण करता है, शरीर की कोशिकाओं की निर्मिति में कोलीजन नामक तत्व, जो सम्पूर्ण शरीर में फैला रहता है। परन्तु इस तत्व की उपस्थिति कोशिकाओं में आवश्यक होती है। इसके लिये एन्जाईम मोनोएमिन, ऑक्सीडेज ताम्र की प्रेरणा से ही कार्य करता है, साथ ही ताम्र शरीर में गये इतर धातुओं को (लोहादि) शरीर के अनुकूल बनाने के लिये भी उत्प्रेरक का काम करता है तथा अनावश्यक कोशिकाओं को धातुओं से निकालकर स्वास्थ्यकर कोषिकाओं के निर्माण में मदद करता है।

शङ्ख—अपने क्षारीय गुण से पित्त में माधुर्य उत्पन्न करता है। इस कल्प की अन्य औषधियाँ शोथघ्न, दीपक पाचक, अनुलोमक तथा वेदना हर हैं। इस रस (कल्प) का उपयोग घृत-मधु से आवश्यकतानुसार दिन में ३-४ बार करना चाहिए।

२. कामदुधा रस(यो. र.)—मुक्तापिष्टी, प्रवालपिष्टी, मौक्तिक भस्म, शङ्ख भस्म, स्वर्णगैरिक और गुडूचीसत्व इन औषधियों को घोटकर रख लें। मात्रा—१२५ से २५० मि.ग्रा., दिन में ३ बार दूध से (मिश्री मिलाकर) दें। परिणामशूल में आमलकी स्वरस और घृत से।

यह अत्यन्त शीतवीर्य कल्प है। पित्त की तीक्ष्णता अधिक तथा द्रवता कम हो ऐसी अवस्था में इसका उपयोग है। व्रणोत्पत्ति में गैरिक जैसे शीतवीर्य कषाय रस द्रव्य से व्रण रोपण होता है साथ ही यह कल्प रक्तपित्तनाशक भी है।

३. प्रवाल पञ्चामृत—इस कल्प से तत्रस्थ पित्त की विदग्धता कम होकर मधुरता आती है, कफपित्त प्रधान परिणामशूल पर उपयोगी तथा अम्लपित्त नाशक है। मात्रा—१२५-२५० मि.ग्रा. घी, दाडिमावलेह से दिन में ३ बार लें।

४. अग्नितुण्डी वटी (शा. स.)—इसमें १८ औषधियों का समभाग कुचला है। कफज परिणाम शूल पर उपयोगी, कफ के मन्दगुण की वृद्धि से वात वाहिनियाँ तथा स्नायु दुर्बल हो जाते हैं जिससे आन्त्र की पुरःसरण गति मन्द हो जाती है परिणामस्वरूप अपक्व-विदग्ध अन्न आन्त्रों में संचित होकर शूल उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्था में अग्नितुण्डी वटी अच्छा काम करती है, इसके सेवन से आन्त्र को बल मिलता है।

५. शङ्ख वटी—इससे भी पित्त की तीक्ष्णता कम होकर मधुरता आती है। मात्रा—१-२ गोली पानी के साथ दिन में तीन बार लें।

६. मण्डूर माक्षिक (र. त. सा., सि. प्र. स.)—पित्त विकृति में उपयोगी यह कल्प वृष्य, रसायन, योगवाही तथा रक्त प्रसादक है। परिणामशूल, अम्लपित्त, पित्तजशूल नाशक यह कल्प रस में मधुर तिक्त है।

७. सप्तामृत लौह—यष्टिमधु, त्रिफला एवं लौह भस्म को सम प्रमाण में घी और शहद के साथ दें। कषाय-मधुर रसात्मक होने से आमाशयिक व्रण रोपक बल्य और अनुलोमक है।

८. स्वर्ण भूपति रस(यह कूपीपक्व रसायन कल्प है)—पारद, गंधक १-१ भाग, ताम्र भस्म २ भाग, लौह भस्म, सुवर्ण भस्म, रौप्य भस्म और वत्सनाभ

प्रत्येक १-१ भाग, प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना कर इन सब औषधियों को हंसराज स्वरस से चार पहर मर्दन कर कूपीपक्व रसायन विधि से इसका पाचन करें। यह कल्प सुवर्णोपनिर्गों के लिये है, कारण साधारण जन इस महघी औषधि को ले नहीं सकते। महाराष्ट्र में विशेषत. बम्बई नगरी में यह विशेष चलती है, कारण क्रय शक्ति बम्बई में बहुत है साथ ही आनूपदेश होने से परिणाम शूल, अम्लपित्त इत्यादि आनूपज व्याधियां प्राय. वहां होती हैं।

इस कल्प में स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह तथा अभ्रक इत्यादि विविध धातुओं का मिलन होने से तीनों रोगों पर इसका कार्य है। अत्यन्त जीर्ण अवस्था के रुग्णों में जब वे केवल अस्थि मात्र शेष रह जाते हैं तब इसका उपयोग होता है।

इसमें की दो औषधियों का वर्णन करना समीचीन होगा।

रजत—इससे दुर्बल हुई वात वाहिनियों को बल मिलता है। वात प्रधान परिणाम शूल में भी इसका उपयोग होता है।

अभ्रक—मेरी दृष्टि से खनिजों में सर्वोत्कृष्ट औषध है कारण नैसर्गिक रूप में इसमें—लौह, पोटाशियम, मग्नेशियम सिलिकान, मैंगनीज, सोडियम, एल्युमिनियम इत्यादि अनेक खनिज हैं जो कोशिकाओं (Cells) की निर्मिति के उपादान कारण हैं, जबकि शूल की जीर्णावस्था में कोशिकायें नष्ट हो जाती हैं तब उनका निर्माण आवश्यक हो जाता है। ऐसी अवस्था में अभ्रक कोषिकाओं को निर्मित कर सम्पूर्ण शरीर को तथा पर्याय से ऊर्ध्व-अधो आमाशय को बल देकर साक्षात् धातु निर्माण करता है और पाचक रसों को पुष्ट करता है। इस प्रकार सुवर्ण भूपतिरूप शारीरिक अवयवों की जीर्णता दूर कर उनको बल देता है, 'सर्व रोग विनाशाय सर्वेषां स्वर्णभूपति' ऐसी प्रशस्ति इस कल्प की है।

९. क्षीर मण्डूर [च द]—परिणामशूल में उत्पन्न व्रण के रोपणार्थ इसका उपयोग है, मात्रा १२५-२५० मि ग्राम, अनुपान दूध।

१० शतावरी मण्डूर [च द]—तिक्त कषाय मधुर रसात्मक यह कल्प है—व्रण का दाह पाक कम होकर व्रण रोपक होता है, मात्रा १२५-२५० मि.ग्रा भोजन के पूर्व पश्चात् और मध्य में कभी भी दूध से सेवन करें।

प्राय लोह तथा मण्डूर कल्पों का उपयोग उनके कषाय रस एव शीत वीर्य और रक्त प्रसादक गुणों के कारण किया गया है। व्रण रोपण तथा विदग्ध पित्त का शमन होता है।

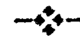
इस प्रकार रस शास्त्र के ग्रन्थों में अनेक योग दिये गये हैं परन्तु व्यवहार में उल्लिखित कल्पों का प्रचलन अधिक है अत संक्षेप से कार्यकारण भाव की दृष्टि से रखकर मैंने विवेचन किया है।

दोषानुसार—पटोलघृत, शतावरीघृत, गुडपिप्पली घृत, तिक्त घृत, नारिकेल खण्ड इत्यादि स्वतन्त्र रूप से या अनुपान रूप से दिये जाते हैं।

अन्नद्रवशूल की चिकित्सा ऊपर दी हुई है। अन्त में चिकित्सा सूत्र देकर विषय समाप्त करता हूँ—

पित्तान्त वमन कृत्वा कफान्त च विरेचनम्।
अन्न द्रवे च तत्कार्यं जरत् पित्त यदीरितम्॥

[च द परिणामशूल अ ८०]



— पृष्ठ २४० का शेषांश —

लें। फिर इसकी १ से २ गोली तक उष्ण जल से सेवन करने पर परिणाम शूल नष्ट हो जाता है।

१२. शूलवज्रिणी (कज्जली ८ तोला, लोह भस्म ४ तोला, सुहागे की खील, शुद्ध हींग, पीपल, हरीतकी, आवला, बहेडा, कचूर, दालचीनी, छोटी इलायची, प्रत्येक १-१ तोला लें। फिर खरल में डालकर चूर्ण करके बकरी के दूध में मिलाकर घोटकर ५-५ रत्ती की गोलिया बना कर सुखा लें। १ से २ गोली प्रतिदिन सहिजने की छाल के रस के साथ लेने से परिणाम शूल नष्ट हो जाता है।

१३. सज्जीखार या सोडाबाई कार्ब २ से ६ ग्राम उष्ण जल से लेने पर परिमाण शूल में लाभ होता है।

नोट—मेरे विचार से उपरोक्त योगों में से कुछ की मात्रा अत्यधिक प्रतीत होती हैं अत देते समय विज्ञजन रोगी के बलाबलानुसार मात्रा निर्धारित करें।

—सम्पादक

परिणाम शूल चिकित्सा

डा० यज्ञेश व्यास एम डी (आयुर्वेद), प्राध्यापक–द्रव्य गुण विभाग
श्री नाझर आयुर्वेद कालेज, स्टेशन रोड, सूरत (गुजरात)

परिणाम शूल का तीव्र वेग होने पर पूर्ण आराम करवाना चाहिये। शौचादि के लिये घर मे उठना-बैठना उचित है। सर्वकाल प्रसन्न मन रखने का यत्न करना चाहिए। अजा दुग्ध (बकरी का दूध) गो दुग्ध, मक्खन एव घी आहार मे लेने से पित्त एव व्रण की शाति होकर परिणाम शूल नष्ट होने लगता है। परिणाम शूल के तीव्र वेग मे दूसरा आहार छोडकर केवल दूध पर रहना चाहिए। हर २ घण्टे पर १ कप जितना दूध पिलावे। कुछ चिकित्सक शक्कर (चीनी) डाले बिना ही देना पसद करते हैं।

भोजन से पहले १ या २ चम्मच घी या तिल तेल पिला देना चाहिए। पिघला हुआ घी, (घी मड) पी लेने से व्रण पर एक स्तर सा बन जाता है। जिससे (कोटिंग लेयर बनने से) व्रण उत्तेजना जनित पीडा कम हो जाती है। इसी प्रकार विरेचन की आवश्यकता हो तो ईसबगोल की भुसी का प्रयोग दूध के साथ करना चाहिये। इससे भी व्रण भाग पर स्तर सा बनकर व्रण रोपण मे काफी सहायता मिलती है। दुग्धाहार के अतिरिक्त अन्नाहार लेने पर दो तीन बार से अधिक समय खाने की आदत छोड देनी चाहिए।

परिणामशूल के लिए आयुर्वेद ने सशोधन चिकित्सा भी बतलाई है। सर्व प्रथम थोडा लघन कराकर एरण्ड तेल से विरेचन देना चाहिए। तदनन्तर इक्षु रस (ऊखगन्ने का रस) निम्ब (अन्तर छाल) का क्वाथ या दुग्ध का आकठ पान करवाकर मदनफल से वमन कर्म करवाने से परिणामशूल के कारण दोषो का शोधन हो जाता है। किन्तु सशोधन चिकित्सा पचकर्म के जानकार वैद्य के पास करवानी चाहिए। आतुर स्वय उसे नही कर सकता। उनके लिए निम्नोक्त सशमन चिकित्सा अधिक उपयुक्त है। इनमे से एक या दो प्रयोग का विधिवत सेवन करने से परिणाम सूल अवश्य नष्ट हो जायेगा।

१. शुण्ठी चूर्ण, तिल एव गुड समभाग लेकर एकत्र घोटकर छोटे-२ मोदक बना लेने चाहिए और गोदुग्ध के साथ तीन दिन तक खिलाने से परिणाम शूल नष्ट हो जाता है।

शख भस्म या कपर्दिक भस्म २५० से ५०० मि ग्रा की मात्रा मे कोष्ण जल के साथ देने से परिणामशूल नष्ट होता है।

कूष्माड (पेठा) की मसी १ ग्राम एव १ ग्राम शुण्ठी चूर्ण को लेकर कोष्ण जल के साथ देने से परिणाम शूल नष्ट होता है। कूष्माड जिसे गुजरात मे 'भूरा कोला' कहते है उसे लेकर छिलका निकाल कर टुकडा कर लेना चाहिए। उन टुकडो को सुखाकर, सूख जाने के बाद एक हाडी मे भर कर उसका मुख भली प्रकार बन्द कर (जिससे उसमे से धुआ न निकल जाय) अग्नि पुट देकर जला देना चाहिये। उतनी अग्नि देनी चाहिए कि टुकडे जलकर कोयला हो जाय पूर्ण जलकर भस्म न हो जाय। उन कोयलो को पीसकर चूर्ण बनाने से उसे मसी कहते है। ऐसी मसी का प्रयोग परिणामशूल मे आशातीत लाभ प्रदान करता है।

३ राई का चूर्ण त्रिफला समभाग लेकर मधु एव घी के अनुपान से देने से परिणाम शूल एव सभी प्रकार के उदरशूल नष्ट होते है।

विल्वमूल, एरण्डमूल, चित्रकमूल विश्वभेपज (शुण्ठी) हिंगु तथा सेधव समभाग लेकर चूर्ण बनाकर देने से शूल तत्काल नाश होता है।

४ लोह भस्म, हरीतकी, पिप्पली, तथा सोठ का समभाग चूर्ण कर घी एव मधु के साथ (विषम मात्रा मे) लेने से परिणाम शूल नष्ट होता है।

५ नारिकेल लवण पिप्पली चूर्ण मिलाकर खिलाने से या अकेला नारिकेल लवण (१ या २ ग्राम की मात्रा

—शेषाश पृष्ठ २५१ पर देखे।

✻ पित्ताशयज शूल–एक विवेचन ✻

डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी वैद्य, के ३०/६ घासीटोला, वाराणसी (उ० प्र०)





वर्षों से वाराणसी अनेक विद्याओं का धाम रहा है। विद्या प्रेमी विद्वान सज्जन यहा निवास कर ज्ञान पिपासा हेतु तप करते हैं। वर्तमान मे भी वाराणसी विद्वानो की पुण्यभूमि है। इन उन विद्वानों मे परम विद्वत्वर्य डा० ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी आयुर्वेद-वेद साहित्य एवं संस्कृत-व्याकरण इत्यादि के परम ज्ञाता हैं। आपने आजतक विभिन्न विषयों पर ग्रन्थ लिखकर समाज को दिया। चरक संहिता पर आप द्वारा लिखित 'चरक चन्द्रिका' हिन्दी टीका आपकी चतुरस्र प्रतिभा का सम्यक परिचय देती है। कविराज लोलिम्बराज के सम्पूर्ण साहित्य को प्रकाश में लाकर आपने आयुर्वेद की अभूतपूर्व सेवा की है। आपकी अनेक रचनायें समय-२ पर राजकीय एवं संस्थाओ द्वारा पुरष्कृत हो चुकी हैं। धन्वन्तरि मासिक पत्रिका पर आपकी कृपादृष्टि सदैव रहती है। यहां आपने विशेष आग्रह से पित्ताशय शूल पर संक्षिप्त सारभूत लेख भेजकर उपकृत किया है। – वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

शूल रोग में सामान्य चिकित्साक्रम —

शूल मे वमन, लघन (उपवास अथवा सुकुमार बालक स्त्री अथवा वृद्धो के लिये लघु भोजन), स्वेदन (सेकना), पाचन कारक औषध योग,फलवर्तिया, क्षार, चूर्ण, गुटिका आदि का प्रयोग शुभ माना जाता है। शूलनाशक योग अनेक है, कुछ योग गृहस्थ भी जानते हैं, जो सरल एव सुलभ होते हैं, उनका भी प्रयोग करना चाहिये। उनकी उपेक्षा करने से आप आर्थिक सकट मे पड सकते हैं। किसी भी योग का आप शूल रोगी पर प्रयोग कर रहे हों या करा रहे हो तो उसके पूर्व सामान्य चिकित्सा क्रम मे निर्दिष्ट विधियो पर अवश्य ध्यान दें। अब हम यहा चिकित्सा का निर्देश कर रहे हैं।

१ पैत्तिक शूल–[क] शुद्ध पुराना गुड, शाली चावल, जौ, दूध, घी, विरेचक योग, जागल मास रस का प्रयोग हितकर होता है, [ख] दूध, पानी तथा गन्ने के रस मे परवल के पत्तो तथा नीम के पत्तो को पीस कर मिला दें। इसे पिलाने से वमन हो जाता है। वमन के साथ यदि पित्त निकल जाता है, तो रोगी को तत्काल लाभ होता है, [ग] दूध, पानी या गन्ने के रस को मैनफल के क्वाथ के साथ देने से भी वमन होकर पित्त निकल जाता है, [घ] शीतल जल मे अवगाहन, नदियो के तट पर भ्रमण करना जल से पूर्ण कासे की थाली को पित्ताशय के ऊपर रखने से लाभ होता है [ङ] पित्तनाशक विरेचन, खरगोश, लवा, आदि का मास रस, मधुमिश्रित लाजसक्तुओं का सन्तपर्ण हितकर होते है,[च] मधुयुक्त जौ की पेया का सेवन करायें। [छ]१/२ तोले आवला चूर्ण मधु मिलाकर चाटने के लिये दे।

अनुभूत योग—नीबू के शर्बत मे गुलकन्द मिलाकर देवें, ध्यान रहे कि इसके पहले रोगी को वमन या विरेचन परिस्थिति के अनुसार अवश्य कराले। लाभ होता है।

सामान्यशूल मे–एरण्ड तैल को मात्रानुसार पिलावे और मालिश भी करें।

पार्श्वशूल तथा हृदय शूल मे–बारहसिंगा के शृङ्ग की भस्म को मधु के साथ दें। उसी के सींग को घिसकर पसलियो तथा हृदय प्रदेश पर लेप करें। लाभ होता है।❖

पित्ताशय शूल

[पित्ताशय अश्मरी एवं पित्ताशय शोथजन्य शूल विशेष]

* श्रीमती नलिनी वहन पी० राठोड डी. एन. ए. सी, रीडर एव विभागाध्यक्ष—स्वस्थवृत्त विभाग
* श्री पी० एस० अणुमान एच पी. ए, रीडर—काय चिकित्सा विभाग
शेठ जी० प्र० सरकारी आयुर्वेद कालेज, भावनगर (गुजरात)
निवास—१४६७/ए २/१ कृष्णनगर, भावनगर (गुजरात)

—★—

गुजरात के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य एवं गुजरात वैद्य मंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री वैद्य प्राग जी भाई राठोड की सुपुत्री श्रीमती नलिनी वहन आयुर्वेद महाविद्यालय भावनगर की विद्वान प्राध्यापिका है। आप 'धन्वन्तरि' के जाने-माने विद्वान लेखक वैद्य श्री पी० एस० अणुमान जी की धर्मपत्नी हैं। आपने यहा जन-हितार्थ एवं आयुर्वेद समाज के विशेष ज्ञान हेतु विशिष्ट विषय "पित्ताशय शूल" पर विद्वत्ता से विवेचन किया है। यह लेख नव्य आयुर्वेद चिकित्सकों को अवश्य मार्गदर्शक सिद्ध होगा। आपसे आशा है कि बार-बार ऐसे जटिल विषयो पर अनुसन्धानात्मक लेख लिखने से आयुर्वेद समाज को मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

पित्ताशय यकृत के दक्षिण खण्ड के निचले पृष्ठ से संलग्न विशेष अवयव है जो प्राय ४ इञ्च लम्वा होता है और इसमे लगभग ४५ सी सी पित्त भरा रह सकता है/रहता है। यह तीन स्तरो की वनी थैली जैसी होती है। वाह्य, मध्य एव अन्त स्तरो मे से अन्दर का श्लेष्म स्तर, मध्य का फाइब्रस स्तर और वाहर का सिरोस या पेरिटोनियम स्तरो के रूप मे मिलते है। ९वी कास्टल कार्टीलेज के अगले सिरे पर चुचुकीय रेखा पर स्थित होता है। इसको दक्षिण यकृतीय धमनी की शाखा सिस्टिक धमनी द्वारा रक्त मिलता है तथा इसका रक्त पोर्टल सिरा मे जाकर मिलता है। सिस्टिक एव हैपेटिक डक्ट के संधि स्थान पर इसकी लसिका वाहिनी सिस्टिक ग्रन्थि मे आती है। इसको प्राणदा नाडी (वागस नर्व) पित्त स्राव के लिए उत्तेजना प्रदान करती है, जवकि सिम्पेथेटिक नाडिया शामक प्रभाव कर पित्तस्राव वन्द करती हैं।

एक अहोरात्रि मे यकृत मे लगभग २००० सी सी पित्त का निर्माण होता है। पित्ताशय मे सचित पित्त वहा सग्रहीत हो घट्ट वनता है। पित्त मे मुख्य घटक के रूप मे विलीरुवीन, वाईलस ाल्ट एव कोलेस्टरोल होते हैं। पित्त के यह घटक विभिन्न रूपान्तर एव क्रियाओ के द्वारा स्नेह-पाचन, आन्त्र की श्लेष्मल कला का चयापचयन नियन्त्रण, आन्त्रगत जीवाणु प्रतिरोध/प्रतिकार, रजन एव मलरेचन की क्रियाये करते है।

पित्ताश्मरी [पित्ताशयगत अश्मरी]

पित्ताशय सम्वन्धी शूल का यह प्रमुख कारण है। यह वस्तुत पित्त के घन हो जाने की अवस्था का ही एक रूप है जिसमे या तो पित्त खरता को प्राप्त हो जाता है अथवा किसी केन्द्रक पर पित्त घटको एव सुधा द्रव्यो के जमने से अश्मरी के रूप मे वदल जाता है।

कारण—

१. प्रकृति एव काल स्वभाव—यह रोग प्राय स्त्रियो मे अधिक एव पुरुषो मे कम मिलता है। स्त्रियो मे भी प्राय स्थूल, वहुप्रसवा एव आलसी स्वभाव की स्त्रियो मे विशेष रूप से देखने मे आता है। प्राय ४०-५० वर्ष के वयसमूह मे अधिक मिलता है।

२. आहार सम्बन्धी आदतें—(क) जो लोग (स्त्री/पुरुष) स्निग्ध-वसा, कार्बोहाइड्रेट-पिष्ठादि आहार का अधिक सेवन करते है।

(ख) गुरु आहार, अत्याहार, अजीर्णाशन, दूषित/विपाक्त आहार भी इसके कारण है।

३. (क) व्यायाम द्वेष, बैठे रहना।

(ख) विषम यान सेवन (यह क्षोभक कारण है)।

४. (क) आमाशय मे उत्पन्न अम्ल-रस आदि पाचक रस की उत्पत्ति कम होना या बन्द होने मे।

(ख) दात, गले आदि मे पूय उत्पादक केन्द्र या रोग होने पर।

५ कतिपय रोग विशेष—(क) मेदोरोग, मधुमेह।

(ख) यकृत रोग, हाइपर कोलेस्टरोलमिया।

(ग) तीव्र ज्वर यथा—मथर ज्वर।

(घ) कुछ अर्बुद।

६ कुछ जीवाणु विशेष यथा—ई-कोलाइ, साल्मोनीला टाइफी, स्ट्रेप्टोकोकाई, प्रोटीयस वलगेरिस आदि।

विकृति/सम्प्राप्ति—

१ स्थूलो में व्यायाम द्वेष से तथा गर्भिणी में पित्त के पित्ताशय मे अधिक समय तक सचित रहने से पित्त घट्ट (गाढा) होने लगता है।

२ इस प्रकार ५-१० गुने से भी अधिक गाढा हो जाता है।

२. यह अधिक घट्ट पित्त पित्ताशय की दीवारो पर क्षोभ उत्पन्न करता है, जिसके कारण पित्ताशय मे शोथ उत्पन्न हो जाता है।

४. पित्ताशय शोथ हो जाने से पित्ताशय की श्लेष्म कला से अधिक श्लेष्मा का स्राव होने लगता है जिसके साथ श्वेतकण, श्लेष्मस्तर कोष-खण्ड आदि भी आते हैं। यही अश्मरी के लिए केन्द्रक बन जाते हैं।

५ कई बार रुग्ण यकृत मे पित्त के ठीक से न बन पाने के कारण तथा कोलेस्टरोल की वृद्धि के कारण वृद्ध कोलेस्टरोल पित्ताशय मे नीचे बैठने लगता है और फिर इस पर श्लेष्म (रक्त) कणों की तह जमने लगती है। इसी पर कैल्शियम बिलीरुबीनेट की तह भी जमकर अश्मरी बना देती है।

६. इसी प्रकार कभी-कभी कोलेस्टरोल प्रधान पित्ताशय-अश्मरिया बन जाती हैं।

७ कई बार आमाशय के स्रावो की कमी के कारण आन्त्रगत जीवाणु ग्रहणी एव पित्तप्रणाली के माध्यम से पित्ताशय मे जाकर शोथ या केन्द्रक बनकर अश्मरी का निर्माण कर सकते है।

८. ये अश्मरिया जब पित्ताशय की वस्ति या पित्त प्रणाली मे फसकर रुक जाती है तब पित्ताशय मे सकोच उत्पन्न होकर शूल उत्पन्न करती है। एक प्रकार के खिचाव या तनाव से ही यह शूल होता है।

पित्ताशय अश्मरी शूल के लक्षण—

१ यह शूल प्राय गुरु एव स्निग्ध या अधिक आहार लेने के बाद ही प्रगट होता है। यान मे सवारी करने से बढ सकता है, प्रगट भी हो सकता है। प्राय साय-रात्रि मे ही वेग आता हैं। इसका वेग १-२ घण्टे तक ही रहता है। यह सहसा उत्पन्न होकर १-२ घण्टे मे स्वत. शान्त भी हो सकता है।

२ शूल तीव्र प्रकार की चुभन जैसा होता है। यह ने, काल मे सतत बना रहता है। शूल पित्ताशय क्षेत्र के पीछे अस से कधे तक जाता प्रतीत हो सकता है।

३. शूल पेट के ऊपर दाये भाग मे मध्य रेखा के समीप (चुचुकीय रेखा पर) मिलता है।

४ शूल वेग के समग्र रोगी व्याकुलता, बेचैनी महसूस करता है, दर्द से दोहरा हो जाता है, चीखता या चिल्लाता है या निश्चेतन पड जाता है। कभी-कभी बेचैन होकर इधर-उधर घूमने लगता है।

५ इसमे शरीर तापक्रम सामान्य से कम हो जाता है। शीताभास या कपकपी मिल सकती है। नाड़ी प्राय दुर्बल परन्तु तीव्र हो जाती है।

६ शूल के अन्तिम भाग मे वमन हो जाती है, जिसमे पिच्छिल-पीताभ द्रव बाहर आता है। वमन के बाद रोगी को शान्ति महसूस होती है।

७ १-२ घण्टे बाद वेग स्वत भी शान्त हो सकता है। दूसरा वेग कुछ घण्टो, महीनों या वर्षों के अन्तर पर आ सकता है।

८ वेग के बाद स्वल्प कामला प्रभाव मिलता है।

९ उपद्रव के रूप मे कामला, कैंसर हो सकते हैं।

१० उसको वृक्कशूल, हृच्छूल, आन्त्रशूल, आमाशय-मलाशय-पैंक्रियास-कैंसरजन्य कामला में विभेदा निदान की आवश्यकता रहती है ।

पित्ताशय शोथ

इसी प्रकार उपरोक्त कथित निदान के कारण ही कभी-कभी केवल पित्ताशय शोथ के कारण भी शूल उत्पन्न होता है । इसके शूल के लक्षण लगभग उपरोक्त प्रकार के ही होते है, तथापि कुछ विशेषतायें भी मिलती हैं—

पित्ताशय शोथ के दो प्रमुख रूप मिलते हैं—एक नवीन-तीव्र तथा दूसरा जीर्ण रूप । इनमे से नवीन या तीव्र पित्ताशय शोथ भी मृदु एव दारुण भेद से दो प्रकार का हो सकता है—

(१) मृदु रूप को श्लेष्मिक पित्ताशय शोथ के रूप मे जाना जाता है । इसमे पित्ताशय की श्लेष्मकला से अति श्लेष्म स्राव के कारण उत्पन्न स्थिति पित्ताश्मरी एव तज्जन्य शूल के लिए जिम्मेदार होती है ।

इस अवस्था मे अरुचि एव वमन, तीव्र शूल के साथ मिलने वाली विशेषतायें है ।

(२) दारुण या अति तीव्र रूप को वात-पैत्तिक पित्ताशय शोथ कहा जा सकता है, जिसमे व्रणशोफावस्था, पूयावस्था सम्बद्ध पित्ताशय शोथ होता है जो किसी सक्रमण से सम्बन्धित हो सकता है । इसमे ज्वर, रात्रि मे उत्पन्न तीव्र शूल, अरुचि एव वमन के साथ ही आध्मान, श्वास, कामला आदि मिल सकते है । रक्त मे श्वेत कणो की वृद्धि, बिलीरुबीन का २ ५ मि लि प्र श से भी अधिक वृद्धि मिल सकती हे । क्ष-किरण मे पित्ताशयगत अश्मरी मिल सकती है । वेदना अस के निचले कोण तक तथा पित्ताशय मे स्पर्शासहत्व मिलते है ।

(३) चिरस्थाई पित्ताशय शोथ—इसमे भी वेदना स्निग्धाहार के १-२ घण्टे बाद आमाशय प्रदेश मे दाई ओर पसली के नीचे, ऊपर तथा पीछे की ओर जाने वाले दर्द के रूप मे प्रगट होती है । अरुचि, हृल्लास, आध्मान के साथ-साथ उद्गार (अम्लोद्गार बाहुल्यता) तथा वमन मिलते है । वमन के बाद भी शूल बना रह सकता है । कभी-कभी मन्द ज्वर मिलता हे । यकृत शोथ एव कामला मे भी कभी-कभी यह शूल मिल सकता हे । इसमे पित्ताशय कैंसर एव पेप्टिक अल्सर का भ्रम हो सकता है ।

चिकित्सा—

१. पित्ताशय शोथ की दृष्टि से संक्रमण होने पर कृमिघ्न एव ज्वरघ्न उपचार, लघन, लघु भोजन, स्वेदन ।

२ पित्ताशय में अश्मरी होने पर अवरोध दूर करने की दृष्टि से पित्त विरेचनार्थ पित्तप्रवर्तक द्रव्य यथा शुष्कपित्त, गोरोचनादि वटी, रज प्रवर्तनी वटी आदि तथा रक्तपाथ कामला की चिकित्सा प्रयोग में लें ।

३ पित्त निर्हरणार्थ विरेचन चिकित्सा—त्रिफला क्वाथ ।

४ पित्तोपद्रव चिकित्सा के रूप में कामलाहर उपचार—आरोग्यवर्धिनी, कामलाहर रस, वासादि क्वाथ ।

५ लक्षणानुसारी चिकित्सा यथा—अरुचि, आध्मान आदि मे हिंग्वादि चूर्ण, हिंगुकर्पूर वटी, शंख वटी आदि ।

६ शूल शमनार्थ चिकित्सार्थ निम्न उपचार करें—

(क) शूल स्तम्भनार्थ—कनकासव, सोमकल्पासव, अहिफेनासव आदि (बेलाडोना एव मार्फीन एट्रोपीन की निर्मितिया दी जाती है) ।

(ख) वातानुलोमनार्थ—[i] शिवाक्षार पाचन १-२ माशे दिन मे २-३ बार कोष्ण जल से दिया जा सकता है ।

[ii] हिंगुकर्पूर वटी, शख वटी भी अच्छे कल्प हैं ।

(ग) कोष्ण जलधारा या टब बाथ ।

७. वमन, लघन, स्वेदन, प्रमेहघ्न, मेदोहर, अश्मरी हर, शूलघ्न चिकित्सा ।

८ दक्षिण पार्श्व शयन, पेट के मृदु व्यायाम ।

९ निदान परिवर्जन—स्निग्ध, गुरु, अत्याहार का सर्वथा त्याग । अण्डे, मास, दूध की बनी वस्तुयें, मद्य, सिरका-शुक्त, गरम मसाले, कन्द आदि का त्याग करायें ।

१० पथ्य सेवन—(क) रूक्ष एव अल्प आहार सेवन ।

(ख) गेहूँ, यव, पुराणशालि आदि शूक धान्य, कुलत्थ, चना, मूग जैसे शिम्बी धान्य, तक्र (तनु), मलाई निकाला दूध, जागल मास रस (वसा रहित), उबले शाक-भाजी ।

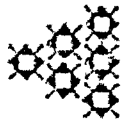
(ग) आहार योजना की दृष्टि से—[i] प्रारम्भ मे १ सप्ताह स्नेहरहित दूध, दही, तक्र पर रोगी को रखे ।

[ii] फिर ३००-४०० ग्राम शाक-भाजी उबालकर दे ।

[iii] बाद मे स्वल्प घी, मक्खन दे और शाक, रोटी पर लाये । गेहूँ-चने की रोटी, शाक, मूग की दाल दे ।

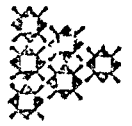
[iv] तदनन्तर भोजन के पूर्व १-२ घण्टा पहले १-३ चम्मच घी या मक्खन शुरू कराये ।

[v] भोजन थोडा-२ दिन मे ३-४ बार कराये । ❖

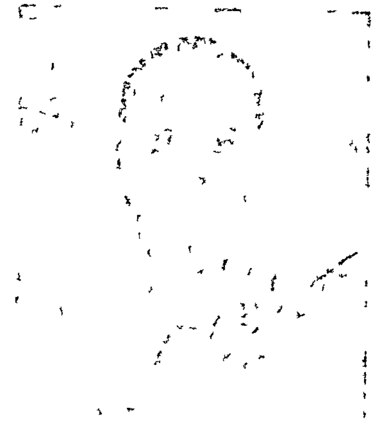


उदर शूल

वैद्य धीरेन्द्र टी० जोशी डी एस ए सी
६६--मालवीय नगर, राजकोट (गुजरात)







श्री वैद्य धीरेन्द्र भाई जोशी गुजरात के ख्यातिप्राप्त वैद्य हैं। श्री जोशी शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधर हैं, आयुर्वेदीय लोक सेवक हैं। वर्षों से आप वैद्यों के संगठन हेतु कार्य करते हैं लेकिन वैद्यों में आलस्य की भावना देखकर निराशा से अब आप आयुर्वेद द्वारा रचनात्मक कार्य करते हैं। भूतकाल में आप सरकारी अस्पतालों में मुख्य वैद्य थे, साथ-२ गुजरात आयुर्वेद बोर्ड के सदस्य, गुजरात आयु० यूनि० के सेनेट, सिण्डीकेट मेम्बर एवं अनेकों आयुर्वेद संस्थाओं में पदाधिकारी थे। आपने आज तक आयुर्वेद की अप्रतिम सेवा की है। आप गुजराती भाषा में आयु विषयक लेख भी लिखते हैं। श्री जोशी उत्साही वैद्य हैं। परीक्षणात्मक दृष्टि से चिकित्सा करते हैं। साम-निराम आपका मुख्य विषय है। मैं आग्रह करूंगा कि आप आयुर्वेद विषयक मार्गदर्शन देकर सेवा करें।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आयुर्वेद भारत की अपनी चिकित्सा प्रणाली है। आयुर्वेद के अनुसार जाने अनजाने में घर-घर में घरेलू उपचार होते रहते हैं। कारण यह है कि भारत के बच्चों को जनम घुटी में ही आयुर्वेद दिया जाता है। इसी कारण पेट का हर रोगी सर्व प्रथम कुछ घरेलू उपचार कर ही लेता है। सामान्यत ऐसे रोगियों की मान्यता रहती है कि पेट साफ नहीं होता है—कब्ज रहता है इस लिये पेट दर्द हुआ है। ऐसे कई रोगी दस्त साफ करने वाली कुछ औषधियां लेते हैं, कई रोगी अजवायन, हींग काला नमक आदि औषधियों का प्रयोग कर लेते हैं। तो कई रोगी हिंग्वाष्टक चूर्ण, लवण भास्कर चूर्ण, शंखवटी जैसी औषधियों का प्रयोग बिना किसी चिकित्सक की सलाह के लेते हैं। इससे कई रोगियों को लाभ होता है तो कई रोगियों को लाभ नहीं भी होता है।

जिन रोगियों को उपर्युक्त प्रयोगों से लाभ नहीं होता है ऐसे रोगी चिकित्सक के पास इलाज के लिए चले जाते हैं। अपने फेमिली चिकित्सक का सहारा सर्व प्रथम लेते हैं। कुछ विशेष इलाज से चिकित्सक द्वारा कई रोगी रोग मुक्त यानि शूलमुक्त होकर जाते हैं। फिर भी कुछ रोगियों का शूल का निवारण नहीं होता है। ऐसे रोगी विशेषज्ञ के पास पहुँच जाते हैं। एक्सरे निरीक्षण, रक्त-परीक्षण, मूत्र परीक्षण आदि चक्कर चालू होते हैं। सभी परीक्षणों का परिणाम शून्य आता है। सब रिपोर्ट नार्मल आती हैं। रोगी खर्च करता जाता है दवाइयां बदलती जाती हैं। चिकित्सक बदलते जाते हैं। मगर शूल वहीं का वहीं रह जाता है। क्या कारण हो सकता है इस शूल का ?

मनुष्य शरीर के उदर में ३२ फीट लम्बी आंतें हैं। यकृत, प्लीहा, अग्न्याशय, ज्वर, वृक्क, मूत्राशय, गर्भाशय (स्त्री शरीर में), गवीनियां, उदर पटल आदि अवयव भी हैं। यह विशेष रूप से पाचन संस्थान से सम्बन्धित अवयव हैं। इन अवयव की विकृति से भी शूल हो सकता है। जोकि उपर्युक्त परीक्षाओं की रिपोर्ट से निर्णीत हो सकता है। यहां रिपोर्ट नोर्मल है और शूल चालू है इसलिये अवयव विकृति का विचार आवश्यक है।

जो अन्न मनुष्य खाता है मुख के द्वार से आमाशय, ग्रहणी, लघु अन्त्र, वृहत् अन्त्र आदि में चलकर उस पर पाचन क्रिया होते हुए उपयोगी अंश शरीर में शोषित होते हैं और जो उपयोगी नहीं है वह मल मूत्र द्वारा प्राय शरीर से बाहर निकल जाते हैं। अगर आहार पाचन

सम्यक्तया हो तो आयुर्वेद के अनुसार आहार का पाचन अग्नि आधारित हे। अग्नि का अर्थ है जठराग्नि। जठराग्नि का स्थान उदर है। समान वायु जठराग्नि को दीप्त रखने का कार्य करता है। "समानोऽग्नि समीपस्थ।" अग्नि तेरह प्रकार का है। सात धात्वग्नि पाच भूताग्नि और एक जठराग्नि। इसमे जठराग्नि प्रधान है। धात्वग्नि और भूताग्नि जठराग्नि पर आधरित, है। जठराग्नि की मदता से वे मद होते हैं और जठराग्नि की प्रदीप्तता से वे प्रदीप्त होते है। पाचन क्रिया मे इस धात्वग्नि ओर भूताग्नि का भी सवध हे।

यहा हमारा विषय शूल है इसलिए हम अग्नि पर विचार नही करेगे।

इस जठराग्नि की मदता आहार के अविपाक का कारण है। जो आहार लिया है वह पूर्णतया पाचन नही होता है। आहार के कुछ अ श अपक्व रह जाते हैं। और शरीर मे जमा रहते हे। जठराग्नि मन्द होने से उस पर आधारित धात्वग्नि की भी मदता से आगे की धातु का परिपाक नही होता है। इस अपक्व आहार रस को जो शरीर मे जमा होता है 'आम' कहते है। यह आम स्रोतसो मे फैलता जाता हे, स्रोतावरोध पैदा करता है।

जिह्वा की लोलुपता से आहार का लेना चालू रहता है, अग्नि की मन्दता से आहार का पाचन पूरा नही होना भी चालू रहता हे और शरीर मे आम सचित होने की क्रिया अविरत रूप से चालू रहती है।

इस आम से वायु का अवरोध होता है। तव वात प्रकोप होता हे। तव यह प्रकुपित वात शूल पैदा करता है। अन्य दोप पित्त और कफ भी सम्वन्धित होते हे। यहा उदरस्थ वात का प्रकोप होता हे। इसलिए उदर शूल की उत्पत्ति होती है। ऐसे शूल के रोगी अधिक सख्या मे चिकित्सक के पास आते है जो आगे कहे गये है।

ऐसे रोगियो के सव परीक्षण नॉर्मल आते है इसलिए सामान्य से विशेष औपधियो के प्रयोग से शूल प्रशम होता है। फिर भी शूल का फिर से प्रारम्भ होता है। यहा अवयव विकृति का विचार नही करना चाहिए। यहा स्रोतसो मे वात के प्रकोप का विचार करना चाहिये। आमजन्य स्रोतसो के अवरोध का विचार मुख्यतया करना चाहिए। इस अवस्था को सामावस्था कह सकते हैं। ऐसे शूल का प्रशम दर्द नाशक दवाओ से नही होता है। आम का पाचन करने से स्रोतसो का अवरोध दूर कर वात शाति के उपचार से ऐसे शूल का प्रशम हो सकता है।

आम अपरिपक्व आहार रस से वनता है। इसलिये ऐसी अवस्था मे आम पाचन करना आवश्यक है। आम पाचन के लिए लघन श्रेष्ठ है। रोगी की अवस्था को जानते हुए अनशन आदि लघन का प्रयोग करने से आम पाचन होता है। स्रोतसो का अवरोध दूर होता है और इससे अवरुद्ध वात का प्रकोप शात हो जाता है तव इस प्रकार शूल सम्यग्तया प्रशम हो सकता हे। आम पाचन होने से निरामावस्था वनती है। निराम होने के वाद ही रोगी की चिकित्सा मे पूर्णतया सफलता मिल सकती है। कहा भी है कि—निराम देहस्य हि भेपजानि युक्तानि अमृतोयमानि।

आजकल विशेषतया ऐसे शूल मे अवयव विकृति का विचार करते है और ऐसे अवयव को शस्त्रक्रिया करके शरीर से निकाल देते है। जैसे उदर मे दक्षिण अधो प्रदेश मे शूल होता है तो एपैण्डिक्स का आपरेशन करके एपैण्डिक्स को निकाल देते है। ऐसी चिकित्सा से रोग प्रशम नही होता है। रोग का कारण तो वही रह जाता है। इस कारण से रोग की उत्पत्ति किसी दूसरे ढग से होने की सम्भावना रहती है। यह योग्य चिकित्सा नही है।

इस प्रकार विचार करने से उदर शूल का मुख्य कारण अपरिपक्व आहार हे। आहार से शरीर वनता है। आहार शरीर का रक्षण करता हे। यह ही आहार जो सम्यग्तया नही लिया जाता है तो विप समान वनकर रोगोत्पादक कारण भी वन सकता है। ऐसे प्रकार के शूल से वचने के लिए आहार का विचार करना आवश्यक है। आहार के कुछ सामान्य नियम वनाये रखने से ऐसे रोग उत्पन्न नही होते है और स्वास्थ्य वना रहता है।

मेरे और मेरे पिताश्री के चिकित्सा व्यवसाय करते हुए हम इस निष्कर्ष पर आये है कि निम्नलिखित आहार के नियमो का उचित रूप से पालन करने से रोग उत्पन्न नही होते है। अगर होते भी है तो गभीर रोग से मनुष्य वच भी सकता है—

१ आहार नियमित रूप से लेना चाहिए। दिन मे दो ही वार आहार लेना उचित समझा गया हे।

२ आहार उचित मात्रा मे ही लेना चाहिए। यह मात्रा हर व्यक्ति के लिये अलग है जो जठराग्नि की शक्ति पर निर्भर है।

३ पथ्य आहार ही लेना चाहिए। जो आहार जिसको अपथ्य रहता है वह नहीं लेना चाहिए।

४ आहार के साथ पानी पीने का भी नियम है। आहार लेने से पूर्व पानी नहीं पीना चाहिये। रात्रि मे उचित मात्रा मे ही पानी पीना चाहिये।

५ दिन भर यानी तृषा के अनुसार ऋतु के अनुसार मात्रा मे पीना पीना चाहिए। एक साथ अधिक जल नहीं पीना चाहिए।

६ आहार ऋतु के अनुरूप लेना चाहिए।

७ गुरु आहार कम मात्रा मे लेना चाहिये। जिस दिन गुरु आहार लिया हो उसके दूसरे दिन लघु आहार ही लेना चाहिये और पाचन संस्थान के अवयवो को थोडी विश्रांति देनी चाहिए।

८ अद्रक, लशुन, हीग प्याज, अजवायन आदि का आहार के साथ पर्याप्त भाग मे उपयोग करना चाहिए।

९ विरुद्ध आहार का सेवन कदापि नही करना चाहिए। जैसे दूध के साथ फल, दूध के साथ मछली, दूध के साथ खट्टे पदार्थ विरुद्ध आहार है।

१० अध्यशन नही करने चाहिए। आहार लेने के तुरन्त बाद नास्ता आदि को अध्यशन कहते है।

११ हफ्ते मे एक बार हरीतकी, त्रिफला आदि से मल शुद्धि कर पेट साफ रखना चाहिए।

ऐसे सामान्य नियम से रोग उत्पन्न होने से बच सकते है। खासकर के शूल के रोगियो की संख्या कम हो सकती हैं। रोगी खर्च से बच सकते है जरूरत के बिना की शस्त्रक्रिया से बच सकते है। अग्नि रक्षति रक्षेत्। कहा है। उचित ही है। अगर आप जठराग्नि की रक्षा कर सकते है तो आप अपने स्वास्थ्य की रक्षा संपूर्णतया कर सकते हैं। स्वास्थ्यपूर्ण आयुष्य प्रदान कर सकते है। ❖

 परिणाम शूल चिकित्सा  — पृष्ठ २४४ का शेषांश —

मे) कोष्ण जल से देने मे परिणाम शूल ही नहीं कई प्रकार के उदर शूल तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यह प्रयोग शास्त्रीय एव अनुभव सिद्ध है अत हम इस निर्दोष एव सरल औषधि प्रयोग करने पर अधिक बल देते हैं।

नारिकेल लवण बनाने के लिए एक अच्छा पानी वाला नारियल लेकर उसके ऊपर की कुछ जटा आरी से काट देनी चाहिये, जिससे उसकी तीन आखे स्पष्टत दीख सकें। उनमे से एक आख को तीक्ष्ण हथियार से छेदकर उसमे उस छिद्र द्वारा सेंधव चूर्ण यत्नपूर्वक भरना चाहिए। सेंधव चूर्ण भरने से पहले नारिकेल का पानी निकालना नही है और अधिक से अधिक सैंधव चूर्ण उसमे भरकर बाद मे गेहूँ या उडद के आटे से उस छिद्र को बन्द कर देना चाहिए। उसके बाद समग्र नारियल पर काली मिट्टी का गाढा लेप लगाकर उसको सुखा लेना चाहिए। सुखाकर अग्निपुट देकर तब तक अग्नि देनी चाहिए कि बाहर की मिट्टी गर्म होकर रक्तवर्ण की दीखने लगे। तदनन्तर अग्नि से हटाकर उसे स्वत. शीतल होने पर मिट्टी वगैरा हटाकर बीच मे से काला गोला निकाल लेना चाहिए। उस गोले को खरल मे सूक्ष्म पीस लेने से नारिकेल लवण तैयार हो जाता है। उसे पिप्पली चूर्ण के साथ, दशमूल क्वाथ के अनुपान से या चतुर्बीज चूर्ण के साथ देने से कई प्रकार के उदरशूल नष्ट होते है।

इसके अतिरिक्त अविपत्तिकर चूर्ण, धात्री लोह, त्रिनेत्र वासादि क्वाथ, लीला विलास रस (मो र), सूतशेखर रस, पर्पटादि क्वाथ, प्रवाल पचामृत रस इत्यादि पित्त शूल एव व्रण नाशक औषधियो का प्रयोग करके कई वैद्य परिणामशूल की सफल चिकित्सा करते है। इनमे से अविपत्तिकर चूर्ण पर्पटादि क्वाथ एव सूतशेखर रस वैद्यवर्ग मे अधिक प्रचलित है।

पिप्पली के कल्क एव क्वाथ से साधित घृत १ तोला लेकर मधु के साथ चाटने से और पथ्य मे दुग्धाहार का सेवन करने से परिणाम शूल नष्ट होता है।

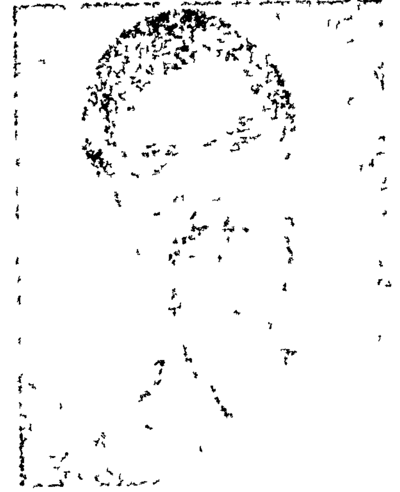
अपराजिता के मूल से साधित घृत को शर्करा एव मधु मिलाकर ७ दिन तक सेवन करने से परिणामशूल नष्ट होता है।

—❖—

* आमाशयगत विविध शूल-नैदानिक विवेचन *

वैद्य जगदीश के० पुरोहित आयुर्वेदाचार्य, उदराणा, ता०-थराद (बनासकाठा) गुजरात





वैद्य श्री जगदीश पुरोहित उत्साही युवा वैद्य है । १९७७ मे अखण्डानन्द आयु० महाविद्यालय, अहमदाबाद-गुजरात मे बी एस ए एम स्नातक होकर ग्राम्य प्रदेश मे निवास कर रहे हे । छात्रावस्था मे आप गुजरात के लब्धप्रतिष्ठित वैद्य श्री रसिक भाई पारीख एवं वैद्य श्री शोभन जी के पास रहकर आयुर्वेद-महत्व समझते रहे। आप निरामय गुजराती आयुर्वेद मासिक मे लिखते है, साथ-साथ धन्वन्तरि स्वास्थ्य, आयुर्वेद विकास इत्यादि पत्रिका मे भी लिखते हे । आप शुद्ध आयुर्वेद के पक्षधर हे । मैं आशा करूगा कि भविष्य में शुद्ध आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा जनता की अधिक सेवा करेंगे । यहा आमाशयगत विविध शूलो पर उपयोगी लेख दिया है । धन्यवाद के पात्र हैं ।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

पैत्तिक शूल—

इस शूल की उत्पत्ति मे पित्त प्रकोपक आहार-विहार तथा काल कारण हुआ करते हे । तद्यथा कटु, अम्ल, पापडखार (सोडाबाईकार्ब), अति तीक्ष्ण (मिर्च), उष्ण, विदाही तथा वास के अकुर आदि पित्त प्रकोपता का अनुमान है । तैल-स्वय तैल किंवा तैल मे साधित पदार्थ, कुलत्थ की विकृतिया, विदग्ध (तले हुए तथा अन्य विदाहकारी) पित्तकारक आहार द्रव्यो के अतियोग से, क्रोध (अति) अनल (अग्नि) सूर्य का उग्र ताप एव अति मैथुन इन विहारो के योग से पित्त प्रकुपित होकर शूल को उत्पन्न करता है ।

इस पैत्तिक शूल के लक्षण अधोनिर्दिष्ट होते है--उदर आदि अवयवो मे दाह, तृपा, चोष (गला सूखना), मोह-चित्तनाश, मूर्च्छा भ्रम, मद, शूल तीव्र होना एव वह नाभि मे होना (यह पित्त का स्थान) तथा चोप अवयव-विशेप मे चूसे जाने की प्रतीति ।

पित्त का प्रकोप जिन कालो मे होता है उनमे इस शूल के वेगो का आविर्भाव अथवा वृद्धि होती है यथा ग्रीष्म ऋतु, शरद ऋतु, मध्य रात्रि मध्याह्न अन्न के अम्लावस्थापाक के समय प्रकोप होता है । उपशय की दृष्टि से विचार करें तो शीतकाल मे एव शीतल वायु आदि शीत पदार्थो के योग से अथवा सुमधुर तथा शीत वीर्य वाले भोजनो के सेवन करने से शूल शात किंवा मन्द होता है । रुग्ण शीत (वायु आदि) पदार्थो के प्रति अभिरुचि प्रदर्शित करता है ।

प्रकुपित्त पित्त का स्थान सश्रय जहा होता है वहा पाक इन्फलेमेशन हो जाने से शूल की उत्पत्ति होती है । पाक के एक लक्षण के रूप मे न्यूनाधिक पीडनाक्षमता अर्थात अगुलियो से परीक्षा काल मे दवाने मे वेदना की वृद्धि इस शूल मे हुआ करती हे ।

कफज शूल—

कफ प्रकोपक कारणो के योग से यह शूल होता है । यथा पुरुप आनूप देश मे सचरण करने वाले अथवा मत्स्यादि जलचर जन्तुओ का मास किंवा कमल के कन्द इत्यादि जलज एव आनूप देशज तत्काल प्रसूता महिषी का दूध, खीर आदि दुग्ध विकृतिया मास, विकृति (मास के बने भोज्य द्रव्य),इक्षु विकृति, पिष्ट, खिचडी), जलेबी इन तथा अन्य गुरु आदि कफप्रकोपक आहार द्रव्यो का अति सेवन करे तो उनका कफ प्रकुपित होकर शूल पैदा होता है ।

इस कफज शूल मे अधोनिर्दिष्ट लक्षण होते है--इसका स्थान आमाशय होता है अर्थात् यह नाभि के ऊपर

होना है। शूल वेगो के साथ हृल्लास (छर्दि की आशका) अरुचि, प्रसेक लालास्राव, कोष्ठ की स्तिमितता (स्तब्धता-जकडाहट अथवा उस पर आर्द्र वस्त्र लपेटा हो ऐसा भास) कोष्ठ की अतीव परिपूर्णता (भरा हुआ लगना) कोष्ठ तथा शिर मे गौरव (भारीपन) अङ्गसाद (शरीर एकदम शिथिल होना या टूटना) एव शरीर की गुरुता। ये लक्षण होते हैं। भोजनोत्तर शूल की अतिमात्रा मे वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त इसके वेगो का आविर्भाव किंवा वृद्धि सूर्योदय होने पर एव शिशिर ऋतु अथवा वसत ऋतु मे होती है। [ये सर्व काल कफ की वृद्धि के प्रसिद्ध हैं।] इन लक्षणो को देखकर कफज शूल होने का निश्चय करना चाहिए।)

त्रिदोषज, द्वन्द्वज तथा आमज शूल—

त्रिदोषज शूल—जो शूल ऊपर एक दोषज शूलो के जो स्थान कहे हैं उन सर्व स्थानो मे अर्थात् हृदय पृष्ठ पार्श्व, त्रिक, बस्ति, नाभि एव आमाशय मे अवस्थित हो, अथवा जिनमे एक दोषज शूलो के समुदित लक्षण विद्यमान हो उसे त्रिदोषज अथवा सन्निपातिक शूल समझना चाहिए। यह अति कष्टकारक, विष और वज्र के समान तथा असाध्य रोग है। (सम्भव है, इसमे आधुनिक मतानुसार आमाशय तथा पच्यमानाशय दोनो स्थानो का व्रण युगवत विद्यमान होता है।)

आमज शूल—जैसा कि सज्ञा से सूचित है यह शूल आम (अपक्व अन्नपान) के कारण उत्पन्न होता है। इसके लक्षण सामान्यतया कफज शूल के समान होते हैं। तथा इसमे आटोप (वेदना सहित आन्त्रकुजन) हृल्लास स्तब्धता, आनाह (ऊर्ध्व तथा अधोवायु का अवरोध) एव कफष्ठीवन ये लक्षण आमज शूल के है।

इस आमज शूल मे प्रथम आम के योग से शूल का आविर्भाव होता है। पश्चात इसका दोषो से सम्बन्ध हो जाता है। अतएव शूल प्रथम आम की उत्पत्ति के स्थान आमाशय मे होता है अनन्तर अन्य दोषो के साथ अनुबध होने पर दोष-भेद से शूल बस्ति, नाभि, हृदय पार्श्व तथा (उदर-पार्श्व) मे भी होने लगता है।

दोष भेद से शूलों के स्थान—

उपर्युक्त एक दोषज शूल अथवा उन-उन दोष से सम्बद्ध हुआ आम समुद्भव शूल दोषभेद से पृथक्-पृथक् स्थान में हुआ करता है। तथापि शूल वातज अथवा वातानुबद्ध हो तो बस्ति मे (बस्ति प्रदेश मे हायपोगेस्ट्रिक रीजन) मे होता है। शूल पित्तज अथवा पित्त सम्बद्ध हो तो उसका स्थान नाभि (नाभि प्रदेश-अम्बिलीकल रीजन) मे होता है। अन्त मे शूल कफज अथवा कफ सम्बद्ध हो तो हृदय पार्श्व एव कुक्षि मे होता है। त्रिदोषज शूल उक्त सभी स्थानो मे होता है।

आमज शूलो के बारे मे भावप्रकाश ने लिखा है कि पुरुष का जठराग्नि मन्द हो तथापि वह अत्यशन करे तो वह अपक्व ही रहता है और कोष्ठ मे स्तब्ध (स्थिर) रहता है। वायु इससे आवृत होजाता है। इस अपक्व (आम) अन्नपान के कारण उदर मे शूल होता है। इस शूल को अविपाकोद्भव शूल (आमशूल) कहा जाता है। इस शूल के साथ विदाह, आध्मान, हृदयोत्क्लेश (छर्दि की आशका), छर्दि, अतिसार, विलम्बिका, कम्प, मूर्च्छा तथा अति मोह ये लक्षण भी होते है।

शूल के उपद्रव, साध्यासाध्यता एव अरिष्ट लक्षण

शूल (उदरशूल) के उपद्रव निम्न लिखित होते है—वेदना, अति तृषा, मूर्च्छा, आनाह (ऊर्ध्व-अधोवायु का अवरोध), गौरव, अरुचि, कास, श्वास, वमन तथा हिक्का। इन उपद्रवो का विचार कर आगे कहे अनुसार साध्यासाध्यता का निश्चय होता है।

शूल एक दोषज हो तो साध्य, द्वन्द्वज हो तो कष्टसाध्य, त्रिदोषज हो तो अधिक कृच्छ्रसाध्य एव बहुसख्यक उपद्रवो से युक्त शूल असाध्य हुआ करता है।

इस शूल मे निम्नोक्त उपद्रव हो तो इन्हे अरिष्ट (मृत्यु सूचक) समझना चाहिए—वेदना, अति तृषा, मूर्च्छा, आनाह, गौरव, ज्वर, भ्रम, कृशता तथा बलक्षय।

द्विदोषज शूल—

एक दोषज शूल के लक्षण तथा स्थान जिस शूल मे उपलब्ध हो उसे द्वन्द्वज समझना चाहिये तथापि शूल बस्ति, हृदय (छाती, पार्श्व), तथा पृष्ठ मे हो तो उसे कफवातिक समझे। शूल कुक्षि (उदर पार्श्व) तथा हृदय तथा नाभि के मध्य मे आमाशय प्रदेश (एपीगेस्ट्रिक रीजन) मे हो तो कफ पैत्तिक एव जिसके सहचारी लक्षण दाह तथा ज्वर हो अथवा जो अति कष्टप्रद हो तो उसे वातपैत्तिक शूल समझना चाहिये।

परिणाम शूल —

श्री माधवाचार्य ने इस शूल के जो लक्षण दिये है उनको मधुकोष टीका मे बहुत सुन्दर बताया है। यह शूल यद्यपि त्रिदोषज होता हे, तथापि भोजन काल के सम्बन्ध से पित्त के प्रकोप का जो काल (अन्न की पच्यमानावस्था) होता हे उसी मे नियत रूप से इसके वेग उपस्थित होने से इसे पित्तोल्वण समझना चाहिये। इस रोग मे कफ अपने स्थान आमाशय से च्युत (स्थान भ्रष्ट) होता है। (अपने प्रकोपक कारणो के योग से कुपित हुए पित्त के साथ यह कफ सयुक्त होता है। अपने प्रकोपक हेतुओ मे प्रकोप को प्राप्त हुआ वायु पूर्वोक्त कफ तथा पित्त को व्याप्त करता हे, उनके ससर्ग मे आता है। पित्त तथा कफ के ससर्गवश बलवत्तर हुआ वायु उदर मे शूल उत्पन्न करता है तब शूल के वेग को भोजन की पच्यमान अवस्था मे अर्थात भोजन करने के आधा घण्टे मे डेढ घण्टे के अन्तर मे होते है। शूल कुक्षि (उदर के पार्श्व), जठर (आमाशय), नाभि, वस्ति, स्तनद्वय का मध्यभाग, पृष्ठ का मूल (अधोभाग)—इन प्रदेशो मे हुआ करता है। भोजनोत्तर तत्काल भक्त अन्न की वान्ति(वमन) हो जाने अथवा अन्न जीर्ण होजाने पर (कारण पच्यमानावस्था मे तो शूल के वेग होते है) शूल शात होजाता है। अन्न के परिणाम काल अर्थात पच्यमानावस्था मे उसके वेगो का उदय होने से उसे 'परिणाम शूल' कहते है। इसकी परीक्षा अति कठिन होती है। रसवह स्रोतसो की दुष्टि इसकी उत्पत्ति मे कारणभूत होती है। यह पक्ति-जठराग्नि तथा उसके आश्रित पचनकर्म की दृष्टि से होता है। कोई आचार्य उसे अन्नद्रवशूल कहते है। अन्य पक्तिशूल तथा कोई इसे अन्न के विदाह से उत्पन्न व्याधि कहते है। ❖

—०❖०—

उदर-शूल चिकित्सा

डा० वेदप्रकाश शर्मा (त्रिवेदी) आयुर्वेदाचार्य, ए एम बी एस (लखनऊ), एच पी ए (जाम०)
अनुसधानाधिकारी-विभागाध्यक्ष—शल्य--शालाक्य, मानसिक व्याधि अनुसधान विभाग,
भारतीय काय चिकित्सा सस्थान, पटियाला (पजाब) [अन्तर्गत—आयुर्वेद एव
सिद्ध पद्धति की केन्द्रीय अनुसधान परिषद नई दिल्ली-भारत सरकार]

—०❖०—

चिकित्सा सूत्र—

सर्व प्रथम स्नेहन स्वेदन कराये तत्पश्चात पचकर्म कराये। द्वितीयचरण पाचन औषधि सेवन कराये यथा क्षार, चूर्ण, गुटिका आदि।

पथ्य—आहार-दुग्ध, गेहूँ [विहार-अजीर्ण, अध्यसन, दिवा स्वप्न रात्रिजागरण, श्रम न करे।

अपथ्य—दाल, मिष्ठान्न, चावल, खिचडी आलू तले हुए पदार्थ, रुक्ष, शुष्क, गुरु गुण वाले पदार्थ।

गृह वस्तु चिकित्सा—शुण्ठी, पिप्पली,मरिच, चित्रक, पीपरामूल, जीरक, हीग, अजमोद, खुरासानी अजवायन विषतिन्दुक, धात्री, अहिफेन, शतावरी, अश्वगन्धा, मण्डूर गैरिक माक्षिक, द्राक्षा, आरग्वध, हरीतकी, लशुन, भ्रष्ट लवण चूर्ण चिकित्सा-हिग्वाष्टक, लवण भास्कर।

वटी चिकित्सा—शूलवज्रिणी वटी, सजीवनी वटी आमपाचन वटी, शख वटी।

आसव चिकित्सा—दशमूलारिष्ट, अर्जुनारिष्ट।

घृत चिकित्सा—शतावरी घृत।

वस्ति चिकित्सा—शतावरी क्षीर की बृहण वस्ति।

परिणाम शूल की विशेष चिकित्सा—स्वर्ण सूतशेखर रस, शख भस्म, स्वर्जिका क्षार।

—❖❖—

अम्लपित्तजन्य शूल

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस ए एम
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात



नाम—अम्लपित्त ।

आंग्ल नाम—एसीडिटी, हाईपर एसीडिटी ।

दोष—पित्त+वात+कफ (मुख्य–पित्त) ।

दूष्य—रस, रक्त ।

स्रोतस—रसवह, अन्नवह ।

स्रोतस दुष्टि—सङ्ग, अति प्रवृत्ति ।

मार्ग—आभ्यन्तर रोग मार्ग ।

स्थान—आमाशय, पित्ताशय ।

लक्षण—

सामान्य—उदरदाह, उरोदाह, गलदाह, मूत्रदाह, नेत्रदाह, हस्त-पाद तल दाह, अम्लोद्गार, अम्लास्यता, अम्ल-कटु-तिक्त वमन, उदर शूल, पार्श्व शूल, शिर शूल, अङ्गमर्द, भ्रम, तिमिर दर्शन, निद्राल्पता, मानसिक अव्यवस्था, स्वप्नदोष (पुरुष), अत्यार्तव (स्त्री), गर्भस्राव (स्त्री), मृत एवं अल्प शुक्राणुत्व (पुरुष), उदराध्मान, आन्त्रकुञ्जन, उर शूल (हृच्छूल), रोमहर्ष, अविपाक, अरुचि ।

विशिष्ट लक्षण—

वातजन्य—शूल, अङ्गमाद, जृम्भा, स्निग्धोपचार से लाभ ।

पित्तजन्य—भ्रम, दाह, मधुर एवं शीतोपचार से लाभ ।

कफजन्य—गुरुकोष्ठता, वमन, रूक्ष एवं उष्णोपचार से लाभ ।

माधवोक्त—

सानिल अम्लपित्त—कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, गात्र में चिमचिमाहट या चुनचुनी, अवसाद, शूल (उदर शूल), तिमिर दर्शन, भ्रम, मोह, रोमहर्ष ।

सकफ अम्लपित्त—कफनिष्ठीवन, अङ्गगौरव, जाड्य (अङ्ग का जकडना), अरुचि, शीत, अवसाद, वमन, मुख का कफ से लिप्त होना, जाठराग्नि की शक्ति का क्षीण होना, कण्डु, निद्राधिक्य ।

सानिलकफ अम्लपित्त—उपर्युक्त वातजन्य एवं कफजन्य लक्षण, तिक्ताम्लोद्गार, कटुकोद्गार, हृदयकुक्षिकण्ठ दाह ।

विशिष्ट कफपित्त लक्षण—भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, शिरोवेदना, प्रसेक, मुखमाधुर्य ।

अम्लपित्त कैसे होता है ?

सर्व प्रथम जो कारण बताये गये हैं, उससे पित्त की अधिकता होती है और पैत्तिक वृद्धि होकर पित्त दूषित होता है। भोजन आमाशय मे पहुँचता है, वहा उपरोक्त कारणो से दूषित हुआ अत्यधिक पित्त विद्यमान होता है, परिणाम आमाशय मे भोजन का फर्मेण्टेशन होता है। आधा जैसा आहार हो जाता है, जिस तरह खमण ढोकली मे पूर्व आथा तैयार होता है, उसी तरह अत्यधिक पित्त पित्ताशय मे से आमाशय मे आकर भोजन से मिलकर उनको खट्टा कर देता है। आहार पाचन हेतु पाचक पित्त का सम्यक् मात्रा मे होना जरूरी है, मगर उपरोक्त कारणो से पाचक पित्त बढ जाता है और स्वय दूषित होकर भोजन को दूषित कर उनको अम्लतायुक्त कर देता है। दूषित पाचक पित्त से जब भोजन मे अम्लता आ जाती है, तब समान वायु जो पाचन मे मदद करती है, उसको भी दूषित कर देता है, परिणामत अम्लपित्त रोग उत्पन्न होता है।

कश्यप मुनि ने अम्लपित्त की उत्पत्ति को एक उदाहरण से स्पष्ट किया है। जिस प्रकार दही के अविशुष्क पात्र मे दूध डाल देने पर वह तत्काल खट्टा हो जाता है और फट (कूर्चाभाव को प्राप्त हो) जाता है, उसी प्रकार अपने को वश मे न रखने वाला मनुष्य जब (पहला खाना पचने के पूर्व जब मधुर भाव के बाद अम्ल भाव का पहले

भोजन का पचन चलता हो तब) लोलुपवशात पुन भोजन कर लेता है या अम्लपित्त कारक पदार्थो को ले लेता है, तब वह समस्त भुक्तान्न भी अम्लीभूत होकर विदग्ध या विदग्धता को प्राप्त हो जाता है। रस धातु के विशिष्ट अम्लयुक्त होने से विदग्धता उत्पन्न हो जाती है। बार-बार भुक्त अन्न श्वास-प्रश्वास और उदान क्रिया से प्रेरित होकर समान द्वारा अभ्यभाव पावक (पाकस्थली-आमाशय) को पचाने लगता है। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से अतिशय एव बार-बार भोजन करने के कारण उत्पन्न अम्लभाव (एसिडिटी) की प्रखरता या तीव्रता समानवात की क्रिया से (वागस एक्टिविटी से) अति तीव्र होकर पाकस्थली की श्लेष्मल कला को जला देती है। जलन से व्रण रूप स्थिति आमाशय मे बन जाती है जिसके कारण अम्लपित्त की उत्पत्ति होती है।

स्पष्टता—इस लेख का तात्पर्य शूल से है, अत अम्लपित्तजन्य विविध शूल पैदा होते है। अम्लपित्त का प्रारम्भिक विश्लेषण देना जरूरी होने से यहा प्रारम्भ मे अम्लपित्त का निदान, लक्षण एव सम्प्राप्ति विवेचन दिया गया है।

अम्लपित्त से शरीर के विभिन्न भागो मे शूल लक्षण मिलता है। अम्लपित्त मे मुख्यत पित्तदोष की प्रधानता है। उसके साथ वायुदोष भी विकृत होता है, अत वेदना लक्षण पाया जाता है। शास्त्रो मे सर्वसम्मत मत है कि "न वातेन विना वेदना" अर्थात् वायु के बिना वेदना सम्भव नही है। अम्लपित्तजन्य विविध शूल निम्न है—

(१) आमशय शूल—अम्लपित्त का मुख्य उद्भव स्थान आमाशय है। भोजन के साथ अत्यधिक मात्रा मे विकृत पित्त तथा वायु मिलती है तब भोजन ठीक तरह से पचता नही है और भोजन का अम्लीभाव होता है। आहार-आथा (कूर्चाभाव) जैसा होता है, तब प्रारम्भिक अम्लपित्त अवस्था मे भोजन लेने के साथ-साथ और पचनावस्था मे मन्द-मन्द वेदना होने लगती है। जब ५-६ घण्टा बीत जाते हैं, तब शूल क्रमश शान्त होता है। फिर भोजन का समय आता है तब शूल की शुरूआत होती है। अम्लपित्त व्याधि कष्टदायक इसीलिए है कि उसमे पुन-पुन शूल होने लगता है। कुछ महीने बीतने के बाद आमाशय मे निरन्तर शूल रहने लगता है। भोजन के पूर्व एव पश्चात् हर समय शूल की शिकायत मिलती है। उस समय आमाशय मे शूल के साथ दाह तो होता ही है, दाह के साथ शूल होना विशिष्ट लक्षण है। जब अम्ल-रस की अधिकता बढ जाती है और वायु द्वारा अम्लरस का ऊर्ध्वगमन होता है, तब वमन होता है, वमन के बाद शूल एव दाह कुछ समय तक शान्त रहता है। ऐसा भी होता है, जब गुदा द्वारा अपान वायु बाहर निकलती है, तब भी क्षणिक शान्ति होती है।

(२) पच्यमानाशय (ग्रहणी) शूल—आमाशय से जब आहार विशेष पाचन हेतु ग्रहणी मे आ जाता है, तब वहा भी विकृत पित्त और वायु साथ-साथ रहते है, तो वहा भी शूल होता है। भोजन के २-३ घण्टे पश्चात् जब शूल होता है तब ग्रहणी का शूल मानना जरूरी है।

(३) पक्वाशय शूल—ग्रहणी मे से जब अपक्व भोजन आन्त्र मे जाता है तब विशेषत अपानवायु का स्थान होने से और भोजन के साथ भी वायु होती है—दोनो मिलकर ५-६ घण्टे बाद शूल करती है। यह आमाशय शूल, ग्रहणी शूल और पक्वाशय शूल—तीनो शूल अम्लपित्त की प्रारम्भिक अवस्था है। मगर जब अत्यधिक मात्रा मे पित्त विकृत हो जाता है और अम्लीभाव अत्यधिक मात्रा मे बढ जाता है तब आमाशय, ग्रहणी एव पक्वाशय मे व्रण हो जाता है। उस शूल मे स्थान विशेष, समय विशेष का महत्व होता है और उसे परिणाम शूल एव अन्नद्रव शूल कहा जाता है। आग्ल परिभाषा मे पेप्टिक अलसर एव डीओडीनम अलसर कहा जाता है। इन दोनो का विस्तृत विवेचन अन्य विद्वानो के लेख मे आ गया है। अत यहा उनका विस्तृत विवेचन देना ठीक नही है। फिर भी अम्लपित्तजन्य शूल मे परिणाम शूल एव अन्न-द्रव शूल का विशेष महत्व है और यह दोनो शूल अम्ल-पित्त द्वारा ही होते है।

(४) शिर शूल—अनेक रोगो मे शिर शूल मिलता है। उसी तरह अम्लपित्त मे भी शिर शूल विशेषतया मिलता ही है। रुग्ण सामने से ही कह देता है कि शिर फटा जाता है। बार-बार शिर शूल होता है। जब आमाशय से विकृत अम्लरस, पित्त एव वायु ऊर्ध्वगति करता है तब शिर शूल होता है। विशेषता यह है कि जब आमाशय मे अम्लरस बढने लगता है, ऊर्ध्वगति करने

लगता है, तब सिर मे मन्द-मन्द पीडा होने लगती है। जब यह अम्लरस पूर्णरूप मे ऊर्ध्वगत हो जाता है, तब वेदना तीव्रतर होने लगती है। सिर मे तोदवत् पीडा होने लगती है, साथ-साथ नेत्रशूल, कर्णशूल, भ्रम, तिमिरदर्शन, जी मिचलाना आदि लक्षण भी पाये जाते हैं। जब वमन द्वारा अम्लरस बाहर निकल जाता है तब उपरोक्त सभी वेदनायें शान्त हो जाती है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रारम्भ मे वर्ष मे दो-तीन बार ऐसा शिर शूल मिलेगा, बाद मे चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, पन्द्रह दिन, सप्ताह, इस तरह समय-समय पर खट्टी वमन होकर शिर शूल शान्त होता है। मगर जब अम्लपित्त की तीव्रता बढ जाती है, तब बिना छर्दि (वमन) भी शिर शूल बना रहता है। रोगी कहने लगता है कि पूर्व मे तो खट्टी छर्दि होने के बाद शिर शूल शान्त हो जाता था, मगर अब तो छर्दि होती है तो भी शिर शूल नही मिटता है। उसमे कारण यह है कि आमाशय मे अधिक मात्रा मे अम्लरस की उत्पत्ति होती है। छर्दि मे तमाम अम्लरस बाहर नही निकलता, आमाशय मे अम्लरस का अश पडा रहता है। अत अम्लरस की इस तीव्रावस्था मे शिर शूल हर समय मिलता ही है।

(५) उर शूल (हृच्छूल)—अम्लपित्त व्याधि मे उर शूल विशेषत मिलता है। रुग्ण भी कहता है कि छाती मे, हृदय मे वेदना होती है। जो कारण शिर शूल का है वही कारण विशेषत उर शूल (हृच्छूल) का भी समझना चाहिए। क्योकि अम्लरस का ऊर्ध्वगमन ही उसमे मुख्य कारण है। जब अम्लरस नाडियो द्वारा ही ऊर्ध्वगमन करता है, तब उर, पार्श्व, सिर, कण्ठ आदि मे शूल मिलेगा। उर मे अन्ननलिका मे विशेष रूप से दाह के साथ शूल मिलेगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उर, पार्श्व, कण्ठ, ग्रीवा आदि मे शूल चलायमान रहता है। अर्थात् कभी-कभी उर मे, तो कभी पार्श्व मे, तो कुछ समय के बाद कण्ठ आदि प्रदेशो मे शूल हो उठता है। उनका मुख्य कारण वायु ही है, वायु का गुण चल है। चल गुण से वायु अन्य दोषो को चलायमान किया करती है। अत कभी-कभी चलायमान शूल भी मिलता है।

(६) अङ्गमर्द—अङ्गमर्द या शरीर का टूटना, यह लक्षण अम्लपित्त मे मिलता है। मेरी दृष्टि से अङ्गमर्द एक प्रकार का अल्प मात्रा का ही शूल है। अङ्गमर्द मे सारा शरीर टूटता है, ऐसा प्रतीत होता है। हाथ-पग, स्नायु-नाडी, पेशी आदि शिथिल हो जाती है। मानो शरीर गीली मिट्टी जैसा लगता है। सारे शरीर मे मन्द-मन्द पीडा का अनुभव होता है। अम्लपित्त मे विकृत पित्त एव अम्लरस को वायु अपने चल गुण से शरीर के सभी भागो मे ले जाता है। खास करके जब अम्लपित्त रक्त मे प्रभावी बनता है, तब अङ्गमर्द विशेष लक्षण मिलेगा। पित्त की उष्णता से एव अम्लता से रक्तकण की मात्रा घट जाती है और श्वेतकण बढ जाते है, तब शरीर पीला जैसा हो जाता है। शरीर फीका हो जाता है, तब अङ्गमर्द लक्षण मिलता है।

अम्लपित्त मे तोदवत् पीडा, भेदनवत् पीडा, वृश्चिक दशवत् पीडा, सुई चुभनवत् पीडा जैसा लक्षण मिलता है। वायु और पित्त का प्रभाव ही समझना चाहिए। आमाशय, ग्रहणी एव आन्त्र मे जब छिद्र हो जाता है तब कभी-कभी उपरोक्त प्रकार के शूल यथा—तोदवत्-भेदवनत् जैसा प्रतीत होता है।

अन्य शूल—

मैथुनासह्यता—जब अम्लपित्तजन्य पुरुष की शिश्नेन्द्रिय वृषण आदि मे व्याधि का प्रभाव होता है तब मूत्रप्रवृत्ति के साथ लिङ्ग मे दाह के साथ शूल प्रतीत होता है। शुक्र प्रवृत्ति के समय भी शिश्न मे जलनयुक्त वेदना होती है। जब अम्लपित्त स्त्री की योनिमार्ग मे प्रभावी बनता है, तब भी कष्टता से मैथुन क्रिया होती है। योनिमार्ग मे जलन, कण्डु एव वेदना बनी रहती है। उसको मूत्रमार्ग मे भी वेदना होती है।

मुखपाक—अम्लपित्त से अधिकाश व्यक्तियो को मुख पाक होता है, तब मुख मे—तालु, जिह्वा आदि मे व्रण बन जाता है और जलनयुक्त वेदना होती है। किसी-किसी के अम्लपित्त से मसूढे फूल जाते है, उनमे से पूयस्राव एव रक्तस्राव होता है, उसे शीताद (पायोरिया) कहते है। दात एव मसूढो मे विशिष्ट प्रकार की सुई चुभनवत् पीडा होती है। अधिक उष्ण एव अधिक शीत पदार्थो के सेवन से पीडा बढ जाती है। ठडी हवा लग जाने से भी दातो मे पीडा होती है। अम्लपित्त से दात खट्टे हो जाते

हैं। खाने मे, चवाने मे वेदना होती है। उसका कारण अम्लपित्त से होने वाला अम्लास्यता लक्षण हे।

त्वक् रोग—अम्लपित्त से त्वक् रोग होता हे। यह उपद्रव विशेप है। कण्डु, पिडिका, दद्रु एव विर्चचिका इत्यादि रोग त्वचा मे पाये जाते है। आर्द्र विर्चचिका एव दद्रु मे कण्डु के साथ जलनयुक्त पीडा होती है। शुष्क विर्चचिका मे कण्डु की मात्रा अधिक होती है। उसमे मीठा-मीठा दर्द होता है।

इस तरह देखे तो अम्लपित्त से शरीर के विभिन्न वाह्य एव आभ्यन्तर प्रदेशो मे विविध प्रकार के शूल पैदा होते है। मूल कारण अम्ल, रस, वायु, पित्त एव किंचित् मात्रा मे कफ है। अम्लपित्त की मूलगामी चिकित्सा से यह शूल क्रमश शान्त होता है। फिर भी सर्वप्रथम शूल की शान्ति करनी जरूरी है। अल्प एव भयानक वेदना से रोगी व्याकुल वन जाता है, तव सर्वप्रथम शूल शान्ति कर्म कराया जाय तो रोगी अपने को स्वस्थ समझने लगता है। अत प्रथमतया लाक्षणिक चिकित्सा का महत्व है। वाद मे मूल रोग की चिकित्सा करने से रोगी को सुख मिलता है। यहा अम्लपित्तजन्य विविध शूलो की अनुभूत चिकित्सा दी गई हे।

चिकित्सा

आमाशय शूल—

सर्वप्रथम वामक द्रव्यो से वमन कराना चाहिये।

औपधि चिकित्सा—(१) महाशख वटी २-२ गोली भोजन के वाद जल से दे।

(२) लीलाविलास रस १-१ गोली भोजन के वाद जल से दे।

(३) शुक्तिन गोली (अलारसिन) २-२ गोली दिन मे ३ वार जल से दे।

(४) शख भस्म, शुक्ति भस्म, कपर्दिका भस्म २-२ रत्ती, शिवाक्षार १ माशा की मात्रावत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया भोजन के वाद जल से दे।

(५) एसीडीनोल (वानमार्क) २-२ गोली दिन मे ३ वार जल से दे। शुद्ध आयुर्वेद द्रव्यो से वनाई गई अनुभूत गोली है।

पक्वाशय शूल—

विरेचक द्रव्यो मे विरेचन कराना चाहिए।

औपधि चिकित्सा—(१) चित्रकादि वटी २-२ गोली भोजन के वाद या जव शूलोत्पत्ति हो उसी समय २ से ४ गोली तक जल से दे।

(२) शिवाक्षार चूर्ण १ माशा, नारिकेल लवण ४ रत्ती, स्वर्जिका, शख भस्म २-२ रत्ती की मात्रावत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया भोजन के वाद एव शूलोत्पत्ति के समय जल से दे।

शिर शूल—

वामक द्रव्यो से वमन कराना चाहिये।

औपधि चिकित्सा—(१) शिर शूलादिवज्र रस २-२ गोली दिन मे २ वार जल से।

(२) लक्ष्मीविलास रस (शिरो रोग) २-२ गोली दिन मे ३ वार।

(३) सूतशेखर रस २ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ रत्ती, गुडूची सत्व ४ रत्ती, गोदन्ती भस्म १ माशा, श्रृङ्ग भस्म २ रत्ती की मात्रावत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ वार शहद से।

(४) पथ्यादि काढा २-२ चम्मच ३ वार जल से।

(५) सोठ एव चन्दन का समभाग चूर्ण लेकर उष्ण जल मे पकाकर गुनगुना लेप कपाल प्रदेश तथा शख प्रदेश पर करना चाहिये।

(६) अत्यधिक वेग से शिर शूल होता हो, तो वृहत् वातचिन्तामणि रस की १-१ गोली शहद के साथ घोटकर देने से त्वरित आराम मिलता है।

उर शूल (हृच्छूल)—

(१) सितोपलादि चूर्ण १ माशा, श्रृङ्ग भस्म २ रत्ती, अजमोदादि चूर्ण १ माशा, शिवाक्षार १ माशा की मात्रा-वत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया शहद से दे।

हृदय प्रदेश की वेदना—

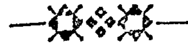
(१) मृगश्रृङ्ग भस्त २ रत्ती, उष्मन चूर्ण ४ रत्ती, जवाहरमोहरा पिष्टी, स्वर्ण सूतशेखर रस २-२ रत्ती की मात्रावत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ वार मधु से दे।

(२) प्रभाकर वटी १-१ गोली दिन मे तीन वार मधु से दे।

—शेषाश पृष्ठ २६० पर

उदर शूल

कविराज वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य, वसन्तपुरी, पो पीरपैंती (भागलपुर) विहार



पाश्चात्य मतानुसार उदर प्रदेश मे होने वाली तीव्र स्तम्भित (Spasmodic) पीडा को उदर शूल कहते है। इस शूल को चार प्रकार का मानते है—१ आन्त्र शूल, २ पित्ताशय शूल, ३ आन्त्रपुच्छ शूल और ४ वृक्क शूल या मूत्राशय शूल कहते है।

वातिक शूल—इसकी चिकित्सा मे स्नेहन और स्वेदन का प्रयोग करना चाहिये। इसमे निरूहण वस्ति कराना बडा ही मुफीद है। इसमे वायुलोमक दवा का प्रयोग कराना चाहिये जैसे–हिंग्वष्टक चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण, जीरकादि वटी, महाशख वटी एक से दो गोली बिजौरे नीबू के रस के साथ देना चाहिये, यह काफी लाभ करती है। नीबू के अभाव मे गर्म जल से देना चाहिये।

पित्तज शूल—इसमे दाह और प्यास अधिक होती है। इस रोग मे रोगी को ठडे जल से स्नान कराया जा सकता है, रोगी को विरेचन कराने के लिये मुनक्का का क्वाथ देना चाहिये। इसमे निम्नलिखित दवाये काफी लाभकर सिद्ध हुई है—शख भस्म २ रत्ती गर्म जल से सेवन करना चाहिये। अविपत्तिकर चूर्ण ३ माशा सुवह शाम चीनी मिलाकर सेवन करना चाहिये। सूतशेखर रस १ रत्ती की मात्रा मे अनार रस से देने मे काफी फायदा करता है।

मिश्रित आयुर्वेदिक पेटेण्ट योग—महाशख वटी ३ रत्ती, कपर्द भस्म, प्रवाल भस्म, सूतशेखर रस २-२ रत्ती मिश्रित कर काली गाय के मूत्र से नीबू रस के साथ दे। अभाव मे शुद्ध जल से भी दिया जा सकता है।

कफज शूल—अन्न से अरुचि, मुह से लार गिरना, पेट और सिर भारी बना रहना तथा ग्लानि होती है। रोगी को छाती पर भार जमा महसूस होता है, क्योकि कफ का जमाव रहना है। अत घी मे महीन मैधा नमक का कपडछन चूर्ण मिलाकर मालिश करनी चाहिये। रोगी को जामुन का सिरका देना चाहिये। इस रोग मे रोगी को त्रिकटु काफी लाभकर होता है। रोगी को लघन और वमन कराना चाहिये।

चिकित्सा—नृपतिवल्लभ रस १ से २ गोली नीबू रस के साथ देना श्रेयष्कर है।

शूलवज्रिणी वटी १ से २ गोली ताजे जल के साथ देना चाहिये।

द्वन्द्वज शूल—वात-कफजन्य शूल मे रोगी को सर्व प्रथम कोष्ठ शुद्धि कराना परम जरूरी है। इसमे रोगी को अग्निदीपक और वातनाशक दवा देना परमावश्यक है। रोगी को सर्वाङ्गसुन्दर रस, योगराज गुग्गुल, हिंग्वष्टक चूर्ण देना चाहिये।

पित्त-कफजन्य शूल—रोगी मे ज्वर, दाह, तृष्णा पाई जाती है। यदि रोगी को मलवन्ध हो तो दूध के साथ हरीतकी खड या पचसकार चूर्ण देना चाहिये। यदि रोग पुराना हो तो वृ० वातचिन्तामणि रस १ से २ गोली मधु के साथ या वरियार के क्वाथ से देना चाहिये। यदि इससे भी लाभ नही हो तो बृहत शतावरी मण्डूर का व्यवहार कराना चाहिये। इस रोग मे धात्री लोह भी अच्छा कार्य करती है।

वात-पैत्तिक शूल—इस रोग मे रोगी की कोष्ठशुद्धि कराना परम जरूरी है। इस रोग के रोगी को दूध के साथ हरीतकी खड या पचसकार चूर्ण सेवन कराया जा सकता है। यदि लक्षण साधारण दीख पडे तो धात्री लोह या चतुर्मुख रस देना चाहिये। यदि रोग पुराना और कठिन प्रतीत हो तो तारा मडूर या बृहत वातचिन्तामणि रस का व्यवहार कराना जरूरी है।

सन्निपातज शूल—सन्निपातज शूल मे रोग मिश्रित रूप मे रहता है, इसलिये इसकी चिकित्सा भी मिश्रित ही होनी चाहिये। यह थोडा कठिन और दुसाध्य होता है।

आमज शूल—आमज शूल मे रोगी को उबकाई, वमनेच्छा, पेट मे गुडगुडाहट, मन्दता, शरीर मे भारीपन,

मुह से कफ का निकलना, अफरा आदि लक्षण पाये जाते हैं। इस रोग का कारण आम और वायु है इसलिये वैद्यो को चाहिये कि इसके रोगी को सर्वप्रथम वमन कराना बहुत जरूरी है। खाने से लिये लवणभास्कर चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण, शूलवज्रिणी वटी, चतु सम चूर्ण देना बडा ही उपकारी सिद्ध हुआ है। यदि पुराना जामुन का सिरका मिल जाय तो बडा काम करता है।

परिणाम शूल—रोगी को कुपित वायु के पचते समय या पच जाने पर असाध्य वेदना होती है। इस रोग के लक्षण–पेट फूलना, पेट मे गुडगुडाहट, मल-मूत्र रुकना, तबियत नही लगना आदि हैं। इस रोग मे अग्निमुख चूर्ण, महाशख वटी, धात्री लोह, सप्तामृत लोह देनी चाहिये। इस रोग मे रोगी को मटर का सत्तू खाने के लिये देने से बडा लाभ करता है।

अन्नद्रव शूल—अन्नद्रव शूल मे भोजन के पचने पर या विना पचे भी उदर शूल होता है। रोगी बेचैन हो उठता है। ऐसे शूल मे रोगी को वमन कराने से बडा आराम मिलता है, क्योकि वमन कराने से पित्त का निष्कासन होता है। दवाओ मे–सूतशेखर रस, धात्री लोह, सामुद्रादि चूर्ण और नारिकेल क्षार वटी ही अक्सीर दवाये है।

क्रमिज शूल—कभी-कभी ऐसा पाया जाता है कि क्रमि के कारण भी असह्य वेदना होती है। इसकी पैथोलौजीकल जाच कराके देखा गया है कि क्रमि के कारण भी पीडा होती है। इसमे क्रमिघातिसी वटी, क्रमिघ्न वायविडङ्ग का चूर्ण, विडङ्गासव जैसी दवाये काफी अच्छा कार्य करती है। आयुर्वेदिक सूचीवेध मे शूलान्तक बडा अच्छा कार्य करता है।



(पृष्ठ २५८ का शेषाश) अम्लपित्तजन्य शूल

अङ्गमर्द—

अभ्यङ्ग, उष्ण जल से स्नान।

(१) शुण्ठी चूर्ण ४ रत्ती, आमलकी चूर्ण १ मात्रा, सूतशेखर रस २ रत्ती, गोदन्ती भस्म ४ रत्ती की मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ बार मधु से।

(२) महायोगराज गुग्गुल २-२ गोली दिन मे ३ बार चबाकर जल से।

(३) महावातविध्वस रस १-१ गोली दिन मे ३ बार जल से।

मैथुनासह्यता (स्त्री-पुरुष)—

(१) चन्द्रप्रभा वटी २-२ गोली दिन मे ३ बार।

(२) रसायन चूर्ण, शतावरी चूर्ण १-१ माशा, त्रिवग भस्म २ रत्ती, अविपत्तिकर चूर्ण ४ रत्ती की मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ४ बार दूध से।

स्त्री योनिमार्ग मे इरिमेदादि तेल का पिचु धारण करे।

मुखपाक शूल—

(१) अविपत्तिकर चूर्ण १ माशा, शतपत्र्यादि चूर्ण १ माशा, मधुयष्टि ४ रत्ती, आमलकी चूर्ण १ माशा, कामदुधा रस २ रत्ती की मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ बार दूध या शहद से दे।

(२) खदिरादि वटी चूसने को दे।

(३) शहद एव हल्दी चूर्ण को समानभाग मिलाकर मुख मे लगावे।

त्वक् रोग—

(१) आरोग्यवर्धिनी रस ४ रत्ती, मजिष्ठादि चूर्ण १ माशा, त्रिवग भस्म २ रत्ती, सूतशेखर रस २ रत्ती की मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ बार मधु से।

(१) किशोर गुग्गुल २-२ गोली दिन मे ३ बार जल से।

(२) मरिच्यादि तैल की मालिश करे।

सन्धिगत पीडा मे अम्लपित्त की चिकित्सा के साथ-साथ सन्धिवात की चिकित्सा देनी चाहिये।

—०❖०—

प्रवाहिकाजन्य शूल

वैद्य अशोक भाई तलात्रिया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस ए, एम.
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात



निदान—

अहिताशनस्य अतिशयेन वातलभक्ष्यभोजिन प्रवृद्धो वायु प्रवाहृत बलेन सशब्द वायु अपानमार्गेणत्यजन निचित सञ्चित बलास कफ मलाक्त पुरीषयुक्तम् अनप बहुश वारवार अधस्ताद् गुदात्नुदति वैद्या तात् प्रवाहिका प्रवदन्ति ।

अर्थात् अत्यन्त वायुवर्धक पदार्थ खाने मे अत्यन्त बढी हुई वायु बलपूर्वक जब गुदा द्वारा बाहर निकलती है तब गुदा मे से मलयुक्त कफ बार-बार सशब्द (आवाज सहित) वेदना सहित निकलता रहता है, उसे वैद्य महोदय प्रवाहिका कहते हैं ।

वातवर्धक आहार-विहार मे—तले हुए पदार्थ, बटाटा, प्याज, लाल मिर्च, मट वाल, चना, कन्दमूल, दूषित जल, ठंडा जल, वर्फ से बने पदार्थ, डडलीडोसा, आमलेट इत्यादि होटल के पदार्थ, बासी आहार (ठडा आहार), भोजन पर भोजन लेना, मन्दाग्नि मे भोजन लेना, वार-वार भोजन लेना, उपवास करना, रात्रि जागरण, दिवास्वाप इत्यादि वातवर्धक हैं। अत उपरोक्त कारणो से वात की वृद्धि हो जाती है तथा अग्नि मन्द हो जाती है, तब प्रवाहिका हो जाती है।

लक्षण—

वार-वार मलप्रवृत्ति, मलप्रवृत्ति मे अल्प मात्रा मे मल का निकलना तथा मलप्रवृत्ति के पूर्व और मलप्रवृत्ति के समय तथा अन्त मे अत्यधिक ऐठन (वेदना विशेष) उत्पन्न होती है। मलप्रवृत्ति मे ज्यादातर मल के साथ चिकना पदार्थ निकलता है। जीर्ण हो जाता है तब रक्त मिश्रित मल का निष्कासन होता है। इसके साथ क्षुधामाद्य, अङ्गमर्द, रोमहर्ष, शिरोवेदना, भ्रम, तिमिर दर्शन, हृल्लास, दौर्बल्यता, पेट मे गुड़गुडाहट जैसी आवाज होना, उदर शूल इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं। जब रक्तजन्य प्रवाहिका हो जाती है तब आन्त्र मे व्रण पैदा हो जाते है। नये रोग को प्रवाहिका कहते है और पुराने रोग को जीर्ण प्रवाहिका कहते है। नई प्रवाहिका मे कुछ दिन तक ध्यानपूर्वक चिकित्सा देने से आराम हो जाता है और जीर्ण प्रवाहिका जो महीनो व वर्षो तक बनी रहती है, उसमे लम्बे समय तक चिकित्सा की जरूरत होती है।

सम्प्राप्ति —

नाम—प्रवाहिका, जीर्ण प्रवाहिका ।

आंग्ल नाम—डीसेण्ट्री ।

लोक बोली—मरोड, पेचिश, आंवशूल, मरडो ।

दोष—वात + कफ ।

दूष्य—रस, रक्त ।

स्रोतस अन्नवह स्रोतस ।

स्रोतोदुष्टि—सङ्ग, अतिप्रवृत्ति ।

स्थान—पक्वाशय (आन्त्र) ।

उद्भव स्थान—आमाशय + पक्वाशय ।

रोग मार्ग—आभ्यन्तर रोग मार्ग ।

प्रकार—

१ वातज प्रवाहिका—सशूलयुक्त तथा रूक्ष पदार्थ से होती है ।

२ पित्तज प्रवाहिका—तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थ से होती है तथा दाहयुक्त होती है ।

३ कफज प्रवाहिका—स्निग्ध पदार्थों से होती है ।

४. रक्तज प्रवाहिका—तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थों से उत्पन्न रस-रक्तयुक्त प्रवाहिका होती है ।

विशिष्ट लक्षण—

मरोडवत् पीडा, ऐठनवत् वेदना । विशेषतया मल प्रवृत्ति के समय उपरोक्त प्रकार की वेदना होती है ।

—शेषांश पृष्ठ २६४ पर

ऊर्ध्ववात

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी एस ए. एम
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात

मिथ्याहार-विहार से, आमोत्पत्ति से, मल-मूत्र, अपान वायु आदि वेगो के रोकने से, देश, काल और अन्नपान के अतियोग, अयोग से उत्पन्न मन्दाग्नि के कारण जठराग्नि, अन्नपान का सडना, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि मानसिक रोगो से, सामान्यतया जो व्यक्ति अत्यधिक तले हुये पदार्थ, रेस्टोरेण्ट मे भोजन, ठंडा और सडा हुआ आहार, लालमिर्च, कन्दमूल, रात्रि जागरण आदि मे व्यस्त होते है और भोजन पर भोजन करते है, मन्दाग्नि मे भोजन करते हे, अत्यधिक उपवास करते है तब उनकी अत्यधिक वायुदोष की वृद्धि होती हे। जठराग्नि मन्द हो जाती है और आमाशय मे आमरस की उत्पत्ति हो जाती है। परिणामत ऊर्ध्ववात नामक महाघोर व्याधि उत्पन्न होती है।

लक्षण—

ऊर्ध्ववात के मुख्य लक्षण है—अत्यधिक मात्रा मे उद्गार (डकार) आना (इसे उद्गार बाहुल्य कहते हे)। इसके अलावा पेट मे भारीपन, गुडगुडाहट, आनाह, आध्मान, अपान वायु का साफ न होना, उदर शूल, उर शूल, पिंडिकोद्वेष्टन, हृदय मे वेदना, विबन्ध, क्षुधामान्द्य, भ्रम, तिमिर दर्शन, प्रतिश्याय, कास, श्वासाधिक्य और सकटावस्था मे बेहोशी तथा हस्त-पाद की अगुलियो मे ऐंठन एव नेत्रो मे भय और दन्त-ओष्ठ बन्द हो जाते है।

सम्प्राप्ति घटक—

नाम—ऊर्ध्ववात, प्रतिलोमवात, मूढवात।
आंग्ल नाम—गैस।
लोक बोली—गैस, वायुगोला, अवलोवायु।
दोष—वात (समान, प्राण, अपान), कफ।
दूष्य—रस।
स्रोतस—अन्नवह स्रोतस।
स्रोतस दुष्टि—सङ्ग, अतिप्रवृत्ति।
उद्भव स्थान—आमाशय।
रोग मार्ग - आभ्यन्तर रोग मार्ग।

सम्प्राप्ति समीक्षा—

उपरोक्त कारण व निदान दर्शाये गये है, उन कारणो मे आमाशय की अग्नि मद हो जाती है। यहा क्लेदक कफ से तात्पर्य रहता हे, अधिक आमरस उत्पन्न होता हे। उसमे क्लेदक कफ कारणभूत है। पक्वाशय और आमाशय मे क्रमश अपान और समान वायु की वृद्धि होती है। अपान वृद्धि से मल शुष्क व सूखा हो जाने से वायु की अनुलोम गति मे बाधा हो जाती है और वायु पतिलोम गति करती हे, तब वहा प्राणवायु भी विकृत होती हे। उद्गार बाहुल्य, प्रतिश्याय, कास, श्वासाधिक्य, भ्रम आदि लक्षण पैदा होते है। बमवराज ने निम्नोक्त स्पष्टता की है—

उपरोधो मल बद्धमुच्छ्वास श्वासकासकौ।
अन्न क्षीण च मन्दाग्निरुर्ध्ववातस्य लक्षणम्॥

उपरोधो—उपरोध का तात्पर्य आवरण, रोक, प्रतिबन्ध है। उद्गार बाहुल्य होने पर भी उर प्रदेश मे रुकावट सी मालूम होती है, वह विकृत प्राणवायुजन्य है।

मलबद्धम्—मन्दाग्नि से अन्न का पाचन नही हो पाता, जिससे विद्यमान मल को वायु शुष्क करके रोक देती है।

उच्छ्वास—उद्गार के साथ उच्छ्वास बढता है।
श्वास—कफपूर्वक प्राण विकृति।
अन्न क्षीणस्—अन्न विकृति।
मन्दाग्नि—कफ विकृति।

आमाशय मे क्लेदक कफ की अधिकता होनी है, उससे अम्लरस का प्रभाव नही होता है। मधुरता कफ का मुख्य गुण है और 'माधुर्यमन्न गतमाममजम' कहा गया है। यह आम भी ऊर्ध्ववात को पैदा करने मे कारणभूत है। प्रसृत सामवात का विमार्गगमन प्रमुख लक्षण है। जो प्राण भोजन को आमाशय तक पहुँचाती है, वही साम होकर विमार्ग गमन करती है, तव उद्गार वाहुल्य होता है और उसी अवस्था को ऊर्ध्ववात नाम से जानते है। अति लङ्घन से भी वायु प्रकुपित होता है। परिणामत ऊर्ध्ववात हो जाता है (चरक मत)। चरक चतुरानन चक्रपाणि ने कहा है—"ऊर्ध्वकाये वात ऊर्ध्ववात।" आगे शिवदास सेन जी कहते है कि ऊर्ध्वकाय मे वात व्याप्ति को ही ऊर्ध्ववात कहा गया है, जो श्वास, कर्णनाद, जृम्भा आदि को उत्पन्न करती है। लङ्घन मे कफ का क्षय होता है और अति उद्गार स्वरूप ऊर्ध्ववात अवरोधक कफ से उत्पन्न होता है अत लङ्घन मे कफ का क्षय होता है, जवकि ऊर्ध्ववात कफ प्रकोपजन्य है। पडित भावमिश्र जी का कहना है कि—

अध प्रतिहतोवायु श्लेष्मणा मारुतेन च।
करोत्युद्गारवाहुल्यमूर्ध्ववात स उच्यते॥

वायु समानवायु मारुतेनापानवायुना स्वहेतु दुष्टेन प्रतिहत अधोनिरुद्ध।

अर्थात् कफ तथा अपानवायु सहित दुष्ट हुई समानवायु अधिक डकार लाती है, उसको ऊर्ध्ववात कहते है।

पक्वाशय मे अपानवायु की वृद्धि होने से मल शुष्क होता है तव मलसग होता है। शुष्क मल से अपान की गति मे वाधा होती है, अत वायु अनुलोमन गति नही कर सकती और विकृत हुई अपान प्रतिलोम गति प्राप्त कर ऊर्ध्वकाय मे गति करती है। ऊर्ध्वगति हुई वायु के साथ आमाशय स्थित सामवायु मिलती है और सामवायु +अपानवायु ऊपर उर प्रदेश की तरफ गति करती है, तव वहा प्राण भी मिलता है, साथ मे कफ भी मिलता है तव अतिप्रवृत्ति की अवस्था वन जाती है। इस अति प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप सतत उद्गार वाहुल्य, कास, हिक्का, उच्छ्वास और श्वासाधिक्य लक्षण होते है। जव इस अतिप्रवृत्ति का वेग वढ जाता है तव रुग्ण वेहोश हो जाता है। हस्त-पाद की अगुलियो मे ऐठन उत्पन्न होती है, चक्षु विस्फारित होते है, दात और ओष्ठ सख्ती से वन्द हो जाते है। सारा शरीर लकडी जैसा जडवत् हो जाता है। तव सकटकालीन अवस्था वन जाती है।

चिकित्सा विमर्श—

सर्वप्रथम तो निदान परिवर्जन करना अति आवश्यक है। उत्पादक कारणो से वचना जरूरी है।

विकृत एव प्रतिलोम गति प्राप्त दोषो को निम्न गति मे लाने हेतु सर्वप्रथम ३ दिन तक सोठयुक्त उष्ण जलपान से उपवास (लघन) कराना जरूरी है। उष्ण जलपान और सोठ दीपन-पाचन कार्य करती है। यहा अपक्व आम का पाचन कराने का तात्पर्य है। आम का पाचन हो जाने से वाधा दूर होती है। मन्दाग्नि दूर होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, अत वायु प्रतिलोम गति प्राप्त करती है।

सुवह दो चम्मच कच्चा मेथीदाना पानी से निगलने से वायु शान्त होती है। मेथी त्रिदोष शामक है, आम का नाश करती है। विवन्ध नष्ट होकर मलप्रवृत्ति ठीक तरह से होती है। मेथी से उदर शूल, पक्वाशय शूल मिटता है।

भोजन मे मूग, चावल, मेथी, भाजी, शीग्रु, दूध, तुरई, गेहूँ, लहसुन, अदरक, हल्दी, सोठ, अजवायन, करीर का अचार आदि लेना चाहिये।

आभ्यन्तर अनुभवात्मक औषधि चिकित्सा—

हमारे पास स्थानिक प्रदेश से एव वम्वई, अहमदावाद आदि महानगरो से भी तथाकथित गैस-ऊर्ध्ववायु रोग की चिकित्सा हेतु अनेक रुग्ण आते हैं। उन सवको मैं कडा पथ्य पालन का आदेश देता हूँ, वाद मे चिकित्सा प्रारम्भ करता हूँ। भगवान धन्वन्तरि की कृपादृष्टि से मुझे सफलता भी मिलती है। यहा मै स्पष्टत कहूँगा कि ऊर्ध्व वात वाले रुग्ण जव वेहोश हो जाते है तव तात्कालिक चिकित्सा हेतु रुग्ण के सम्वन्धी व रिश्तेदार जव आधुनिक चिकित्सक के पास ले जाते हैं तव उसको मानस रोग विशेषज्ञ से मार्गदर्शन हेतु सलाह देते हैं। मेरा विश्वास है कि यह रोग मानस रोग नहीं है, अत औषधि चिकित्सा से पूर्ण लाभ मिलता है। मेरी अनुभूत चिकित्सा निम्न है—

१ अजमोदादि चूर्ण (वातव्याधि) १ माशा, शख भस्म, त्रिवृत्भस्म २-२ रत्ती, शिवाक्षार पाचन, सितोपलादि चूर्ण, अविपत्तिकर चूर्ण १-१ माशा की मात्रावत् पुडिया वनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ वार भोजनोत्तर जल से।

२ चित्रकादि वटी २-२ गोली भोजनोत्तर जल से ।

३ भास्कर चूर्ण २ माशा + दीनदयाल २ माशा मिलाकर रात्रि को ।

४ क्रव्यादि रस २-२ गोली सुबह-शाम जल से ।

इसके अलावा महाशख वटी भी दी जाती है। जब उद्गार का वेग प्रबल बनता है और रोगी बेचैन हो जाता है, तफ सकटकालीन अवस्था मे कर्पूर हिंगु वटी २-२ गोली प्रति २ घण्टे पर उष्ण जल से देने से उद्गार का वेग शान्त होता है। विकृत प्रतिलोम वायु शान्त होकर अनुलोमगति करती है।

सहिता ग्रन्थो मे वायु-शान्ति हितार्थ अनेक योगो का वर्णन मिलता है। यथा—वैश्यानर चूर्ण, अग्निसदीपन चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण, हिंग्वादि चूर्ण, हरीतकी चूर्ण, अग्निकुमार रस, अग्नितुण्डी वटी, काकायन गुटिका, अगस्तिसूतराज रस, लशुनादि वटी, हिंग्वादि वटी, मयूरपिच्छ भस्म, कपर्दिका भस्म, शुक्ति भस्म, प्रवाल पचामृत, एरण्ड तैल, अभयारिष्ट, पचकोलासव आदि औषधि योगो का दोषादि भेद को जानकर उनके प्राबल्य को देखकर देने से गैसरोग (ऊर्ध्ववात) मिटाया जा सकता है।

सोठ १० भाग, वृद्धदारुक १० भाग, हरड ३ भाग, भृष्ट हिंगु ४ भाग, सेंधव १ भाग, चित्रक १ भाग। सबको मिलाकर चूर्ण बना २ माशा की मात्रा मे भोजन के बाद पानी से लेने से ऊर्ध्ववात मिट जाती है।

विमर्श—इस रोग मे नित्यप्रति उर शूल, उदर शूल, शिर शूल, पार्श्व शूल तथा सर्वाङ्ग शूल बना रहता है। रोग का लक्षण है। यहा व्याधि चिकित्सा मे लक्षण का महत्व होने से शूलशामक उपचार को प्रथम स्थान देना जरूरी है। ●●

[पृष्ठ २६१ का शेषाश]

❋ प्रवाहिकाजन्य शूल ❋

चिकित्सा—

निदान पनिवर्जनम् —सर्वप्रथम उत्पादक कारणो से जो पूर्व मे बताये गये हे—उनसे बचना जरूरी है।

१ मन्दाग्नि को दूर करने की प्रथम व्यवस्था करनी जरूरी है। दीपन और पाचन औषधि देनी चाहिये।

२ सोठ दीपन और पाचन औषधि है। अत सोठ का चूर्ण प्रवाहिका मे उत्तम लाभ करता है। सोठ से अग्नि प्रज्वलित होती है और अपक्व दोषो का पाचन भी होता है। शूल शामक है। सर्वप्रथम २-३ दिन तक केवल सोठयुक्त उष्ण जल देने से सुन्दर परिणाम मिलेगा।

३ चित्रकमूल, हरीतकी, तक्र आदि लाभ करते है।

४ सोठ, हरीतकी और सौफ का समभाग चूर्ण दिन मे ३ वार देने से फायदा हो जाता है।

५ विल्व फल मज्जा या विल्व फल का मुरब्बा भी लाभ करता है।

६ कुटज त्वक्, हरड और सोठ का समभाग चूर्ण देने से लाभ प्राप्त होता है।

७ एरण्ड तैल और सोठ का चूर्ण समभाग मिला कर दिन मे ३ वार देने से लाभ मिलता है।

८ याद रखा जाय एरण्ड तैल वायु नाशक, वेदना शामक, आम को हटाने वाला होने से मरोड का नाश करता है। अत एरण्ड तैल प्रवाहिका की सर्वोत्तम औषधि है।

अनुभवात्मक चिकित्सा—

१ दाडिमाष्टक चूर्ण, बिल्वादि चूर्ण, शिवाक्षार पाचन १-१ माशा, पंचामृत पर्पटी, शख भस्म २-२ रत्ती की मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ वार तक्र से।

२ कुटज घन वटी ३ गोली दिन मे ३ वार जल से।

३ कुटजारिष्ट २-२ चम्मच दिन मे ३ बार जल से।

४ चित्रकादि वटी २-२ गोली दिन मे ३ वार जल से।

सरक्त प्रवाहिका—

१ एरण्ड तैल वार-वार १ चम्मच की मात्रा मे देना चाहिये।

२ उपरोक्त चिकित्सा के साथ बोलबद्ध रस २-२ गोली दिन मे ३ वार जल से।

३ उदुम्बर पिच्छा वस्ति देने से आराम होता है।

४ एण्टेरोडारीन (वानमार्क) की २-२ गोली दिन मे ३ वार जल से। यह शुद्ध आयुर्वेदीय योग है।

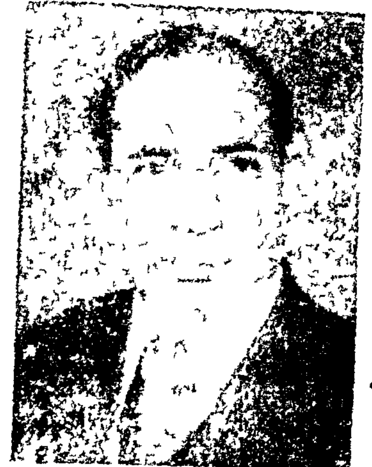
पथ्य—दाडिम, तक्र, मट्ठा, लस्सी, सोठ, अदरक, चावल, मेथीदाना, अजवायन, सौफ, उष्ण जल, मूग का पानी, सफरजन, निम्बु इत्यादि पथ्य है।



✽ आमाशय शूल ✽

डा० महेन्द्र कुमार शर्मा एम ए, ए एम बी. एस प्रवक्ता—काय चिकित्सा,
ल० ह० राजकीय आयु० महाविद्यालय, पीलीभीत (उ०प्र०)





डा० श्री शर्मा जी ल० ह० राजकीय आयु० महाविद्यालय के विद्वान प्राध्यापक महोदय है। सन १९६१ मे स्नातक होकर कुछ वर्षों तक स्वतन्त्र रूप मे चिकित्सा कार्य किया। वर्तमान मे आप आयु० महाविद्यालय मे अपनी सेवा देते रहे हैं। आप समय-समय पर सामयिको मे आयुर्वेद विषयक लेख लिखते हैं। आपके पिता जी वैद्य थे, अत. आप आयुर्वेद परिवार द्वारा आयुर्वेद ज्ञान से लाभान्वित हैं। इस ज्ञान का लाभ आप आयुर्वेद छात्रो को देते हैं। यहां शर्मा जी ने प्रचलित व्याधि आमाशय शूल पर सक्षिप्त मे विद्वता से युक्त विवेचन किया है जो उपयोगी है, मार्गदर्शक भी है। मैं श्री शर्मा जी से अपेक्षा रखता हू कि आप आयुर्वेद की सर्वांगीण मदद करें।

——वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

चरक सहिता, अष्टाग हृदय मे शूल रोग का स्वतत्र वर्णन नही है। कदाचित गुल्म रोग मे इसका अन्तर्भाव किया गया हो। सुश्रुत ने 'गुल्म रोग' अध्याय के अन्तर्गत उसका वर्णन किया है तथा गुल्म के उपद्रव के रूप मे उल्लेख किया है—

अथास्योपद्रव शूल कथचिदुपजायते।
शूल निरथानितमिवासुख येन तुवेत्त्यसौ॥
—सु० उ० ४२।६६

सुश्रुत मतानुसार बिना 'गुल्म रोग' के भी गुल्म स्थानो मे शूल उत्पन्न हो सकता है—

विना गुल्मेन यच्छूल गुल्मस्थानेषु जायते।
—सु० उ० ४२।७६

माधव निदान मे शूलरोग का वर्णन स्वतन्त्र अध्याय मे विस्तृत रूप मे किया है।

शूल शब्द वेदना के लिये सामान्य भाषा मे प्रयोग किया जाता है। नुकीले अस्त्र-कील के गाढने के समान वेदना गुल्म स्थानो (पार्श्व-कुक्षि, हृदय नाभि, वस्ति) मे होती है। सामान्य रूप मे शूल शरीर के किसी भी अवयव मे हो सकता है। वात नानात्मज रोगो मे पाद शूल कर्ण शूल आदि अनेक नामो से अवयव शूलो का वर्णन उपलब्ध है। किंतु शूल सज्ञा से उर (कोष्ठ) मे होने वाली वेदना से तात्पर्य होता है।

भेद—शूल भेदानुसार आठ प्रकार के होते है—

१ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ वातपित्तज ५. वात कफज ६ पित्त कफज ७ त्रिदोषज ८ आमज। इन सभी शूलो मे वायु का आवरणवश प्रकोप होता है। वायु के कारण शक्तिशाली आकु चन (स्पाजमोडिक कान्ट्रेशन) होता है यही शूल का जनक होता है।

आमाशय क्षेत्र मे होने वाले शूल को सामान्य भाषा मे आमाशय शूल कहा जाता है। आमाशय कफ का स्थान है अत उसमे होने वाले शूल का समावेश कफज शूल के अन्तर्गत हो सकता है। सधिशूल, नाभिशूल, पार्श्व, आमाशय शूल आदि का उल्लेख सहिता ग्रन्थो मे यत्र-तत्र मिलता है। शूल वात का नानात्मज रोग माना गया है। परन्तु यहा पर शूल एक सामान्य रोग है।

इस रोग को आधुनिक भाषा मे गैस्ट्राइटिस कह सकते हैं। जिसमे आमाशय शोथ हो जाता है तथा वेदना, हृल्लास, वमन, क्षुधानाश, आंशिक ज्वर, शिर शूल, तृषा आदि लक्षण मिलते है। यदि दवाने पर वेदना वढती है तो व्रण जनित शूल की सम्भावना रहती है।

निदान—

आनूप देशज तथा जलचर प्राणियो के मास सेवन से, दुग्ध के वने पदार्थ, गन्ने का रस, उडद की पिठ्ठी, दिवा स्वप्न आदि कफ प्रकोपक पदार्थो के सेवन से कुपित हुआ कफ आमाशय मे शूल को उत्पन्न करता है।

लक्षण—

शूल, छर्दि, हृल्लास, कास, अरुचि, कफ प्रसेक, शिर मे गुरुता, कोष्ठवद्धता, वेदना प्रात काल, भोजन के वाद, शिशिर एव बसन्त ऋतु मे अधिक अनुभव होती है। वेदना अनिश्चित समय पर भी उत्पन्न हो सकती है।

चिकित्सा—

१. विल्वादि क्वाथ। मात्रा–२० से २५ मि ली, सहपान—घृत भर्जित हिंगु चूर्ण २५० मि ग्रा एव सेधव लवण १ ग्राम के साथ।

२ दशमूल क्वाथ। मात्रा—२० से २५ मि लि। सहपान—यवक्षार २५० मि ग्रा एव सेधव लवण ५०० मि ग्रा के साथ।

३ पचकोलादि चूर्ण। मात्रा—१ ग्राम से ३ ग्राम अनुपान—मदोष्ण जल के साथ।

४ चतु सम चूर्ण। मात्रा—१ ग्राम से २ ग्राम। अनुपान—उष्ण जल से।

५ मुस्तादि चूर्ण। मात्रा २ ग्रा, अनुपान-गोमूत्र।

६ हिंग्वादि चूर्ण। मात्रा—१ से २ ग्रा.। अनुपान—उष्ण जल।

७ नारिकेल क्षार। मात्रा—१ से २ ग्राम। अनुपान—पिप्पली चूर्ण २५० मि ग्राम के साथ मन्दोष्ण जल से।

८ नारिकेल खण्ड—मात्रा–६ ग्रा अनुपान–जल से।

९. धात्री लोह। मात्रा—१ ग्रा। अनुपान–दूध से।

१० त्रिफला लोह। मात्रा--२५० मि ग्रा.। अनुपान—दुग्ध।

११ शूलगजकेशरी। मात्रा १२५ से २५० मि.ग्रा। अनुपान—पान के टुकडे मे रखकर सेवन को देना चाहिए। तत्पश्चात शुण्ठी, हीग, जीरा, वचा, मरिच का सम्मलित चूर्ण १ ग्राम की मात्रा मे लेकर गर्म जल पीने को देवे।

१२ शूल वज्रिणी वटी। मात्रा—१ से २ वटी। अनुपान—जल या अजा दुग्ध।

पथ्यापथ्य—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति, वर्ति प्रयोग, लघन, जागल प्राणियो के मास रस, गो दुग्ध एव अजा दुग्ध, दाडिम, आमला, तक्र, एरण्ड तेल, रसोन हरड हिंगु आदि पथ्य है।

वातवर्धक आहार विहार, शुष्क मास, मछली आदि जलचर। अधोवात, मल मूत्र आदि वेगो को रोकना। गुरु विष्टम्भकारक पदार्थ–शीतल वायु, शीतल जल, क्रोध शोक, भय आदि अपथ्य हैं। ❖



****

* शूल– अनुभूत सफल प्रयोग *

हर प्रकार के उदर शूल पर तात्कालिक प्रभावी योग

कागजी नीबू का रस १५ ग्राम। उत्तम (शुद्ध) मधु ४ ग्राम। पिसा हुआ उत्तम यवक्षार १॥ ग्राम।

पहले नीबू का रस और शहद काच के या चीनी के कप मे मिला ले–तदनन्तर इसमे १॥ ग्राम यवक्षार मिलाकर तुरन्त पी जाये। यवक्षार मिलाते ही उफान आजाता है। वस उफान आते ही तुरन्त दवा पी ले। पीते ही हर प्रकार का उदर शूल तत्काल ही शात हो जायेगा। यह सभी प्रकार के उदर शूलो पर हमारा परीक्षित रामवाण योग है।

—वैद्य ठाकुर बनवीर सिंह 'चातक' आयुर्वेद रत्न
लाडकुई द्वारा नसरुल्ला गज, सीहोर (म० प्र०)

****

* उदावर्तजन्य विविध शूल *

वैद्य हरि भाई के० त्रिवेदी, रीडर एव विभागाध्यक्ष—काय चिकित्सा विभाग,
वैद्य (कु०) चन्द्रकला आर० पण्डित, लेक्चरर—काय चिकित्सा विभाग
सरकारी आयुर्वेद कालेज, सरदार बाग, जूनागढ (गुज०)





परमादरणीय वैद्य श्री हरि भाई त्रिवेदी गुजरात के जाने माने आयुर्वेदीय प्राध्यापक एव निष्णात वैद्य महोदय हैं। आप सरल स्वभावी, निर्मोही, निराभिमानी, दयावान एवं क्षमावान हैं। गुजरात के मासिक पत्रों मे आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। आज तक सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए हैं। आप देश के विभिन्न आयुर्वेद कालेजो के परीक्षक हैं। वर्षों तक आपने भावनगर मे सेवा दी है, वर्तमान मे आप जूनागढ (गुजरात) के, सरकारी आयुर्वेद महाविद्यालय मे अपनी सेवा दे रहे हैं। मैं श्री त्रिवेदी जी से वन्दनापूर्वक अपेक्षा रखता हूं कि आप धन्वन्तरि द्वारा आयुर्वेद सेवा यज्ञ मे अपना सहकार निरन्तर दे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज।

* *

आयुर्वेद शास्त्र मे भिन्न-२ व्याधियो मे घोर सुघोरम् महागद, शीघ्रकारी ऐसा प्रयोग किया गया है। यथा 'रक्तपित्त को महागद एव शीघ्रकारी' बताया है 'उदावर्त को सुघोरम्' ऐसा बताया है।

उत् उर्ध्वम् आवर्त वायोर्भ्रमणं यस्मिन स उदावर्त ।

उत् उर्ध्वम् आसमन्ताच्च वायोर्वर्तन प्रतिलोमगमन यस्मिन रोगे स उदावर्त । (डल्हण)

उद्भूतेन वेगविधारणेन आवृतस्य वायोर्वतानभिन्युदावर्त निरुक्ति। (मधुकोष)

यत्रोर्ध्व जायते वायोरावेग स चिकित्सकै ।
उदावर्तरति प्रोक्तो व्याधिर्व्याधि विशारदै ॥
(माधव निदान)

अर्थात् वायु का ऊपर जाना ही उदावर्त कहा जाता हैं। इस प्रकार अपान वायु की विकृति (प्रतिलोम गति आवर्तन) को उदावर्त कहा जाता है।

उदावर्त व्याधि को सुघोरम् कहा गया है कि इस रोग मे शिर, वस्ति एव हृदय तीनो प्रधान मर्म की दुष्टि अवश्यम्भावी होती है। प्रधान तीन मर्मो को विकृतिवश वेदना से इनका निदान चिकित्सा यथाशीघ्र करनी चाहिए। इस रोग के निदान रूप आचार्य सुश्रुत ने तेरह वेग धारण करना बताया है। यथा वात, मूत्र पुरीष जृम्भा अश्रु, हिक्का, उद्‌गार, छर्दि, शुक्र, क्षुधा, तृष्णा, श्रम, निद्रा के वेग धारण से उदावर्त की उत्पत्ति होती है। आचार्य चरक ने कषाय तिक्त एव कटु रसो के तथा रक्त पदार्थों के खाने से, वेगो को रोकने से, उपवास करने से, अधिक मैथुन से, बलवान अपान वायु अधोगामी (मूत्रवह मलवह) स्रोतो को रोककर मल, अपानवायु और मूत्र का अवरोध कर क्रमश भयङ्कर उदावर्त की उत्पत्ति बताई है। वाग्भट ने भी बताया है कि "रोगा सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरण धारणै" (अष्टाग हृदय) अर्थात् प्रवृत वेग को रोकने से एव अप्रवृत वेग को बलात् बाहर निकालने से प्राय सभी रोगो की उत्पत्ति होती है।

उदावर्त के सामान्य लक्षण—वस्ति, हृदय, कुक्षि उदर मे बार-बार वेदना, पीठ, पार्श्व मे भयङ्कर वेदना, उदर मे आध्मान, जी मचलाना, गुदा मे कैंची से काटने के समान पीडा-सुई से भेदनवत पीडा, अन्न का न पकना, मूत्राशय मे शोथ, मल का न निकलना, उदर मे गाठ बन जाना, वायु की गति ऊपर होने से डकार का आना—देर से सूखे मल का निकलना या मल का पतला खर, रूक्ष और शीतल होना यह उदावर्त रोग के लक्षण हैं।

उदावर्त के उपद्रव मे शिर शूल, गुल्म रोग, पार्श्व-वेदना एव अन्य वायुजन्य भयङ्कर रोग होने का वर्णन चरक मे है। 'न वातेन विना शूलम्' इस सिद्धात से उपर्युक्त सभी अवयवो मे शूल की उत्पत्ति वायु की वजह से ही है। वायु को 'तन्त्रयन्त्रधर' कहा गया है, प्राकृत वायु ही तन्त्र (शरीर) और यन्त्र (शरीरावयवो) को धारण करता है। वायु द्वारा ही स्पर्श ज्ञान होता है, एव शब्द की भी उत्पत्ति होती है। शूल (वेदना) भी एक प्रकार का इन्द्रिय स्पर्श ज्ञान ही है। शूल की उत्पत्ति एव अनुभूति मे वायु का अति महत्वपूर्ण योगदान है। 'रूक्ष शीतो लघु सूक्ष्मश्चलोऽथ विशद खर' इन गुणो मे से १-२ या ३ गुणो का वैषम्य से शूल एव विविध वातजन्य वेदना उत्पन्न होती है।

भिन्न-२ अवयवो मे उत्पन्न शूल किन-२ वेगावरोध से होता है उनके वारे मे देखे तो—

१ वस्ति शूल—मूत्रावेगावरोध, शुक्रवेगावरोध।

२ हृदय शूल—छर्दिवेगावरोध, शुक्रवेगावरोध क्षुत तृड्वेगावरोध।

३. कुक्षि व उदरशूल—वात वेगावरोध, पुरीष वेगावरोध।

४. पृष्ठ व पार्श्ववेदना—मूत्र वेगावरोध, पुरीष वेगावरोध, शुक्र वेगावरोध, निद्रा वेगावरोध।

५. गुदा मे कैची कर्तनवत् वेदना—पुरीष वेगावरोध शुक्र वेगावरोध।

६ शिर शूल—वात वेगावरोध, मूत्र वेगावरोध, जृम्भा वेगावरोध,क्षवथु वेगावरोध।

७. सर्वाङ्ग मे शूल—श्वास या निद्रा/वेगावरोध।

उदावर्त जन्य शूल मे केवल अपान की दुष्टि वताना निरर्थक है। भिन्न-भिन्न वेगावरोध से तत्रस्थ समीपस्थ वायु की दुष्टि होकर शूल की उत्पत्ति होती है।

उदाहरणार्थ—छर्दि वेगावरोध से समीपस्थ उदान की विकृति होती है।

विकृत उदान वायु–प्राण एव व्यान को विकृत करके हृदय मे शूल उत्पन्न करता है। शूल वेगावरोध से अपान दुष्टि होती है, लेकिन इससे हृदयशूल भी उत्पन्न होता है—इसकी सम्प्राप्ति के वारे मे सोचें तो शुक्र से ओज की उत्पत्ति होती है। ओज का स्थान हृदय है-शुक्र वेगावरोध से दुष्ट वायु ओज को अपने प्राकृत स्थान मे जाने मे अवरोध पैदा करके हृदयशूल उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार वायु के पाच प्रकारानुसार स्थान अलग अलग होने पर भी एक दुष्ट वायु दूसरे को दूषित करके अन्य आवयविक विकृति (वेदना) उत्पन्न करने मे समर्थ है।

उदावर्त के प्रतिकार मे तैल और लवण से अभ्यङ्ग देकर सम्यक स्निग्ध हो जाने पर स्वेदन कर्म कराना चाहिए। तदनन्तर स्निग्ध स्विन्न पुरुष को निरूह वस्ति देनी चाहिए। या गुदवर्ति का प्रयोग कराना चाहिए। इनसे उदावर्त की शाति न हो तो स्नेहन-स्वेदन कराकर स्नेह विरेचन से कोष्ठ शुद्धि करनी चाहिए।

स्नेहन स्वेदन विरेचन वस्तिकर्म, फलवर्ति, तैलाभ्यङ्ग मल मूत्र अधोवात के वेगो का प्रवर्तन, मास रस, एरण्ड तैल, मदिरा, अमलतास, आर्द्रक, नीबू, यवक्षार, हरड, लवग, हिगु, द्राक्षा,गोमूत्र, सैंधव,सौवर्चल–इत्यादि पथ्य है।

अधोवात निरोधज उदावर्त मे वातानुलोमन तथा कोष्ठ शुद्धि का कर्म करना चाहिए। पुरीष निरोधज उदावर्त मे सर तथा अनुलोमन औषधि प्रयोग करनी चाहिए। मूत्र निरोधज उदावर्त मे मूत्रल औषधि प्रयोग करें। उद्गार निरोधज मे स्नेहपान कराकर एव स्नेहन आदि का प्रयोग करे। क्षुधा निरोधज मे उष्ण स्निग्ध भोजन थोडी-२ मात्रा मे देना चाहिए। तृष्णा निरोधज मे मन्थ या शीतल यवागू वनाकर पिलाना हितावह है। अश्रु निरोधज मे एकान्त स्थान मे जाकर मन भर रोवे और अवरुद्ध अश्रु को प्रवाहित करे। यदि आनन्दजन्य हो तो हसकर अश्रुपात करे। तदनन्तर शयन मद्यपान और प्रिय कथाओ का श्रवण कराये। क्षवथु निरोधज मे प्रधमन नस्य प्रयोग करे। शुक्र निरोधज मे वस्ति शोधक तृण पचमूल क्वाथ से सिद्ध जल या दूध पिलावे, यथायोग्य कामेच्छा पूर्ण करे। श्वास निरोधज मे विश्राम देना परम हितावह है। निद्रावरोधज मे क्षीरपान, शयन तथा सम्पूर्ण अङ्गो का सवाहन लाभ करता है।

उदावर्तजन्य विविध शूल मे शूल प्रशमन महाकषायोक्त द्रव्यो का प्रयोग करे, यथा–पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, सोठ, मरिच, अजमोद, असगन्ध, अजाजी, गह्वीर मे से किसी का भी औषधि प्रयोग उदावर्तजन्य शूल मे हितावह है।

उपान्त्र शूल

वैद्य महेन्द्र पट्टणी बी. एस. ए एम.
६-बी. पारस चेम्बर्स, सुरेन्द्रनगर (गुजरात)



मेरे परम मित्र श्री पट्टणी जी द्वारा भूतकाल मे 'आरोग्य प्रदीप' मासिक पत्रिका का सम्पादन होता था। आप दयावान, चिन्तनशील एवं यथार्थ के पक्षधर है। आप पर रजनीश जी का गहरा प्रभाव है। अनेक औषधिया स्वयं निर्माण करते हैं। गुजराती मे आयुर्वेद विषयक लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं। हिन्दी मे आपका प्रथम प्रयास स्तुत्य है। — वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

आज से करीव १५-१६ साल पहले की बात है, जबकि मै आयु० महाविद्यालय मे उपाधि प्राप्त कर गुजरात के एक छोटे से गाव मे रुग्णालय शुरु करके बैठा था। उस समय शुद्ध आयुर्वेद का पाच साल अभ्यास करने के बावजूद भी मुझे आयुर्वेद मे जरा-सी भी श्रद्धा नही थी। मैं सौ प्रतिशत एलोपैथिक प्रेक्टिस करता था। हालाकि मैने बडे-बड़े विद्वान प्राध्यापको के पास आयुर्वेद का अध्ययन किया था, जो समग्र भारत मे अच्छे वैद्य व विद्वानो मे माने जाते थे। इस समय मे एक घटना हुई जिसने मेरे जीवन को नया मोड दे दिया।

मेरे साथ मेरी बडी वहन भी रहती थी, उनके पति का अभी-२ एक साल पहले ही देहांत हुआ था। वहन के एक १२ साल का लडका और तीन छोटी लडकिया थी। लडका जिसका नाम राजेन्द्र है, शरीर मे वहुत कमजोर था। एक रात उसके पेट मे दर्द शुरु हुआ। जैसे सामान्य उदर शूल मे जनरल प्रेक्टीशनर ज्यादा निदान की फिक्र किये बजाय वातिक उदरशूल मान कर वेदनाशामक व वातानुलोमन औपधि देते हैं, मैं भी उसको Tab Uni-ezyme, Tab Sodamint इत्यादि टिकिया देकर सोचा दर्द अभी शात हो जायेगा। दर्द शात होने की बजाय वढता गया, साथ मे छर्दि (वमन) भी शुरु हुआ।

मामला अव कुछ गडवड मालूम हुआ, मैंने उसको लिटाकर उदर का परीक्षण शुरु किया, दर्द उदर मे नाभी से दाहिनी ओर नाभि से जरा नीचे दवाने से ज्यादा होता था। उस भाग को दवाने से जरा कठिन भी मालूम होता था, थोडा बुखार भी साथ मे था, विवन्ध और उदर वातपूर्ण था। छर्दि वमन होने लगी कोई भी दवाई को अन्दर टिकने नही देती। वेदना अत्यधिक थी भीतर कोई जगह पका हो ऐसी वेदना हो रही थी। जिसके कारण रुग्ण की आख से आसू भी निकल आते थे। सपूर्ण परीक्षा के बाद ऐसा लगा कि शायद उपान्त्र शूल (Appendicitis) होने की पूरी सम्भावना है फिर उसके लिये Inj Glucose 20% 50 c c I V., Inj Terramycin 3 ml, Inj Baralgan 3 ml, Inj Sequil 2 ml, I m. दिया। धीरे-धीरे वेदना कम होने लगी, थोडी नीद भी आ गई। सुवह उठा तो शरीर मे कमजोरी थी उदर मे दर्द ऐसे नही होता था, मगर उण्डुक पर दवाने से दर्द जरुर होता था। उसी दिन विशेष परीक्षण के लिए नजदीक के शहर 'महेसाना' की सिविल होस्पीटल मे उसे ले गया। सिविल सर्जन जी मेरे परिचित थे, उन्होने सब आधुनिक उपकरणो से परीक्षण करके निदान किया कि उपान्त्र शोथ (Acute Appendicitis) ही है। उनकी सलाह थी कि जितना हो सके शीघ्र ऑपरेशन करा लेना अच्छा है। देर करने से कभी अन्दर ही फूट जाने पर गम्भीर परिस्थिति निर्माण हो सकती है।

मेरे लिये अव मुसीवत शुरु हुई। वहन का इकलौता वेटा था, उनके पिता का अभी एक साल पहले ही देहात हुआ था, उम्र भी १२ साल ही थी और शरीर था विलकुल कमजोर! अव आपरेशन कराना या नही! वहन की इच्छा आपरेशन कराने की नही थी। साथ मे आपरेशन न करने पर भविष्य मे खतरनाक परिणाम भी आने की

सम्भावना थी। अव क्या करना क्या नही, मेरे पर बडी जिम्मेदारी आ गई थी। मैं और कोई निर्णन नही ले पाता था।

इस उलझन मे मुझे याद आया मेरा दोस्त, जिसका नाम है वैद्य वत्सल वसाणी, हम दोनो आयुर्वेद महाविद्यालय मे साथ ही थे। उनके बडे भाई वैद्य श्री शोभन वसाणी जी गुजरात के प्रमुख वैद्यो मे गिने जाते हैं। वत्सल वसाणी पहले से आयुर्वेद का पक्षपाती है। मैने उसे खत लिख कर सारी परिस्थिति का विवरण दिया, उसमे क्या किया जाये। मार्गदर्शन मागा।

उसका शीघ्र ही खत आया कि आपरेशन कराने के वजाय राजेन्द्र को साथमे लेकर शीघ्र यहा आ जाओ—उसके वडे भाई—वैद्य शोभन वसाणी जो अच्छे वैद्य है, उसने अभी-अभी ३-४ ऐसे ही रुग्ण आयुर्वेदिक उपचार से अच्छे किये है। मैं वहा पहुच गया।

राजेन्द्र के लिये निम्न दवाइया देने की सूचना दी।

(१) अग्नितुण्डी रस—२-२ गोलिया आर्द्रक स्वरस के साथ।

(२) कर्पूर हिंगुवटी—२-२ गोली भोजन के वाद।

(३) त्रिफला गुग्गुल—२-२ गोली सुवह शाम चवा के पानी के साथ।

(४) अभयारिष्ट—३-३ चम्मच भोजन के वाद।

(५) शिवाक्षार पाचन चूर्ण—१ वडी चम्मच रात को सोते समय। भोजन मे वातकर कोई भी आहार लेने की मना की, खट्टी चीज भी खाने की मना की। वातहर आहार जैसे लहसुन, मिर्च, सू ठ, आर्द्रक, जीरा, हीग, इत्यादि ज्यादा लेने को कहा। उदर पर सेक व मालिस न करने की सूचना दी। घर आने पर मुझे ७५ प्रतिशत भरोसा आगया था। मगर मरीज को तो सौ प्रतिशत भरोसा आ गया था उसने कहा मामा, अव आपरेशन कराना ही नही, मै इस दवा से ही अच्छा हो जाऊगा। १०-१५, २० दिन वीत गये, ऐसे एक महीना पूरा हुआ उस समय मे भी उदर मे दर्द नही उठा था। अव उदर मे दवाने पर भी काठिन्य और दर्द होता था वह भी अव नही था भूख खूव लगती थी, मल प्रवृत्ति भी अच्छी होती थी। शरीर भी अच्छा हुआ था शायद २-३ किलो वजन भी वढ गया था।

पाच महिने मे मरीज तो स्वस्थ हुआ ही मगर मुझमे भी परिवर्तन आ चुका था। आयुर्वेद के वारे मे मैने अव फिर से सोचना, पढना, अनुभव करना शुरू किया। शास्त्रीय ज्ञान तो था ही, जरूरत थी प्रत्यक्ष प्रमाण की वह भी अव मिल गया था। फिर देर किस वात की? आज इस वात को १६ साल वीत चुके। उसके वाद राजेन्द्र को कभी उदर शूल नही हुआ। अव तो वह भी स्वय होम्योपैथी डाक्टर वनकर अपने मरीजो को होम्योपैथिक उपचार से अच्छा कर रहा है। फिर भी आयुर्वेद ने उसे नया जीवन दिया था वह अव तक नही भूला।❖

आन्त्रपुच्छ प्रदाह (Appendicittis)

पर मेरा अनुभूत अचूक प्रयोग

ठाकुर वनवीर सिंह 'चातक' आयु० रत्न
लाडकुई व्हाया नसरुल्लागज (सीहोर) म प्र

१०० तोला उत्तम भारी वजनदार शुण्ठी लेकर कूटे और वस्त्रपूत करके सूखी स्वच्छ डाट वाली उत्तम वोतल या काच की ढक्कनदार वरनी मे सुरक्षित रखे। प्रात. २॥ तोला शुण्ठी चूर्ण मिश्री कालपी या कोई सी भी अच्छी वाली ६ तोला, शुद्ध गौ घृत ३ तोला, वादाम की मिंगी लाल छिलके से रहित २ तोला, पिस्ता की मिंगी २ तोला, वृहत एला (वडी-इलायची) के वीज ६ माशा सवको चूल्हे की मृदु आच मे कढाई मे डालकर एकत्र कर हलुआ वनाले। मीगियो और वृहत एला बीजो को प्रथम सूक्ष्म पीस ले। तदनन्तर उपरोक्त हलुआ वनावे। सर्व प्रथम कढाई मे घृत के पकने पर शुण्ठी चूर्ण २॥ तोला डाल दे। जव शुण्ठी घृत एकात्मभाव हो जाये तो ऊपर से वादाम पिस्ता की मीगी पिसी हुई, पिसे हुए वृहत् एला वीज एव ६ तोला मिश्री क्रमश एक के वाद दूसरी वस्तु मिलाते व भली भाति चलाते जाये। हाथ क्षण भर भी वन्द न रहे। स्मरण रखे कि अग्नि अधिक न लगनी चाहिए—नही तो शुण्ठी जल जायेगी तथा खरपाक होने से गुणधर्म व स्वाद खराव हो जायेगे। गुण धर्म वहुत अल्प हो जायेंगे। अत सावधानी से मृदु आच पर ही

—शेषाश पृष्ठ २७२ पर देखे।

ताम्र विषजन्य शूलोपचार

वैद्य अम्बालाल जोशी आयु० केशरी, मकराना मोहल्ला, जोधपुर (राज०)

—०✣०—

'न विष विषमित्याहुस्ताम्र तु विषमुच्यते' के सिद्धान्तानुसार ताम्र विष प्रभाव कर सकता है। यदि उसका विशेष शोधन तथा अमृतीकरणयुक्त मारण नही किया गया हो। ऐसा किया जाने के बाद भी ताम्र एक क्षोभक तथा उत्तजक प्रभावकर्ता है। यह पित्त वृद्धि करता है तथा आमाशय मे क्षोभ उत्पन्न करता है। इन्ही कारणो से यह दैहिक ऊष्माजनक तथा वामक है। मृदु प्रकृति वाले मनुष्यो के लिये यह अतिशीघ्र विपरीत प्रभाव दर्शाता है।

आयुर्वेद शास्त्र ने ताम्र मे स्वभावत आठ दोष माने हैं—'दोषाष्टक ताम्र वर्तमान स्वभावतो'१ वांति २ भ्रांति ३. क्षोभ ४ मुख शोष-धातु क्षोभक ५ तीव्रता से उद्वेग जी मचलाना ६. दाहक ७ अन्त द्वेष ८ मूर्च्छा। ये ही दोष शूल रूप मे मानव देह को व्यथित करते हैं।

उपरोक्त दोषो से बचने के लिये (निवारणार्थ) आयुर्वेद शास्त्रो ने निम्न सावधानिया बरतने का निर्देश दिया है जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) भस्मो के लिए सोमनाथी ताम्र लेना चाहिए।

(२) भस्म निर्माणार्थ ताम्र की विशेष शुद्धि की जानी आवश्यक है।

(३) साधारणत. ताम्र भस्म शतपुटी होनी चाहिए।

(४) ताम्र भस्म पारद+गन्धक के योग से बनी हुई होनी चाहिए।

(५) ताम्र भस्म का अमृतीकरण करना आवश्यक है।

(६) उपरोक्त सभी सावधानियो का सम्यग्तया पालन करने के बाद भी यदि ताम्र विपरीत प्रतिक्रिया करे तो रस तन्त्र सार के अनुसार उसका सूक्ष्म कल्प तैयार कर औषधि रूप मे उचित विधिपूर्वक उपयोग करे।

(७) ताम्र भस्म जहा अनेक कठिन रोगो का नाश करती है वहा यह उपयुक्त निर्माण के अभाव मे या उचित प्रयोग के न होने पर अनेक नये रोगो को उत्पन्न भी कर देती है। अत सुधी वैद्यो को ताम्र प्रयोग करते समय पूर्ण सतर्कता रखनी चाहिए।

(८) ताम्र भस्म का विपरीत प्रभाव मूत्र पिंडो पर, रक्तचाप पर भी पडता है। इन प्रभावो को कम करने के लिये मूत्रल तथा रेचक औषधियो का समायोजन इसके साथ करना चाहिए। जिनमे—कुटकी, अमलतास आदि उल्लेखनीय हैं।

(९) यह अत्यन्त उग्र, तीक्ष्ण, उष्ण, भेदक तथा पित्त-ग्राही है। कच्ची रह जाने पर तो भ्रम, प्रलाप, दाह, मूर्च्छा, वमन, कभी-कभी ज्वर, अतिसार, शूल तथा रक्त-स्राव आदि विकार उपस्थित हो जाते हैं। इसके साथ पित्तशामक अनुपान देना चाहिए।

(१०) अशुद्ध भस्म तो और अधिक विपरीत प्रभाव-कारी होती हे। अत ध्यानपूर्वक इसका निवारण करे।

(११) ताम्र भस्म सेवन करते समय आग्रहपूर्वक पित्तवर्धक द्रव्यो का परित्याग करें। यहा तक कि धूप तथा अग्नि सेवन भी हानिकारक हे। पथ्य सेवन पर विशेष ध्यान दे।

(१२) वृद्ध, बालक, सुकुमार, मृदु प्रकृति पुरुष स्त्रियो, तथा गर्भवती स्त्रियो को यह औषधि कभी न दे।

(१३) भस्म की मृदुता तथा उत्तमता की परीक्षा प्रयोग के पूर्व कर लेवे। यह दही तथा नीबू से २४ घटे की अवधि मे की जाती है। इसमे धातुपन की चमक नही होनी चाहिए।

उपरोक्त निर्देशो के बाद ताम्र के अष्ट दोषो का प्रतिकार भी लिखना आवश्यक है। यहा हम पृथक-२ इनका उपचार बताने का प्रयास करेगे। अष्ट दोषो मे प्रथम है वान्ति या वमन।

१ वान्ति—ताम्र भस्म के उपयोग द्वारा वान्ति होने पर इसमे मिश्री की चासनी बनाकर उसमे नीबू का रस डालकर रख दे तथा जब तक वमन बद नही हो जाये थोडा-२ चाटते रहे।

२ भ्राति (भ्रम)—इसमे ब्राह्मी वटी १-१ गोली लवग २ नग तथा मिश्री मिलाकर ठडा १-१ चम्मच वार-वार पिलावे जव तक भ्रम दूर न हो जावे ।

३ क्षोभ—क्षोभ निवारणार्थ धनिया + मिश्री पीस कर शर्वत की तरह वनाकर वार वार थोडा-२ पिलावे । चाहे तो ठडा पानी वर्फ डालकर कर लेवे ।

४ मुखशोप या धातु क्षोभ—नीवू की शिकञ्जी वना कर पीनी चाहिए । आलू वुखारा पानी मे भिगो दे तथा उसे छानकर मिश्री या मधु मिलाकर वारवार पिलावे ।

५ जी मचलाना—इस अवस्था मे पुदीना के पत्तो का रस तथा मिश्री मिलाकर वार-२ पिलाते जावे । शिकजवीन (यूनानी) का प्रयोग करे । शर्वत चन्दन भी थोडा-२ वार-वार पिलावे ।

६ दाहक—अधिक दाह होने पर चन्दन का शर्वत, गुलकन्द तथा मुनक्का का प्रयोग करना उत्तम है । अर्क चन्दन, अर्क गुलाव, अर्क केवडा तथा अर्क वेदमुश्क का सयुक्त शर्वत वनाकर पिलावे ।

७. अन्न द्वेप—अन्न द्वेप मे नीवू का रस तथा मिश्री की चासनी वनाकर वार-२ चटावे । आलूवुखारा चुसावे ।

८ मूर्छा—सचेतना के लिये ठडे पानी का प्रयोग तथा खस भिगोये हुए ठडे पानी के छीटे मुख पर मारे सिर पर वर्फ का सेक करे सम्पूर्ण देह पर ठडे पानी का कपडा फेरे तथा वर्फ लगावे । ऐसा करने से चेतना आजाती हे थोडा-२ वर्फ का टुकडा भी मुख मे रखे । चुसाते रहे । फिर भी चेतना न आवे तो तीव्र सचेतन नस्य—एमोनियम कार्वोनेट, श्वास कुठार रस, कटफल नस्य, नखछिकनी आदि की नस्य देवे ।

विशेष—ताम्र भस्म का विष यदि उग्र शूल पैदाकर दे तो रोगी का उपचार निम्न विधि से करे—

(१) वमन कराकर ऊपरी भाग मे सग्रहीत ताम्र को वाहर निकाले ।

(२) विरेचन (हलका) कराकर उदर मे सग्रहीत ताम्र वाहर करे ।

(३) स्नेहन कराकर अङ्ग उपाङ्गो को पुष्ट तथा विष प्रभावरहित करे ।

(४) धाणा तथा मिश्री ठडाई की तरह पीसकर रोगी को वार-वार पिलावे । चाहो तो इस पेय मे वर्फ डालकर ठडा कर सकते हो ।

(५) रोगी को नीवू का रस पिलावें—३ दिन तक दे ।

(६) चावल की खीलो का क्वाथ पथ्य मे देवे ३ दिन ।

(७) सावा धान्य का पतला पेय वनाकर पिलावें । इसमे मिश्री मिला दे । यह तीन दिन लेवे ।

उपरोक्त पथ्यो को देते समय अन्य पथ्य का प्रयोग न करे । प्यास लगने पर भी उपरोक्त पेय ही देवे । शक्कर तथा भात भी पथ्य है ।

प्रलाप, ज्वर, शूल, रक्तस्राव आदि होने पर इनका उपचार गुडूचीसत्व, प्रवाल पिष्टी, मुक्ता पिष्टी, यवक्षार, हिग्वाष्टक चूर्ण, ब्राह्मी वटी द्वारा चिकित्सक यथा अवस्था तथा परिस्थिति करे । ✶

— पृष्ठ २७० का शेपाश —

उक्त हलुआ वनाये । जव हलुआ मे समस्त वस्तुये भली भाति मिला चुकें तो कढाही तुरन्त नीचे उतार ले । और नीचे भी हलवे को घोटते चलाते रहे ।

सेवन विधि—जव हलुआ सुहाता गर्म रह जाय तो उसमे से एक ग्रास हलुआ लेकर उसमे यशद भस्म उत्तम वारितर ठीक २ रत्ती मिलाकर रोगी को खिला दे और ऊपर से अवशिप्ट सारा हलुआ खिला दे । ऊपर से कवोष्ण मिश्री मिश्रित गौ दुग्ध एक गिलास पिलाना अनिवार्य है जो स्वर्ण मे सुगन्ध का काम करता है । यह प्रयोग केवल प्रात के प्रात खाली पेट ही सेवन कराये सायकाल और मध्याह्न मे नही । इस प्रकार रोगोपद्रव शात होने पर भी कम से कम १५-२० दिवस तक यह योग रोगी को सेवन करना अत्यन्त हितावह है, सम्भावना नही रहेगी । वैसे तो एक सप्ताह सेवनोपरात ही रोग मे पूर्ण लाभ प्रतीत होता है । यदा-कदा ४-५ दिन तक किसी-२ रोगी को अधिक भी लग जाते है । इस योग के सेवन काल मे रोगी को मीठा सुपक्व पपीता, मीठी मुसम्मी, मीठे सेव और अगूर मिश्री मिश्रित गौदुग्ध अवश्य ही सेवन करे । अगर भूख सहन न हो और विना अन्नाहार न रहा जाय तो दलिया अल्प प्रमाण मे दूध मे अत्यन्त तरल किया हुआ यवागू सदृश वनाकर २५ दिन वाद रोगी को केवल दिन रात्रि मे एक ही वार दे । ❖

—* गुद जनित शूल *—

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य, बी० एस० ए० एम०, आयुर्वेद मार्तण्ड
सम्पादक—शूल रोग निदान चिकित्सा, पुरुष रोग चिकित्सा, आयुर्वेद गुप्त रहस्याक
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावरकुण्डला (भावनगर) गुजरात



गुदा ४॥ अंगुल की होती है और १/२ अगुल का गुदौष्ठ होता है, ये शङ्ख के आकार की होती है। इसमे तीन वलिया १/२ अगुल की होती है। १ प्रवाहिणी, २ विसर्जनी, ३ सवरणी। इन सभी भाग को गुदा नाम से जाना जाता है। इस गुदा मे विविध व्याधि पैदा होती हैं यथा - अर्श, भगन्दर, गुदापाक, गुदभ्रंश, गुददारी, गुदार्बुद, गुदाशोथ इत्यादि। यहा हमारा विषय है—गुद जनित शूल, यह कोई स्वतन्त्र रोग नही है, सिर्फ विविध रोग से होने वाले शूल का एक लक्षण मात्र है। शास्त्रों मे गुद शूल का वर्णन मिलता है। किस-२ रोग मे गुदजनित शूल होता है—उनका वर्णन हम देखेंगे।

१ अतिसार— [१] वातातिसार—

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः।
शकृदामं सरुक् शब्दं मारुतेनातिसार्यते॥

शकृत् पुरीषम्, सरुक् शब्दम्, शब्दो गुदे तत्साहचर्यादिगुगपि गुद एव बोद्धव्या।

[२] पित्तातिसार —गुदपाक
[३] कफातिसार —मन्दवेदनम्
[४] आमातिसार —शूलोपेतम्

चिकित्सा—सामान्यतया अतिसार की चिकित्सा करने से अतिसार जन्य गुदशूल मिट जाता है।

२ प्रवाहिका — प्रवाहिका वातकृता सशूल
सशूला अर्थात्—गुदा मे शूल होता है।
३ ग्रहणी — परिकर्त्तिका (वातज ग्रहणी) गुदाशूल
४ अर्श— चिमचिमान्विता, सरुक्—वातार्श
गुदपाक—पित्तार्श
गूदशूल—रक्तार्श
पाट्वादिण्वाकर्षणवत्पीडा—कफार्श
५ तूनी— भिन्दतीवगुदा—वेदना
६ प्रतितूनी— गुदा वेदना—वेगवत्
७ गुदागतवात— गुदशूल
८ उदावर्त— १ पुरीषवेग रोकने से—परिकर्तिका-गुदे कर्तनवत् पीडा
२ मूत्र वेग रोकने से—गुद शोथो रुजा
३. मलवद्ध—आनाह— शकृत शूल
९ अष्ठीला— तीव्रार्त्ति—गुदशूल
१० उष्णवात— गुददाहवत् पीडा
११ वद्ध गुदोदर— गुदाकष्ट
१२ क्षतोदर— गुदपीडा
१३. विद्रधि— गूदपाक--शूल
१४ भगन्दर — गदन्य द्वयगुले क्षेत्रे पार्श्वत पिटकार्तिकृत्।
शतपोनक-- दारुण रुजा
उष्ट्रग्रीव— गुदपाक--सशूल
परिस्रावि-- मन्दवेदनम्
शम्बूकावर्त— बहुवर्णरुजास्रावा
उन्मार्गी— विदार्यवत्पीडा
१५ निरुद्धगुद-- गुदा कष्ट
१६ अहिपूतन-- स्फोट स्राव-- गुदा शूल
१७ गुदभ्रंश— गुदा शूल
१८ गुदपाक— सशूल गुदपाक
१९ महापद्म-- दाहवत् गुद शूल
२० विदग्ध-- गुदाशूल
२१ गुददारी-- दाहवत् गुद शूल

इस तरह विविध गुदाजन्य रोगो मे विविध प्रकार के शूल मिलते है। अर्श मे चुभनवत् पीडा होती है, क्योकि अर्श स्वय किल या कण्टकवत् होता है, अत चुभनवत् पीडा मिलेगी। भगन्दर मे व्रण होता है, पूयस्राव होता है, उसमे असह्य वेदना होती है, दाहवत् पीडा मिलेगी। निरुद्ध गुद उदर रोग मे मलप्रवृत्ति के समय गुदा मे कष्ट होता है। गुददारी मे - गुदा के बाह्य प्रदेश एव आभ्य-

—शेषाश पृष्ठ २७८ पर देखें।

हृदय शूल तथा हृदयावसाद

आयुर्वेद चक्रवर्ती वैद्य मिश्रीलाल गुप्त डी ए एम एस, आष्टा (सीहोर) म० प्र०



आप अष्टाङ्ग आयुर्वेद के परम ज्ञाता एवं सिद्धहस्त वैद्य है। आप आयुर्वेद के प्रखर पक्षधर हे। 'धन्वन्तरि' मे वर्षो से आपके लेख प्रकाशित होते है, जो ज्ञानवर्धक और मार्गदर्शक होते हैं। आजकल हृदय रोग का बोलबाला है। हृदय रोग का नाम सुनकर ही रोगी बेचैन हो जाता है—उस समय क्या किया जाय ? उस पर विस्तृत विवेचन यहा विद्वान महोदय श्री गुप्त जी ने दिया है। अपनी अनुभूत चिकित्सा देकर हृदय रोगी पर उपकार किया है, साथ ही साथ आयुर्वेद समाज को मार्गदर्शन दिया है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

हृदय शूल की चिकित्सा मे आयुर्वेद आज एलोपैथी से बहुत कुछ आगे है। मेरा तो विश्वास है कि स्वर्ण चन्द्रोदय, सिद्ध मकरध्वज, जवाहरमोहरा, अभ्रक भस्म, योगेन्द्र रस जैसी शक्तिशाली बलवान औषधि खोजने पर भी एलोपैथी मे प्राप्त नही हो सकती है। अस्तु हृदय शूल की चिकित्सा के सम्बन्ध मे सूक्ष्म रूप से कुछ प्रकाश डालते हुये अपने पचास वर्ष के अनुभव के आधार एव आयुर्वेद ग्रन्थो की सहायता से मुझे जो सफलता प्राप्त हुई है उसका वर्णन करने का प्रयास करता हूँ। हृदय रोग के कारण आयुर्वेद इस प्रकार व्यक्त करता है—

(१) अति उष्ण पदार्थों का सेवन, (२) गुरु पदार्थों का अतियोग, (३) कषाय रस का अधिक प्रयोग, (४) तिक्त रस का अधिक सेवन, (५) सामर्थ्य से अधिक श्रम, (५) अति चिन्ता, शोक, मानसिक तनाव, (७) वेग धारण, (८) आमदोष आदि।

हृदय रोग की सम्प्राप्ति—

दूषयित्वा रसदोषा विगुणा हृदय गता।
हृदिबाधा प्रकुर्वन्ति हृदरोग प्रचक्षते॥

दूषित वातादिक दोष हृदयगत रस-धातु को दूषित करके हृदय मे अनेक प्रकार की पीडा उत्पन्न करते हैं। इसी का नाम हृद् रोग है।

लक्षण—

हृदय शूल सहसा आरम्भ होता है जो शीघ्र ही इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि रोगी के प्राण सकट मे पड जाते है। सहन की सामर्थ्य नही रहती, श्वासावरोध, वमन आदि के साथ व्याकुलता, शूल तथा हृदय की धडकन बढ जाती है। नाडी अत्यन्त सूक्ष्म और कभी अत्यन्त तीव्र चलती है। शीताग होने लगता है, रक्तचाप की वृद्धि होने से कभी-कभी मस्तिष्क की शिरा विदीर्ण होकर रोगी का प्राण विसर्जन हो जाता है। उचित उपचार से रोग शमन हो जाता है किन्तु कभी-कभी ऐसे रोग के वेग महीने, दो महीने या कम अधिक मे पुन होने लगते हैं जो पूर्व दौर की अपेक्षा अधिक बलवान होते हैं। यदि योग्य चिकित्सा नही हो सकी तो तीन-चार दौरे आने पर रोगी की मृत्यु हो जाती है। हृदय मे जलन, कम्प और शूल होना अथर्व वेद सूक्त ७ से है।

माधव निदान ने हृदय रोग के कारण पर प्रकाश डालते हुये लिखा है कि वात-पित्त-कफ के दूषित प्रयोग से रस दूषित होकर हृदय मे अनेक प्रकार की बाधा उत्पन्न करता है तथा इसके अतिरिक्त कृमिज हृदय रोग का भी वर्णन किया है, यथा—

उत्क्लेद ष्ठीवन तोद शूल हृल्लासकस्तम।
अरुचि श्यावनेत्रत्व शोथश्च कृमिजे भवेत्॥

तिल, गुड, क्षीर जैसे अपथ्य पदार्थो के अधिक खाने से हृदय मे कही एक ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। उस ग्रन्थि से जो रस और क्लेद निकलता है उससे कृमि उत्पन्न होकर हृदय मे जो विकार उत्पन्न हो जाता है,

उससे हृदय मे तीव्र वेदना, कण्डू, अरुचि, मदाग्नि, शोथ आदि उत्पन्न हो जाते है। यह कृमिज हृदय शूल का निदान है। इन पर ध्यान देते हुये कृमिनाशक औषधियो से उपचार किया जाना चाहिये। इस त्रिदोषज रोग मे रोगी को लंघन कराये, पूर्ण विश्राम कराये, इसके पश्चात घृतपान कराकर स्निग्ध करें तथा कृमि समूह के उत्क्लेशार्थ ताजा तिल का चूर्ण, दधि आदि खिलाकर कृमिहर औषधिया दें।

हृदय रोग की विस्तृत व्याख्या जो शास्त्रों मे बताई है, वह इस प्रकार है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज तथा कृमिज। इन सबका वर्णन यहा अभीष्ट नही है।

चिकित्सा—

हृदय शूल के रोगी के लिये पूर्ण विश्राम अत्यन्त आवश्यक है। यथासम्भव शौचादि की व्यवस्था पलग पर ही की जानी चाहिये। सीढियो पर चढना तथा भार वहन करना आदि श्रम वर्जित है। साथ ही पथ्य पालन करते हुये श्रद्धापूर्वक औषधि ग्रहण करना हितकारी है। वैद्य का कर्तव्य है कि रोगी को पूर्णरूपेण सात्वना देते हुये यह विश्वास दिलाये कि शीघ्र ही तुम स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करोगे। अथर्व वेद मे तो रोगी को आश्वासन देना भी चिकित्सा का भारी अङ्ग माना है और विस्तार के साथ इसकी लम्बी-चौडी व्याख्या की है। यहा उदाहरणार्थ केवल एक दो श्लोक अथर्ववेद ८/२/२४ से उद्धृत किये जाते हैं, यथा—

रोगी को देखते समय आश्वासन—

सोऽरिष्टनमरिष्यसि न मरिष्यसि भाविमे।
न वै तत्र म्रियन्ते नो यन्त्यधर्मतम ॥

हे प्यारे! तू रोग से पीडित होने वाला नहीं है, तेरा रोग शीघ्र दूर होने वाला है। असाध्य नही है, चिन्ता न कर स्वस्थ हो जायेगा। मर नही सकता, विश्वास रख तेरा कष्ट शीघ्र दूर कर दूगा।

आहार्षमविद त्वा पुनरागा पुनर्णवा।
सर्वाङ्ग सर्वते चक्षु सर्वमायुश्चतेऽविदम ॥
—अथर्व ८/१/२०

ओ प्यारे अब तू मृत्यु के मुख मे नही रहा, तुझे मृत्यु के मुख से निकाल लिया। तू ससार मे फिर से आ गया, तेरे समस्त इन्द्रियगण, चेतना और आयु को मैंने मृत्यु से छुडाकर प्राप्त कर लिया हैं, इत्यादि-इत्यादि।

सामान्य चिकित्सा—

(१) चरक संहिता के अनुसार जिस हृदय रोगी को भोजन के पश्चात् पीडा होती हो या भोजनकाल मे अल्प शूल होता हो तथा भोजन के पूर्ण पच जाने पर जो शूल मिट जाता है उसके लिये निम्न प्रयोग हितकर है—

देवदारु, कूठ, लोध्र, सैंधव लवण, सौवर्चल लवण, वायविडङ्ग और अतीस। इन सबका चूर्ण कर १ से ३ ग्राम की मात्रा मे गर्म जल से प्रयोग कराये।

यदि भोजन के पच जाने पर शूल अधिक होता हो तो एरण्ड तैल को गर्म दूध मे मिलाकर रेचन के लिये प्रयोग कराना चाहिये और यदि भोजन की सभी अवस्थाओ मे शूल होता हो तो निशोथ आदि के काढे मे मुनक्का, अन्जीर आदि डालकर विरेचन की व्यवस्था करे।

(२) अथर्ववेद मे मृगश्रृङ्ग को हृदयशूल की अमोघ औषधि माना है। मृगश्रृङ्ग को जल मे घिसकर या उसकी भस्म को उष्ण जल से प्रयोग कर सूर्य का आतप ग्रहण करना हृदय रोग मे निश्चित लाभ करता है। आयुर्वेद के ग्रन्थो मे भी लिखा है—

दग्धमनिर्गत धूम मृगश्रृङ्ग गोघृतेन सहलीढम।
हृदयनितम्बजशूल हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥
—भैषज्य रत्नावली शूल रोगाधिकार

(३) हृदयावसाद के द्वारा रोगी यदि मूर्छित हो या हृदय मे तीव्र पीडा हो, स्वेद अधिक आने से शीताग एव व्याकुलता हो, तब—

याकूति १ रत्ती, सिद्ध मकरध्वज १ रत्ती, जवाहर मोहरा १ रत्ती, श्रृङ्ग भस्म ३ रत्ती, चिन्तामणि रस १ रत्ती। यह एक मात्रा है, ऐसी तीन मात्रा शहद और पान के रस मे लेनी चाहिये।

(४) हृदय शूल और हृदयावसाद नाशक अनुभूत योग जिसका वर्णन सुधानिधि के विशेषाक मे श्री डा० सत्यनारायण खरे ने किया है, वास्तव मे हृदय रोग पर रामबाण सिद्ध हुआ है, वह नीचे दिया जाता है—

सिद्ध मकरध्वज (स्वर्ण-कस्तूरी युक्त) आधी रत्ती, जवाहरमोहरा १ रत्ती, याकूती आधी रत्ती, सजीवनी २ रत्ती, हेमगर्भ पोटली रस चौथाई रत्ती। सबको मिलाकर खरल मे बारीक पीसें। यह एक मात्रा है, ऐसी तीन मात्रा बनाकर मधु और पान के रस मे दिन मे तीन बार दे

से सभी प्रकार के हृदय रोगों मे रामवाण है। स्वस्थ होने पर सिद्ध मकरध्वज १ रत्ती मधु मे मिश्रण कर नित्य ...ाई लाभ के लिये अधिक समय तक लेना चाहिये। भोजनोपरान्त अर्जुनारिष्ट व अश्वगन्धारिष्ट १-१ तोला समान जल मिलाकर प्रयोग करें।

स्वानुभूत योग—

(४) स्वर्ण चन्द्रोदय आधी रत्ती, सहस्रपुटी अभ्रक भस्म आधी रत्ती, शृङ्ग भस्म ३ रत्ती, प्रवाल भस्म १ रत्ती, जवाहरमोहरा आधी रत्ती, हृदयार्णव रस १ रत्ती। यह एक मात्रा है, ऐसी तीन मात्रा दिन मे तीन बार मधु से देने पर भयकर हृदय रोग नष्ट होता है।

इसके पश्चात् दिन मे दो बार प्रात साय खमीरा गाजवा अम्बरी जवाहर वाला ५ ग्राम मात्रा मे चटावें।

यदि वेदना अधिक हो तो मृगश्रृङ्ग को जल के साथ घिसकर सुखोष्ण हृदय स्थल पर लेप करें। उदर शुद्धि के लिये रात्रि को मृदुविरेचन की व्यवस्था करें।

(६) शृङ्ग भस्म ४ रत्ती को १ तोला घृत मे मिला कर दिन मे ३ बार देने से हृदय शूल मे आश्चर्यजनक लाभ होता है।

(७) जब हृदयावसाद हो, स्वेदाधिक्य हो, नाडी की गति क्षीण हो तो निम्न योग आशुफलप्रद है—

स्वर्णयुक्त मकरध्वज आधी रत्ती, वृ० कस्तूरीभैरव रस १ रत्ती, अभ्रक भस्म सहस्रपुटी आधी रत्ती। यह एक मात्रा है। ऐसी २-३ मात्रा प्रति घण्टा पर देने से रोगी को नवीन जीवन प्राप्त होता है।

(८) क्रिमिज हृदय शूल मे प्रथम रोगी को घृतपान द्वारा स्नेहन दे। इसके पश्चात् तिल का चूर्ण दधि के साथ खिलाये। पश्चात् हल्का विरेचन दे और फिर विडग चूर्ण काजी के साथ प्रयोग कराकर निम्न औषधिया सेवन करायें—

क्रिमिमुद्गर रस १ रत्ती, अकीक पिष्टी १ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, मुक्ता पिष्टी १ रत्ती, शृङ्ग भस्म ४ रत्ती। यह एक मात्रा है। ऐसी ३ मात्रा ४-४ घण्टे पर नित्य शहद और पान के रस से दीजिये।

(९) त्रिदोषज हृदय रोग चिकित्सा—माणिक्य पिष्टी आधी रत्ती, पन्ना पिष्टी आधी रत्ती, जवाहरमोहरा १ रत्ती, शृङ्ग भस्म ४ रत्ती, खमीरा गाजवा अम्बरी जवाहर वाला ५ ग्राम मिलाकर प्रात साय २ बार दें तथा भोजनोपरान्त अर्जुनारिष्ट १ तोला समान जल मिलाकर प्रात साय पिलायें। भोजन हल्का, सुपाच्य और लवणहीन दिया जाना चाहिये।

हृदय रोग मे पथ्यापथ्य—

(१) रोगी को पूर्ण विश्राम करना चाहिये। उदर शुद्धि के लिये तीव्र विरेचन न देकर यदा-कदा मृदु विरेचन देना हितकारी है। भोजन हल्का, सादा और कम कराना चाहिये।

(२) चिन्ता, क्रोध, शोक, भय से बचाने का सदैव प्रयत्न करें। स्वेदन, विरेचन, वमन, वस्ति, पुराने शालि चावल, मूग की दाल, कुलथी, परवल, पका केला, आम, अनार, अजवायन, लहसुन, हरड, कूठ, चन्दन आदि पथ्य हैं।

(३) हृदय रोग मे लवण का प्रयोग बिल्कुल नही करावे, क्योकि बहुधा इससे रक्तचाप विकृति बढने का भय रहता है। अत रोग के शमन होने पर थोडी मात्रा मे शुद्ध सैंधव लवण का प्रयोग किया जा सकता है। तैल, तले हुये पदार्थ, अधिक तेज मिर्च-मसाला, अचार, आलू, अरवी, बैंगन का त्याग करे। लौकी, पालक, टमाटर आदि को शुद्ध घृत मे बघार कर प्रयोग करें। तैल या वेजीटेविल (डालडा) का उपयोग सर्वथा बन्द रखे।

(४) हृदय रोग मे रक्तचाप को सन्तुलित करने के लिये लहसुन की दस-बारह कलियो को दूध मे उबालकर उस दूध को रोगी को पिलायें और उन लहसुन कलियो को भी खिला दे। इससे उच्च रक्तचाप तथा हीन रक्तचाप दोनो सामान्य हो जायेंगे। साथ ही सर्पगन्धा घन वटी की २ गोली रात्रि को सोते समय दूध से दीजिये। लहसुन हृदय रोग की प्रत्येक दशा मे रोगी के लिये अतीव लाभप्रद है।

—❖❖❖—

✻ आध्मान एवं हृदय शूल ✻

श्री चुनी भाई भट्ट एम० ए०, एम-एड्० हिन्दी कोविद् विशारद
मन्त्री—अखिल भारतीय वनौषधि मडल, समाज शिक्षण भवन, सूरत (गुजरात)



परमादरणीय श्री चुनी भाई भट्ट गुजरात के अग्रगण्य समाज सेवक, सर्वोदय कार्यकर, गांधी विचारक एवं वनस्पतिज्ञ तथा आयुर्वेदज्ञ हैं। आयुर्वेद आपका व्यवसाय नहीं है, लोकसेवा हेतु आयुर्वेदज्ञ हैं। आयुर्वेद संशोधन मे आप रुचि रखते हैं एव वनस्पति सशोधन हेतु जङ्गलो मे टीम लेकर घूमा करते हैं। आप दक्षिण गुजरात की सुप्रसिद्ध सामाजिक संस्था—ममाज शिक्षण भवन के नियामक हैं। शिक्षण भवन द्वारा लेखको, कवियो और माहित्यकारो की शिविरो का आयोजन कर शिक्षा शिविर चलाई जाती है। आपकी दो पुत्रियां कुमारी धर्मिष्ठा भट्ट एम. डी (आयु०) तथा कुमारी तृप्ति भट्ट बी ए एम एस हैं। आप तीनो ने कृपा करके अपने अनुभव पेश किये हैं। —वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

हम एक साहित्य शिविर चला रहे थे और इस शिविर मे बडे-वडे ख्यातिमान लेखक व साहित्य प्रेमी पधारे थे। उसमे देहली मे नियामक श्री सरदार सोहन सिंह जी भी आठ दिन तक रहे थे। लोक साहित्यकार श्री पिगलशी गढवी अपना डिंगल व चारणी साहित्य का आस्वाद भीमपोर की जनता को करा रहे थे। इतने मे जीपकार की आवाज और प्रकाश ने सभी का ध्यान भग कर दिया। मेरे नाम चिट्ठी पढकर मैं तुरन्त रवाना हुआ। चलते-चलते रास्ते मे ही ड्राईवर से पूछा कि "क्या दुनिया रसातल मे जा रही थी कि चालू कार्य-क्रम मे वुलावा भेजा गया ?" वह वोला "जी, ऐसा ही है।" हमारे शिविर का रसोई वनाने वाला वहुत वीमार है। व्यवस्थापक श्री वनारसीदास की सलाह से हमारे सभी कर्मचारियो ने प्रयत्न करके स्थानीय उपचार किया और उसे कोटेज अस्पताल मे भी ले गये। वहा से यह कहकर विदा किया कि मरीज की हालत वहुत खराव है। हृदय और पेट में गैस का असर हुआ है। हृदय धीरे-धीरे मद होता जा रहा है। अत. आधे घटे मे उसे वडे अस्पताल मे दाखिल करना जरूरी हे, अन्यथा जान खतरे मे है। इतने मे हम अपने स्थान पर पहुँच गये, वहा दर्शको की वडी भीड थी। मैंने स्थानीय डाक्टर पटेल से पूछा। उसने कहा कि "मैंने दवा दी है और सूचीवेध भी दिया है, किन्तु हृदय पर गैस का इतना वड़ा आवरण है कि दर्द खतरनाक वनना सभव है। अत मैंने कोटेज हॉस्पीटल ले जाने की वात सोची और हम वहा गये। वहा भी यही हाल हुआ और वहा से सिविल हास्पीटल मे शहर मे ले जाने की सलाह दी। इसी कारण से वुलावा आपको भेजा गया कि अव क्या किया जाय ?"

मैंने मरीज को आश्वासन दिया और एक कर्मचारी को उसके दर्द की आवाज की गिनती करने का काम सौंपा। जव वह दर्द की आवाज निकाले तव एक लकीर खीचना और प्रत्येक मिनट मे कितनी आवाज होती है। उसमे दस मिनट के वाद परिणाम वताने को कहा तथा उस कर्मचारी को मरीज की एक-एक आवाज की गिनती कराना सिखाया।

इतने मे श्री वनारसीदास मेरे पास आये। उन्होंने कहा सूरत पहुँचना सम्भव नही है और यहा कोई चारा नही। मैंने कहा "यदि आपकी राय हो तो मैं कुछ शुद्ध आयुर्वेदीय उपचार करू।" वे वोले "साहव आयुर्वेद मे तत्कालीन उपचार नही है और ऐलोपैथी मे हैं, और वह उपचार भी कर लिया हे।" मैंने कहा, आप निर्णय करे कि इसे तुरन्त जीप मे सूरत वडे अस्पताल मे भेज दू ? या यही आयुर्वेद का उपचार शुरू कर दू ? समय विगाडना रोगी के लिये हितावह नही। उन्होने कहा स्थानीय अस्पताल का अभिप्राय स्पष्ट है कि सूरत जाने मे रास्ते

मे हृधय पर दवाव वढ जायेगा। यहां ही तात्कालीन उपचार हो जाय तो अच्छा है।

दोनो की इच्छा जानकर मैने भगवान चरक के वचन का याद किया–"न जिह्मियात् कदाचन।" मैने निर्णय किया कि पहले हृदय को योग्य करना चाहिये और हृदय की गैस को दूर करना चाहिये फिर उदर शूल का त्वरित उपचार करना चाहिये। मैने दोनो का आशुकारी उपचार भी सोच लिया। एक सशोधन हुआ है कि हृदय रोग मे मधु छत्ता (हनी कोव) वहुत लाभ करता है। छत्ता और उसका मोम हृदय रोगी को तुरन्त लाभ करता है। मैंने नौकर को वुलाया और पूछा–भाई, दोपहर को मधु-मक्खियो को परेशान करके आप मधु निकाल रहे थे न? वह वोला, साहव यहा जगल मे शहद प्राप्त करने वाले आये थे, हम तो यह तमाशा देख रहे थे। मैने कहा, मुझे शहद नही मगर उसका छत्ता (हनी कोव) चाहिये, वह कहा है? उसने कहा, वह तो लकडी के साथ काटो मे पेड के नीचे पडा है। मैने कहा तो उसे तुरन्त ले आये। मैंने उसमे से मोम निकाला और चने जैसी दो गोलिया वना ली तथा गुड के साथ रोगी को गरम पानी के साथ दे दी।

मैंने रिकार्ड रखने वाले भाई को कहा, अव से ५ मिनट का और पुरानी ५ मिनट का दर्द मे फर्क वताना। ५ मिनट के वाद वह आया और वोला, रोगी की चिल्लाहट आधी हो गई है। इतने मे रोगी को डकार आई और मेरे दिल मे आनन्द हुआ कि दवा ने ठीक काम किया हे।

मैंने तुरन्त ही पेट की वायु के लिये उपाय सोच रखा था। यह काम डॉ० पटेल के द्वारा करवाया। नजदीक के घर मे से गोवर मगवाया और उसका रस निकाल कर छान लिया। रोगी को एक चाय का कप जितना यह गोवर का रस पिलाया। वस १५ मिनट मे वह खडा हुआ तो उसे डकार आई और वोला 'मुझे पाखाना जाना है।' उसे दो आदमियो ने पकडा और वह पाखाना गया।

थोडी देर वाद वह दूसरी वार पाखाना गया और वाहर निकलते ही डकार आई तथा उसने चिल्लाना भी वन्द कर दिया। सभी को आनन्द हुआ और उस आदमी ने गिनती करना भी वन्द कर दिया तथा सभी सो जाने की तैयारी करने लगे। रोगी भी लेट गया और डॉक्टर भी विदा मागकर चले गये। मैंने थोडी देर वाद देखा तो रोगी चैन से सो रहा था। ●●

— पृष्ठ २७३ का शेषाश —

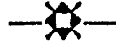
न्तर प्रदेश मे चीरा (दारी) होकर रक्तस्राव होता है' यहा दाहयुक्त पीडा मिलेगी। गुदा मे तैल से अभ्यङ्ग, मलहम लगाना, सेकना आदि वाह्योपचार भी किया जाता है। गुदभ्र श मे सेकना एव मूपक तैल का पिचु धारण कराने से गुदभ्र श एव शूल नष्ट हो जाता है। प्रवाहिका मे गुदा मे प्रवाहणवत् पीडा मिलेगी, आमातिसार मे भी प्रवाहण होता है, उसी अवस्था मे मल प्रवृत्ति के समय गुदा मे कष्टदायक वेदना मिलेगी। इसमे एरण्ड तैल के साथ सोठ का चूर्ण लेने से आराम होजाता है। गुददारी मे जात्यादि घृत एव जात्यादि मलहम लगाने से गुददारी मिट जायेगी। अर्शजनित गुद शूल मे बृहत् कासीसादि तैल लगाने से अर्श की पीडा एव गुद शूल मे आराम मिलता है। इसके साथ स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण लेना जरूरी है। भृगराज के पत्ते का चूर्ण एरण्ड तैल के साथ मिला गुदा मे लगाने से अर्श जनित गुदशूल नष्ट हो जायेगा। भगन्दर जन्य गुदाशूल मे जात्यादि तैल, निर्गुण्डी तैल का पिचु धारण कराने से शूल मे राहत मिलेगी। साथ-साथ त्रिफला गुग्गुल का सेवन करावे। विविध रोगजन्य गुदा शूलो मे सामान्यतया अजमोदादि चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, नारायण चूर्ण, त्रिफला गुग्गुल, आरोग्यवर्धनी, त्रिवग भस्म, काचनार गुग्गुल आदि आभ्यन्तर औषधि योग देने से आराम मिलेगा, साथ-साथ वाह्योपचार मे जात्यादि तैल व मलहम, निर्गुन्डी तैल, करन्जादि मलहम, मूवक तैल, दशाग लेप, लेप गुटिका, कासीसादि तैल आदि का उपयोग किया जाता है। इनके साथ गुदाजन्य शूल के मूल रोग की विशेष चिकित्सा करनी आवश्यक है।

सभी गुदाजन्य शूलो मे—वाहन की सवारी, लङ्घन, तैरना, दौडना, कठिन स्थानो मे वैठना, वीडी, सिगरेट, शराव, चाय, काफी, गाजा इत्यादि व्यसन, मन्दाग्नि मे भोजन, गुरु भोजन मैथुन आदि अपथ्य है।

सुपाच्य भोजन, आराम, गद्दी पर सोना, सूरण-सब्जी दुग्ध, मेथी, तुरई, भाजी, दुग्ध, तक्र इत्यादि पथ्य है।❖

आयुर्वेद में हृद् वेदना की विविधता एवं क्षेत्र

श्री जी के. चतुर्वेदी एच पी ए, एम ए. एलएल बी
पचकर्म वैद्य–सरकारी आयुर्वेद हास्पीटल, वडोदरा



हृदवेदना की विविधता—हृदवेदना को अभिव्यक्ति देने हेतु विभिन्न शास्त्रकारो ने कितने विविध शब्दों का उपयोग किया है यह निम्न सूची से ज्ञात हो जायेगा—

१. हृद् शूल	२१ पाप्यते हृदयम्
२ हृत् पीडा	२२ स्फोट्यते हृदयम्
३ हृद् रुजा	२३. हृदिमघात शूलवान
४ हृद् अर्ति	२४. दूयते हृदयम्
५. हृदि व्यथा	२५ हृदय प्रतत चात्र क्रकचेनेव दार्यते
६ हृद् तोद	
७ हृद् ग्रह	२६ हृद् दाह
८ हृद् निग्रह	२७ विवन्धो हृदयो रसो
९ हृद् पीडन	२८ हृद् चोप
१० हृदयापकर्तन	२९ हृल्लेप
११ हृद् कपण	३० हृदय मन्यतेस्त्यानम्
१२ हृदयोपमर्द	३१. हृदय मन्यते दार्ढ्यम
१३ हृदयोद्वेष्ठन	३१ हृदि स्तिमितता
१४ हृदिवेदना	३३ हृद गुरुता
१५ हृदि तीव्र वेदना	३४ हृद् भारिकम्
१६ हृदय परिग्रहणाति	३५ घन हृदयम्
१७ निर्मथ्यते हृदयम्	३६. भारिकम् साश्यगर्भवत्
१८ दीर्यते हृदयम्	३७ हृत्कण्डु
१९ छिद्यमान हृदयम्	३८. क्लिश्यमान च हृदयम्
२०. भिद्यते हृदयम्	३९ हृदि आघात
४०. हृदि वाधा	

हृद् वेदना से सम्वन्धित उपरोक्त शव्द शास्त्र के विभिन्न सदर्भो से प्राप्त है। इनसे से कुछ लक्षणो का विभेद करना कठिन हो जाता है वैसे जिन वेदना सूचक लक्षणो की विशिष्टता वताई गई है उन्हे समझना सरल है किन्तु प्रारम्भ मे वताये कुछ लक्षणो का निश्चित अर्थ निकालना कठिन कार्य है। फिर भी कुछ शास्त्रीय सदर्भो एव कोषकारो तथा सहिता ग्रन्थो के माननीय टीकाकारो के मत देते हुए उन्हे समझाने का निम्न प्रयास किया जा रहा है।

हृद् शूल—शव्द का प्रयोग 'शकुस्फोटनवत्' वेदना के लिए किया जाता है जिसमे शरीर मे शकु या कील के समान तीव्र वेदना होती है। यह प्रतीति तीव्र या मन्द दोनो प्रकार की होने पर भी उसका स्वभाव शकुस्फोटनवत् होना चाहिए। इस प्रकार की वेदना का उल्लेख शास्त्रो मे रसक्षय के लक्षण अचिकित्स्य लक्षण, अर्श के असाध्य लक्षण, वातिक कास, पैत्तिक प्रमेह के उपद्रव, हृद् शूल वर्णन, आमज तृष्णा, भिन्नकोष्ठ लक्षण, वस्ति अयोग लक्षण, वातज गुल्म, पार्श्व शूल, उदावर्त, वातज अरोचक, वातज शूल, अरिष्ट लक्षण, सर्पदश असाध्य लक्षण, श्वास पूर्वरूप, वमन विरेचन मिथ्या योग, विसूचिका लक्षण, दुष्प्रजाता स्त्री रोग अम्लपित्त, ज्वर अरिष्ट लक्षण, क्षुद्र ज्वर लक्षण, उदान प्रकोप, कृमिरोग, कफ वातिक शूल, मूढगर्भ असाध्य लक्षण एव रक्त कास के लक्षण रूप मे वताया है।

हृद् पीडा–शव्द के साथ ही प्रपीडा पीडन सपीडा निपीडन जैसे शव्दो का उपयोग भी हुआ है। मधुकोषकार ने रक्तपित्त के उपद्रवो मे 'हृद्तुल्याच पीडा' की टीका करते हुए लिखा है "हृद्तुल्येनि हृदि अतुल्या असहसी पीडा" यह अतुल्य शव्द का प्रयोग कर यह स्पष्ट किया गया है कि यह ऐसी वेदना के लिए प्रयुक्त है जो तीव्र स्वभाव की होते हुये भी किसी निश्चित स्वभाव की सूचक नही है, पीडन शव्द इससे थोडा भिन्न हो जाता है। शब्द कल्प द्रुमकार ने अवमर्दन एव वाचस्पत्यम् मे मर्दन शव्द इस हेतु प्रयुक्त किया है। शास्त्र मे हृद् पीडा शव्द का सदर्भ निम्न प्रसङ्गो मे उपलव्ध है–वातिक ग्रहणी, वातिक छर्दि वातिक विष, पुरीष क्षय लक्षण, रस क्षय, कषाय रसाति सेवन, सर्प विषवेग लक्षण, हृद छर्दि लक्षण, शर्करा लक्षण, श्वास पूर्व रूप विषाक्त अन्न, सर्पपिका दष्ट्र लक्षण, रक्तपित्त

उपद्रव, मूर्च्छा पूर्वरूप, वातिक मूर्च्छा, वातिक विष एव वुभुक्षित व्यक्ति के लक्षण ।

हृद् रुजा—शव्द भी शास्त्र मे वहुप्रचलित है । वैसे वेदना के लिये सामान्य रूप से प्रयुक्त होने पर भी शास्त्र कारो ने इसका विशिष्ट अर्थ वताया है। आचार्य अरुणदत्त ने रुजा को 'सतत शूल' कहा है । इसका वेदना के दीर्घ कालानुवन्धत्व से सम्वन्ध है। इसमे वेदना का स्वभाव शूल के समान 'शकुस्फोटनवत्' होता है किन्तु यह वेदना विच्छिन्न न होकर सतत दीर्घकाल तक रहती है। हृद् रुजा के सदर्भ निम्न है—वातिक गुल्म, उदावर्त लक्षण, आमाशयगत वात, विसूचिका, अर्श अरिष्ट लक्षण, वद्धोदर लक्षण, वातिक ज्वर, गुदस्थितवात एव वातिक मदात्यय लक्षण ।

हृदि व्यथा—के लिए आचार्य अरुणदत्त कहते है 'हृद् व्यथा हृदयशूल गौरवम् च' इससे हृदय मे शूल एव गुरुता जव साथ-साथ ज्ञात हो तव व्यथा का उपयोग होना चाहिए । शास्त्र मे इसे तृषा निग्रहजन्य रोग, अपतर्पण जन्य रोग, सन्निपात ज्वर, मदात्यय, शुक्र धारण जन्य विकार, रसशेषाजीर्ण लक्षण, क्षतज कास, जागमविष लक्षण एव गर्भ के सद्य अनुगत होने के लक्षणो मे वताया है ।

हृद् तोद—भी अन्य वेदनाओ के समान विशिष्ट प्रकार की वेदना है आचार्य हेमाद्रि ने इसे 'तोत्रेणेवव्यथा' तथा अरुणदत्त ने 'विच्छिन्न शूलम्' कहा है। जिस प्रकार रुजा सतत शूल है उसी प्रकार तोद विच्छिन्न शूल है जो तीव्र स्वभाव का होते हुए भी वार-वार होता रहता है एव जिसकी वेदना मे सातत्य नहीं रहता । आचार्य चरक ने इसका उल्लेख क्रिमिज हृद्रोग मे किया है। आचार्य सुश्रुत ने अतिसार पूर्वरूप, पानविभ्रम, वातिक अपस्मार एव अष्टाग हृदयकार ने वातिक ज्वर, तथा अतिसार के पूर्वरूप मे वताया है ।

हृद् अर्ति—'तीव्रार्तितोद् क्रिमिज सकण्डूम्' इसके अर्ति एव तोद दोनो शव्दो का साथ-साथ प्रयोग हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि दोनो भिन्न-२ वेदना हेतु प्रयुक्त हुए हैं। इस सदर्भ मे यह ज्ञात किया गया हे कि जहा स्थानिक अवयव विशेष की वेदना का उल्लेख करना हो वहा इसका उल्लेख है यथा हृदय, कोष्ठ एव कटि के लिए

हृद् वेदना—शव्द का उपयोग भी कुछ स्थानो पर हुआ है किन्तु किसी विशिष्ट प्रकार की वेदना के लिए इसका उल्लेख नहीं हुआ है । स्थावर विष के वेग, काम ज्वर, आभ्यन्तर गुल्म, अतोय उदर, उदावर्त एव आमज्वर मे इसका उल्लेख किया है ।

कुछ लक्षण अपने नाम के अनुरूप ही वेदना की प्रतीति कराते हैं अत उनका विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता नही है यथा छेदन, भेदन, दारण, पाटन, स्फोटन, निर्मथन उद्वेष्ठन, कषण, अवमर्दन, अपकर्षण, स्तैमित्य ओष-चोष गुरुता, कण्डु, घनता वाधा आदि लक्षण अपना स्वभाव स्वय वता देते है। कुछ लक्षणो का स्वभाव अत्यन्त स्पष्ट होता है यथा "हृदय प्रतत पात्र क्रकचेनेव दार्यते' इससे करपत्र नामक शस्त्र से लगातार काटने या चीरने जैसी वेदना होने का उल्लेख है । आचार्य वाग्भट ने इस लक्षण का उल्लेख क्रिमिजहृदरोग मे किया है । वेदना को चिकित्सा मे घोर दुखकारी तथा आशु विघातकारी वताया है । वर्तमान में इस प्रकार की वेदना Acute myocardial infarction मे पाई जाती है ।

हृद् ग्रह—इस वेदना को मधुकोषकार ने "हृदये गृहीतमिवेति वेदना हृद्ग्रह' ' कहा है, ग्रहीत होने या पकडने जैसी वेदना का इससे सकेत है वातिक हृद्रोग मे होने वाली यह वेदना आधुनिक constricting pain से समानता रखती है । आजकल अति वहुल रूप से प्राप्य Angina pactoris के रुग्ण मे इस प्रकार की वेदना प्राय मिलती है ।

हृद्रोग से सम्वन्धित ये लक्षण हमेशा हृदय मे ही उत्पन्न हो, यह आवश्यक नही है । कभी-कभी ये लक्षण अन्य निकटस्थ अवयवो मे उत्पन्न होते हुए भी हृदय के नाम से आरोपित कर दिए जाते है। कभी-२ एक ही लक्षण हृदय मे एव तत्समीप प्रदेश दोनो मे ज्ञात किए जा सकते हैं। इसी प्रकार कुछ लक्षण हृदय की रचनात्मक विकृति से सम्वन्धित होते है । एव कुछ मात्र क्रियात्मक विकृति के ही सूचक होते है जो लक्षण हृदय से सम्वन्धित नही है किंतु आधुनिक चिकित्सा शास्त्र एव आयुर्वेद दोनो मे समान रूप से हृदय के आरोपित लक्षण के रूप मे प्रसिद्ध है ऐसे 'हृद दाह' का उल्लेख करना आवश्यक है। यह लक्षण heart burn के रूप मे अम्लपित्त का प्रधान लक्षण एव हृदय मे उत्पन्न न होकर आमाशय एवं

योनिभ्रंश चिकित्सा—

प्रथम चरण का सूत्र—स्नेहन, स्वेदन, स्थापन ।

१ घृत द्वारा स्नेहन करे ।

२ पुन दूध की वाष्प द्वारा स्वेदन करें ।

३ तत्पश्चात् स्वच्छ हाथ के द्वारा स्थापन करे ।

द्वितीय चरण—पुन स्थापन के बाद वेसवार पिण्ड का भी अन्त प्रवेश करें, क्योंकि यह गर्भाशय स्थापन मे सहायक है ।

तृतीय चरण --इसके पश्चात् "टी" के आकार की पट्टी बाध दें ।

वेसवार पिण्ड के घटक—शुण्ठी, मरिच, धान्यक, अजाजी, दाडिम, पिप्पलीमूल ।

योनि प्रक्षालनार्थ घटक—लोध्र, कटु तुम्बी के क्वाथ द्वारा प्रक्षालन करे ।

उत्तर वस्ति—मूषक वसा सिद्ध तैल की उत्तर वस्ति देनी चाहिए ।

प्रलेप—(१) यष्टिमधु, मदनफल, कर्पूर एव मधु का लेप करायें । या

(२) पलाश, उदुम्बर फल, तिल तैल एव मधु का लेप करावें ।

योनिभ्रंश को आधुनिक चिकित्सा—

अस्थायी—गर्भिणी स्त्री के प्रारम्भिक सप्ताहो मे वलय (Ring passary) द्वारा रोक देते है । अतिवृद्धा एव दुर्बल स्त्रियो मे इसी उपाय से रोक देते हैं ।

स्थायी—शल्यकर्म ही इनकी स्थायी चिकित्सा है ।



❖ मक्कल शूल एव योनिभ्रंश ❖ [पृष्ठ ३१० का शेषांश]

यहा पर त्रिदोष एव शूल को ध्यान मे रखकर मैंने औषधि कल्पना की थी, जिससे सफलता मिली । मक्कल शूल की चिकित्सा मे शूलप्रशमन, वातशामक उष्णादि औषधि-आहार से शूल शमन होता है । अपरापातन की जो चिकित्सा बताई गई है, मेरे मत से उस चिकित्सा को सोच-समझकर करने से भी जरा के टुकडे आदि बाहर निकल जाने पर शूल की शान्ति हो सकती है । इसके अलावा शूल शमनार्थ निम्न चिकित्सा भी की जा सकती है—

१ गर्म पानी को बोतल मे भरकर अथवा ईंट के के टुकडे को गर्म करके कपडे मे लपेटकर सुहाता-सुहाता सेंक करना चाहिए । रक्तस्राव अधिक हो तो सेक नही करना चाहिए ।

२ वातघ्न तैल यथा-नारायण तैल, महानारायण तैल, पचगुण तैल आदि मे से किसी भी तैल का सेंक करने से पूर्व अभ्यङ्ग करना चाहिए ।

३ गर्भाशय के स्थान पर उदर पर से नीचे की ओर धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए ।

४ योगराज गुग्गुल २ गोली दशमूल क्वाथ से दे ।

५ पिप्पल्यादि क्वाथ या पिप्पल्यासव मे यवक्षार अथवा अपामार्ग क्षार मिलाकर पिलाना चाहिए ।

६ सोठ, मरिच, पिप्पली का चूर्ण गुड के साथ दें ।

७ घृत एव यवक्षार गर्म जल के साथ दें ।

८ कोई भी आसव-अरिष्ट उपलब्ध हो उसमे मरिच या पिप्पली या सोठ जो भी हो, डालकर पिलावे ।

९ सोठ, मरिच, पिप्पली, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर और धान्यक के चूर्ण मे पुराना गुड मिलाकर देना चाहिए ।

१० कोई भी वातघ्न व शूलघ्न या उष्ण औषधि से विचारपूर्वक चिकित्सा कर सकते है ।

उपरोक्त औषधिया प्राय घर मे ही प्राप्त होने वाली औषधिया हैं । अत मक्कल शूल की तात्कालिक चिकित्सा करने मे जरा भी कठिनाई नही हो सकती ।

यह रोग वातप्रधान होने से वातकारक रूक्ष, शीतल अन्नपान का सेवन न करके वात एव शूलशामक उष्ण घृत, चाय, क्वाथ, शुण्ठीजल-दूध पीना चाहिए । बार-बार उष्ण जल ही पीना चाहिए । ५-६ दिन तक लवण-युक्त अन्न, गुड मिश्रित पेया, लस्सी, दूध, चाय आदि दें ।



* [illegible] *

वैद्या (श्रीमती) दर्शना [illegible] (आयु०)

कन्सलटिंग [illegible]

दिवानपरा रोड, राजकोट (गुजरात)

—ॐ—

श्रीमती वैद्या दर्शना जी राजकोट (गुजरात) [illegible] आयुर्वेदीय स्त्री रोग निष्णात है। [illegible] एम. डी (आयु०) उदर रोग विशेषज्ञ एव नवोन्मेषकर्ता है। [illegible] जी अपने पति के साथ मिलकर स्त्री रोगो से सम्बोधन [illegible] वर्ग मे अधिकाश मासिकस्रावजन्य शूल की [illegible] देती है। स्पष्ट निदान एव सत्य मार्गदर्शन [illegible] दर्शना जी ने यहा विशेष आग्रह से मासिकस्रावजन्य शूल पर अनुसंधानात्मक [illegible] उपयोगी होगा। मै दर्शना जी से विनती करता हू कि आप बार-बार स्त्री रोगो पर सशोधनात्मक तथा अनुभवात्मक लेख दें। वैद्य समाज को उपयोगी रहेगा, मेरी शुभकामना है।

—वैद्य [illegible] भारद्वाज

* *

शुद्ध पीडितार्तवजन्य शूल

सामान्यत विकृतिजनक नही होने से उसकी कोई खास चिकित्सा नही करनी चाहिए। फिर भी शरीर बल की अल्पता के कारण होने से शरीर का बल बढाने वाली औषधियो का प्रयोग लाभकर है।

मासिकस्राव के ३-४ दिनो श्रम नही करना चाहिए। आराम मे सोकर तन-मन को स्वस्थ रखना चाहिए। सुपाच्य प्रवाही आहार सेवन करना चाहिए। वेदना बहुत हो रही हो तो वेदनाशामक औषधि प्रयोग की जा सकती है। थोडी-बहुत वेदना सहन कर लेनी चाहिए। इसके अलावा उष्ण जल मे पैर रखकर बैठना, उष्ण जल की थैली का पेडू पर सेक करना आदि प्रयोगो से वेदना का शमन होता है।

औषधि उपचार—

१ कुमारी आसव २० मि लि दिन मे ३ बार समभाग जल के साथ।

६ चन्द्रांशु रस ३०० मि ग्रा. ३ बार मधु के साथ।

३ पुष्यानुग चूर्ण २ ग्राम, कासीस भस्म ३०० मि ग्रा, गोदन्ती भस्म ५०० मि ग्रा की मात्रानुसार पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ बार जल के साथ।

[illegible] शूल

योनिस्राव मे अम्लता बढ जाने पर पित्ताकृति वाली स्त्रियो मे गर्भाशय [illegible] उत्पन्न होता है। गर्भाशय मुख पर शोथ एव लालिमा होती है, अत गर्भाशय व्रण के कारण मासिकस्राव की प्रवृत्ति के समय वेदना होती है। श्वेत प्रदर इसी अवस्था मे उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—मासिकस्राव आ जाने के बाद पाचवे दिन से निम्न औषधि प्रयोग करने से लाभ होता है—

१ पञ्चवल्कल क्वाथ से योनि प्रक्षालन करना।

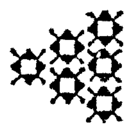
२ चन्दनबला लाक्षादि तैल का पिचु धारण करना।

३ अग्निकर्म करना।

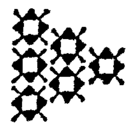
औषधि उपचार—

१ पुष्यानुग चूर्ण २ ग्राम ३ बार जल के साथ।

—शेषांश पृष्ठ ३१६ पर



गर्भिणी शूल



वैद्य रघुवीर शरण शर्मा आयु० वृह०
डी-१५० भजनपुरा, दिल्ली-५३



कुशकाशोरवूकाणा मूलैर्गोक्षुरकस्य च ।
शृत दुग्ध सितायुक्तं गर्भिण्या शूलहन् परम् ॥
—योगरत्नाकर

कुशा की जड, कास की जड, एरण की जड की छाल और छोटे गोखरू इन सबका काढा बनाकर दूध और मिश्री काढे मे डालकर पीने मे गर्भिणी स्त्री का शूल (दर्द) नष्ट हो जाता है।

उपचार या सावधानी— गर्भिणी की चारपाई का सिरहाना नीचा और पायता ऊचा कर देना चाहिए। एक कपडा की चार पर्त (चौलर) करके उसे पानी मे तर करके गर्भिणी की नाभि के नीचे रखनी चाहिये और थोडी-थोडी देर वाद बदलते रहना चाहिये। यह भी औषधि का ही काम करेगा, क्योंकि पानी भी अनेक रोगो की औषधि है।

जिन स्त्रियो को वार-वार गर्भपात हो जाता है उनके लिये विधि यह है—

जैसे ही गर्भ स्थिति का ज्ञान हो तभी इस प्रयोग का सेवन आरम्भ कर देना चाहिये और तव तक सेवन करना चाहिये जब तक कि गर्भपात का समय न निकल जाय। मान लो गर्भपात चतुर्थ मास मे होता है तो औषधि का सेवन चतुर्थ मास के वाद तक करायें।

विधि— कुश-कास आदि दरदरी की हुई औषधियो मे से १ तोला की मात्रा मे वारीक कपडे मे बाधकर रात को २० तोला पानी और २० तोला दूध मे डाल दो और दूध को औटा लो। दूध के औटने पर पोटली की औषधियो को निकाल कर फैंक दो और दूध मे चीनी डालकर पी लो। इस प्रकार औषधि का सेवन गर्भपात का समय निकल जाने तक करो।

अपथ्य —तीक्ष्ण पदार्थ, लाल मिर्च, गुड, अरवी, उडद की दाल आदि गरिष्ठ पदार्थ और यथासभव पति का सहवास प्रसवकाल तक त्याग देना चाहिये।

दूसरी औषधि—गर्भपात के समय कालीम्यूर ६X, कैलमेरिया फास ६X २-२ घण्टे पर पर्याय रूप के पानी से दें, गर्भ निश्चित ही रुक जायगा। उक्त औषधिया बायोकैमिक है।

होमियोपैथी की पल्सेटिला ३०X २-२ घण्टे पर ताजे पानी से देने से गर्भ रुक जायगा।

यदि प्रसव का समय हो और प्रसव न होता हो तो पल्सेटिला का प्रयोग करें। १-१ घण्टे पर ३ या ४ मात्रा देने से प्रसव हो जायगा। यदि प्रसव के बाद अपरा (खलरिया) रह गई हो तो भी पल्सेटिला ३० को ही दें, इसे भी निकाल देगी। इसकी उपमा पिट्यूटरीन के इन्जेक्शन से दी जा सकती है किन्तु गर्भ रोकने मे नही।

गर्भपात का शूल—

गर्भे निपतिते तीक्ष्ण मद्य यै कामत पिवेत्।
गर्भ कोष्ठविशुध्यर्थमर्ति विस्मरणाय च ॥ —वाग्भट

आचार्य वाग्भट का कहना है कि गर्भपात होने पर तीक्ष्ण मद्य (तेज शराव) भर पेट पीनी चाहिए। इससे गर्भाशय की शुद्धि (सफाई) हो जायगी और गर्भपात की वेदना भी जाती रहेगी।

प्रसव शूल—

केशर असली ३ रत्ती, मिश्री का चूर्ण या चीनी १ तोला। पहले केशर को वारीक पीस लें फिर चीनी को केशर मे मिलाकर इसकी ३ पुडिया बना लें। प्रसव न हो रहा हो तो इसकी १ पुडिया गरम दूध या गरम पानी से दे। इससे दर्द बढेगा और प्रसव हो जायगा। स्मरण रहे प्रसव होने पर औषधि को फिर नही दे।

मक्कल शूल

सूताया हृच्छिरोवस्ति शूल मक्कल्ल सज्ञितम्।
— भैषज्य रत्नावली

प्रसूता के हृदय, शिर और वस्ति मे जो शूल (दर्द) होता है, उसका विचित्र नाम मक्कल शूल है।

चिकित्सा—घी में भुनी हीग १-२ रत्ती गरम घी २॥ तोला मे डालकर पीने से मक्कल शूल मे लाभ होता है।

तिल क्षार या यवक्षार ४ माशे, हल्दी ३ माशे, गुड २॥ तोला, घी ४ तोला, पानी ५ तोला, घी मे भुनी हीग १ रत्ती। विधि–पहले गुड को पानी मे डालकर पका लो। गुड जब पिघल जाय तो उसमे शेप सभी द्रव्यो को डाल दो और गुनगुना ही प्रसूता को खिला दो। इससे तत्काल शूल नष्ट हो जायगा और रुका हुआ रक्त आने लगेगा।

कष्टार्तव या आर्तव शूल—

चन्द्राशु रस (भैषज्य रत्नावली)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म और वग भस्म प्रत्येक समभाग लो।

विधि—सर्वप्रथम पारद और गन्धक की कज्जली ऐसी कर लो जिसमे चमक न रहे। फिर कज्जली मे तीनो भस्मो को मिला दो और घृतकुमारी के रस मे घोट कर २-२ रत्ती की गोली बना छाया मे सुखाकर शीशी मे भरकर रख लो।

मात्रा और अनुपान—मासिकधर्म के समय १ गोली जीरे के काढे के साथ प्रात साय सेवन करनी चाहिए। इसके सेवन से आर्तव शूल (दर्द) नष्ट हो जायगा। इसके सम्वन्ध मे ग्रन्थकार ने लिखा है कि—

जीरक्वाथेन पीतोऽय रसश्चन्द्राशु सज्ञक ।
'जरायु दोपानखिलान् योनिशूले सुदारुणम् ॥
योनिकण्डुस्मरोन्माद योनिविक्षेपण तथा ।
निराकरोति सन्ताप चन्द्राशु र्देहिन यथा ॥

यह रस जरायु के समस्त दोप, योनि शूल, योनि कण्डु (योनि की खुजली), स्मर (कामदेव) के उन्माद को नष्ट करता है।

वक्तव्य—मैंने यह योग कष्टार्तव पर प्रयोग किया है और लाभप्रद पाया हे।

रज प्रवर्तिनी वटी (आयुर्वेद विज्ञान)—भुना सुहागा, घी मे भुनी हीग, हराकसीस और एलुवा। इन सबको समभाग ले घृतकुमारी के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनाकर रख लो। मासिकधर्म के समय १-१ गोली गरम पानी से ३-३ घण्टे पर ४ वार सेवन करे। इससे कष्टार्तव दूर हो जायगा और मासिकधर्म भी खुलकर हो जायेगा।

वक्तव्य—यदि इन गोलियो से पूर्ण लाभ न हो तो फिर प्रातकाल १ गोली और सायकाल १ गोली उष्णोदक से तथा भोजन के बाद दोपहर और शाम १ तोला कुमारी आसव मे १ तोला पानी मिलाकर सेवन कर लिया करे तथा गुड और तैल का अधिक सेवन करे। ❖

★ मासिकस्रावजन्य शूल ★

[पृष्ठ ३१४ का शेषाश]

२ चन्द्रप्रभा वटी २ गोली ३ बार जल के साथ।

३. चन्दनासव २० मि.लि. ३ बार समभाग जल से।

गर्भाशय मुख में कोई अवरोध हो तो उसके कारण होने वाला शूल

गर्भाशय मुख का अवरोध तीन कारणो से होता है–

(१) प्रकृतिगत—जन्म से ही गर्भाशय मुख का सकुचित होना

(२) गर्भाशयगत राजयक्ष्मा हुआ हो तो उसके कारण गर्भाशय मुख मे अवरोध उत्पन्न होता है।

(३) गर्भाशय मुख पर कोई ग्रन्थि हुई हो तो उसके कारण मुख का मार्ग सकुचित हो जाता है तब वेदना के साथ मासिकस्राव होता है।

गर्भाशय मुख मे अवरोध के कारण वेदनाजन्य मासिकस्राव आता है। इसके अलावा तीव्र कटि शूल, शविथ शूल होता है। अगर मासिकस्राव अनियमित रूप से आये तो ज्वर एव गर्भाशय शोथ भी होता है।

चिकित्सा—गर्भाशय मुख की सकुचियता के कारण यह शूल होता है। इसलिए गर्भाशय मुख को विस्फारित करना ही एक श्रेष्ठ उपाय है।

गर्भाशय मुख को स्नेहन करके उसे छोटे डायलेटर के द्वारा विस्फारित करते-करते उसमे अधिक मोते वाला डायलेटर डालकर उसको ज्यादा विस्फारित करते रहना चाहिए जिससे गर्भाशय विस्फारित होगा और तब मासिक स्राव प्रवृत्ति वेदनारहित होगी।

शस्त्रकर्म द्वारा भी गर्भाशय मुख को विस्फारित कयिा जा सकता है।



मासिक स्राव शूल

डा० (कुमारी) कमला पाडेय एम० ए०, बी ए एम एस
चिकित्साधिकारी–राज आयु कालेज, गुरुकुल कागडी, हरिद्वार

★★

आधुनिक मतानुसार कष्टार्तव के निम्न प्रकार हैं—

(१) स्नायुविक कष्टार्तव—स्त्री अपने को कमजोर, थकी अनुभव करती है। सर दर्द करता है। जैसे-जैसे उसके ऋतुस्राव का समय निकट आता है लक्षणो मे वृद्धि होती है। आक्रोश, आवेग, चिडचिडापन मिलता है।

(२) रक्ताधिक्यजन्य कष्टार्तव—ऋतुकाल मे गर्भाशय प्रदेश मे रक्त का स्वाभाविक जमाव हो जाता है। जब कभी यह जमाव किसी कारण से स्वाभाविकना की सीमा पार करने लगता है तो उसे रक्ताधिक्यजन्य कष्टार्तव कहते हैं। उसमे स्त्री ऋतुकाल शुरू होने के कुछ दिन पहले से ही भारीपन, पीठ एव श्रोणि प्रदेश मे उष्णता का अनुभव करने लगती है। पेडू पर विशेष कर दायी ओर के डिम्ब प्रदेश पर स्पर्श बर्दास्त नही होता।

(३) अवरोधजन्य कष्टार्तव–कभी-२ गर्भाशय के आर्तव के निकलने के मार्ग मे आंशिक या पूर्णरूप से सकुचित होकर अवरोध हो जाता है। इस प्रकार का अवरोध यद्यपि सामान्य रूप से गर्भाशय ग्रीवा के मुख पर या कभी-२ योनिमार्ग मे भी उत्पन्न हो जाता है इससे मासिक स्राव के प्रवाह मे बाधा होती है।

(४) झिल्ली मिले स्राव वाला कष्टार्तव—इसमे पीडा युक्त ऋतुस्राव के साथ छोटे बडे टुकडे, नलिकाओ के अ श तथा गर्भाशय गुहा की अन्त कला मे पालित झिल्ली की त्रिकोणाकार थैलिया सी निकलती है। ऋतुस्राव प्राय हल्के दर्द के साथ शुरू होता है। धीरे-धीरे यह दर्द बढता जाता है और इसकी पीडा झिल्ली निकल जाने के बाद ही शात होती है। स्राव अधिक नही आता है। कभी-२ तो बहुत ही कम आता है। कभी-२ झिल्ली गर्भाशय ग्रीवा के मुख मे अटक कर रक्त को वही अवरुद्ध कर देती है।

औषधि चिकित्सा —

१ अजवायन चूर्ण २ ग्राम प्रात साय गर्म दूध या जल के साथ कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करायें।

२ कलौंजी का चूर्ण ५-१० रत्ती तक शहद के साथ दिन मे २-३ बार चाटे।

३ खुरासानी अजवायन के १ ग्राम चूर्ण मे थोडा सा खाने का सोरा मिलाकर गोखरू के क्वाथ के साथ सेवन कराने से मासिक धर्म के समय भयङ्कर वेदना या कष्ट और मासिक स्राव की रुकावट दूर होती है।

४ कष्टार्तव या मासिक धर्म मे पीडा की विशेषता हो तो तीन पत्रो को पानी की भाप पर स्वेदित कर गर्म-गर्म नाभि के नीचे बाधने से मासिक धर्म के समय होने वाला कष्ट दूर होता है।

५ कपास मूल २० ग्राम का यथाविधि १६ गुना जल मिलाकर क्वाथ करे। बादाम रोगन ६० ग्राम मिलाकर प्रात पान करने से कष्टार्तव मे लाभ होता है।

६. राई २० ग्राम, पुराना गुड २० ग्राम, केशर १ ग्राम ले। पहले राई को पीसकर गुड तथा केशर डाल मूसल से इतना कूटें कि तैल निकलने लगे तब १-१ ग्राम की गोली बना लें। मासिक स्राव होने के १-२ दिन पहले से १-१ गोली प्रात साय कुमारी आसव के साथ सेवन कराने से कष्टार्तव मे लाभ होता है।

७ घृत कुमारी का रस २५० ग्राम, कलमीसोरा ६० ग्राम, हरिद्रा १० ग्राम सबको कढाही मे डाल कर खूब गर्म करे। इस औटाये हुए १० ग्रा रस के साथ गुजा की बुकेनी १-१॥ रत्ती मिला सेवन करावें। ❖

* वृश्चिक विष निदान तथा चिकित्सा *

वैद्य विनोद कुमार गोठेचा (प्राध्यापक–अगद तन्त्र विभाग)
श्री द्रव्येश्वर झा (विभागाध्यक्ष–अगद तन्त्र विभाग)
राष्ट्रीय आयुर्वेद सस्थान, जयपुर (राज)

उत्पत्ति एवम् भेद—

इनकी उत्पत्ति आयुर्वेद मे मृत प्राणियो तथा वनस्पतियो के सडने से बताई है। आचार्य सुश्रुत ने इनके तीन भेद मन्द विष, मध्यविष, महाविष बताये है तथा इनके कुल ३० भेद बताये है—मन्दविष के १२, मध्यविष के ३ तथा महाविष के १५।

मन्द विष वृश्चिक–इनकी उत्पत्ति गाय भैस के गोवर एव मूत्र के सडने से होती है। इनके १२ भेद होते है—

कृष्ण, श्याव, कर्बुर, पाडु वर्ण, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, पीत, धूम्रवर्ण, रोमश, शाद्वलाभ और रक्त।

ये पीले सफेद, काले, चितकवरे आदि अनेक रगो से इनके उदर का रग सफेद (सुश्रुतानुसार) लाल फीका (वाग्भट अनुसार) होता हे, पूछ मे अनेक पर्व होते है।

मध्य विष वृश्चिक—इनकी उत्पत्ति लकडी और ईट के सडने से होती हे (सुश्रुतानुसार) तथा विप से विदग्ध या विपैले प्राणी के काटे प्राणी के सडने से होती है (वाग्भट) इनके ३ भेद होते है–रक्त, पीत और कपिल

ये भूरे लालिमा लिये रङ्ग के होते हैं, इनके उदर का रग काला होता है तथा पूछ मे ३ पर्व होते है।

महाविप वृश्चिक—इनकी उत्पत्ति मृतसर्प और सर्प दष्ट प्राणी के सडने से होती है। इनके १५ भेद होते हैं–

श्वेत, चित्र, श्यामल, लोहिताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोपीत रक्त, नील पीत, रक्तनील, शुक्ल, रक्तवभ्रु, एकपर्वा, अपर्वा, द्विपर्वा। ये अग्नि के समान रग के होते हैं, इनके उदर का रग लाल, काला या सफेद होता है तथा पूछ मे एक या दो पर्व या विना पर्व के होते है।

मध्य या मन्द विष वृश्चिक ही अधिकतर मिलते हैं। इनके काटने से प्राय मृत्यु नही होती किन्तु महा विष वृश्चिक जिसे आचार्य सुश्रुत ने प्राण चोरा सज्ञा दी है, ये प्राणहर होते है।

वृश्चिक विष लक्षण—

विच्छू के डक मारने पर विप के शरीर मे प्रविष्ट होते ही दश स्थान पर अग्नि के समान दाह होता हे तथा भेदनवत् तीव्र वेदना होती हैं, दाह तथा वेदना शीघ्र ही दश स्थान से ऊपर की ओर चढती है तदनन्तर दंश स्थान पर आकर स्थिर हो जाती है, दश स्थान श्याव वर्ण का हो जाता हे, वहा चुभने तथा फटने सदृश वेदना होती है। शाखा मे दश होने पर वेदना ऊपर की ओर जाती है। मन्द विप विच्छू दश से वेदना, कम्पन गात्र-स्तम्भ तथा काले रक्त की प्रवृत्ति होती है तथा दश स्थान से वेदना ऊपर की ओर जाती है। दाह, स्वेद,ज्वर तथा दश स्थान पर शोथ होता है।

मध्यविप विच्छुओ के दश से जिह्वा मे शोथ, भोजन का अवरोध तथा तीव्र मूर्च्छा होती है।

महाविच्छुओ के दश से सर्पविष के समान लक्षण होते है। दश स्थान पर स्फोट उत्पत्ति, दाह, ज्वर, नाक मुख और कान आदि से काला रक्त वहता है, जिह्वा मे शोथ, शरीर मे जकडाहट, इन्द्रियो के विषयो के ज्ञान का न होना, स्वेद प्रवृत्ति, मुख का सूखना, वेचैनी मूर्च्छा मास का सडना होता है। शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

आधुनिक मतानुसार– विच्छू के दश मे दश स्थान पर रक्तिमा के साथ तीव्र दाहक वेदना होती है जिसका प्रसार ऊपर की ओर होता हे, कभी-२ शिरोभ्रम,पेशियो, मे निर्वलता, वमन, अतिसार, आक्षेप, मानसिक विक्षोभ, अधिक स्वेद प्रवृत्ति, कभी-कभी मूर्च्छा, दश स्थान पर कोथ हो सकता है, मृत्यु कदाचित होती है। ये लक्षण २४-२८ घटे तक रहते है किन्तु तत्रिका लक्षण एक सप्ताह तक मिल सकते है। वयस्को मे मृत्यु नही पाई जाती किन्तु वच्चो की मृत्यु फुपफुस शोथ से हो सकती है।

चिकित्सा—

महाविष तथा मध्यविष वाले विच्छुओ के दश मे सर्प दष्ट की भाति चिकित्सा करने का उल्लेख आचार्य सुश्रुत ने किया है। इनमे अरिष्टावन्धन, प्रच्छन, प्रति-

मारण शक्ति उत्पन्न करने चाहिए।

प्रतिसारण प्रयोग - दंश स्थान के चारों ओर स्वेदन करके वहां पाछकर प्रतिसारण करना चाहिए। इस हेतु हल्दी, सेंधव, त्रिकटु, शिरीष के फल और फूलों के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

स्वेद प्रयोग—पिण्याकादि निष्टुर द्रव्यों से बनाई उत्कारिका से स्वेद करना चाहिए।

परिषेक-- बिच्छू वातोष्ण कीट है अतः उष्ण उपचार हितकारी होता है। कोरन्ट के ताजे तेल या विदारी गण से सिद्ध तेल से सुहाना गर्म परिषेक, लवण मिश्रित घृत से बार-बार या कुछ गर्म दूध में लवण पानी मिश्रित कर सिंचन करना चाहिए।

लेप प्रयोग—कबूतर की बीट, बिजौरा नींबू, शिरीष के फूल का रस, पारिनो, मदार दूध, सोंठ तथा करंज की गुद्दी—इनके समभाग चूर्ण को मधु के साथ मिश्रित कर लेप करे।

कबूतर की बीट, हरड़, सोंठ और तगर को बिजौरे नीबू के रस मे मिलाकर लेप करे।

शिरीष के बीज, पिप्पली को पीस बत्ती बना रखलें, इसे जल या बकरी के दूध मे पीसकर लेप करे।

जीरा सेंधव को पीस घृत एवं मधु मे मिला लेप करे।

कच्चे पपीते का दूध या प्याज के रस का लेप करे।

कवोष्ण खली (तिल कल्क) या गोबर का लेप करे।

निर्मली के बीज को पानी मे घिसकर चिपकाने से विष का आचूषण होकर वेदना का शमन होता है।

बिच्छू के विष मे सब चिकित्सा निष्फल हो जाने पर विष के बहुत प्रबल होने पर 'विषं विषघ्नमुक्तम्' वाक्य आधार पर दंश स्थान पर विष वत्सनाभ या जयपाल की गिरी को पानी मे घिसकर लेप करे या संखिया विष नीबू रस मे पीसकर लेप करने से विष नष्ट हो जाता है।

धूपन प्रयोग - मोर एवं मुर्गे की पंख, सेन्धव नमक तेल और घी इनका दंश स्थान पर धूम्र प्रयोग करावें।

कुसुम्भ के फूल तथा हल्दी अथवा हल्दी और कोदो घास को घी मे मिलाकर गुदा प्रदेश पर धूप देवें।

नस्य प्रयोग - हुरहुर के पत्तो को मलकर सूंघने से क्षण मात्र मे विष उतर जाता है।

अञ्जन प्रयोग - लवण के पानी को आंख मे डालना या सैन्धव वर्ती का अञ्जन करना चाहिए।

कर्ण बिन्दु प्रयोग---कासमर्द के पत्र, कुशा और कास की जड़ को मुख मे चबाकर रोगी के कान मे फूके।

बिच्छू के बाये अङ्ग मे काटने पर दाहिने तथा दाहिने अङ्ग मे काटने पर बाये कान मे तत्काल लवण मिश्रित जल (मनुष्य मूत्र) के कुछ बिन्दु भरने से वेदना का शमन होता है।

पानक प्रयोग -मधु युक्त घृत पान या अधिक शर्करा युक्त दूध पान कराना चाहिए।

गुड़ मिश्रित दूध को ठण्डा कर अथवा चातुर्जात मिश्रित गुड के शर्बत को बहुत ठण्डा कर पिलावे।

आधुनिक मतानुसार—

सर्व प्रथम दंश स्थान पर बांधना चाहिए। इसे प्रति २०-३० मिनट मे १-२ मिनट ढीला करना चाहिये तथा आवश्यकता पर भेदन करना चाहिए। वृश्चिक विष (बिच्छू का विष) अम्लीय प्रतिक्रिया वाला होता है अतः क्षारीय द्रव्यो का स्थानिक प्रयोग करना चाहिए। इस हेतु अमोनिया, बोरेक्स या पोटेशियम परमैंग्नेट के तनु विलयन से धोना चाहिये। भेदन नही करने की स्थिति मे दंश स्थान पर टिंक्चर आयोडीन लगाना लाभप्रद है अथवा पोटेशियम परमैंग्नेट तथा टार्टरिकाम्ल (इमली का सत) के ४-४ कण रख २-४ बूंद पानी टपकाने से विष दूर होता है तथा तुरन्त आराम आ जाता है। दंश स्थान के चारों ओर नोवोकेन २% तथा एड्रीनलिन १००० मे १ की ४ बूंद का सूचीवेध देने से वेदना का शमन होता है अथवा कोकेन विलयन ५% की ५-१० बूंद दंश स्थान के चारों ओर लगाने से वेदना की अनुभूति नही होती। सभी बिच्छुओं के लिए प्राप्त विशेष एन्टीवेनिन का प्रयोग करावे। पेशी उद्वेष्ट कम करने हेतु कैल्शियम ग्लूकोनेट १०% १० मि.ली. अन्तः सिरा द्वारा धीरे-२ देवे। फुफ्फुस शोथ रोकने हेतु एट्रोपिन इञ्जेक्शन दें। आक्षेप एवं चिन्ता को कम करने हेतु बार्बिट्यूरेट्स का प्रयोग तथा स्तब्धता की अवस्था मे हाइड्रोकार्टिसोन के साथ ग्लूकोज सेलाइन प्रयोग करें। श्वसनावसाद की स्थिति मे कृत्रिम श्वसन ऑक्सीजन प्रयोग करें।

❖

※ वृश्चिक दंश की अचूक चिकित्सा ※

डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह शास्त्री, एम० ए०, ज्वालापुर



बिच्छू के डंक मारने पर तत्काल उपाय—

यदि बिच्छू हाथ, पैर, अगुली आदि मे डक मारे तो तत्काल ही डक मारे हुए स्थान से चार अगुल ऊपर की ओर सूत, सुतली या नरम चमडे से कसकर वध वाध दे। इतना कसकर न वाधे कि चमडी कट जाय और इतना ढीला भी न वाधे कि नीचे का रक्त नीचे न रुके। एक ही वधन वाधकर सन्तोप न कर ले। आवश्यकता हो तो पहिले बंधन से कुछ ऊपर द्वितीय और तृतीय वधन भी वाध दे। सर्प दश पर भी ऐसे ही वधन लगाये जाते है। तीक्ष्ण विप वाले विच्छुओ और सर्पो मे कोई भेद नही है, इनका डक मारा हुआ व्यक्ति भी मर जाता हे।

वाग्भट मे लिखा है—"साधयेत्सर्पवद्दृष्टान्विषोग्रै कीट वृश्चिकै।" उग्र विप वाले कीट (कीडे) और विच्छू के डक मारने पर सर्पदश के समान उपाय करना चाहिए।

वधन वाधने से विच्छू का विप रक्त मे मिलकर आगे नही फैलता है। यदि विप रक्त मे मिल जायेगा तो सम्पूर्ण शरीर मे फैल जायेगा।

यदि सर्प या विच्छू के डक मारे हुए स्थान ऐसे हो जहा वधन न वाधे जा सके तो डक मारे हुए स्थान को तत्क्षण चीरकर और वहा का थोडा-सा मास निकाल कर उस स्थान को तेज अग्नि से दाग देना चाहिए। बहुत से लोग मुख से चूसकर विप को निकाल देते है, परन्तु यह खतरे से खाली नही है।

यदि डक वाला स्थान ऐसा हो जहा न तो वधन ही वाधा जा सके और न चीरा ही जाय, तव दश वाले स्थान के पास का मास छुरे से इस प्रकार काटे कि एकदम हड्डी निकल आवे। फिर उस स्थान को तप्त किये लोहे से दाग दें। राल और जैतून का तैल, गर्म करके लगाना भी अच्छा है। यदि दश वाले स्थान पर औपधि लगाने से अपने आप घाव हो जाय तो अच्छा चिह्न समझो। घाव को शीघ्र मत भरने दो, जिससे विप भली भाति निकलता रहे। क्योकि विप का एकदम निकल जाना ही उत्तम है।

दश वाले स्थान पर कोई अच्छा लेप करो, यथा— हल्दी, पीर, अतीस, कालीमिर्च इन सवको वैगन के स्वरस मे पीसकर लेप करो।

उग्र विप वाले विच्छू के दश वाले व्यक्ति को घृत व दही पिलाओ।

विच्छू के दश वाले व्यक्ति को ना-वरावर (अ सम) घृत व शहद मिला हुआ दूध अथवा वहुत सी खाड मिला हुआ दुग्धपान कराना लाभदायक है।

वाग्भट ने कहा है—

लेप सुखोष्णश्च हित पिण्याको गोमयोऽपिवा।
पाने सर्पिर्मधुयुत क्षीर वा भूरि शर्करम्॥

अर्थात् विच्छू के दश वाले स्थान पर गोवर का लेप हितकारी हे। घृत व शुद्ध शहद मिला दूध या अधिक चीनी मिला दूध पथ्य हे।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—

कुटजस्य फल पिष्ट तगर जालमालिनी।
तिक्तेक्ष्वाकुश्च योगोऽय पानप्रधननादिभि॥
वृश्चिकोन्दुरुलूतानां सर्पाणा च वित हरेत्।
समातोह्यमृतेनाय गराजीर्ण च नायेशत्॥
कपोतविण्मातुलुङ्ग शिरीपकुसुमाद्रस।
शङ्खिन्यार्क पय शुण्ठी करञ्जो मधुर्वाश्चिके॥
वृश्चिके स्वेदमभ्यङ्ग घृतेन लवणेन च।
सेकाश्चोष्णान् प्रयुञ्जीत भोज्य पान च सर्पिप॥

—चरक चिकित्सा स्थानम् विष चिकित्सा
अध्याय २२, श्लोक २०३, २०७, २०८

इन्द्र जौ, तगर, जालमालिनी (देवदाली), तिक्त लौकी इनके समभाग चूर्ण को जल के साथ खाने से तथा इनके चूर्णो से प्रधमन नस्य आदि के प्रयोग से विच्छू, चूहा, लूता और सर्प का विप नष्ट होता हे। यह योग

विप विकारो मे अमृत के समान है। यह योग गर (कृत्रिम विप और अजीर्ण) विप को भी नष्ट करता है।

विच्छू के काटने पर कबूतर की बीट, विजौरा नीबू, शिरीप के फूल का रस, शखिनी, मदार का दूध, सोठ करज की गुद्दी सबके समभाग चूर्ण को मधु मे मिलाकर काटे हुए स्थान पर लेप से विच्छू का विप दूर होता है।

विच्छू के काटे हुए स्थान पर स्वेदन, घी और पानी की मालिश, गरम औषधियो से परिपेक तथा भोजन और पान मे घी का प्रयोग अधिक करना चाहिए।

वाग्भट ने लिखा है—

अर्कस्य दुग्धेन शिरीपवीज
त्रिभावित पिप्पलीचूर्णमिश्रम्।
एपो गदो हन्ति विपाणीकीट
भुजङ्गवृतोन्दुरु वृश्चिकानाम् ॥

सिरस के वीज, पीपल के चूर्ण को मिलाकर अर्क (मदार) मे दूध की तीन भावनायें दे। इस औपधि के लगाने से कीट, मकडी, चूहा और विच्छू का विप नष्ट हो जाता है। पुन —

त्रयोऽभा हरतालस्य त्वेकोश सागरस्य च।
पिप्टवाऽर्क पयसालेपो वृश्चिकार्ति व्यपोहति ॥

अर्थात् आक के दूध मे हरताल ३ भाग और नौसादर १ भाग पीसकर लेप करने से विच्छू का विप शान्त हो जाता है।

शिखि कुक्कुटवर्हाणि सैंधव तैलसर्पिपी।
धूमोहन्ति प्रयुक्तस्तु शीघ्र वृश्चिकज विपम् ॥
—सु क अ ८

मोर और मुर्गे के पख, नमक, तैल, घृत इनकी धूम का प्रयोग करने से विच्छू का विप नष्ट होता है।

कुसुम्भ पुप्प रजनी निशा वा कोद्रव तृणम् ॥
एभिर्घृताक्तै धूपस्तु पायुदेशे प्रयोजित।
नाशयेदाशु कीटोत्थ वृश्चिकस्य च यद्विपम् ॥
—सु क अ ८

कुसुम्भ का पुप्प, हल्दी, दारुहल्दी अथवा कोदो का तृण, इनको घी मे मिलाकर गुदा प्रदेश मे धूम दिया जाय तो वह कीट व विच्छू के विप को नाश कर देता है।

य काशमर्द पत्र वदते प्रक्षिप्य कर्णफूत्कारम्।
मनुजो ददाति शीघ्र जयति विप वृश्चिकाना स ॥

कसौदी या नीम के पत्रो को मुह मे चबाकर विच्छू के काटे व्यक्ति के कान मे फूक मारने से भी विच्छू का विप शीघ्र उतर जाता है।

दशति मानवक यदि वृश्चिक
सलिल घृष्ट चतुर्मुख पुत्रकम्।
हरति दशरुज च विलेपतो
धृशमिदभिपजा मुनमोदितम् ॥

यदि किसी मनुष्य को विच्छू डक मारे तो दश स्थान पर सखिया को पीसकर गाढा-२ लेप करने से शीघ्र ही पीडा शान्त होती है।

सुश्रुत सहिता द्वारा चिकित्सा—

उग्रमध्यविपैर्दष्ट चिकित्सेत् सर्पदप्टवत्।
आदश स्वेदित चूर्णै प्रच्छित प्रतिसारयेत् ॥३७॥
रजनी सैन्धवव्योप शिरीपफलपुप्पजे।

प० अत्रिदेव गुप्त "विद्यालकार" कृत टीका—तीव्र और मध्य विप वाले विच्छुओ के काटने पर सर्पदष्ट की भाति चिकित्सा करे। दश के चारो ओर स्वेदन करके वहा पर पोछकर हल्दी, सैंधव, त्रिकटु, शिरीप के फल और फूलो के चूर्ण से प्रतिसारण करे रगड़े।

मातुलुङ्गम्लग मूत्रपिप्ट क सुरसाग्रजम् ॥१८॥
लेपे, स्वदे तुखोष्ण च गोमय हितमिष्यते।
पाने क्षौद्रयुत सर्पि क्षीर वा वहुशर्करम् ॥६९॥
दश मन्दविपाणा तु चक्रतैलेन सेचयेत्।
विदारीगणसिद्ध न सुखोष्णेनाथवा पुन ॥७०॥
कुर्याच्चोत्कारिकास्वेद विपघ्नैरुपनाहयेत्।
गुडोदक वा सुहिम चातुर्जातकसयुतम् ॥७१॥
पानमस्मै प्रदातव्य क्षीर वा सगुड हिमम्।
गुडोदक वा सुहिम चातुर्जातकमयुतम् ॥७१-।
पानमस्मै प्रदातव्य क्षीर वा सगुड हिमम्।
शिखिकुक्कुटवर्हाणि सैन्धव सैन्धव तैलसर्पिषा ॥७२॥
धूमो हन्ति प्रयुक्तस्ते शीघ्र वृश्चिकज विपम्।
कुसुम्भपुष्प रजनी निशा वा काद्रवतृणम् ॥७३॥
एभिर्घृताक्तै धूपस्तु पायुदेशे प्रयोजित।
नाशमेदाशु कीटोत्थ वृश्चिकस्य च यद्विपम् ॥७४॥
—सुश्रुत सहिता कल्प स्थानम् अध्याय ८

तुलसी के पत्तो को बिजौरे के रस और गोमूत्र मे पीसकर लेप करे। स्वेद के लिए सूखे गोवर से सुहाता-२

गरम सेक देवे। पीने के लिए घी को मधु के साथ या प्रचुर शर्करा वाला दूध देवे। मन्द विष वाले वृश्चिको के दश मे कोल्हू के ताजे तैल से परिषेक करें। अथवा विदारीगण से सिद्ध तैल से सुहाता हुआ गरम सेक करे। शिरीषादि विषहर द्रव्यो से बनाई उत्कारिका से स्वेद करे। विषघ्न द्रव्यो के उपनाह बाधे। दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर के मिले गुड के शर्बत को बहुत ठडा करके पीने के लिए देना चाहिए। मोर-मुर्गे के पख, सैधव, तैल, घी इनका धूम्र विच्छू के विष को शीघ्र नष्ट करता है। कुसुम्भ के फूल और हल्दी या हल्दी और कोदा घास को घी मे मिलाकर दी गई धूप कीटो और विच्छू के विष को नष्ट करता है।६८ से ७४ तक।

बिच्छू विषनाशक आयुर्वेदीय चिकित्सा—

१ अपामार्ग (ओगा, लटजीरा) को उखाड़कर उसकी जड को साफ कर ले और विच्छू काटे हुए रोगी को चवाने के लिए दे और इसके पत्तो का रस दश स्थान पर मले तो बिच्छू विप तत्काल नष्ट हो जाता है। यह परीक्षित प्रयोग है। यदि अपामार्ग को हाथ मे रखकर विच्छू को पकड ले तो वह डक नही मार सकता है।

२ मूली का छिलका विच्छू के ऊपर रखने या मूली के पत्तो का स्वरस विच्छू पर डालने से उसकी मृत्यु हो जाती है। खीरे के पत्तो और उसके स्वरस मे भी यही गुण है। मूली के छिलके विच्छू के विल पर रख देने से वह बाहर नही आता। जो मनुष्य सदा मूली व खीरे खाता है उसे विच्छू विष हानि नही करता है। मूली की जड १ तोला लेकर उसमे नमक मिलाकर महीन पीस द श पर लेप करने मे विप की पीडा शान्त होती है। मूली की जड विच्छू को सु घाने से वह मूच्छित हो जाता है।

३ विच्छू के द श पर अर्क का दूध लगाने से उसका विप उतर जाता है।

—अनुभूत चिकित्सा सागर २८/७९*

४ साधारण विच्छू का विप थोडी सी खाड पानी मिलाकर द श पर गाढा लेप करने से नष्ट हो जायेगा।

५ विच्छू के विष पर ढाक (पलाश) के बीजो को अर्क दुग्ध मे घिसकर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

६ इमली बीज के सिरे को काटकर कुछ घिसकर उसे द श स्थान पर चिपका दे विप उतर जायेगा।

७ निर्मली के बीज को पानी मे घिसकर द श पर लेप करने से विच्छू के विप की वेदना शान्त होती है।

८ कागजी नीबू का रस ५०० ग्राम, नौसादर २५० ग्राम, शुद्ध शहद ७५ ग्राम और मैथीलिटेट स्प्रिट १५० ग्राम। सबको मिलाकर एक बोतल मे भर दो और तीन दिन तक बार-बार हिला दिया करो। कुछ दिन पश्चात् इस आसव को किसी दूसरी बोतल मे भर दो। जिस स्थान पर विच्छू डक मारे उस स्थान पर रुई के फाहे को इससे तर करके लगावे, शीघ्र ही पीडा दूर होती है।

९ अरीठे चवाने से भी विच्छू का विप उतर जाता है। अरीठे को बारीक पीसकर द श स्थान पर लगा दे। अरीठे को तम्बाकू की तरह चिलम मे भरकर धूम्रपान करे तो विप शीघ्र उतर जाता है।

१० लहसुन का रस और शुद्ध शहद १५०-१५० ग्राम, दोनो को मिलाकर पिलाने से रोगी को शीघ्र लाभ होता है। लहसुन और नमक को मिला कूट-पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने से विष उतर जाता है।

११ एक या दो जमालगोटे पानी मे पीसकर द श स्थान पर लगाने से भयकर विच्छू का विप भी तत्काल नष्ट हो जाता है। अनुभूत परीक्षित प्रयोग है।

१२ घी मे कुछ सेंधा नमक मिलाकर पीने से विच्छू का विप उतर जाता है।

१३ दूध मे सेंधा नमक पीसकर मिला दो और उसे अग्नि पर गर्म करो। काटे स्थान पर इस नमक मिश्रित दूध का सिंचन करने से विप उतर जायेगा।

१४ नीम वृक्ष की छाल या पत्तियो या फलो को तम्बाकू की भाति चिलम मे रखकर पीने से विच्छू का विप शर्तिया उतर जाता है। परीक्षित प्रयोग है।

१५ पीपल वृक्ष की जड की छाल १ तोला, मोरपख ३ माशे दोनो को चिलम मे रखकर धूम्रपान करावे।

१६ एक चिलम मे केवल मोरपख रखकर ऊपर से जलते हुए कोयले या विना धूये का अङ्गारा रखकर तम्वाकू की तरह पिलाओ, विष शीघ्र उतर जायगा।

* प० जयदेव शर्मा कृत "ऋग्वेद सहिता भाषा भाष्य" द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ४८०

मोरपंख को घी मे मिलाकर काटे हुए स्थान पर उसकी धूनी भी दो।

१७ हल्दी, अपामार्ग, कलौंजी और चोक मूल का धूम्रपान कराने से विच्छू का विप शान्त हो जाता है।

१८ जीरे का धूम्रपान कराने मे विप शान्त होता है।

१९ सेंधा नमक की एक डली को तीन दिन धूप मे धूपित कर तीन दिन छाया मे रखें। फिर सुरमे की तरह पीसकर शीशी मे रखें और दश वाले रोगी के काटे स्थान के विपरीत नेत्र मे एक सलाई भरकर लगावें।

२०. तीन माशे सेंधा नमक एक पाव पानी मे घोलकर रोगी के कर्ण और नेत्रो मे डाल दे तथा दश स्थान पर रुई की फुरेरी भिगोकर रख दे, तुरन्त शाति मिलेगी।

२१. दश स्थान पर पत्थर का कोयला घिसकर लगाने से पीडा शान्त हो जाती है।

२२. गोघृत और सेंधा नमक मिलाकर दश स्थान पर लगाने से पीडा शान्त होती है।

२३. तारपीन का तैल पीडित स्थान पर लगाने से विच्छू के काटने से होने वाला दर्द शान्त होता है।

२४ तुलसीपत्र को गोमूत्र अथवा नीबू के रस मे पीसकर दंश स्थान पर लगाने से पीडा कम होती है।

२५ एक चौड़े मुख की बोतल मे मैथिलेटेड स्प्रिट डाल लें और जो भी विच्छू मिले उस पर लगी मिट्टी को साफ करके उन्हे जीवित ही बोतल मे डालकर बन्द कर दे। विच्छू स्प्रिट मे डालते ही मर जायेंगे। विच्छू के काटे स्थान पर इस स्प्रिट के फाये को लगा देने से दर्द से रोता हुआ व्यक्ति हसने लगता है।

२६ शहद का मोम, अर्क (मदार) और थूहर का दूध, तीनो को समान भाग मिश्रित कर मटर के समान गोलिया बनाकर रख ले। एक गोली को थोडा गर्म कर दश स्थान पर चिपका दे, पीडा नष्ट हो जायेगी।

२७ पीली मखिया, नौसादर और जयपाल समान भाग लेकर नीबू के रस मे खरल करमे गोलिया बनाकर रख ले। गोली को घिसकर दश स्थान पर लगा ऊपर से थोडा सेक कर दे, इससे जलन तक नही रहेगी।

२८. सेंधा नमक १ तोला, काली मिर्च १ माशा के साथ १ छटाक घृत मिलाकर सेवन करने से विच्छू का विष उतर जाता है।

२९ सत्यानाशी के बीजो का तैल दंश स्थान पर लगा देने से विप का नाश हो जाता है।

३० बबूल की पत्तियो को मुख बन्द करके चबावे और रोगी के कानो मे २-४ फूक लगावे, लाभ होगा।

३१ एक काले विच्छू का डक भाग काटकर उसे एक शीशी मे रखकर ऊपर से ५० ग्राम तिल का तैल डाल कार्क लगाकर रख दो। दश स्थान को कुरेद कर वहा सीक से २ बूद तैल लगा दो, विप नष्ट हो जायगा।

३२ यदि विच्छू का काटा हुआ व्यक्ति बीस अङ्क उल्टे गिने तो विच्छू का विप उतर जायेगा। रोगी २०, १९, १८, १७, १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस तरह गिने।

३३ नीलाथोथा (तूतिया) १ तोला, नौसादर १ तोला, फिटकरी २ तोला, तीनो को एक कटोरी मे पिघलाकर बतासे की तरह टिकिया बना ले। टिकिया को जल मे घिसकर दश स्थान पर लगावें या दियासलाई से आग दिखाकर दश स्थान पर चिपका दे। यह टिकिया कुछ ही मिनटो मे विप को चूस लेती है।

३४ दश स्थान पर लाल मिर्च पानी मे घिसकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

३५ अमलतास के बीज को जल मे घिसकर दश स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

३६ भृङ्गराज (भागरा, भंगरिया) के पत्तो को विच्छू के दश स्थान पर जहा सूजन हो, उतने स्थान पर अच्छी तरह से मसलना चाहिए। इससे पीडा दश स्थान पर ही केन्द्रित हो जावेगी और इसकी लुगदी को दश स्थान पर बाध देने से पीडा कम हो जाती है।

३७ आम की गिरी को जल के साथ पत्थर पर घिस कर लगाने से विच्छू विप की शान्ति होती है।

३८ छोटी इलायची को मुख मे चबाकर रोगी के कान मे फूक मारने से लाभ होता है। यदि इलायची का तैल प्राप्य हो तो दश स्थान पर लगा दें।

३९ अमृतधारा (पिपरमेंट, अजवायन व कपूर का सत् या फूल) का लेप विच्छू दश पर करे, लाभ होगा।

४० पुराने आक (जिस पर फल-फूल लगे हो) की मोटी जड तथा अपामार्ग की जड रोगी के हाथ मे रखवा कर बलपूर्वक मुट्ठी बधवाये, विप उतर जायगा।

४१ आक के पत्तो के रस का नस्य रोगी को दे । छीक आने पर वृश्चिक द श मे विचित्र लाभ होता है ।

४२ तितली के पत्रो का स्वरस थोडा-२ कई बार पिलाने से बिच्छू का विष उतर जाता है । पत्तो का रस भी द श पर लगाना अत्यन्त आवश्यक है ।

४३. कसौंदी का फल भूनकर खिलाने से बिच्छू का विष उतर जाता है । कसौदी के बीज पानी मे पीसकर द श स्थान पर लगाने से भी वृश्चिक द श नष्ट होता है ।

४४ द श स्थान पर प्याज का रस और छिलका मलने तथा थोडा सा गुड खा लेने से बिच्छू का विष उतर जाता है । अनुभूत परीक्षित योग है ।

४५ भाग के बीजो को कूट-पीसकर और मौम मे मिलाकर खिलाने से बिच्छू का विप उतर जाता है ।

४४ इन्द्रायण का हरा फल खाने से वृश्चिक विष शान्त हो जाता है।

४४ शालिपर्णी (हिन्दी मे सरिवन, मराठी मे साल-वण, गुजराती मे समेरवो, बगला मे शालपानी कहते है) का सुहाता-सुहाता गरम काढा बिच्छू के काटे हुए स्थान पर सिचन करने से विष उतर कर पीडा नष्ट होती है ।

४८ सेधा नमक २ रत्ती १ माशे जल मे घोलकर दो बू द नेत्रो मे टपकाने से वृश्चिक विप उतर जाता है।

४६ कौच के बीज को छीलकर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर मलने से विष शीघ्र उतर जाता है।

५० मुश्की घोडे के नाखून को पानी मे घिसकर द'श स्थान पर लेप करने से वृश्चिक विप उतर जाता है । मुश्की घोडे का नाखून न मिले तो साधारण घोडे के नाखून से भी काम चल सकता है ।

५१ कली का चूना, नौसादर, सुहागा तीनो सम-भाग लेकर मलो और बिच्छू के काटे हुए रोगी को सु घाओ । कई बार सु घाने से आराम अवश्य होगा ।

तम्बाकू के साथ खाने वाला चूना और नौसादर मिला हाथो से मलकर सु घाने से विप उतर जाता है । इसी से अग्रेजी औपधि 'लिक्वर एमोनियम फोर्ट' बनती है। इसके सु घाने से भी विप उतर जाता हे ।

५१ चूहे की मेगनी को पानी के साथ पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने से वृश्चिक विप उतर जाता है।

५३ सूखा अमचूर और सूखा लहसुन दोनो को जल मे पीसकर लेप करने से वृश्चिक विप उतर जाता है ।

५४ हरताल, हीग, साठी चावल तीनो को जल मे पीस द श पर लेप करने से वृश्चिक विप उतर जाता है ।

५५ नीबू का रस वृश्चिक द श पर मलने से विप उतर जाता है ।

५६ नागरमोथा को पीसकर तथा पानी मे घोलकर पीने से और द श स्थान पर इसी का गाढा-२ लेप करने से वृश्चिक विप उतर जाता है । परीक्षित प्रयोग है ।

५७ बेर के पत्तो को पानी मे पीसकर टिकिया बना लेप करने से वृश्चिक विप उतर जाता है ।

५८ बकरी की लेंडी (मेगनी) पानी के साथ महीन पीस लेप करना वृश्चिक द श मे लाभकारी है ।

५६ दालचीनी का तैल मलना भी लाभकारी है ।

६० लहसुन को जैतून के तैल मे पीसकर वृश्चिक द श पर लगाने से विप उतर जाता है ।

६१ सत्यानाशी की छाल को पान मे रखकर खाने से वृश्चिक विप नष्ट हो जाता है ।

६२ रविवार के दिन खोदकर लाई गई कपास की जड चबाने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

६३ कपास के पत्ते और राई दोनो को मिला जल के साथ पीसकर द श स्थान पर लेप करना लाभकर है ।

६४ पीपर और कपास के बीज समभाग ले जल मे पीसकर द श स्थान पर लेप करना चाहिए ।

६५ ढाक के बीजो को आक के दूध मे पीसकर लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

६६ सज्जी को महीन पीसकर और शहद मे मिला कर लेप करने से वृश्चिक द श मे शीघ्र लाभ होता है ।

६७ काजी मे जवाखार और नमक पीसकर मिला दो तथा उसे पुन गरम करके द श स्थान पर सिचन करने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

६८ पलाश पापडा को पानी मे पीसकर वृश्चिक द श पर लगाने से विष उतर जाता है ।

६६ सेधा नमक, हीग, मैनसिल, चमेली के पत्ते और सोठ सबको एकत्र महीन पीसकर छान लो । फिर इस चूर्ण को खरल मे डालकर ऊपर से गाय के गोबर का रस देकर घोट लो और गोलिया बनाकर रख लो ।

इन गोलियो को जल मे घिसकर वृश्चिक द श के ऊपर लगाने से विष उतर जाता है।

७० हूलहुल (हुड्हुल) के पत्तो का चूर्ण वृश्चिक द श वाले व्यक्ति को सु घाने मे तत्काल लाभ होता है।

७१ कुश, कास की जड, कसौंदी के पत्ते इन तीनो बूटियो को मुख मे रखकर चवाओ और जिस व्यक्ति को बिच्छू ने डक मारा हो उसके कानो मे फू क दो। इस उपाय के करने मे वृश्चिक विष नष्ट हो जाता है।

७२ मोर के पख को घृत मे मिलाकर अग्नि पर डालो और उसका धूम्र वृश्चिक द श पर लगाने मे विष उतर जाता है।

७३ कबूतर की बीट, हरड, तगर व सोठ इनको बिजौरे नीबू के रस मे मिलाकर देने मे वृश्चिक विष उतर जाता है।

७४ नीले पुष्प वाले घमिरा के पत्ते मसलकर सु घाने से वृश्चिक विष तत्काल उतर जाता है।

७५ जहरमोहरा को गुलावजल मे घिसकर द श स्थान पर लगाने से वृश्चिक विष, सर्प विष नष्ट होता है।

७६ दशाग औषधि (बच, हीग, वायविडङ्ग, गजपीपल, सेंधा नमक, पाठा, काली अतीस, सोठ, काली मिर्च, पीपर समभाग) लेकर कूट-पीस कर चूर्ण बना लेना चाहिए। समय पर फाककर ऊपर से जल पीना चाहिए। इससे समस्त विषैले जानवरो का विष नष्ट हो जाता है।

७७ मोरपख, मुर्गे का पंख, सेंधा नमक, तैल, घृत सबको मिलाकर इनकी धूनी देने मे वृश्चिक विष उतर जाता है।

७८ हल्दी, सेंधा नमक, सोठ, मिर्च, पीपर, सिरस के फल या फूल इन सबका चूर्ण बना ले। द श स्थान को स्वेदित करके इस चूर्ण को घिसने से विष नष्ट होता है।

७९. द श स्थान पर थोडा सा चूना लगाओ और ऊपर से गन्धक का तेजाब लगा दो, शीघ्र आराम होगा। अनुभूत परीक्षित प्रयोग है।

८० कार्वोलिक एसिड से बिच्छू के काटे हुए स्थान को जला दो, विष ऊपर नही चढेगा।

८१ श्याम तुलसी का रस और नमक मिलाकर दो तीन वार लगाने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

८२ सोठ, बिजौरे का रस, हरताल, सेंधा नमक, कबूतर की बीट सबको बारीक पीसकर द श स्थान पर लेप करने से विष उतर जाता है।

८३ हरताल, हीग, बिजौरे नीबू का रस तीनो को खरल करके गोलिया बना लो। जब किसी को बिच्छू डक मारे तब इन गोलियो को पानी के साथ पीसकर द श स्थान पर लेप कर दो और इसी को अजन के समान नेत्रो मे लगा दो, विष नष्ट हो जायगा।

८४ योग चिन्तामणि मे लिखा है सिन्दूर, मीठा तेलिया, चूक, सुहागा, पारा, निशोथ, सोठ, काली मिर्च, पीपल, पाचो नमक, हल्दी, दारुहल्दी, कमल के पत्ते, बच, फिटकरी, अरण्डी की गिरी, कर्पूर, चीता, मजीठ, नौसादर सबको समभाग लेकर महीन पीस लो। फिर इस चूर्ण को गोमूत्र, गुड, आक के दूध और थूहर के दूध मे मिला कर वृश्चिक द श पर लगाओ। यह प्रबल विषनाशक है।

८५ पोदीना और जौ के आटे को तुलसी के जल मे पीसकर लगाने मे विष उतर जाता है।

८६. वृश्चिक द श पर तत्काल बर्फ का पानी रखने मे दर्द शीघ्र शान्त हो जाता है। इससे विष उतरता नही है, थोडी शान्ति मिल जाती है। बर्फ रखकर उपर्युक्त कोई औषधि करनी चाहिए।

८७ पुरानी सुपारी बारीक पीस चिलम मे रखकर तम्बाकू के समान धूम्रपान करने से शीघ्र लाभ होता है।

८८ लहसुन के रस मे लौंग को घिसकर लगाने से पीडा और दाह कम होकर वृश्चिक विष उतर जाता है।

८९ श्वेत पुनर्नवा की जड से अल्प विष वाले बिच्छू के डक को स्पर्श करने मे बिच्छू निर्विष होता है।

९० नौसादर ५० ग्राम, पोटाश परमेगनेट (पानी मे डालने वाली औषधि) ६ माशे दोनो को मिलाकर खरल करे। इसको थोडी सी लेकर पानी मे घोल द श स्थान पर लगावे और अग्नि से सेक दे।

९१ दियासलाई का मसाला जल मे पीसकर द श स्थान पर लगावे।

९२ नागरमोथा पीना तथा लगाना चाहिए।

९३ फाल्गुन मास मे जब बौर आता है उस समय जिस बौर पर पहली दृष्टि पडे उसको तोडकर दोनो हाथो से भलीभाति मसलना चाहिए जिससे उसका रस

हथेलियो मे अच्छी तरह लग जाय। यदि यह क्रिया रविवार या मगलवार को हो तो लाभप्रद है और एक ६.. तक इसका प्रभाव रहता है। वृश्चिक द श वाला रोगी आवे तो द श स्थान पर ४-५ मिनट तक अपनी हथेली रखो, विष उतर जायेगा।

९४ श्वेत फिटकरी को कटोरी मे डालकर अग्नि पर पिघला लो और कुछ गाढी होने पर चवन्नी बरावर बनाकर रख लो। इस टिकिया को अग्नि देकर कुछ पिघलाओ और वृश्चिक, मधुमक्खी, ततैया के द श स्थान पर चिपका दो, विष उतरने पर टिकिया स्वय ही छूट जावेगी।

९५ गिलोय की जड पुष्य नक्षत्र मे उखाड पीसकर पीने से ६ मास तक सर्प तथा वृश्चिक द श का भय नही रहता है।

९६ शकरकन्द के हरे पत्ते पीसकर द श स्थान पर बाधना चाहिए।

९७ गन्ने के सिरके मे नौसादर घोटकर द श स्थान पर थोडी देर तक मले और पाच-सात पर्त कपडे की पट्टी तर करके चिपका दे।

९८ सिंघिया विष को पीसकर द श स्थान पर लगाना चाहिए।

९९ पवार की जड को जल मे पीसकर लेप करने से विष करने से विष उतर जाता है।

१०० एक छटाक चकवड की पत्ती पीसकर द श स्थान पर बाध देने से विष उतर जाता है।

१०१ करेले की जड को गोमूत्र के साथ घिसकर लगावे। यदि गोमूत्र उस समय प्राप्त न हो तो जल के साथ घिसकर लगाने से भी वृश्चिक विष नष्ट होता है।

१०२. सोल्यूशन (साइकिल के ट्यूब जोडने वाला) की दो बू द द शित स्थान पर लगाने से उसी समय विष नष्ट होकर पीडा मिट जाती है।

१०३ ग्रामोफोन के टूटे हुए रिकार्ड को जल के साथ घिसकर काटे हुए स्थान पर लगाने से भी वृश्चिक विष उतर जाता है।

१०४ पीडित स्थान पर स्वमूत्र का लेप, यथासभव शीघ्र करें।

१०५ ईसरमूल (इसरोल), ईसरौल [मराठी मे सापसण, अग्रेजी मे इण्डियन वर्थ वर्ट) की जड का दशित स्थान पर लेप करना चाहिए। यह कोकेन इञ्जेक्शन के समान द शित स्थान को सज्ञाशून्य बना देता है। जट का चूर्ण १/२ ग्राम की मात्रा मे आभ्यन्तर प्रयोग भी करा सकते है।

होम्योपैथिक चिकित्सा—

आर्सेनिक ३० शक्ति की १-२ बूद १०-१५ मिनट के अन्तर से खिला दे, तत्काल लाभ होगा।

एलोपैथिक चिकित्सा—

१ टिंचर आयोडीन का लगाना लाभप्रद है।

२ टिंचर मरक्यूरोक्रोम दश स्थान पर लगाना चाहिए।

३ लाइकर एमोनियम फोर्ट की शीशी का कार्क खोलकर दो-तीन बार सु घाना चाहिए। गर्भवती स्त्री और बच्चो को सु घाना मना है। एक बार कार्क खुल जाने पर औषधि पानी के समान हो जाती है और काम नही करती। इसके स्थान पर नौसादर और चूना को खूब मसल कर सु घावें। ठीक वैसा ही काम करता है।

४ कैम्फर क्लोरल जो कपूर १ औंस और क्लोरल हाइड्रेट को मिलाने से तैलवत् हो जाता है, वृश्चिक दश पर मलने के ५ मिनट मे विष उतर जाता है।

५ एमोनियम कार्बोनेट ५ ड्राम, खडिया मिट्टी ३ ड्राम दोनो को मिलाकर खरल मे महीन पीसकर मजबूत कार्क लगा दे। वृश्चिक द श पर जल के साथ लगावे तो शीघ्र विष उतर जाता है। इसमे ततैया, मधुमक्खी, कानखजूरे के विष को नाश करने की भी शक्ति है।

६. टिंचर कैप्सीकम २ बू द द श स्थान पर लगावे।

७ स्प्रिट एमोनिया एरोमेटिक ७-८ बू द ताजे जल के साथ रोगी को पिलावे।

८ पोटाशियम परमेगनेट और टार्टरिक एसिड (नीबू का सत्) दोनो को अलग-२ पीसकर अलग-२ शीशियो मे भरकर रख लो। वृश्चिक द श पर प्रथम पोटाशियम परमेगनेट का थोडा चूर्ण रखकर ऊपर से टार्टरिक एसिड का चूर्ण डालना चाहिए और बाद मे एक बू द जल डालने से उसमे उफान आकर विष शान्त

—शेषाश पृष्ठ ३२८ पर

विविध शूलहर वनस्पतियां

लेखक—संकलन वैद्य अशोक भाई तनाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी० एस-ए० एम०
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुज०



शरीर मे विविध स्थान पर विविध प्रकार के शूल होते हैं। शास्त्रो मे रोगाध्याय मे विविध शूलो की विस्तृत विवेचना मिलती है। इसी तरह वनस्पति के वर्णन मे भी विविध शूलो मे प्रयुक्त विविध वनस्पति का वर्णन पाया जाता है। शिर शूल, हृत्पीडा, पार्श्वशूल, कटिग्रह, कटि शूल, नेत्रशूल, उदरशूल, योनिशूल इत्यादि शूल विशेष मे शूल नाशक स्वतन्त्रतया प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियो का वर्णन संहिता ग्रन्थो मे उपलब्ध है। मैंने यहा कुछ विविध शूलहर वनस्पतियो का विवेचन किया है, जो उपयोगी होगा। भावप्रकाश प्रथम खण्ड से सन्दर्भ लेकर वर्णन किया है। हो सकता है अन्य वनस्पति भी दु खहर, पीडा हर हो। सामान्यतया देखें तो वातहर वनस्पति पीडा शामक होती है। यहा वातहर गुणयुक्त वनस्पति का नामोल्लेख नही किया है। क्योकि यहा केवल स्थान विशेष—अङ्ग विशेष शूल का तात्पर्य होने से सिर्फ उन शूलहर वनस्पति का नाम-गुण लिखा गया है। विद्वानो का मार्गदर्शन मुझे मान्य होगा।

शूलघ्न वनस्पतियों के नाम—

	वनस्पति	शूल विशेष गुण
१	हरीतकी	शूलघ्नी
२	शुण्ठी	आमवातघ्नी, शूलघ्नी
३.	आर्द्रक	,, ,,
४	पिप्पली	गुल्मामामारुतान्
५	मरिच.	शूलक्रमीन्
६	यवानी (अजवायन)	शुक्रशूलहृत्
७	अजमोदा	रुजो हरेत्
८	शतपुष्पा	शूलाक्षिरोगहृत्
९	मिश्रेया-सुवा	योनिशूलनुत्
१०	चतुर्बीज	आध्यमान शूल, अजीर्ण शूल, पार्श्वशूल, कटिव्यथा
११	हिंगु	उदर शूल
१२.	वचा	विबन्धाध्मानशूलघ्नी
१३	चोपचीनी	विबन्धध्मानशूलघ्नी, तनुवेदनाम्
१४	हपुषा	शूलहृत्
१५	विडङ्ग	शूलघ्न
१६	तुम्बुरु	शूलारुचि, प्लीहकृच्छ्राणि
१७.	आरग्वध	हृद्रोग, उदावर्तशूलनुत्
१८	इन्द्रयव (कुटजबीज)	शूलजित्
१९	रास्ना	समीरास्त्रवातशूलोदरापहा
२०	पुष्करमूल	विशेषात्पार्श्वशूलनुत्
२१	पाषाण भेद	हन्ति प्लीहशूलव्रणानि
२२	लशुन	हृद्रोग, कुक्षिशूल
२३	चुक्र (चूका)	शूल, आमवातहर, हृत्पीडाहृत्
२४	तगर	शूलहर
२५	गुग्गुल	आमवातहर
२६	राल	शूलहर
२७	जातीफल	हृद्रुजा
२८	लवग	आध्यमान शूलमाशु विनाशयेत्
२९	एला.	शिरोरुक्
३०	केसर	शिरोरुक्
३१	ह्रीवेर	हृद्रोग
३२	शटी-गन्धपलाशी	शूल हर
३३	ताम्बूल	श्रमापहम्
३४	गम्भारी	आमशूलहर
३५	वृहती	शूलहर
३६	कण्टकारी	पार्श्वपीडाहर
३७	एरण्ड	कटीवस्तिशिर पीडाहर, आम मारुतान्

वनस्पति	शूल विशेष गुण
३७ एरण्ड	कटीवस्तिशिर पीडाहर, आममारुतान्, वस्तिशूलहरम्,गुल्मशूलानिलापहम्
३८ मेहुण्ड (थूहर)	अष्ठीला शूल
३९ कलिहारी	शूलजित्
४०. वासा	तृपार्त्तिहत्
४१. निम्व	श्रमहर
४२. शिग्रु	शिरोऽर्तिनुत्
४३ निर्गुण्डी	हन्ति शूलशोथाममारुतान्
४४. अङ्कोल	शूलहर ग्रहनूत
४५ स्वर्णवल्ली	शिर पीडाहर
४६ नल-वरु	हृदय, वस्ति, योनि पीडाहर
४७ दर्भ	वस्तिरुक्हर
४८ रोहिष	शूलघ्न
४९. पाठा	हन्ति शूल
५०. दन्ती	शूलहर
५१ गोरखमुण्डी	गुदार्तिनुत्
५२. अपामार्ग	शूलहर
५३. भृङ्गराज	शिरोर्त्तिनुत्
५४ नागपुष्पी	शूलहर
५५ मेषशृङ्गी	अक्षिशूलनुत्
५६ देवदाली फल	शूलघ्न
५७ वेल्लन्तर-गलतोरा	योनिशूलहर
५८ पद्मिनी-कमल	शूलहर
५९ जूई	त्रिरोरोगहर
६०. शिवमल्ली-पकुल	योनिशूलहर
३१. कुन्द-डोलर	शिरोरुक्हर
६२. मुचुकुन्द	शिर पीडानाशक
६३. तुलसी	पार्श्वरुक्हर
६४ इगुद	शूलघ्न
६५ शाल्मली	शूलहर
६६ वालविल्व फल	आमशूलघ्नी
६७ विषतिन्दुक	पादव्यथाहरम्
६८ जम्बीर निम्बु	शूलहर, हृत्पीडाहर
६९ निम्बु	उदरग्रहापहम्
७० अम्लवेतस्	हृद्रोगशूलगुल्मघ्नम्
७१. वृक्षाम्ल-कोकम	शूलजित्
७२ यव-जव	उरुस्तम्भहर
७३ माष-उडद	पक्तिशूलानि नाशयेत्
७४. शोभाञ्जन फल	शूलहर

[पृष्ठ ३२६ का शेषांश]

हो जायगा। रुई को पानी मे भिगोकर शीघ्र ही औपधि को पोंछ दो अन्यथा छाला पड़ जायगा।

९ कास्टिक सोडा (जो साबुन बनाने के काम आता है) ३ ग्राम लेकर एक साफ शीशी मे डाल दो और ऊपर से ३ ग्राम नौसादर भी डाल दो, फिर उनके ऊपर १०-१५ बूंद जल की डाल दो। जल डालते ही शीशी से उफान उठ निकलेगा, शीघ्र ही शीशी मे डाट लगा दो, औषधि तैयार है। वृश्चिक दंश वाले रोगी को बार-बार डाट खोलकर सुंघाने से थोडी देर मे विष उतर जायेगा।

१०. ब्लीचिंग पाउडर दंश स्थान पर मलने से विष नष्ट हो जाता है।

११. वेनड्रीन कैपसूल (पार्क डेविस)—१-१ कैपसूल हर ४ घण्टे पर मुख द्वारा दे।

१२ बायकोलेट्स—१-१ गोली हर ३ घण्टे बाद जल से दे।

१४ हिस्टोस्टैब क्रीम दंश स्थान पर मलो।

१५ वेनेड्रील क्रीम को दंश स्थान पर मलो।

१६ न्युपर्कैनल (सीबा) ,, ,,

१७ थीफोरिन ,, ,,

१८ जम्बक ,, ,,

१९ अमृताञ्जन ,, ,,

इञ्जेक्शन—

१ मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बडौत का "शूलान्तक" इञ्जेक्शन आशातीत लाभ करता है।

२ रेक्टीफायड स्प्रिट २ बूंद व डिस्टिल्ड वाटर (परिश्रुत जल) १६ बूंद मिलाकर दंश स्थान के पास सूचीवेध लगावे।

३ इमेटिन हाइड्रोक्लोर को जहा बिच्छू ने डंक मारा हो वहा लगा दें, शीघ्र वेदनाशामक है।

४ नोवोकेन (हैक्स्ट) २ सी सी का इञ्जेक्शन दशित स्थान के चारो ओर प्रवेश करने से वेदना शान्त होती है।

५ सायनोपेन (गायगी) मासपेशी या नस मे दें। ★

अश्मरीजन्य शूल

वैद्यराज श्री नवीन भाई ओझा आयुर्वेद प्रवीण (डी एस ए. सी) एच पी. ए,
एन. डी., आयुर्वेद रत्न, आयुर्वेद उत्तमा,
वैद्य वाचस्पति, वैद्य महारथी, वैद्याचार्य

अध्यक्ष—गुजरात आयुर्वेद सशोधन विकास केन्द
अध्यक्ष—वडोदरा जिला वैद्य मडल
संगठन मत्री—गुजरात प्रदेश वैद्य मडल
मत्री—आरोग्य प्रचारक मडल
मत्री—आयुर्वेद सेवा मडल
पता—पारकर वाडा, दाडिया वाजार, वडोदा (गुजरात)

वैद्य श्री नवीन भाई ओझा गुजरात के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान वैद्य हैं। आप अनेको आयुर्वेदीय संस्थाओ से संलग्न हैं। आप सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। उत्तम लेखक हैं–आज तक आपके सैंकडो लेख गुजराती तथा हिन्दी भाषा मे प्रकाशित हुए हैं। जन आरोग्य माध्यम से आप प्रतिमास एक आयुर्वेदीय लघु ग्रन्थ प्रकाशित करते हैं। वडोदरा जिला वैद्य मडल द्वारा प्रकाशित चिकित्सा चन्द्रोदय भाग १ व २ (गुजराती) का आपने सफलता से सम्पादन किया है। वर्तमान मे आप वैद्यो के सगठन मे व्यस्त हैं। आप गुजरात के दैनिक वर्तमान पत्रों में निरन्तर लिखते हैं। आप यशस्वी सफल चिकित्सक हैं। आप वडोदा में जन आरोग्य क्लीनिक एवं रुग्णालय का संचालन करते हैं। 'धन्वन्तरि' पत्रिका पर आपका प्रेम अद्वितीय है। आप वात-वात में ही 'धन्वन्तरि' का प्रचार करते रहते हैं, यही आपकी सौजन्यता है। यहां आपने विशिष्ट प्रकार का शूल-अश्मरीजण्य शूल का विवेचन दिया है, जो उपयोगी एव मार्गदर्शक होगा। मै श्री नवीन भाई से आग्रह करता हु कि इसी तरह आप वैद्य समाज को मार्गदर्शन देते रहे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

कारण—

सुश्रुत सहिता मे अश्मरी के निर्माण के वारे मे एक सुन्दर उपमा दी गई है। नये घट मे स्वच्छ पानी भरने के वावजूद कालान्तर से घट के नीचे मिट्टी अवक्षेप (Precipitate) रूप मे जम जाती है। ऐसे ही अश्मरी की उत्पत्ति होती हे।

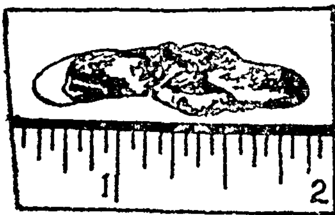
सप्रति विज्ञान यह वात विस्तार से कहता है। जव मूत्र मे क्षार का प्रमाण वढ जाता है और मूत्र मे क्षार अति तृप्त (Super Saturated) अवस्था से अधिक हो जाता है तव क्षार का अवक्षेपन (Precipitation) होने लगता है। यह अवक्षेपन ही अश्मरी है।

इस अवक्षेपन होने का अर्थात् मूत्र मे क्षार का प्रमाण बढ़ने का कारण निम्न प्रकार है—

[१) क्षार वाला पानी पीया जाता हो। समुद्र के पास वाले नागरिको को क्षारयुक्त पानी ही पीना पडता है। ऐसे व्यक्तियो मे अश्मरी जमने की ज्यादा सम्भावना रहती है।

(२) उसी तरह क्षारयुक्त आहार जिनमे कैल्शियम (क्षुधा वर्ग) की मात्रा अधिक हो तो अश्मरी अवश्य होती है। ऐसे आहार मे दूध और उसके विकार, पालक की भाजी, हरे पत्ते वाली सब्जी, भिंडी, टमाटर आदि क्षार युक्त सब्जी, मासाहार आदि की गणना हो सकती है।

(३) जिसे कम पानी पीने की आदत हो तो मूत्रवहन मार्ग की सफाई बराबर नही होती और अश्मरी बन जाती है। कई लोग आलस से कम पानी पीते हे, कई लोगो को उठकर पानी पीने के लिये दूसरे कमरे मे या मकान मे जाना पडता है। फेरिये, मजदूर, किसान एव अन्य व्यवसाय वाले व्यक्ति काम के कारण पानी पीने को टालते रहते है, उन्हे प्राय अश्मरी हो जाती हैं।







विभिन्न प्रकार की अश्मरिया

(४) जिसे ज्यादा पसीना आता है और इस तरह शरीर का जलीयाश कम हो जाता हैं, उसके मूत्र मे क्षार की मात्रा बढ जाती है। इस तरह भी अश्मरी होती है। किसान, मजदूर, व्यायामगीर, खुले मे और धूप मे काम करने वाले श्रमजीवियो को अधिक प्रस्वेद होता है, जो पथरी बनने का कारण माना जाता है।

(५) जिसकी आत्र मे क्षार या कैल्शियम के शोषण करने की क्षमता में कमी हो गई हो, उसके मूत्र मे क्षार की मात्रा बढ जाती हैं तो अश्मरी होती है।

(६) जिसके नेफ्रोन मे कैल्शियम का अधिक स्राव होता हो।

(७) जिसके गले मे चार छोटी पेराथाईराइड नामक अन्त स्रावी ग्रन्थिया अधिक कार्यशील हो।

(८) जो लोग क्षार या कैल्शियमयुक्त औषधि का अधिक सेवन करता हो।

(९) लम्बी बीमारी के कारण शैया स्थित रुग्ण जरूरी हलन-चलन नही कर सकता है। उसमे अस्थि का कैल्शियम मूत्र मे मिलकर अश्मरी पैदा करता है।

(१०) जो रोगी शैया स्थित है और उठकर मूत्रोत्सर्जन नही कर सकता, उसके मूत्राशय से सम्पूर्ण मूत्र निष्कासित नही होता। उसी तरह प्रोस्टेट वृद्धि के रोगी भी पूरा पेशाब नही कर सकता है। मूत्राशय मे इसी तरह बाकी रहे हुये मूत्र मे अश्मरी का निर्माण होता है।

(११) मूत्र का वेगावरोध निरन्तर और लम्बे समय तक करने से पथरी बनती है।

(१२) उसी तरह सहशयन के समय वीर्य का स्खलन रोकने से भी पथरी बनती है।

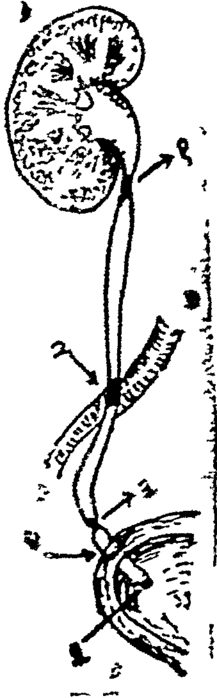
(१३) पचकर्म के द्वारा ठीक से सशोधन न हुआ हो तो पथरी बनती है।

(१४) अधिकतर हरी मिर्च, लाल मिर्च, तला हुआ स्निग्ध एव गुरु आहार खाने से, अजीर्ण, अग्निमाद्य, गैस, गुल्म होकर अश्मरी बनती है।

(१५) सुरापान से भी अश्मरी बनती है।

लक्षण—

जब अश्मरी एक जगह पर स्थिर रहे और हिले नही तो वह बडी होती रहती है और रोगी को उसका पता नही लगता। ऐसी अश्मरी को शात अश्मरी कहते है। किसी दूसरे कारण एक्स-रे लिया जाय और अश्मरी देखी जाय तो उसका पता चलता है। जबकि अन्य अश्मरी छोटी होती हैं, वह टूटती है और मूत्र के साथ बहने लगती है। इस समय पथरी के बहने से जो वेदना होती है उससे उसकी उपस्थिति की जानकारी मिलती है। साई-



मूत्र गवीनी नलिका के पांच स्वाभाविक संकुचित स्थल जहां कि वृक्काश्मरी अटककर शूल उत्पन्न कर सकती है —

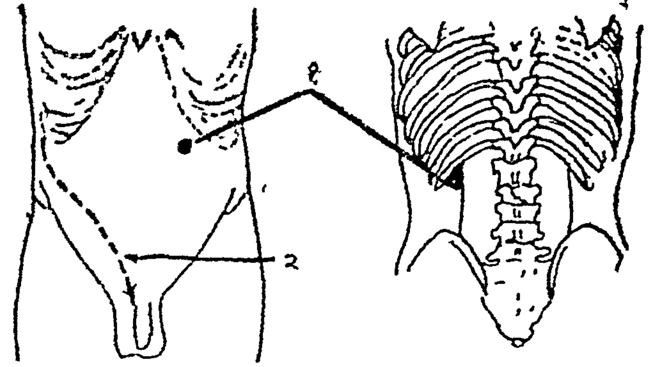
१ गवीनी श्रोणि के तत्काल पश्चात्,

२ श्रोणिम्था महाधमनी (इलियक आर्टो) के सामने,

३ शुक्रवाहिनी नलिका के सामने,

४ मूत्राशय भित्ति मे प्रवेश करते समय,

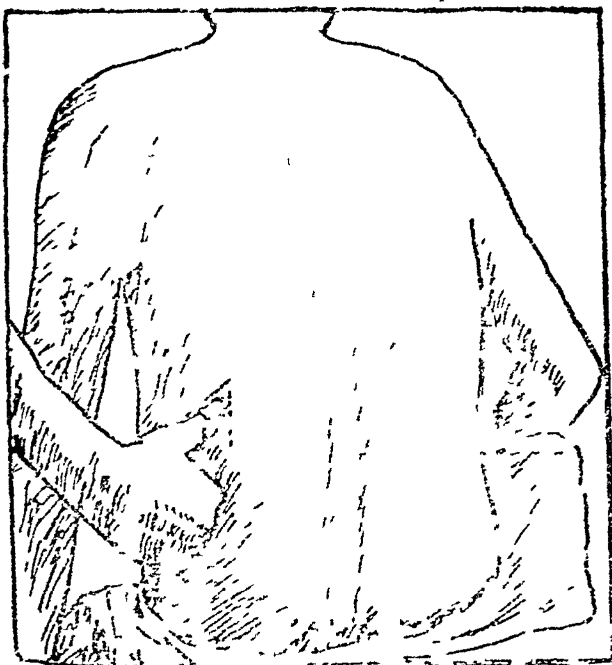
५. मूत्राशय मे खुलने के स्थान पर।



वृक्क शूल—१ स्थिर शूल (बाईं ओर आगे की ओर का शूल स्थान तथा दांई ओर पीछे की ओर का शूल स्थान दर्शाया गया है)।

२ बिन्दुदार रेखाओ द्वारा प्रसरणशील वृक्क शूल का मार्ग दिखाया है।

कन्द सवारी करना, खड्डे वाली जमीन पर मुसाफिरी करना आदि के कारण अश्मरी हिलती हैं और वेदना करती हैं। यह वेदना असह्य होती है, जो प्रसूति पीडा के साथ सामजस्य रखती है। गदहा जैसे उलट-पुलट होता है और रेंकता है उसी तरह अश्मरी का रोगी भी वेदना



वृक्कशूल का स्थान

से परेशान होता है। वेदना कटि के पीछे के भाग से शुरू होती है और आगे की तरफ बढती है। उस समय के लक्षण निम्न प्रकार है—

(१) उदर मे गौरवता महसूस होती है।

(२) पेट के आगे का भाग भारी हो जाता है।

(३) अपान प्रवृत्ति और मूत्र प्रवृत्ति रुक जाती है।

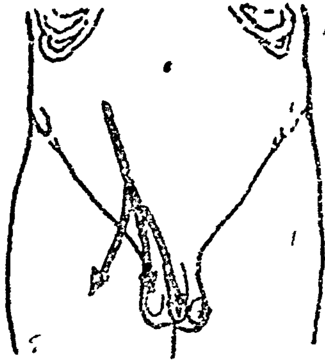
(४) मूत्र भी कम और रुक-रुक कर आता है।

(५) मूत्र की धारा टेढी होती है।

(२) पेशाब मे जलन, वेदना, रक्त दहनि, आविल मूत्रता आदि लक्षण दिखाई देते है।

(७) रोगी के मूत्र मे अजामूत्र जैसी दुर्गन्ध आती है।

सम्प्रति विज्ञान के अनुसार अधिकतर अश्मरी कैल्शियम ओक्सलेट होती है। उसके उपरान्त फास्फेट, यूरिक एसिड, सीस्टन या सेन्थीन की पथरी बनती है। आयुर्वेद की दृष्टि से कैल्शियम आक्सलेट की अश्मरी वातजन्य, फोस्फेट की अश्मरी कफजन्य और एसिड की पथरी पित्त जन्य होती है। फोस्फेट की पथरी का मुख्य कारण मूत्र मार्ग का तग और मूत्र की अल्प अम्लता को माना जाता है। जबकि क्षारो का नियन्त्रण ठीक से नही होने से अन्य अश्मरी का निर्माण होता है। मूत्र परीक्षण से अश्मरी किस प्रकार की है, यह जाना जा सकता है।



मूत्र गवीनी के निम्न भाग मे अश्मरी के अटक जाने पर होने वाले शूल के प्रसार की तीन विभिन्न स्थितियां

विविध परीक्षण—

(१) मूत्र परीक्षण—जिसमे अश्मरी के क्रिस्टल, उसके प्रकार, मूत्र मे रक्त या पूय का निष्कासित होना आदि जाना जा-सकता हे। किन्तु अश्मरी स्थिर हो ती इस परीक्षण मे कुछ नही आता है।

(२) एक्स-रे परीक्षण—इस पद्धति से स्पष्ट दिखाई देती है। लेकिन जो अश्मरी एक्स-रे के लिए पारदर्शक हो तो यह दीखती नही है।

(३) पायलोग्राफी—नस मे इन्जेक्शन से प्रवाही [डाई] चढाकर विविध एक्स-रे लेकर देखने से अश्मरी की स्पष्ट स्थिति मालूम पड़ती हैं।

(४) अश्राव्य ध्वनि स्पन्दन और अल्ट्रा साउण्ड—किसी भी प्रकार से स्पष्ट न हुई हो, ऐसी अश्मरी इससे जानी जा सकती है।

उपचार—

(१) अधिक पानी पीना—सामान्यत भारत उष्ण प्रदेश होने से हम पानी अधिक ही पीते है। अपितु अश्मरी के रोगी को अन्य की अपेक्षा अधिक पानी पीना चाहिये और उसकी आदत डालनी चाहिये। रोज प्रात उष पान करना चाहिये एव रात को एक लोटा पानी पीने की आदत डालनी चाहिये।

(२) यव का पानी अधिक मूत्रल है। यव को कूटकर उसके छिलके उतारकर और उसको पानी मे उबाल छान कर पीने के लिये उपयोग मे लावें। यव को बार्ली भी कहते हैं। बार्ली वाटर से पेशाब अधिक आता है।

(३) एक गिलास मे थोडा दूध लेकर उसमे खाने वाला सोडा डालने से उफान आता है। उसे पीने से भी पेशाव अधिक आता है।

(४) कुलत्थ का क्वाथ पीने से मूत्र प्रवृत्ति अधिक होती है और पथरी टूट जाती है।

(५) चीमडे के बीज, हरड का गर्भ, पाषाणभेद, यवासव, धान्यक एव कुलत्थ समान भाग लेकर उसको यवकुट करके क्वाथ बनाकर पीना चाहिए।

(६) क्षार पर्पटी पथरी को तोडकर मूत्र मार्ग से बाहर निकालती है। इसमे टकण सौराष्ट्री एव सूर्य क्षार जैसी औषधि आती है। उसके साथ मूत्रकृच्छ्रान्तक रस और रसायन चूर्ण भी दे सकते है।

(७) पुनर्नवा जैसे शोथहर, गोक्षुर-शिलाजीत जैसे मूत्रल द्रव्यो से बनाई गई औषधिया पुनर्नवा गुग्गुल, पुनर्नवाष्टक क्वाथ, गोक्षुरादि गुग्गुल, गोक्षुरादि क्वाथ, चन्द्रप्रभा वटी आदि दे सकते हैं।

(८) अपामार्ग क्षार २-२ ग्राम भैंस के दूध से दे।

(९) नारियल के फूल का चूर्ण दही से दे।

(१०) शिग्रु मूल मे त्वक् का क्वाथ अश्मरी के लिए देना हितकर है।

(१२) तिल, अपामार्ग, कदली आदि का क्षार भैंस के दूध के साथ ले सकते हैं।

— पृष्ठ ३०१ का शेषांश —

ऊपर रखकर दोनो आख पर आसके इस तरीके से रखकर वस्त्र को तीन गुना करके लीद के ऊपर २, ३ गुना वस्त्र का आवरण करके पानी बिलकुल न हो ऐसा करके रोगी के दोनो आख पर बाध दिया। वह बिलकुल ठडा होजाये तब दूसरा लीद लिया और फिर से बाधा। इस प्रकार दिन मे ४-५ बार यह प्रयोग किया। इस प्रकार ३ दिन प्रयोग करने से आख बहुत अच्छी हो गई और पीड़ा एव रोग दोनो दूर हो गये। इस प्रयोग मे इस लीद के अलावा सिर्फ हरिद्रा जल की २-४ बूद नेत्र मे डालते रहते थे। इसके अलावा दूसरी किसी दवा का उपयोग नही किया था। उन्होने यह भी बताया कि अगर गधे की लीद ताजा न मिले तो उस लीद मे थोडा सा दूध डालकर उसे गर्म करके बाद मे इसका प्रयोग करना चाहिए।

वर्त्म शूल – अनुभूत सफल प्रयोग

कु० वैद्या तृप्ति भट्ट बी० ए० एम० एम०, सजीवनी क्लिनिक, ४५–स्वामीनारायण चाल
रघुनाथपरा, सूरत (गुजरात)



नेत्र रोग की सख्या कुल ७६ है। वर्त्म रोग की सख्या २१ है। आचार्य सुश्रुत ने २१ वर्त्म रोग का वर्णन किया है। उसमे कर्दम वर्त्म तथा क्लिष्ट वर्त्म का भी वर्णन है। जिसका वर्णन वर्त्मशूल के साथ बहुत ही साम्यता रखता है।

॥ क्लिष्ट वर्त्म ॥

मृदुल्पवेदन ताम्र यद्वर्त्म सममेव च ।
अकस्माश्च भवेद्रक्त क्लिष्टवर्त्म तदादिरोत् ॥

॥ कर्दम वर्त्म ॥

क्लिष्ट पुन पित्तयुक्त विदेहच्छोणित यदा ।
तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥

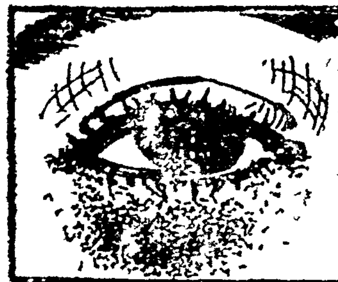
—सु० उ० अ० ३ श्लोक १३-१४

अर्थात् जिसमे सम्पूर्ण वर्त्म मृदु, अल्पपीडायुक्त, ताम्र वर्ण का हो जाता है और अचानक ही लालवर्ण का हो जाता है वह क्लिष्ट वर्त्म है। इसी रोग मे जब पित्त प्रकुपित होता है तब रक्त मे विदाह होकर वर्त्म आर्द्र हो जाता है और क्लिन्न हो जाता है। वह विदग्ध और कर्दम जैसा होजाता है तब उसे कर्दम वर्त्म कहा जाता है।

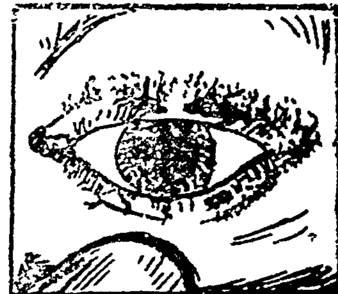
वर्त्मशूल याने नेत्र के वर्त्म मे शोथ, दाह, रक्तिमा और शूल होता है। वर्त्मशूल का वर्णन सुश्रुतोक्त इन दोनो रोग के लक्षणो के साथ यह रोग साम्यता रखता है। क्लिष्ट वर्त्म जो वर्त्मशूल की प्रारम्भिक अवस्था है, और कर्दम वर्त्म वर्त्मशूल की मुख्य अवस्था रूप साम्यता रखती है।

यह एक श्लैष्मिक-रक्तज व्याधि है। कफ दुष्ट होकर रक्त मे मिल जाता है। तब वर्त्म क्लिष्ट हो जाता है। इस प्रकार के वर्त्मशूल का कारण शास्त्र मे वृक्क या हृदय रोग मे भी होता है ऐसा बताया है। यही लक्षण बहुत बढकर पित्त और रक्त के साथ पक्व अवस्था मे आता है। नेत्र, नेत्र के पास के अवयव मे सपूय शोथ के उपद्रव रूप मे भी यह हो सकता है।

इसी प्रकार के लक्षणयुक्त एक रोगी जो हमारे रिश्तेदार थे उन्होंने इस रोग का निवारण बहुत सरल, बिना खर्च की दवा से किया था उसका वर्णन इधर प्रस्तुत है– आयुर्वेद मे नेत्र रोग की चिकित्सा मे सुश्रुत सहिता मे उत्तरतन्त्र के अध्याय १८ वें मे "क्रियाकल्प" अध्याय प्रस्तुत किया है जिसमे अनेकविध उपाय हैं जैसेकि तर्पण, पुटपाक, सिंचन, आश्च्योतन, अजन, पिंडिका इत्यादि। इस वर्त्मशूल की जो चिकित्सा इधर बताई है यह पिंडका चिकित्सा के साथ साम्यता रखती है।



कर्दम वर्त्म

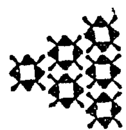


प्रक्लिन्न वर्त्म

हम सब छुट्टी के दिन 'सासण' घूमने गये थे। वहा हमारे सम्बन्धी के वृद्ध सदस्य के अचानक एक दिन दोनो नेत्र के वर्त्म मे शोथ हुआ और शूल स्राव इत्यादि होने लगा। दोनो आंखें बन्द हो गई। पहले पुनर्नवा और हरिद्रा का प्रयोग किया पर कुछ फायदा न हुआ और फिर जगल मे और कोई दूसरी दवा भी नही थी। तभी एक वहा के रहने वाले बुजुर्ग ने बहुत ही सीधा सादा परन्तु तुरन्त लाभप्रद प्रयोग कर दिखाया।

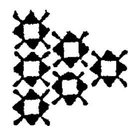
वह दवा थी 'गधे की लीद। उन्होने 'पहले गर्म पानी से दोनो आख साफ कर बाद मे ताजा तुरन्त हुआ हो ऐसी गधे की लीद मगवाई। ताजा होने के कारण थोडी गर्म भी थी। बाद मे उस लीद को एक लम्बे वस्त्र के

—शेषाश पृष्ठ ३०० पर देखें।



कर्णशूल

कविराज वैदेहीशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य
वसन्तपुरी, पीरपैंती (भागलपुर) विहार



—०✶❖★०—

वाग्भट ने कर्णशूल को पाच प्रकार का माना है यथा—वातिक, पैत्तिक, कफज, सन्निपातिक एव रक्तज। वही सुश्रुत जैसे अन्य आचार्यो ने कर्णशूल को वातिक (वायु-दोष जन्य) बताकर इसके विभेदन कर वात सम्बन्धी उपचार बताये है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्री-कर्णशूल को एक स्वतन्त्र रोग न मानकर लक्षण मात्र मानते है जो विभिन्न रोगो मे पाया जाता है। मेरे विचार से कर्ण शूल का भेद दो भागो मे माना जा सकता है प्रथम वातिक कर्ण शूल, द्वितीय व्रणज कर्णशूल।

वायु के प्रकुपित होने से, कान मे शलाका आदि देकर मैल निकालने या निकलवाने से, तालाव या पोखरे मे स्नानादि के करने से कान मे पानी वगैरह जाने से, कान मे लकडी आदि डालकर खुजलाने से कान मे शूल उत्पन्न होता है।

कान के प्रत्येक अवयवो मे वायु मिथ्या आहार-विहार के कारण प्रकुपित होकर कफ पित्त एव रक्त से आवृत होकर वायु को कुपित करता है तव वायु कर्ण मे वेदना उत्पन्न करता है। कर्णशूल को पूर्णरूपेण वायु शूल (वातजशूल) ही माना जाना चाहिए। कभी-२ अन्य कारणो से शूल होता है। लेकिन विरले रूप मे जैसे कर्ण सफाई करने के लिए कोई लकडी या शलाका आदि के व्यवहार से आघात पहुँचता है एव व्रण पैदा हो जाता है एव कर्णशूल उत्पन्न हो जाता है।

कर्णशूल की चिकित्सा—

एकौषधि—

(१) अद्रक स्वरस गर्म कर कर्ण मे देने से कान का दर्द शीघ्र आराम होता है।

(२) नीबू का स्वरस गर्मकर कान मे देने से कान का दर्द शीघ्र आराम होता है।

(३) रसोन (लहसुन) का स्वरस कर्ण मे देने से पीडा दूर होती है।

(४) सहिजन के जट की छाल का स्वरस कान मे देने से कान की पीडा ठीक होती है।

(५) सुदर्शन के पत्ते का स्वरस कान मे देने से कर्ण पीडा दूर होती है।

(६) आक (मदार) के पके पत्ते का स्वरस कर्ण मे देने से पीडा मे लाभ होता है।

(७) निर्गुण्डी के पत्तो का तैल निकाल कर कान मे देने से पीडा मे लाभ होता है।

(८) तुलसी के पत्ते का स्वरस गर्मकर कान मे देने से कर्ण पीडा दूर होती है।

(९) वकरी का दूध कर्ण मे डालने से पीडा मिटती है।

(१०) क्षार तैल देने से कर्ण पीड़ा ठीक होती है।

(११) निर्गुण्डी तैल देने से कर्ण पीडा दूर होती है।

(१२) लहसुनाद्य तैल देने से कर्ण पीडा दूर होती है।

(१३) विल्वादि तैल कर्ण मे देने से दर्द एव स्राव ठीक हो जाता है।

(१४) महानारायण तैल कर्ण मे देने से कर्ण पीडा (वातजन्य पीडा) मे काफी लाभ करता है।

(१५) विष्णु तैल डालने से कर्ण पीडा दूर होती है।

खाने वाली औषधिया (शास्त्रीय योग)—

१ इन्दु वटी, सारिवादि वटी, योगराज गुग्गुल, आरोग्यवर्द्धनी वटी, चन्द्र प्रभावटी, लक्ष्मी विलास रस नारदीय, सजीवनी वटी, महासमीर वटी, क्षार तैल, विल्वादि तैल आदि व्यवहार किये जाते है।

सूचीवेध मे—शूलातक सूची, वातारिपु आदि देने से कर्ण पीडा मे लाभ होता है।

आयुर्वेद पेटेण्ट मिश्रित योग—(१) योगराज गुग्गुल १ गोली सारिवादि वटी १ गोली मिला कर-शतावरी क्वाथ से सेवन करे।

(२) कर्ण रोगहर रस २५० मि ग्रा., सारिवादि वटी १ गोली शतावरी क्वाथ से सेवन करे।

(३) समीर वटी १ गोली, आरोग्यवर्द्धनी वटी १ गोली त्रिफला क्वाथ से सेवन करें। ★★

—* शिशुओं में विविध शूल निदान *—

डा० देवेन्द्रनाथ मिश्र एम० डी० (आयु०) विभागाध्यक्ष–प्रसूतितंत्र, स्त्रीरोग एव कौमारभृत्य,
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, हण्डिया (इलाहाबाद) उ० प्र०



एक दो वर्ष की उम्र वाले बालको मे व्याधि होते ही चिकित्सक के सामने महा प्रश्न आता है क्योकि बालक स्वयं बोलकर कुछ भी प्रकाश नहीं डाल सकता। मगर यहां विद्वान वैद्य महोदय श्री देवेन्द्र नाथ मिश्र जी ने विविध बाल रोगो मे होने वाले शूल पर विस्तार से प्रकाश डाला है। श्री मिश्र जी देश के देदिप्यमान आयुर्वेदज्ञ हैं, विद्वान लेखक है। आपने भूतकाल मे 'धन्वन्तरि' शिशु उदर रोगांक 'लघु विशेषांक का सफलता से सम्पादन किया है। आप उत्तम बाल रोग विशेषज्ञ हे। आपने रावणकृत कुमार तन्त्रम् का सशोधन कर लघु ग्रन्थ का निर्माण किया है, जो सारे देश मे प्रशंसित हुआ है। आपने मेरे आग्रह से ही यहा शिशुओ मे होने वाले विविध शूल पर नैदानिक विवेचन भेजा है, क्योंकि मैं समझता हूं कि यह विषय बाल रोग विशेषज्ञ का है-अतः यहां आपने सम्पूर्ण अधिकार से सुन्दर विवेचन देकर उपकृत किया है।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

इस लेख के लिए आधार काश्यप सहिता, सूत्र स्थान का २५ वा अध्याय "वेदनाध्याय" को बनाया गया है। विवरण जहा आचार्य ने उन शिशुओ के रोग के निदान का दिया है, जो बोल नही सकते। इस अध्याय मे आचार्य ने ३२ व्याधियो के वेदना ज्ञान का उपाय दिया है—

१	अतिसार	१७	ज्वर
२	अपस्मार	१८	तृष्णा
३	अधिजिह्विका	१९	प्रमेह
४.	अर्श	२०	पीनस
५	अलसक	२१	मदात्यय
६	अश्मरी	२२	मुख रोग
७	आनाह	२३	मूत्र कृच्छ्र
८	आमदोष	२४	विसर्प
९	उरोघात	२५	विसूचिका
१०	कण्ठशोथ	२६	श्वास रोग
११	कण्डू	२७.	हिक्का
१२	गलग्रह	२८	शूल उदर
१३.	ग्रह रोग	२९	शूल कण्ठ
१४	नेत्र रोग (चक्षु)	३०	शूल कर्ण
१५	छर्दि	३१	शूल शिर
१६	जतु दश	३२.	पाडु कामला

प्रस्तुत आलेख मे इनमे से निम्न १४ व्याधियो को आधार मानकर जिनमे शूल प्रमुख लक्षण है, वर्णन करने का प्रयास किया गया है—

१	अधिजिह्विका	८	मुख रोग
२	अर्श	९	मूत्र कृच्छ्र
३	अश्मरी	१०	विसूचिका
४	कण्ठ शोथ	११	शूल उदर
५	कण्डू	१२.	शूल कण्ठ
६	ग्रह रोग	१३.	शूल कर्ण
७	नेत्र रोग	१४	शूल शिर

[१] अधिजिह्विका– इस व्याधि मे लालास्राव, अरुचि, ग्लानि, व कपोल पर शोथ तथा पीडा होती है एव मुख खुला रहता है।

लालास्रावोऽरुचिर्ग्लानि कपोले श्वयथुर्व्यथा।
मुखस्य विवृतत्व च जानीयादधिजिह्विकाम्॥
(का. स सू २५/१०)

आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट के द्वारा इस व्याधि के जो लक्षण कहे गये हैं, उनसे यह व्याधि Epiglottitis प्रतीत होती है—

जिह्वाग्ररूपः श्वयथु कफात्तु
जिह्वा प्रबन्धोपरि रक्तमिश्रात्।

ज्ञेयोऽधिजिह्व खलु रोग एष
विवर्जयेदागत पाकमेनम् ॥
(सु० स० नि० १६)

इस व्याधि के प्राय छोटे वालक सोते समय ठीक होते है, जगने पर तीव्र ज्वर, आवाज न निकलना, श्वसन मे कठिनता होती है। अपेक्षाकृत बडे शिशुओ मे प्रथम गले मे खराश तथा निगलने मे कठिनाई के लक्षण मिलते है। छोटे वच्चो मे ग्रीवा का तना होना (स्तम्भ) जैसा लक्षण भी मिल सकता है। वडे वालक आगे झुक कर बैठे रहना पसन्द करते है, मुख खुला एव जिह्वा वाहर निकली जैसी रहती है।जिह्वा को दवाकर देखने पर शोक युक्त आकार मे वडी लाल रक्त वर्ण की अधि जिह्वा दिखाई पडती है।

[२] अर्श–मलवध, पक्व, सरक्त होना, शिशु का कमजोर होना, गुदा मे कण्डु, वेदना तथा तोद की अनुभूति का होना लक्षण है।

अर्श वच्चो मे प्राय नही होता है। कभी-२ मलवध, मल का अति कडा हो जाना तथा मल त्याग के समय काफी कष्ट का होना। विदार (Anal fissure) मे यह लक्षण मिलते है→मल त्याग के समय कष्ट, वच्चे का मलत्याग न करना, अरुण वर्ण रक्त का मल पर मिलना तथा मल त्याग के वाद रक्तस्राव का होना सामान्य है। गुदा परीक्षण के समय विदार के अन्त मे त्वचा पर शोफ तथा एक धागा जैसा लटका रहता है। गुद भ्र श का इतिवृत्त होने पर धागे जैसी रचना के स्थान पर अर्श भी हो सकता है। Crohon Disease भी विदार के साथ सम्भव है।

[३] अश्मरी—
सशर्करातिं मूत्रत्व मूत्रकाले च वेदना।
प्रतत रोदिति क्षामस्तव ब्रूयादश्मरी गदम् ॥
(का० सू० २५।२४)

शर्करायुक्त मूत्र त्याग, मात्राधिक्य, वेदनायुक्त मूत्र का त्याग तथा शरीर मे अतिदुर्वल होना मूत्र त्याग के समय रोना लश्मरी की ओर इ गित करते है।

[४] कण्ठ शोथ–ज्वर, अरुचि, शिर शूल के साथ कण्ठ मे शोथ होताहै।

कण्डू (ण्ठ) के श्वयथु कण्ठे ज्वरारुचिशिरोरुज ।
(का० सू० २५।११।२

आयुर्वेद मे १८ कण्ठगत रोगो का उल्लेख होता है। सुश्रुत तथा वाग्भट के उल्लेखो मे कुछ मत भिन्नता है।

सुश्रुतोक्त–५ प्रकार की रोहिणी, कण्ठशालूक, अधिजिह्व, वलय, वलास, एक वृन्द, शतघ्नी, गिलायु, गलविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मासमान एव विदारी।



—गल विद्रधि (Peritonsillar abscess)—

वाग्भट–तुण्डिकेरीका, गलार्वुद, ३ प्रकार के गलगड एव उपरोक्त रेखाकित व्याधियो का उल्लेख किया है।

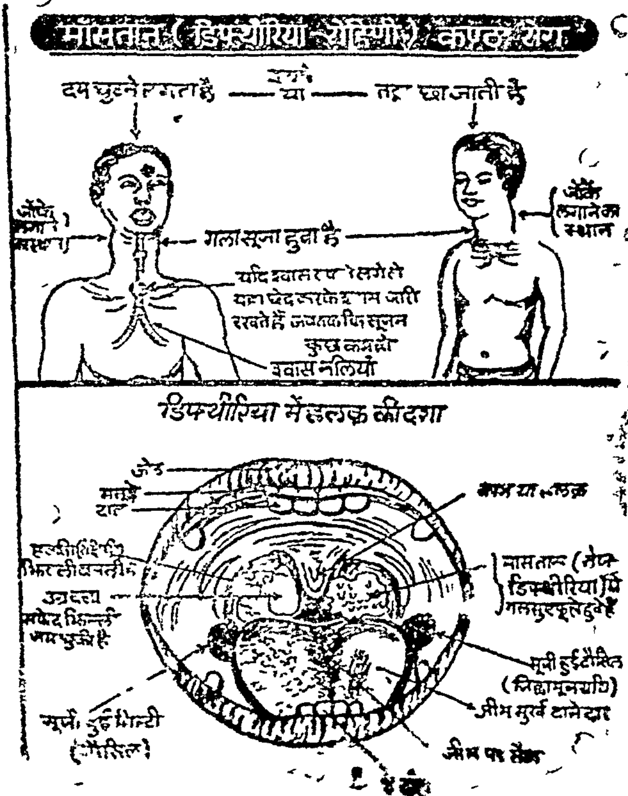
इन समस्त व्याधियो मे से प्राय वच्चो मे पायी जाने वाली व्याधिया तथा जिनमे कण्ठ शोथ होता हो, ऐसी व्याधियो का उल्लेख नीचे किया जा रहा है। शोथ एव शूल एक सिक्के के दो पहलू है—

१ रोहिणी	७ वृन्द
२ कण्ठ शाजुक	८ शतघ्नी
३ अधिजिह्विका	९ गल विद्रधि
४. वलय	१० गलौघ
५ वलास	११ विदारी
६ एक वृन्द	१२ मास तान

आयुर्वेद के आचार्यो ने ऐसा स्पष्ट विवेचन कही भी नही दिया है कि अमुक व्याधि वच्चो मे होती है। आधुनिक विद्वान रोहिणी का विवेचन Diphtheria नामक सक्रामक व्याधि के समकक्ष मानते हैं। इसके अतिरिक्त कण्ठ शालूक (Adenoid), अधिजिह्विका, विदारी (Stomatitis) तथा तुण्डी केरी (Tonsilitis) वच्चो मे सामान्य रूप से पायी जाने वाली व्याधिया है।

रोहिणी (Diphthera) के जीवाणु कण्ठ मे शोथ करते हैं। तथा एक दृढ, श्वेत चमकीली झिल्ली का निर्माण कर देते है। इस झिल्ली द्वारा स्वग्यन्त्र एव नासिका का अवरोध होता है। उत्पन्न विप से नाडी गति तीव्र, तीव्र ज्वर, हृदय की पेशी दौर्बल्य के कारण हृदय के आकार मे वृद्धि, रक्तचाप की कमी, मृदुतालु, ग्रसनिका की पेशी का घात होने से नाक से बोलना, नेत्रपेशी घात से देखने की तथा अनुकूलन की शक्ति का ह्रास, कभी-२ पक्षाघात, पगुता होती है। श्वसनी शोथ तथा श्वसनी फुफ्फुस पाक मुख्य उपद्रव हे।

कण्ठ शालूक वेर की गुठली के समान आकार वाली कफ से उत्पन्न तथा काटे या शूक के समान खुरदरी स्थिर जो ग्रन्थि गले मे होती है, कहलाती है। गले के पश्चभित्त मे उपस्थित लसिका ऊतक (Adenoids) की वृद्धि एव उसमे सक्रमण का ही परिणाम यह व्याधि है। प्राय वच्चे सोते समय मुख से श्वसन करते हैं, नाक वहती (Rhinitis) रहती है। मुख श्वसन के कारण श्लेष्मकला, सूखी खुरदरी हो जाती है। आवाज वदल जाती है। Car Pulmonale, गाय के दूध से असहिष्णुता (५ वर्ष के पूर्व की वय मे) या अत्यधिक मोटे वच्चो मे ऐसा सम्भावित है।



डिफ्थीरिया के जीवाणु

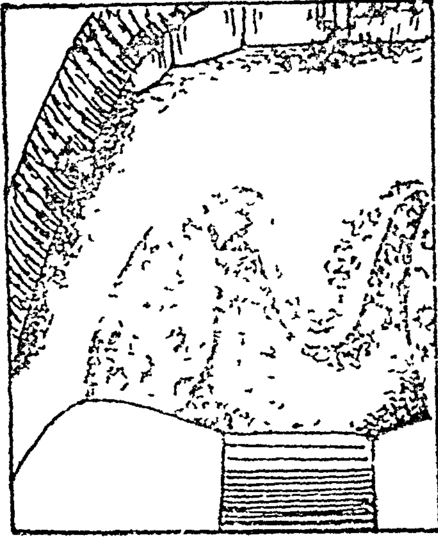
विदारी (Stomotitis) सामान्य व्याधि हे। आचार्यो ने जीर्ण स्वरूप का वर्णन किया हे। दाह, तोद, शोथ, ताम्रवर्ण का, दुर्गन्धि एव गलित मास वाला जो पित्तज शोथ गले व मुख मे होता है। विशेष रूप से जिस करवट रोगी सोता है, उसी तरफ होता है।

तुण्डिकेरी (Tonsillitcs) की गणना वाग्भट ने कण्ठ रोगो मे की है। सुश्रुत ने इसका वर्णन अन्यत्र किया है। कफ व रक्त से उत्पन्न होने वाले मोटे, तोद, पाक युक्त को तुण्डिकेरी की सज्ञा दी गयी है। सक्रमणजन्य आधुनिक विचारधारा की इस व्याधि मे गले मे खरास, कास, कभी-२ श्वसन मे कठिनाई, निगलने व बोलने मे कष्ट, सिर मे पीड़ा, कर्णमूल मे पीड़ा, हृल्लास तथा ज्वर होता है।

इन व्याधियो के अतिरिक्त कण्ठशोथ अर्थात Laryngitis का मूल कारण आधुनिक काल मे सक्रमण ही माना जाता है। २ वर्ष तक के वच्चो मे glottis मे ऐंठन होने से जो श्वासावरोध का भयङ्कर लक्षण होता है। इसमे श्वास-प्रश्वास आवाज के साथ होती है। इसे Laryngeal Steroid भी कहते है।

[५] कण्डू—

घर्षव्यङ्गानि शयने रोदितिच्छति मर्दनम्।
शुष्ककण्डूवऽदित विद्यात्त तश्चार्द्रा प्रवर्तते ॥



तुण्डिका शोथ (Acute Follicular Tonsillitis)

सुखायते मृद्यमान मृद्यमान च शूयते ।
शून स्रवति सस्योढा (?) भार्द्राया शूल दाहवत् ॥
(का० स० सूत्र २५।३०-३१)

बालक रात मे सोते समय अङ्गो का घर्षण करता है, रोता है, शरीर का मर्दन करता है । यह शुष्क कण्डू है । आर्द्र कण्डू मे रगडने पर सुखानुभूति, रगडने पर वृद्धि मे स्राव, शूल व दाह होता है ।

कण्डू सम्पूर्ण शरीर मे होना सामान्य रूप से अस्वच्छता का द्योतक है । परन्तु कभी-२ भयङ्कर व्याधि का सकेत भी देता है । १ वर्ष पर्यन्त बालक मे तीव्र कण्डू यकृत के भीतर या बाहर किसी अवरोध (Atresia) का भी सकेत हो सकता है ।

[६] ग्रह रोग—आयुर्वेद मे वर्णित बाल चिकित्सा प्रकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है । इस प्रकार की किसी व्याधि का विवेचन आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में उपलब्ध नही होता । इसके सकेत का वर्णन आचार्य कश्यप ने निम्न प्रकार से किया है । कुछ लक्षण माता विषयक, कुछ शिशु विषयक, कुछ वातावरण विषयक कहे हैं । (सदर्भ का स सूत्र २५।४० से ४६ तक) । उनमे शिशु विषयक लक्षण निम्न हैं—

अपस्मार होना, शरीर से, मुख से दुर्गन्धि, नासिकाग्र भाग से मलोत्पत्ति, सहसा रोदन, भय, छाया व स्वभाव मे परिवर्तन, कम खाना, मल-मूत्र का कभी कम-कभी आधिक्य होना, सिर को धारण न कर पाना, दौर्वल्य, श्वास रोग, आध्मान, प्यास, प्रमीलक रोग, अनिद्रा पीडित रहता है । इस प्रकार के लक्षण होने पर ग्रह रोग समझें ।

यद्यपि आचार्यो ने लक्षणो मे शूल का नाम नही लिया है । परन्तु १२ प्रकार के ग्रह रोगो मे शूल की उपस्थिति भी रहती है । आगे तालिका मे सभी ग्रह रोगो के नाम, उनके समकक्ष सम्भाव्य आधुनिक नामो की व्याधि तथा शूलयुक्त ग्रह रोग के लक्षण दिये जा रहे हैं ।

[७] चक्षु रोग—दृष्टि व्याकुलता, नेत्रो मे तोद, शोथ, शूल, अश्रु का अधिक आना तथा लालिमा होती है । सोने पर दोनो पलकें चिपक जाती हैं । स्पष्ट रूप से उपर्युक्त लक्षण 'नेत्राभिष्यन्द' को इगित करते है ।

[८] मुख रोग—

लालास्रवणमत्यर्थं स्तनद्वेषारतिव्यथा ।
पीतमुद्गिरति क्षीरं नासाश्वासी मुखामये ॥
(का० सू० २५।८)

मुख रोग मे बालक के मुख से अत्यन्त लालास्राव, दूध से द्वेष, ग्लानि एव व्यथा होती है। पीये हुए दूध को उगल देता है तथा नासिका से श्वास लेता है ।

आचार्यों ने ६५ से ७५ रोग मुख के अन्तर्गत वर्णित किये हैं। सभी का उल्लेख यहा सम्भव नहीं है । प्राय: पाये जाने वाले मुख रोगो का उल्लेख मिलता है । यथा—हनु अस्थि मे विकार Ostcomyelitis, Reticularendotheliosis, कृमिदन्त, दन्तमूलविद्रधि, मुख संक्रमण moniliasis, Herpetic Stomatitis, ओष्ठ किनारो पर विदार, ओष्ठ सक्रमण, जिह्वा व्रण या विदार आदि ।

[९] मूत्रकृच्छ्र—शिशु को रोमहर्ष, अङ्गहर्ष तथा मूत्र त्याग के समय वेदना होगी । ओष्ठ को दात से दबाना एव बालक हाथ से वस्ति प्रदेश का स्पर्श करता है ।

मूत्रकृच्छ्र के लक्षणो को ३ भागो मे प्रमुख रूप से बाट सकते हैं ।

(अ) मूत्राशयगत—मूत्राशयगत अश्मरी, अर्बुद तीव्र या जीर्ण मूत्राशय कलाशोथ, फिरगी खञ्जता, योषापस्मार, मूत्र की अम्लता मे वृद्धि एव सूत्रकमि का उपसर्ग।

(ब) मूत्र प्रणालीगत कारण—शिश्नकला शोथ, औपसर्गिक मेह, शिश्नगत उप सकोच ।

(स) अन्य कारण—पौरुषग्रन्थि वृद्धि, अर्श, तीक्ष्ण औषधिया भोजनादि ।

[१०] विसूचिका—

दह्यन्तेऽङ्गानि सूच्यन्ते भज्यन्ते निष्टनत्यति ।
विसूचिकायां बालाना हृदि शूल च वर्धते ॥
(का० सू० २५-२६)

बालक के अङ्गो मे दाह, सूचीभेदनवत पीडा, श्वसन मे कष्ट तथा हृदयस्थल पर पीड़ा होती है ।

[११] उदर शूल — वस्तुत शूल प्रकरण का वास्तविक अध्ययन यहा प्रारम्भ होता है ।

स्तनं व्युदस्यतेरौति चोत्तानश्चावभज्यते ।
उदरस्तब्धता शैत्य मुखस्वेदश्च शूलिन ॥
(का० स० सू० २५-१५)

स्तनपान का त्याग, रोना, उत्तान लेटना, उदर स्तब्धता, सर्दी लगना, एव मुख पर स्वेद बालक मे होना उदर शूल के लक्षण हैं ।

वच्चो मे उदरशूल के सामान्य कारण (अन्नवह स्रोतस को छोडकर)—

१ वृक्क सम्बन्धित–Pyelonephritis, Hydronephrosis, वृक्कशूल ।

२ उत्फुल्लिका (न्यूमोनिया) ।

३ श्रोणिगत शोथ जन्य ।

४ मानसिक–स्कूल जाने का भय ।

वालको मे उदरशूल–अन्नवह स्रोतस जन्य–

एक वर्ष की वय तक–१. सक्रमण, २ आत्र एंठन (Volvulus), ३ आत्रावरोध (Intussusception), ४ शिशु उदर शूल (Infantile colic) ।

तदोपरात (१ वर्ष के वाद) —(१) एपेन्डिक्स शोथ, (२) आत्र मे सक्रमण, (३) आत्र शोथ, (४) अग्न्याशय (पित्ताशय) शोथ, (५) कृमिजन्य शूल, (६) मल द्वार विदार, (७) वृहदात्र अर्श, (८) विभिन्न अन्नवह स्रोतस अङ्गो के शोथ ।

इन सभी व्याधियो का निदान उदर शूल के निम्न सम्बन्धो को देखकर किया जा सकता है—

(१) शूल प्रारम्भ होने की विधि–यथा पित्ताशय अश्मरी या वृक्क शूल एकाएक प्रारम्भ होता हे ।

(२) शूल का स्थान, प्रकृति एव स्वरुप, शूल का काल तथा समयवद्धता ।

(३) शूल का दूसरे स्थान से सम्बन्ध–यथा वृक्कशूल का अनुभव अण्डकोष से होता है । पित्ताशय व्याधिजन्य शूल का दक्षिण अ स की अस्थि होती है । शूल का सबंध भोजन से, शारीरिक कार्य से एवं भोजन के गुणो से ।

शूल शमन–यथा वैठने पर, विशिष्ट भोजन लेने पर, वमन हो जाने पर शूल शात हो जाना ।

(४) अन्य सम्बद्ध लक्षण–वमन, श्वासावरोध या कृच्छ्रता, कामला, मूत्रकृच्छ्रता, मूत्र मे रक्त का आना, शीतपित्त का उभरना आदि ।

[१२] कण्ठशूल–इसका अधिक विवरण ऊपर कण्ठशोथ के साथ दिया जा चुका है ।

कण्ठशूल मे वालक पीये दूध को उगल देता है । कफ वर्धक पदार्थो के सेवन से उसे विष्टम्भ हो जाता है, हल्का ज्वर, अरुचि तथा ग्लानि होती है ।

[१३] कर्णशूल—

कर्णो स्पृशीले हस्ताभ्या शिरो भ्रमयते भृशम् ।
अरव्यरोचकास्वप्नैर्जानीयात् कर्णवेदनाम् ॥
(का० सू० २५।७)

कर्ण शूल मे वालक हाथो से दोनो कानो का स्पर्श करता हे, सिर को वहुत हिलाता है, ग्लानि, अरुचि, अनिद्रा हो जाती है ।

[१४] शिर शूल —

भृश शिर शूल स्वन्दयति निमीलयति चक्षुषी ।
अवकूजत्यरति मानस्वप्नश्च शिरोरुज ॥
(का० स० सू० २५-६)

शिर शूल मे वालक सिर को वहुत हिलाता है । नेत्र वन्द कर लेता रात्रि मे सोते-२ चिल्लाता है । अनिद्रा एव आहार मे ग्लानि हो जाती है ।

वार-वार शिर शूल होना वडे वच्चो मे एक सामान्य वात है । परन्तु छोटे वालको मे सामान्य रूप से ऐसा नही होता । यदि बालक को छोटी वय मे वार-वार शिर शूल होता है, तो यह चिन्तनीय विषय है। शिर शूल के किसी भी अ ग प्रत्यग (रक्त वाहिनी, नाडी, मस्तिष्क नाडी (म न ५, ८, १०) आदि के कारण हो सकता हैं ।

इन समस्त १४ शीर्षको के अन्तर्गत वर्णित शूल के अतिरिक्त भी शूल होता है । निदान करना एक तपस्या है, साधना है । इसे लिखा नही जा सकता–अनुभव किया जाता है ।

बालग्रह एवं शूल

नाम	प्रमुख लक्षण	सम्भाव्य आधु नाम करण	विवरण
१ स्कन्द ग्रह	शूनाक्ष, एक नेत्रस्य गात्रस्य स्राव हत चलितैकपक्षनेत्र वक्रमुख, हतकपक्ष स्तब्धाग, वैकल्य मरणवा भवेद् ध्रुवम्	Infantile Hemiplegia Poliomyelitis Cavernous sinus-thrombosis	हतैकपक्षः वैशल्य मरणवा भवेद् ध्रुवम् । शूनाक्ष, एकनेत्रस्यगात्रस्य स्राव
२ स्कन्दापस्मार या विशाख	नष्ट सज्ञा वमेत्फेन संज्ञावान तिरोदिति ।	Epilepsy	नि' सज्ञाता—ससज्ञता, फेनस्राव
३. नैगमेष	फेनस्राव, निनम्यते च मध्ये, ज्वर, शरीर विवर्णण, कास कभी-कभी नि सज्ञ होना	Pneumonio	उदर शूल का उदर के बाहर का कारण है ।
४ स्वग्रह	रोमकम्प, वहिरायाम, जिह्वा दश, कठकूजन, श्वानवत चिल्लाना	Rabies (कुत्ता काटने के फलस्वरूप)	वहिरायाम आदि शूल उत्पन्न करते हैं ।
५ पित्तग्रह	ज्वर कास, अतिसार, वमन जृम्भा, मुट्ठी बाधना	Septicemia	शैशव कालीन संक्रमण के परिणाम से ।
६ पूतना	वमन, मलविभेद, तृष्णा, तन्द्रा कम्प, मूत्र निग्रह	अतिसार की अवस्था	—
७. शीत पूतना	अत्यातिसार, वमन, तृषा अत्र-कूजन, उद्विग्न, क्षीण, कास	,, ,,	—
८. अन्ध पूतना	अतिशार, वर्चोभेद, वगर अरति-रोदन, अगशोष, कास ज्वर विवरणता, शोथ, अधोमुख-शायी दृष्टिसाद ।	,, ,, (जीर्णावस्था)	—
९. रेवती	रक्तास्यो हरित मलोऽतिपाण्डु-दह श्यावो वा ज्वर मुखपाक वेदनार्य ।	पाण्डु (Pernicious Anaemia)	—
१०. शुष्क रेवती	जायते शुष्क रेवत्या क्रमात्सर्वाङ्ग मक्षय ।	आत्रगत राजयक्ष्मा	—
११. मुख मण्डिका	कलुषशिरावृतोदरो, अङ्गो की दुर्बलता पाणिपादत्य रमणीयत	Cirrhosis Liver	—
१२ शकुनी ग्रह	समन्तागत्नय तीसारो जिह्वा तालु गले व्रणा स्फोटा सदाह स्नाका ।	स्फोट—eruption जीवतिक्ततीय कमी Pellagra etc	शूलयुक्त अवस्था

उपर्युक्त १२ बालग्रहो मे ६ की अवस्था शूलयुक्त है। स्पष्ट "शूल" शब्द से लक्षण नही वर्णित है। ये अवस्था इसे प्रकट करती है।



मक्कल शूल

वैद्या (कुमारी) ज्योत्स्ना एच० रावल एम. डी (आयु०)
बीग न ४/६२ पी पी यूनिट, ओ पी. डी. बिल्डिंग,
न्यू सिविल अस्पताल, असारवा,
अहमदावाद–३८००१६ (गुज०)





एशिया खण्ड का सुप्रसिद्ध विशाल न्यू सिविल आधुनिक अस्पताल, अहमदावाद मे है। उसमे एक आयुर्वेद विभाग सेण्ट्रल काउन्सिल फौर रिसर्च इन आयुर्वेद एण्ड सिद्ध के अन्तर्गत चलाया जाता है। उस केन्द्रीय आयुर्वेद विभाग मे डा॰ ज्योत्स्ना रावल असिस्टेण्ट रिसर्च आफीसर पद पर सेवा दे रही हैं। आपने १९७५ मे बी ए. एम एस उपाधि प्रथम नम्बर से प्राप्त कर एवार्ड प्राप्त किया था। एम. डी. (आयु०) १९७८ मे पास किया। एम डी में आपने शिरो रोग (अर्धावभेदक-माइग्रेन) में नस्य का असर पर महानिबन्ध लिखा है। वर्तमान में आप न्यू सिविल अस्पताल के आयुर्वेद विभाग में स्त्री रोग व फैमिली प्लानिंग में आयुर्वेदिक आभ्यन्तर कोण्ट्रासेप्टीव औषधि पर कार्य कर रही हैं। वन्ध्यत्व एवं पुंसवन पर वैज्ञानिक पद्धति से सशोधन कार्य आप द्वारा होता रहता है। आप गुजराती आयुर्वेद पत्रिका निरामय में निरन्तर स्त्री रोगो पर लिखती हैं एवं अन्य गुजराती पत्र-पत्रिकाओ में भी लेख प्रकाशित होते रहते हैं। यहा 'मक्कल शूल' पर वैज्ञानिक विवेचन उत्तम है। मै आशा करता हूँ कि आप बार-बार 'धन्वन्तरि' को सहयोग देती रहेगी।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

मक्कल शूल होने के मुख्य कारण निम्न हैं—

१ कई बार प्राकृत प्रसव न होकर विलंबित प्रसव या कष्ट प्रसव होने पर गर्भाशय को गर्भ के निष्क्रमण के लिए लगातार लम्बे समय के लिए आकुञ्चन करने पडते है। इसी कारण से गर्भाशय क्षुब्ध हो जाता है, श्रमित हो जाता है और वायु की वृद्धि हो जाती है तथा प्रसूति के पश्चात् भी वह आकुञ्चित होता रहता है, जो शूल पैदा करता है।

२. प्राकृत प्रसव या विलम्बित कष्ट प्रसव के वाद जब अपरा पूर्ण रूप से बाहर नही निकलती है, उसके कुछ टुकडे गर्भाशय में शेष रह जाते हैं। उन टुकडो को बाहर निकालने के लिए भी गर्भाशय को प्रयत्न करना पडता है, अत. गर्भाशय संकोच करता है जिससे भी शूल उत्पन्न होता है।

इसी मत के साथ आयुर्वेद का मत मिलता है। वायु से रक्त अवरुद्ध होकर ग्रन्थि बना देता है, ऐसा वर्णन है। मैं ये मानती हूँ कि अर्वाचीन विज्ञान मे जो प्लेसेण्ट्रल या मेम्ब्रेन्स के अंश रह जाते है, ऐसा कहा है; उसी को प्राचीन आचार्यों ने रक्तग्रन्थि से अवबोधित कर दिया है।

३. गर्भावस्था मे ही उचित एव पोषणयुक्त आहारादि न करने पर गर्भिणी और गर्भाशय दोनो दुर्बल होते जाते हैं। इस अवस्था मे प्रसूति के वाद गर्भाशय निर्बल होने से वह उचित रूप से सकोच-विकास नही कर सकता है। अत रक्तस्राव अधिक होता है परन्तु वह बाहर निःस्रत न होकर अन्दर ही रहकर जम जाता है और ग्रन्थि सी बना लेता है। उस ग्रन्थि को बाहर निकालने के लिए गर्भाशय को निरन्तर सकोच करना पडता है, जो शूल का कारण बनता है।

४ इसके अलावा एक और भी कारण है जो मक्कल शूल को तो नही, परन्तु मक्कल शूल होने का भ्रम पैदा करता है। मल-मूत्र के अवरोध से वायु विमार्गगामी एव ऊर्ध्वगामी होकर अध उदर प्रदेश मे वेदना उत्पन्न करता है, जो मल-मूत्र विसर्जन से शमन हो जाती है। इस तरह उसका मक्कल शूल से विभेद करना आवश्यक होता है।

मक्कल शूल मे मुख्यतया निदानात्मक , निम्न लक्षण मिलते है—

१ नाभि के नीचे पक्वाशय मे, मूत्राशय मे या उदर मे शूल होता है।

२ वह शूल गर्भाशय के सकोच के कारण होता है।

३ यह शूल नियत समय पर होता है।

४ उदराध्मान होता है।

५ उदर (गर्भाशयिक भाग) दवाने पर कडा होता है।

६ मूत्र का अवरोध होता है।

७. शूल तीव्रतम—सुई से चुभोने जैसी असह्य पीडा होती है।

८ सामान्यत. स्तनपान कराने के समय अधिक होता है।

९ कभी-कभी यह शूल अधिक वढकर हृदय और शिर मे भी उत्पन्न हो जाता है।

१० शूल के अधिक वढ जाने पर स्त्री मूर्च्छित भी हो सकती है।

यह मक्कल शूल प्राय वहुप्रजाताओ मे अल्प कष्ट-दायक होता है। परन्तु प्रथम प्रसवा या अप्रजाताओ मे अधिक होता है और अधिक पीडाकारी भी होता है। जिनकी अपरा पूर्णरूप से वाहर निकल गई हो उनको भी कभी-कभी इस रोग का भय कम होने पर भी हो सकता है। यह भी आवश्यक नही कि सभी प्रसूताओ को मक्कल शूल होता है। जिसने गर्भिणी परिचर्या व सूतिका परिचर्या का पालन किया हो, रूक्ष-शीतल मिथ्या आहार-विहारादि से दूर रही हो और प्रसुति के वाद उष्ण-तीक्ष्णादि औपधियो से योग्य उपचार करके गर्भाशयशुद्धि की हो उन प्रसूताओ मे प्राय. इस रोग के होने की सभावना नही रहती है।

चिकित्सा—

मक्कल शूल मे शूल के लक्षण एव वायुदोप की प्रधानता है, अत चिकित्सा मे शूल प्रशमन एव वातघ्न औपधि का प्रयोग करना आवश्यक होता है। उदर मे शूल होता है, अत शूल शान्ति के स्थानिक उपचार भी करने चाहिए। इसी के आधार पर मै एक चिकित्सा अनुभव वताकर शास्त्रीय एव सैद्धान्तिक चिकित्सा लिख कर इस लेख को समाप्त करु गी।

मै अभी एम डी (आयु०) पास करके सर्विस मे लगी थी, उसी समय मै जूनागढ आर आर. आई मे थी। एक दिन रात को २'३० वजे हमारे पडौस मे रहने वाली औरत आई, जो मुझे दूध दे जाती थी। उसने वताया कि उसकी वहू के सुवह लडका हुआ है और अव अचानक पेट मे जोर से दर्द हो रहा है। वह सो नही पा रही है, जोर-जोर से चिल्ला रही है। इस समय रात को उसे कहा ले जाय। वह मुझे उसे देखने और दवाई देने के लिए वुलाने आई थी। मैने जाकर देखा, वह प्रसूता दर्द के कारण वेचैन हो रही थी और रो रही थी। मैने उदर परीक्षण करके निम्न दवाइया उसको दी—

१ शूलवज्रिणी रस १ गोली, शख वटी २ गोली गुनगुने पानी के साथ ३-३ घण्टे पर दी।

२ दशमूलारिष्ट १० मि. लि , कुमारी आसव १० मि लि मे समभाग जल मिलाकर शीघ्र ही, तत्पश्चात् ५ घण्टे वाद १/२ ग्राम सोठ डालकर दे।

३ पचगुण तैल—निम्नोदर पर मालिश करके ऊपर से उष्ण जल से सेक करने को कहा।

४ थोडा-थोडा गरम जल वार-वार पीने को कहा।

प्रात जव वह दूध देने आई, तव उसने आकर तुरन्त ही वताया कि उसकी वहू आधे घण्टे मे ही ठीक हो गई थी। अच्छी तरह सो गई थी और अव तो विल्कुल ठीक है। मेरे पूछने पर वताया कि रात को औषधि सेवन के वाद थोडा रक्तस्राव हुआ था, उसमे रक्त के छोटे-छोटे टुकडे निकले थे फिर शान्त हो गई थी। मैने उसे अभ्यग और दशमूलारिष्ट चालू रखने को कहा और वाद मे उसे कोई तकलीफ नही हुई थी।

[शेष पृष्ठ ३१३ पर

मक्कल शूल एवं योनिभ्रंश

वैद्या वालासुन्दरी त्रिवेदी आई एम बी (लखनऊ) [धर्मपत्नी–वैद्य वेदप्रकाश त्रिवेदी]
जीराज स्ट्रीट, शाही समाका, पटियाला (पजाव)



मक्कल शूल लक्षण—

सुई चुभने जैसी वेदना, छेदन- विदारण जैसी असह्य वेदना, पक्वाशय, क्षुद्रान्त्र भागो मे होने लगती है। आध्मान (अफरा) व मूत्रावरोध, भयंकर वेदना के कारण प्राणसकट का दर्शन होता है, कष्ट के सहन करने मे असमर्थता, मूर्छा।

मक्कल शूल पर आचार्य सुश्रुत के टीकाकार आचार्य डल्हण का मत—प्रसवकालिक अशुद्ध रक्त से उत्पन्न शूल एव गर्भाशय आदि मे रुके हुए रक्त से पकने वाली विद्रधि को भी मक्कल शूल कहते है।

आचार्य माधवकार का मत—प्रकुपित वायु प्रसवकालिक बहने वाले दूपित रक्त को रोककर प्रसूता के हृदय, बस्ति एवं शिर के शूल को उत्पन्न करता है, इसे मक्कल शूल कहते हैं। इनके मत से हृदय व शिर मे भी शूल होना विशेप लक्षण हे।

आचार्य वाग्भट का मत—आचार्य वाग्भट ने अपने ग्रन्थ अष्टाग हृदय मे लिखा है–'शिर, मूत्राशय एव कोष्ठ पक्वाशय, आमाशय मे शूल का होना प्रकट किया है।

योनिभ्रंश निदान—

यह व्याधि प्राय वहु प्रजाता स्त्रियो मे होती है। योनि अपने स्थान से च्युत हो जाती है। आयुर्वेदोक्त निम्न व्याधियो मे इसका अन्तर्भाव करते है, यथा—

महायोनि—योनिमुख का विस्तार सामान्य से अधिक होता है। स्त्री पीडा का अनुभव करती हे। यह अनुभूति जघा, सन्धि, योनिमार्ग मे होती है।

प्रशसिनी योनि—इसमे भी योनिस्राव व प्रसव मे कठिनाई तथा चलने-फिरने मे वेदना नामक लक्षण मिलते हैं, जिससे स्पष्ट है कि यह योनिभ्रंश की ही अवस्था है।

फलिनी योनि—अत्यधिक अवस्था वाले पुरुप व अत्यधिक छोटी अवस्था वाली स्त्री के मैथुन के कारण होती है, परिणामस्वरूप वन्ध्यत्व होता है।

आधुनिक मतानुसार योनिभ्रंश की चार अवस्थायें—

१ गर्भाशय अपने स्थान से नीचे पहुँच जाता है।
२ गर्भाशय योनिमुख को छूने लगता है।
३. गर्भाशय योनि से थोडा वाहर निकलता है।
४ गर्भाशय पूर्णत योनि से वाहर निकलता है।

मक्कल शूल का चिकित्सा-सूत्र—

(क) वातप्रधान मक्कल शूल—१ दशमूल क्वाथ ६० मि लि मे १ ग्राम यवक्षार मिलाकर पिलावे। या वीरतर्व्यादि क्वाथ या देवदार्व्यादि क्वाथ दे।

२ क्वाथ के अभाव मे आसव व अरिष्ट समभाग जल मिलाकर दे सकते है।

३ यवक्षार १ ग्राम को आर्द्रक रस मे मिलाकर चटावें और ऊपर से आसव पिलावे।

(ख) लाक्षणिक चिकित्सा-सूत्र—१ आध्मान मे हिंग्वष्टक चूर्ण ३ ग्रा.म + शुद्ध टकण १ ग्राम उष्णोदक के साथ देवे।

२ सर्वाङ्ग पीडा मे योगराज गुग्गुल ४-४ गोली उष्णोदक या दशमूल क्वाथ से दे।

३ कुमार्यासव २५ मि लि, दशमूलारिष्ट २५ मि. लि मे उष्णोदक ५० मि लि मिलाकर पिलावें।

रस चिकित्सा मे किसी एक का प्रयोग करें—

१ प्रतापलकेश्वर रस ३५० मि ग्रा. आर्द्रक स्वरस तथा मधु के साथ दिन मे ३ वार दें।

२ सूतिकारि रस २५० मि ग्रा. आर्द्रक स्वरस तथा मधु के साथ दिन में ३ वार दे।

३. वृ० कस्तूरी भैरव रस २५० मि ग्रा. आर्द्रक स्वरस तथा मधु के साथ दिन मे ३ वार दें।

४ सूतिका विनोद रस २५० मि ग्रा. आर्द्रक रस तथा मधु के साथ दिन मे ६ वार दें।

दोष प्रत्यनीक चिकित्सा

कफप्रधान मक्कल शूल—

१. पिप्पल्यादि क्वाथ ५० मि लि, यव क्षार ५०० मि ग्रा दिन मे २ बार दे।

२. पिप्पली चूर्ण १ ग्राम, मद्य १५ मि. लि. दिन मे २ बार दे।

३ त्रिकटु चूर्ण ५०० मि ग्रा., पुराना गुड ५० ग्राम दिन मे २ बार दे।

४ आर्द्रक स्वरस ३० मि लि., मधु १० मि लि दिन मे २ बार दे।

५ दशमूल क्वाथ रबड की थैली मे भरकर स्वेदन करावे।

६ रस चिकित्सा करे।

७. गुग्गुल चिकित्सा करे।

८ वातहर क्वाथ सेवन करावे।

पित्तज मक्कल शूल चिकित्सा—

१ शुद्ध घृत ५० ग्राम, यवक्षार १ ग्राम मिलाकर पिलावे।

२ यवक्षार १ ग्राम उष्णोदक से देना मदाग्निहर है।

३. शीतल परिषेक-अवगाहन, सतर्पण, पान, प्रक्षालन आदि का पूर्ण निषेध है।

४ सर्वत्र उष्ण जल का ही सेवन करावे।

उपद्रवकालिक चिकित्सा—

उपद्रव यथा—आक्षेप, कम्पन, सर्वाङ्ग पीडा, कटि शूल, पृष्ठ शूल, वक्षण वेदना, पिण्डिकोद्वेष्टन, शिर शूल, उदर शूल आदि मे वातशामक तैलाभ्यङ्ग कराये। यथा—नारायण तैल, महानारायण तैल, शतावरी तैल, महामाष तैल, प्रसारिणी तैल आदि।

सिद्ध तैलो के विकल्प तैल—जैतून तैल, अलसी तैल, तिल तैल, महुआ तैल, एरण्ड तैल, तारपीन तैल आदि।

नोट—कोष्ण करके ही तैलाभ्यङ्ग करना चाहिए।

मक्कल शूल शान्ति के लक्षण—

१ प्रजनन रक्त का योनि मुख से स्रवित होना।

२ ग्रन्थि शोथ व स्तन स्थान की पीडा का शमन।

३. आध्मान, उदर शूल, मूत्रावरोध, वस्ति शूल, नाभि शूल आदि का शमन होना।

४. प्रसूता शान्ति का अनुभव करे।

५ निद्रा सामान्य हो जाय।

६ बुभुक्षा सामान्य हो।

मक्कल शूल मे पथ्यापथ्य—

१ स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ एव मृदु परिधान ऋतुकालानुसार होना चाहिए।

२. केवल चाय, दशमूल क्वाथ, शुण्ठीजल, घृताक्त दशमूल पेया उष्ण जल से दें।

३ यवक्षार २५० मि ग्रा उष्ण जल से या उष्ण घृत २५ मि लि से दें।

४ सात्म्य पेय पदार्थ दे (अन्न नही देवे)।

५ स्वेदन करे।

शूल शान्ति के पश्चात् चिकित्सा—

१ शुण्ठी ४ ग्राम, पिप्पली ४ ग्राम के द्वारा गोदुग्ध को सिद्ध करके पिलावे।

२ दशमूल कल्क १० ग्राम, सोठ ३ ग्राम, गोदुग्ध २५० मि लि, जल १२५० मि लि का क्षीरपाक करके पिलावे।

४ गेहूँ का दलिया और पुराना गुड दे।

५ घृत उतना ही दे जिससे भूख प्रभावित न हो।

६ पेय पदार्थो मे पुराना गुड मिलाकर दे।

७ ६ दिन तक लवणान्न सेवन कराये। गुड मिश्रित पेया, लस्सी, गोदुग्ध या चाय दे।

८ पेय पदार्थों मे अजवायन, सोठ, पीपरामूल चूर्ण ६ ग्राम मिलाकर दे।

९ स्वच्छ निवास, शुद्ध वायु तथा स्वच्छ वातावरण वाला कक्ष सभी सुविधायुक्त हो।

१० परिचारक तथा औषधि व्यवस्था सही हो।

११ निर्वात स्थान तथा शान्त वातावरण हो।

१२ निर्धूम अग्नि की अगीठी इस्तेमाल करे।

१३ प्रसूता परिचर्या सेवन करे।

१४ जठराग्नि दीप्त होने पर घृत, दुग्ध, मक्खन, मेवा मिश्रित पदार्थों का सेवन करावे।

अपथ्य—रूक्ष तथा शीत आहार-विहार, पुरुषसङ्ग, आचार, शीत वायु, दुर्जर पदार्थ, अम्ल, विष्टम्भी पदार्थों का त्याग करें।

योनिभ्रंश चिकित्सा—

प्रथम चरण का सूत्र—स्नेहन, स्वेदन, स्थापन ।

१ घृत द्वारा स्नेहन करे ।

२ पुन. दूध की वाष्प द्वारा स्वेदन करे ।

३ तत्पश्चात् स्वच्छ हाथ के द्वारा स्थापन करे ।

द्वितीय चरण—पुन स्थापन के बाद वेसवार पिण्ड का भी अन्त प्रवेश करें, क्योकि यह गर्भाशय स्थापन मे सहायक है ।

तृतीय चरण — इसके पश्चात् "टी" के आकार की पट्टी बाध दे ।

वेसवार पिण्ड के घटक—शुण्ठी, मरिच, धान्यक, अजाजी, दाडिम, पिप्पलीमूल ।

योनि प्रक्षालनार्थ घटक—लोध्र, कटु तुम्वी के क्वाथ द्वारा प्रक्षालन करें ।

उत्तर वस्ति—मूषक वसा सिद्ध तैल की उत्तर वस्ति देनी चाहिए ।

प्रलेप—(१) यष्टिमधु, मदनफल, कर्पूर एवं मधु का लेप करायें । या

(२) पलाश, उदुम्बर फल, तिल तैल एव मधु का लेप करावें ।

योनिभ्रंश को आधुनिक चिकित्सा—

अस्थायी—गर्भिणी स्त्री के प्रारम्भिक सप्ताहो मे वलय (Ring passary) द्वारा रोक देते हैं । अतिवृद्धा एव दुर्बल स्त्रियो मे इसी उपाय से रोक देते है ।

स्थायी—शल्यकर्म ही इनकी स्थायी चिकित्सा है ।



❖ मक्कल शूल एघ योनिभ्रंश ❖ [पृष्ठ ३१० का शेषांश]

यहा पर त्रिदोष एव शूल को ध्यान मे रखकर मैंने औपधि कल्पना की थी, जिससे सफलता मिली । मक्कल शूल की चिकित्सा मे शूलप्रशमन, वातशामक उष्णादि औपधि-आहार से शूल शमन होता है । अपरापातन की जो चिकित्सा बताई गई है, मेरे मत से उस चिकित्सा को सोच-समझकर करने से भी अपरा के टुकडे आदि बाहर निकल जाने पर शूल की शान्ति हो सकती है । इसके अलावा शूल शमनार्थ निम्न चिकित्सा भी की जा सकती है—

१ गर्म पानी को बोतल मे भरकर अथवा ईट के के टुकडे को गर्म करके कपडे मे लपेटकर सुहाता-सुहाता सेंक करना चाहिए । रक्तस्राव अधिक हो तो सेक नही करना चाहिए ।

२ वातघ्न तैल यथा-नारायण तैल, महानारायण तैल, पचगुण तैल आदि मे से किसी भी तैल का सेक करने से पूर्व अभ्यङ्ग करना चाहिए ।

३ गर्भाशय के स्थान पर उदर पर से नीचे की ओर धीरे-धीरे मालिश करनी चाहिए ।

४ योगराज गुग्गुल २ गोली दशमूल क्वाथ से दे ।

५ पिप्पल्यादि क्वाथ या पिप्पल्यासव मे यवक्षार अथवा अपामार्ग क्षार मिलाकर पिलाना चाहिए ।

६ सोठ, मरिच, पिप्पली का चूर्ण गुड के साथ दे ।

७ घृत एव यवक्षार गर्म जल के साथ दें ।

८ कोई भी आसव-अरिष्ट उपलब्ध हो उसमे मरिच या पिप्पली या सोठ जो भी हो, डालकर पिलावे ।

९ सोठ, मरिच, पिप्पली, तज, तमालपत्र, इलायची, नागकेशर और धान्यक के चूर्ण मे पुराना गुड मिलाकर देना चाहिए ।

१० कोई भी वातघ्न व शूलघ्न या उष्ण औषधि से विचारपूर्वक चिकित्सा कर सकते है ।

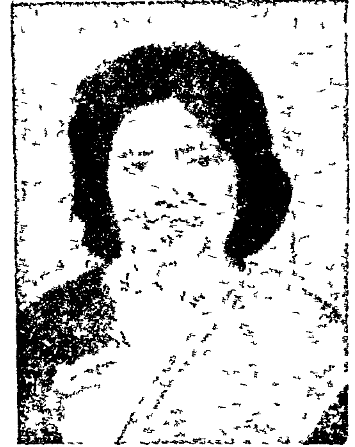
उपरोक्त औपधिया प्राय घर मे ही प्राप्त होने वाली औपधिया हैं । अत मक्कल शूल की तात्कालिक चिकित्सा करने मे जरा भी कठिनाई नही हो सकती ।

यह रोग वातप्रधान होने से वातकारक रूक्ष, शीतल अन्नपान का सेवन न करके वात एवं शूलशामक उष्ण घृत, चाय, क्वाथ, शुण्ठीजल-दूध पीना चाहिए । बार-बार उष्ण जल ही पीना चाहिए । ५-६ दिन तक लवण-युक्त अन्न, गुड मिश्रित पेया, लस्सी, दूध, चाय आदि दें ।



* मासिकस्रावजन्य शूल *

वैद्या (श्रीमती) दर्शना दिलीप दल एम डी (आयु०)
कन्सलटिंग रूम एण्ड गैस्ट्रो एण्ट्रोलोजी सेण्टर
दिवानपरा रोड, राजकोट (गुजरात)



श्रीमती वैद्या दर्शना जी राजकोट (गुजरात) की सुप्रसिद्ध आयुर्वेदीय स्त्री रोग निष्णात हैं। आपके पति वैद्य श्री दिलीप दल एम. डी (आयु०) उदर रोग विशेषज्ञ एवं सशोधनकर्त्ता है। श्री दर्शना जी अपने पति के साथ मिलकर स्त्री रोगो मे संशोधन शैली अपनाकर चिकित्सा करती हैं। आजकल स्त्री वर्ग मे अधिकांश मासिकस्रावजन्य शूल की शिकायतें मिलती है। उसमे आयुर्वेदीय चिकित्सा पूर्णतः लाभ देती हे। स्पष्ट निदान एव सत्य मार्गदर्शन के साथ आयुर्वेदीय औषधि देने से आराम मिलता है। दर्शना जी ने यहां विशेष आग्रह से मासिकस्रावजन्य शूल पर अनुसधानात्मक विवेचन किया है, जो हर समय उपयोगी होगा। मै दर्शना जी से विज्ञप्ति करता हूं कि आप बार-बार स्त्री रोगो पर सशोधनात्मक तथा अनुभवात्मक लेख दें। वैद्य समाज को उपयोगी बनेगा, मेरी शुभकामना है।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

* *

शुद्ध पीड़ितार्तवजन्य शूल

सामान्यत विकृतिजनक नही होने से उसकी कोई खास चिकित्सा नही करनी चाहिए। फिर भी शरीर बल की अल्पता के कारण होने से शरीर का बल बढाने वाली औषधियो का प्रयोग लाभकर है।

मासिकस्राव के ३-४ दिनो श्रम नही करना चाहिए। आराम से सोकर तन-मन को स्वस्थ रखना चाहिए। सुपाच्य प्रवाही आहार सेवन करना चाहिए। वेदना बहुत हो रही हो तो वेदनाशामक औषधि प्रयोग की जा सकती है। थोडी-बहुत वेदना सहन कर लेनी चाहिए। उसके अलावा उष्ण जल मे पैर रखकर बैठना, उष्ण जल की थैली का पेडू पर सेंक करना आदि प्रयोगो से वेदना का शमन होता है।

औषधि उपचार—

१. कुमारी आसव २० मि लि दिन मे ३ बार समभाग जल के साथ।

२ चन्द्रांशु रस ३०० मि ग्रा. ३ बार मधु के साथ।

३ पुष्यानुग चूर्ण २ ग्राम, कासीस भस्म ३०० मि ग्रा, गोदन्ती भस्म ५०० मि ग्रा की मात्रावत् पुडिया बनाकर १-१ पुडिया दिन मे ३ बार जल के साथ।

गर्भाशय व्रणजन्य शूल

योनिस्राव मे अम्लता बढ जाने पर पित्तप्रकृति वाली स्त्रियो मे गर्भाशय व्रण उत्पन्न होता है। गर्भाशय मुख पर शोथ एव लालिमा होती है, अत गर्भाशय व्रण के कारण मासिकस्राव की प्रवृत्ति के समय वेदना होती है। श्वेत प्रदर इसी अवस्था मे उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—मासिकस्राव आ जाने के बाद पाचवे दिन से निम्न औषधि प्रयोग करने से लाभ होता है—

१ पचवल्कल क्वाथ से योनि प्रक्षालन करना।

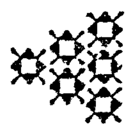
२. चन्दनबला लाक्षादि तैल का पिचु धारण करना।

३. अग्निकर्म करना।

औषधि उपचार—

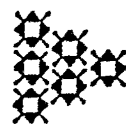
१ पुष्यानुग चूर्ण २ ग्राम ३ बार जल के साथ।

—शेषांश पृष्ठ ३१६ पर



गर्भिणी शूल

वैद्य रघुवीर शरण शर्मा आयु० बृह०
डी-१५० भजनपुरा, दिल्ली-५३





कुशकाशोरुबूकाणा मूलैर्गोक्षुरकस्य च ।
शृत दुग्धं सितायुक्त गर्भिण्या शूलहन् परम् ॥
—योगरत्नाकर

कुशा की जड, कास की जड, एरण की जड की छाल और छोटे गोखरू इन सबका काढा बनाकर दूध और मिश्री काढे मे डालकर पीने से गर्भिणी स्त्री का शूल (दर्द) नष्ट हो जाता है।

उपचार या सावधानी- गर्भिणी की चारपाई का सिरहाना नीचा और पायता ऊंचा कर देना चाहिए। एक कपडा की चार पर्त (चौलर) करके उसे पानी मे तर करके गर्भिणी की नाभि के नीचे रखनी चाहिये और थोडी-थोडी देर बाद बदलते रहना चाहिये। यह भी औषधि का ही काम करेगा, क्योंकि पानी भी अनेक रोगो की औषधि है।

जिन स्त्रियो को बार-बार गर्भपात हो जाता है उनके लिये विधि यह है—

जैसे ही गर्भ स्थिति का ज्ञान हो तभी इस प्रयोग का सेवन आरम्भ कर देना चाहिये और तब तक सेवन करना चाहिये जब तक कि गर्भपात का समय न निकल जाय। मान लो गर्भपात चतुर्थ मास मे होता है तो औषधि का सेवन चतुर्थ मास के बाद तक करायें।

विधि- कुश-कास आदि दरदरी की हुई औषधियो मे से १ तोला की मात्रा मे बारीक कपडे मे बाधकर रात को २० तोला पानी और २० तोला दूध मे डाल दो और दूध को औटा लो। दूध के औटने पर पोटली की औषधियो को निकाल कर फैंक दो और दूध मे चीनी डालकर पी लो। इस प्रकार औषधि का सेवन गर्भपात का समय निकल जाने तक करो।

अपथ्य—तीक्ष्ण पदार्थ, लाल मिर्च, गुड, अरबी, उडद की दाल आदि गरिष्ठ पदार्थ और यथासभव पति का सहवास प्रसवकाल तक त्याग देना चाहिये।

दूसरी औषधि—गर्भपात के समय कालीम्यूर ६X, कैलमेरिया फास ६X २-२ घण्टे पर पर्याय रूप के पानी से दें, गर्भ निश्चित ही रुक जायगा। उक्त औषधिया बायोकैमिक है।

होमियोपैथी की पल्सेटिला ३०X २-२ घण्टे पर ताजे पानी से देने से गर्भ रुक जायगा।

यदि प्रसव का समय हो और प्रसव न होता हो तो पल्सेटिला का प्रयोग करें। १-१ घण्टे पर ३ या ४ मात्रा देने मे प्रसव हो जायगा। यदि प्रसव के बाद अपरा (खलरिया) रह गई हो तो भी पल्सेटिला ३० को ही दें, इसे भी निकाल देगी। इसकी उपमा पिट्यूटरीन के इञ्जेक्शन से दी जा सकती है किन्तु गर्भ रोकने मे नही।

गर्भपात का शूल—

गर्भे निपतिते तीक्ष्ण मद्य यँ कामत पिबेत्।
गर्भ कोष्ठविशुध्यर्थमर्ति विस्मरणाय च ॥ —वाग्भट

आचार्य वाग्भट का कहना है कि गर्भपात होने पर तीक्ष्ण मद्य (तेज शराब) भर पेट पीनी चाहिए। इसमे गर्भाशय की शुद्धि (सफाई) हो जायगी और गर्भपात की वेदना भी जाती रहेगी।

प्रसव शूल—

केशर असली ३ रत्ती, मिश्री का चूर्ण या चीनी १ तोला। पहले केशर को बारीक पीस ले फिर चीनी को केशर मे मिलाकर इसकी ३ पुडिया बना लें। प्रसव न हो रहा हो तो इसकी १ पुडिया गरम दूध या गरम पानी से दे। इससे दर्द बढेगा और प्रसव हो जायगा। स्मरण रहे प्रसव होने पर औषधि को फिर नही दे।

मक्कल शूल

सूताया हृच्छिरोबस्ति शूल मक्कल्ल सज्ञितम्।
—भैषज्य रत्नावली

प्रसूता के हृदय, शिर और बस्ति मे जो शूल (दर्द) होता है, उसका विचित्र नाम मक्कल शूल है।

चिकित्सा—घी मे भुनी हीग १-२ रत्ती गरम घी २॥ तो[illegible] मे डालकर पीने से मक्कल शूल मे लाभ होता है।

तिल क्षार या यवक्षार ४ माशे, हल्दी ३ माशे, गुड २॥ तोला, घी ४ तोला, पानी ५ तोला, घी मे भुनी हीग १ रत्ती। विधि–पहले गुड को पानी मे डालकर पका लो। गुड जब पिघल जाय तो उसमे शेष सभी द्रव्यो को डाल दो और गुनगुना ही प्रसूता को खिला दो। इससे तत्काल शूल नष्ट हो जायगा और रुका हुआ रक्त आने लगेगा।

कष्टार्तव या आर्तव शूल—

चन्द्राशु रस (भैपज्य रत्नावली)—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, लोह भस्म और वग भस्म प्रत्येक समभाग लो।

विधि—सर्वप्रथम पारद और गन्धक की कज्जली ऐसी कर लो जिसमे चमक न रहे। फिर कज्जली मे तीनो भस्मो को मिला दो और घृतकुमारी के रस मे घोट कर २-२ रत्ती की गोली बना छाया मे सुखाकर शीशी मे भरकर रख लो।

मात्रा और अनुपान—मासिकधर्म के समय १ गोली जीरे के काढे के साथ प्रात साय सेवन करनी चाहिए। इसके सेवन से आर्तव शूल (दर्द) नष्ट हो जायगा। इसके सम्बन्ध मे ग्रन्थकार ने लिखा है कि—

जीरक्वाथेन पीतोऽय रसश्चन्द्राशु सज्ञक ।
जरायु दोपानखिलान् योनिशूले मुदारुणम् ॥
योनिकण्डुस्मरोन्माद योनिविक्षेपण तथा ।
निराकरोति सन्ताप चन्द्राशु देहिन यथा ॥

यह रस जरायु के समस्त दोप, योनि शूल, योनि कण्डु (योनि की खुजली), स्मर (कामदेव) के उन्माद को नष्ट करता है।

वक्तव्य—मैने यह योग कष्टार्तव पर प्रयोग किया है और लाभप्रद पाया है।

रज प्रवर्तिनी वटी (आयुर्वेद विज्ञान)—भुना सुहागा, घी मे भुनी हीग, हराकसीम और एलुवा। इन सबको समभाग ले घृतकुमारी के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनाकर रख लो। मासिकधर्म के समय १-१ गोली गरम पानी से ३-३ घण्टे पर ४ बार सेवन करे। इससे कष्टार्तव दूर हो जायगा और मासिकधर्म भी खुलकर हो जायेगा।

वक्तव्य—यदि इन गोलियो से पूर्ण लाभ न हो तो फिर प्रात काल १ गोली और सायकाल १ गोली उष्णोदक से तथा भोजन के बाद दोपहर और शाम १ तोला कुमारी आसव मे १ तोला पानी मिलाकर सेवन कर लिया करे तथा गुड और तैल का अधिक सेवन करे। ❖

★ मासिकस्रावजन्य शूल ★ [पृष्ठ ३१४ का शेपाश]

२. चन्द्रप्रभा वटी २ गोली ३ बार जल के साथ।

३. चन्दनासव २० मि.लि ३ बार समभाग जल से।

गर्भाशय मुख मे कोई अवरोध हो तो उसके कारण होने वाला शूल

गर्भाशय मुख का अवरोध तीन कारणो से होता है—

(१) प्रकृतिगत—जन्म से ही गर्भाशय मुख का सकुचित होना

(२) गर्भाशयगत राजयक्ष्मा हुआ हो तो उसके कारण गर्भाशय मुख मे अवरोध उत्पन्न होता है।

(३) गर्भाशय मुख पर कोई ग्रन्थि हुई हो तो उसके कारण मुख का मार्ग सकुचित हो जाता है तब वेदना के साथ मासिकस्राव होता है।

गर्भाशय मुख मे अवरोध के कारण वेदनाजन्य मासिकस्राव आता है। इसके अलावा तीव्र कटि शूल, शविध शूल होता है। अगर मासिकस्राव अनियमित रूप से आये तो ज्वर एव गर्भाशय शोथ भी होता है।

चिकित्सा—गर्भाशय मुख की सकुचियता के कारण यह शूल होता है। इसलिए गर्भाशय मुख को विस्फारित करना ही एक श्रेष्ठ उपाय है।

गर्भाशय मुख को स्नेहन करके उसे छोटे डायलेटर के द्वारा विस्फारित करते-करते उसमे अधिक मोते वाला डायलेटर डालकर उसको ज्यादा विस्फारित करते रहना चाहिए जिससे गर्भाशय विस्फारित होगा और तब मासिक स्राव प्रवृत्ति वेदनारहित होगी।

शस्त्रकर्म द्वारा भी गर्भाशय मुख को विस्फारित कयिा जा सकता है।





मासिक स्राव शूल

डा० (कुमारी) कमला पाडेय एम० ए०, बी ए एम. एस
चिकित्साधिकारी–राज. आयु कालेज, गुरुकुल कागडी, हरिद्वार

★★

आधुनिक मतानुसार कष्टार्तव के निम्न प्रकार है —

(१) स्नायुविक कष्टार्तव—स्त्री अपने को कमजोर, थकी अनुभव करती है । सर दर्द करता है । जैसे-जैसे उसके ऋतुस्राव का समय निकट आता है लक्षणो मे वृद्धि होती है । आक्रोश, आवेग, चिडचिडापन मिलता है ।

(२) रक्ताधिक्यजन्य कष्टार्तव—ऋतुकाल मे गर्भाशय प्रदेश मे रक्त का स्वाभाविक जमाव हो जाता है । जब कभी यह जमाव किसी कारण से स्वाभाविकता की सीमा पार करने लगता है तो उसे रक्ताधिक्यजन्य कष्टार्तव कहते हैं। उसमे स्त्री ऋतुकाल शुरू होने के कुछ दिन पहले से ही भारीपन, पीठ एव श्रोणि प्रदेश मे उष्णता का अनुभव करने लगती है । पेडू पर विशेष कर दायी ओर के डिम्ब प्रदेश पर स्पर्श बर्दास्त नही होता ।

(३) अवरोधजन्य कष्टार्तव–कभी-२ गर्भाशय के आर्तव के निकलने के मार्ग मे आशिक या पूर्णरूप से सकुचित होकर अवरोध हो जाता है । इस प्रकार का अवरोध यद्यपि सामान्य रूप से गर्भाशय ग्रीवा के मुख पर या कभी-२ योनिमार्ग मे भी उत्पन्न हो जाता है इससे मासिक स्राव के प्रवाह मे बाधा होती है ।

(४) झिल्ली मिले स्राव वाला कष्टार्तव—इसमे पीडा युक्त ऋतुस्राव के साथ छोटे बडे टुकडे, नलिकाओ के अ श तथा गर्भाशय गुहा की अन्त कला मे पालित झिल्ली की त्रिकोणाकार थैलिया सी निकलती है । ऋतुस्राव प्राय हल्के दर्द के साथ शुरू होता है । धीरे-धीरे यह दर्द बढता जाता है और इसकी पीडा झिल्ली निकल जाने के बाद ही शात होती है । स्राव अधिक नही आता है । कभी-२ तो बहुत ही कम आता है । कभी-२ झिल्ली गर्भाशय ग्रीवा के मुख मे अटक कर रक्त को वही अवरुद्ध कर देती है ।

औषधि चिकित्सा—

१ अजवायन चूर्ण २ ग्राम प्रात साय गर्म दूध या जल के साथ कुछ दिन तक निरन्तर सेवन करायें ।

२ कलौंजी का चूर्ण ५-१० रत्ती तक शहद के साथ दिन मे २-३ बार चाटे ।

३ खुरासानी अजवायन के १ ग्राम चूर्ण मे थोडा सा खाने का सोरा मिलाकर गोखरू के क्वाथ के साथ सेवन कराने से मासिक धर्म के समय भयङ्कर वेदना या कष्ट और मासिक स्राव की रुकावट दूर होती है।

४ कष्टार्तव या मासिक धर्म मे पीडा की विशेषता हो तो नीम पत्रो को पानी की भाप पर स्वेदित कर गर्म-गर्म नाभि के नीचे बाधने से मासिक धर्म के समय होने वाला कष्ट दूर होता है ।

५ कपास मूल २० ग्राम का यथाविधि १६ गुना जल मिलाकर क्वाथ करे । बादाम रोगन ६० ग्राम मिलाकर प्रात पान करने से कष्टार्तव मे लाभ होता है ।

६ राई २० ग्राम, पुराना गुड २० ग्राम, केशर १ ग्राम ले । पहले राई को पीसकर गुड तथा केशर डाल मूसल से इतना कूटे कि तैल निकलने लगे तब १-१ ग्राम की गोली बना ले । मासिक स्राव होने के १-२ दिन पहले से १-१ गोली प्रात साय कुमारी आसव के साथ सेवन कराने से कष्टार्तव मे लाभ होता है ।

७ घृत कुमारी का रस २५० ग्राम, कलमीसोरा ६० ग्राम, हरिद्रा १० ग्राम सबको कडाही में डाल कर खूब गर्म करें । इस औटाये हुए १० ग्रा रस के साथ गुजा की बुकनी १-१॥ रत्ती मिला सेवन करावें ।

※ वृश्चिक विष निदान तथा चिकित्सा ※

वैद्य विनोद कुमार गोठेचा (प्राध्यापक-अगद तन्त्र विभाग)
श्री द्रव्येश्वर झा (विभागाध्यक्ष-अगद तन्त्र विभाग)
राष्ट्रीय आयुर्वेद सस्थान, जयपुर (राज)

उत्पत्ति एवम् भेद—

इनकी उत्पत्ति आयुर्वेद मे मृत प्राणियो तथा वनस्पतियो के सडने से बताई है। आचार्य सुश्रुत ने इनके तीन भेद मन्द विप, मध्यविष, महाविप बताये हैं तथा इनके कुल ३० भेद बताये है—मन्दविष के १२, मध्यविप के ३ तथा महाविप के १५।

मन्द विप वृश्चिक-इनकी उत्पत्ति गाय भैंस के गोबर एव मूत्र के सडने से होती है। इनके १२ भेद होते है—

कृष्ण, श्याव, कर्बुर, पाडु वर्ण, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, पीत, धूम्रवर्ण, रोमश, शाद्वलाभ और रक्त।

ये पीले सफेद, काले, चितकबरे आदि अनेक रगो से इनके उदर का रग सफेद (सुश्रुतानुसार) लाल फीका (वाग्भट अनुसार) होता हे, पूछ मे अनेक पर्व होते हैं।

मध्य विष वृश्चिक—इनकी उत्पत्ति लकडी और ईट के सडने से होती हे (सुश्रुतानुसार) तथा विप से विदग्ध या विपैले प्राणी के काटे प्राणी के सडने से होती है (वाग्भट) इनके ३ भेद होते है—रक्त, पीत और कपिल

ये भूरे लालिमा लिये रङ्ग के होते हैं, इनके उदर का रग काला होता है तथा पूछ मे ३ पर्व होते हैं।

महाविष वृश्चिक—इनकी उत्पत्ति मृतसर्प और सर्प दष्ट प्राणी के सडने से होती हे। इनके १५ भेद होते हैं—

श्वेत, चित्र, श्यामल, लोहिताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोपीत रक्त, नील पीत, रक्तनील, शुक्ल, रक्तबभ्रु, एकपर्वा, अपर्वा, द्विपर्वा। ये अग्नि के समान रग के होते है, इनके उदर का रग लाल, काला या सफेद होता है तथा पूछ मे एक या दो पर्व या बिना पर्व के होते हे।

मध्य या मन्द विष वृश्चिक ही अधिकतर मिलते है। इनके काटने से प्राय मृत्यु नही होती किन्तु महा विष वृश्चिक जिसे आचार्य सुश्रुत ने प्राण चोरा सज्ञा दी हे, ये प्राणहर होते है।

वृश्चिक विष लक्षण—

बिच्छू के डक मारने पर विप के शरीर मे प्रविष्ट होते ही दश स्थान पर अग्नि के समान दाह होता है तथा भेदनवत् तीव्र वेदना होती हे, दाह तथा वेदना शीघ्र ही दश स्थान से ऊपर की ओर चढती है तदनन्तर दश स्थान पर आकर स्थिर हो जाती है, दश स्थान श्याव वर्ण का हो जाता हे, वहा चुभने तथा फटने सदृश वेदना होती है। शाखा मे दश होने पर वेदना ऊपर की ओर जाती है। मन्द विप बिच्छू दश से वेदना, कम्पन गात्र-स्तम्भ तथा काले रक्त की प्रवृत्ति होती हे तथा दश स्थान से वेदना ऊपर की ओर जाती हे। दाह, स्वेद, ज्वर तथा दश स्थान पर शोथ होता है।

मध्यविप बिच्छुओ के द श से जिह्वा मे शोथ, भोजन का अवरोध तथा तीव्र मूर्च्छा होती है।

महाबिच्छुओ के द श से सर्पविप के समान लक्षण होते है। द श स्थान पर स्फोट उत्पत्ति, दाह, ज्वर, नाक मुख और कान आदि से काला रक्त बहता हे, जिह्वा मे शोथ, शरीर मे जकडाहट, इन्द्रियो के विषयो के ज्ञान का न होना, स्वेद प्रवृत्ति, मुख का सूखना, बेचैनी मूर्च्छा मास का सडना होता है। शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

आधुनिक मतानुसार— बिच्छू के द श मे द श स्थान पर रक्तिमा के साथ तीव्र दाहक वेदना होती है जिसका प्रसार ऊपर की ओर होता हे, कभी-२ शिरोभ्रम, पेशियो, मे निर्बलता, वमन, अतिसार, आक्षेप, मानसिक विक्षोभ, अधिक स्वेद प्रवृत्ति, कभी-कभी मूर्च्छा, द श स्थान पर शोथ हो सकता है, मृत्यु कदाचित होती है। ये लक्षण २४-२८ घटे तक रहते ह किन्तु तन्त्रिका लक्षण एक सप्ताह तक मिल सकते है। वयस्को मे मृत्यु नही पाई जाती किन्तु बच्चो की मृत्यु फुपफुस शोथ से हो सकती है।

चिकित्सा—

महाविष तथा मध्यविप वाले बिच्छुओ के द श मे सर्प दष्ट की भाति चिकित्सा करने का उल्लेख आचार्य सुश्रुत ने किया है। इनमे अरिष्टाबन्धन, प्रच्छन, प्रति-

सारण आदि उपक्रम करने चाहिए।

प्रतिसारण प्रयोग—दश स्थान के चारो ओर स्वेदन करके वहा पाछकर प्रतिसारण करना चाहिए। इस हेतु हल्दी, सेंधव, त्रिकटु, शिरीष के फल और फूलो के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

स्वेद प्रयोग—शिरीषादि विषहर द्रव्यो से बनाई उत्कारिका से स्वेद करना चाहिए।

परिषेक—विच्छू वातोष्ण कीट है अत उष्ण उपचार हितकारी होता है। कोल्हू के ताजे तेल या विदारी गण से सिद्ध तेल से सुहाता गर्म परिषेक, सैन्धव मिश्रित घृत से बार-बार या कुछ गर्म दूध मे लवण काजी मिश्रित कर सिंचन करना चाहिए।

लेप प्रयोग—कबूतर की बीट, बिजौरा नीबू, शिरीष के फूल का रस, शखिनो, मदार दूध, सोठ तथा करज की गुद्दी–इनके समभाग चूर्ण को मधु के साथ मिश्रित कर लेप करें।

कबूतर की बीट, हरड, सोठ और तगर को विजौरे नीबू के रस मे मिलाकर लेप करें।

शिरीष के बीज, पिप्पली को पीस वत्ती बना रखले, इसे जल या बकरी के दूध मे पीसकर लेप करें।

जीरा सैंधव को पीस घृत एव मधु मे मिला लेप करे।

कच्चे पपीते का दूध या प्याज के रस का लेप करें।

कवोष्ण खली (तिल कल्क) या गोवर का लेप करे।

निर्मली के बीज को पानी मे घिसकर चिपकाने से विष का आचूषण होकर वेदना का शमन होता है।

विच्छू के विष मे सब चिकित्सा निष्फल हो जाने पर विष के बहुत प्रबल होने पर 'विष विषघ्नमुक्तम्' वाक्य आधार पर दश स्थान पर विष वत्सनाभ या जयपाल की गिरी को पानी मे घिसकर लेप करे या सखिया विष नीबू रस मे पीसकर लेप करने से विष नष्ट हो जाता है।

धूपन प्रयोग—मोर एव मुर्गे की पख, सेन्धव नमक तेल और घी इनका दश स्थान पर धूम्र प्रयोग कराये।

कुसुम्भ के फूल तथा हल्दी अथवा हल्दी और कोदो घास को घी मे मिलाकर गुदा प्रदेश पर धूप देवें।

नस्य प्रयोग—हुरहुर के पत्तो को मलकर सूघने से क्षण मात्र मे विष उतर जाता है।

अञ्जन प्रयोग—नमक के पानी को आख मे डालना या लेखन वर्त्ती का अञ्जन करना चाहिए।

कर्ण विन्दु प्रयोग—कासमर्द के पत्र, कुशा और कास की जड को मुख मे चबाकर रोगी के कान मे फूकें।

विच्छू के वाये अङ्ग मे काटने पर दाहिने तथा दाहिने अङ्ग मे काटने पर वाये कान मे तत्काल लवण मिश्रित जल (सतृप्त घोल) के कुछ विन्दु भरने से वेदना का शमन होता है।

पानक प्रयोग–मधु युक्त घृत पान या अधिक शर्करा युक्त दूध पान कराना चाहिए।

गुड मिश्रित दूध को ठण्डा कर अथवा चातुर्जात मिश्रित गुड के शर्वत को बहुत ठण्डा कर पिलावें।

आधुनिक मातानुसार—

सर्व प्रथम दश स्थान पर बाधना चाहिए। इसे प्रति २०-३० मिनट मे १-२ मिनट ढीला करना चाहिये तथा आवश्यकता पर भेदन करना चाहिए। वृश्चिक विष (विच्छू का विष) अम्लीय प्रतिक्रिया वाला होता है अत क्षारीय द्रव्यो का स्थानिक प्रयोग करना चाहिए। इस हेतु अमोनिया, वोरेक्स या पोटेशियम परमैंग्नेट के तनु विलयन से धोना चाहिये। भेदन नही करने की स्थिति मे दश स्थान पर टिंक्चर आयोडीन लगाना लाभप्रद है अथवा पोटेशियम परमैंग्नेट तथा टार्टरिकाम्ल (इमली का सत) के ४-४ कण रख २-४ बूद पानी टपकाने से विष दूर होता है तथा तुरन्त आराम आ जाता है। दश स्थान के चारो ओर नोवोकेन २% तथा एड्रीनलिन १००० मे १ की ४ बूद का सूचीवेध देने से वेदना का शमन होता है अथवा कोकेन विलयन ५% की ५-१० बूद दश स्थान के चारो ओर लगाने से वेदना की अनुभूति नही होती। सभी विच्छुओ के लिए प्राप्त विशेष एन्टीवेनिन का प्रयोग करावें। पेशी उद्वेष्ट कम करने हेतु कैल्शियम ग्लूकोनेट १०% १० मिली. अन्त शिरा द्वारा धीरे-२ देवें। फुफ्फुस शोथ रोकने हेतु एट्रोपिन इन्जेक्शन दें। आक्षेप एव चिन्ता को कम करने हेतु वार्विट्यूरेट्स का प्रयोग तथा स्तब्धता की अवस्था मे हाइड्रोकार्टिसोन के साथ ग्लूकोज सेलाइन प्रयोग करे। श्वसनावसाद की स्थिति मे कृत्रिम श्वसन ऑक्सीजन प्रयोग करें।

※ वृश्चिक दंश की अचूक चिकित्सा ※

डा० शिवपूजन सिह कुशवाह शास्त्री एम० ए०, ज्वालापुर

—०※०—

बिच्छू के डंक मारने पर तत्काल उपाय—

यदि बिच्छू हाथ, पैर, अगुली आदि मे डक मारे तो तत्काल ही डक मारे हुए स्थान से चार अगुल ऊपर की ओर सूत, सुतली या नरम चमडे से कसकर बध बाध दे। इतना कसकर न बाधे कि चमडी कट जाय और इतना ढीला भी न बाधे कि नीचे का रक्त नीचे न रुके। एक ही बधन बाधकर सन्तोष न कर ले। आवश्यकता हो तो पहिले बधन से कुछ ऊपर द्वितीय और तृतीय बधन भी बाध दे। सर्प दश पर भी ऐसे ही बधन लगाये जाते है। तीक्ष्ण विष वाले बिच्छुओ और सर्पो मे कोई भेद नही है, इनका डक मारा हुआ व्यक्ति भी मर जाता हे।

वाग्भट मे लिखा है—"साधयेत्सर्पवद्दष्टान्विषोग्रै कीट वृश्चिकै।" उग्र विष वाले कीट (कीडे) और बिच्छू के डंक मारने पर सर्पदश के समान उपाय करना चाहिए।

बधन बाधने से बिच्छू का विष रक्त मे मिलकर आगे नही फैलता है। यदि विष रक्त मे मिल जायेगा तो सम्पूर्ण शरीर मे फैल जायेगा।

यदि सर्प या बिच्छू के डक मारे हुए स्थान ऐसे हो जहा बधन न बाधे जा सके तो डक मारे हुए स्थान को तत्क्षण चीरकर और वहा का थोडा-सा मास निकाल कर उस स्थान को तेज अग्नि से दाग देना चाहिए। बहुत से लोग मुख से चूसकर विष को निकाल देते है, परन्तु यह खतरे से खाली नही है।

यदि डक वाला स्थान ऐसा हो जहा न तो बधन ही बाधा जा सके और न चीरा ही जाय, तब दश वाले स्थान के पास का मास छुरे से इस प्रकार काटें कि एकदम [illegible] निकल जावे। फिर उस स्थान को तप्त किये लोहे से दाग दें। राल और जैतून का तैल गर्म करके लगाना भी अच्छा है। यदि दश वाले स्थान पर ओषधि लगाने से अपने आप स्राव हो जाय तो अच्छा चिह्न समझना। [illegible] भरने दो, जिससे विष भली भाति निकलता रहे। क्योकि विष का एकदम निकल जाना ही उत्तम है।

दश वाले स्थान पर कोई अच्छा लेप करो, यथा—हल्दी, पीर, अतीस, कालीमिर्च इन सबको बैगन के स्वरस मे पीसकर लेप करो।

उग्र विष वाले बिच्छू के दश वाले व्यक्ति को घृत व दही पिलाओ।

बिच्छू के दश वाले व्यक्ति को ना-बराबर (अ सम) घृत व शहद मिला हुआ दूध अथवा बहुत सी खाड मिला हुआ दुग्धपान कराना लाभदायक है।

वाग्भट ने कहा है—

लेप सुखोष्णश्च हित पिण्याको गोमयोऽपिवा।
पाने सर्पिर्मधुयुत क्षीर वा भूरि शर्करम्॥

अर्थात् बिच्छू के दश वाले स्थान पर गौबर का लेप हितकारी है। घृत व शुद्ध शहद मिला दूध या अधिक चीनी मिला दूध पथ्य है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—

कुटजस्य फल पिष्ट तगर जालमालिनी।
तिक्तेक्ष्वाकुश्च योगोऽय पानप्रधननादिभि॥
वृश्चिकोन्दुरुलूताना सर्पाणा च वित हरेत्।
समातोह्यमृतेनाय गराजीर्ण च नाशयेत्॥
कपोतविण्मातुलुङ्ग शिरीषकुसुमाद्रस।
शह्नित्यार्क पय शुन्ठी करञ्जो मधुवार्श्चिके॥
वृश्चिके स्वदमभ्यङ्ग घृतेन लवणेन च।
सेकाश्चोष्णान् प्रयुञ्जीत भोज्य पान च सर्पिष॥

—चरक चिकित्सा स्थानम् विष चिकित्सा
अध्याय २२, श्लोक २०३, २०७, २०८

इन्द्र जौ, तगर, जालमालिनी (देवदाली), तिक्त लौकी इनके समभाग चूर्ण को जल के साथ खाने से तथा उनके चूर्णो मे प्रधमन नस्य आदि के प्रयोग से बिच्छू, चूहा, लूता और सर्प का विष नष्ट होता है। यह योग

विष विकारो मे अमृत के समान हे। यह योग गर (कृत्रिम विष और अजीर्ण) विष को भी नष्ट करता है।

बिच्छू के काटने पर कबूतर की बीट, विजौरा नीबू, शिरीष के फूल का रस, शखिनी, मदार का दूध, सोठ करज की गुट्टी सबके समभाग चूर्ण को मधु मे मिलाकर काटे हुए स्थान पर लेप से बिच्छू का विष दूर होता है।

बिच्छू के काटे हुए स्थान पर स्वेदन, घी और पानी की मालिश, गरम औषधियो से परिषेक तथा भोजन और पान मे घी का प्रयोग अधिक करना चाहिए।

वाग्भट ने लिखा है—

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीज
त्रिभावित पिप्पलीचूर्णमिश्रम्।
एषो गदो हन्ति विषाणीकीट
भुजङ्गलूतोन्दुरु वृश्चिकानाम्॥

सिरस के बीज, पीपल के चूर्ण को मिलाकर अर्क (मदार) मे दूध की तीन भावनायें दे। इस औषधि के लगाने से कीट, मकडी, चूहा और बिच्छू का विष नष्ट हो जाता है। पुन –

त्रयोऽशा हरतालस्य त्वेकोश सागरस्य च।
पिष्टवाऽर्क पयसालेपो वृश्चिकार्ति व्यपोहति॥

अर्थात् आक के दूध मे हरताल ३ भाग और नौसादर १ भाग पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष शान्त हो जाता है।

शिखि कुक्कुटबर्हाणि सैंधव तैलसर्पिषी।
धूमोहन्ति प्रयुक्तस्तु शीघ्र वृश्चिकज विषम्॥
—सु क अ ८

मोर और मुर्गे के पख, नमक, तैल, घृत इनकी धूम का प्रयोग करने से बिच्छू का विष नष्ट होता है।

कुसुम्भ पुष्प रजनी निशा वा कोद्रव हृणम्॥
एभिर्घृताक्तैर्धूपस्तु पायुदेशे प्रयोजित।
नाशयेदाशु कीटोत्थ वृश्चिकस्य च यद्विषम्॥
—सु क अ ८

कुसुम्भ का पुष्प, हल्दी, दारुहल्दी अथवा कोदो का तृण, इनको घी मे मिलाकर गुदा प्रदेश मे धूम दिया जाय तो वह कीट व बिच्छू के विष को नाश कर देता है।

य काशमर्द्पत्र वदते प्रक्षिप्य कर्णफूत्कारम्।
मनुजो ददाति शीघ्र जयति विष वृश्चिकाना स॥

कसौदी या नीम के पत्रो को मुह मे चबाकर बिच्छू के काटे व्यक्ति के कान मे फूक मारने से भी बिच्छू का विष शीघ्र उतर जाता है।

दशति मानवक यदि वृश्चिक
सलिल घृष्ट चतुर्मुख पुत्रकम्।
हरति दशरुज च विलेपतो
धृशमिदभिषजा मुनमोदितम्॥

यदि किसी मनुष्य को बिच्छू डक मारे तो दश स्थान पर सखिया को पीसकर गाढा-२ लेप करने से शीघ्र ही पीडा शान्त होती है।

सुश्रुत सहिता द्वारा चिकित्सा—

उग्रमध्यविषैर्दष्ट चिकित्सेत् सर्पदष्टवत्।
आदश स्वेदित चूर्णं प्रच्छित प्रतिसारयेत्॥६७॥
रजनी सैन्धवव्योष शिरीषफलपुष्पजे।

प० अत्रिदेव गुप्त "विद्यालकार" कृत टीका—तीव्र और मध्य विष वाले बिच्छुओ के काटने पर सर्पदष्ट की भाति चिकित्सा करे। दश के चारो ओर स्वेदन करके वहा पर पोछकर हल्दी, सैंधव, त्रिकटु, शिरीष के फल और फूलो के चूर्ण से प्रतिसारण करे रगडे।

मातुलुङ्गम्लग मूत्रपिष्ट क सुरसाग्रजन्॥६८॥
लेपे, स्वदे तुखोष्ण च गोमय हितमिष्यते।
पाने क्षौद्रयुत सर्पि क्षीर वा बहुशर्करम्॥६९॥
दश मन्दविषाणा तु चक्रतैलेन सेचयेत्।
विदारीगणसिद्ध न सुखोष्णेनाथवा पुन॥७०॥
कुर्याच्चोत्कारिकास्वेद विषघ्नैरुपनाहयेत्।
गुडोदक वा सुहिम चातुर्जातकसयुतम्॥७१॥
पानमस्मै प्रदातव्य क्षीर वा सगुड हिमम्।
गुडोदक वा सुहिम चातुर्जातकसयुतम्॥७१-।
पानमस्मै प्रदातव्य क्षीर वा सगुड हिमम्।
शिखिकुक्कुटबर्हाणि सैन्धव सैन्धव तैलसर्पिषा॥७२॥
धूमो हन्ति प्रयुक्तस्ते शीघ्र वृश्चिकज विषम्।
कुसुम्भपुष्प रजनी निशा वा काद्रवतृणम्॥७३॥
एभिर्घृताक्तैर्धूपस्तु पायुतेशे प्रयोजित।
नाशमेदाशु कीटोत्थ वृश्चिकस्य च यद्विषम्॥७४॥
—सुश्रुत सहिता कल्प स्थानम् अध्याय ८

तुलसी के पत्तो को विजौरे के रस और गोमूत्र मे पीसकर लेप करे। स्वेद के लिए सुखे गोबर से सुहाता-२

गरम सेक देवे। पीने के लिए घी को मधु के साथ या मधुर शर्करा वाला दूध देवे। मन्द विष वाले वृश्चिको के दश मे कोल्हू के ताजे तैल से परिषेक करे। अथवा विदारीगण से सिद्ध तैल से सुहाता हुआ गरम सेक करे। शिरीषादि विषहर द्रव्यो से बनाई उत्कारिका से स्वेद करे। विषघ्न द्रव्यो के उपनाह बाधे। दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर के मिले गुड के शर्बत को बहुत ठडा करके पीने के लिए देना चाहिए। मोर-मुर्गे के पख, सैंधव, तैल, घी इनका धूम्र विच्छू के विष को शीघ्र नष्ट करता है। कुसुम्भ के फूल और हल्दी या हल्दी और कोदा घास को घी मे मिलाकर दी गई धूप कीटो और विच्छू के विष को नष्ट करता है।६८ से ७४ तक।

बिच्छू विषनाशक आयुर्वेदीय चिकित्सा—

१ अपामार्ग (ओगा, लटजीरा) को उखाडकर उसकी जड को साफ कर ले और बिच्छू काटे हुए रोगी को चबाने के लिए दे और इसके पत्तो का रस दश स्थान पर मले तो बिच्छू विष तत्काल नष्ट हो जाता है। यह परीक्षित प्रयोग है। यदि अपामार्ग को हाथ मे रखकर बिच्छू को पकड ले तो वह डक नही मार सकता है।

२ मूली का छिलका बिच्छू के ऊपर रखने या मूली के पत्तो का स्वरस विच्छू पर डालने से उसकी मृत्यु हो जाती है। खीरे के पत्तो और उसके स्वरस मे भी यही गुण है। मूली के छिलके बिच्छू के बिल पर रख देने से वह बाहर नही आता। जो मनुष्य सदा मूली व खीरे खाता है उसे बिच्छू विष हानि नही करता हैं। मूली की जड १ तोला लेकर उसमे नमक मिलाकर महीन पीस दश पर लेप करने से विष की पीडा शान्त होती है। मूली की जड बिच्छू को सुघाने से वह मूर्च्छित हो जाता है।

३ बिच्छू के दश पर अर्क का दूध लगाने से उसका विष उतर जाता है।

—अनुभूत चिकित्सा सागर २८/७९*

४ साधारण बिच्छू का विष थोडी सी खाड पानी मिलाकर दश पर गाढा लेप करने से नष्ट हो जायेगा।

५ बिच्छू के विष पर ढाक (पलाश) के बीजो को अर्क दुग्ध मे घिसकर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

६ इमली बीज के सिरे को काटकर कुछ घिसकर उसे दश स्थान पर चिपका दे विष उतर जायेगा।

७ निर्मली के बीज को पानी मे घिसकर दश पर लेप करने से बिच्छू के विष की वेदना शान्त होती हैं।

८ कागजी नीबू का रस ५०० ग्राम, नौसादर २५० ग्राम, शुद्ध शहद ७५ ग्राम और मैथीलिटेट स्प्रिट १५० ग्राम। सबको मिलाकर एक बोतल मे भर दो और तीन दिन तक बार-बार हिला दिया करो। कुछ दिन पश्चात् इस आसव को किसी दूसरी बोतल मे भर दो। जिस स्थान पर बिच्छू डक मारे उस स्थान पर रुई के फाहे को इससे तर करके लगावे, शीघ्र ही पीडा दूर होती है।

९. अरीठे चबाने से भी बिच्छू का विष उतर जाता है। अरीठे को बारीक पीसकर दश स्थान पर लगा दे। अरीठे को तम्बाकु की तरह चिलम मे भरकर धूम्रपान करे तो विष शीघ्र उतर जाता है।

१० लहसुन का रस और शुद्ध शहद १५०-१५० ग्राम, दोनो को मिलाकर पिलाने से रोगी को शीघ्र लाभ होता है। लहसुन और नमक को मिला कूट-पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने से विष उतर जाता है।

११ एक या दो जमालगोटे पानी मे पीसकर दश स्थान पर लगाने से भयकर बिच्छू का विष भी तत्काल नष्ट हो जाता है। अनुभूत परीक्षित प्रयोग है।

१२ घी मे कुछ सेंधा नमक मिलाकर पीने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

१३ दूध मे सेधा नमक पीसकर मिला दो और उसे अग्नि पर गर्म करो। काटे स्थान पर इस नमक मिश्रित दूध का सिंचन करने से विष उतर जायेगा।

१४ नीम वृक्ष की छाल या पत्तियो या फलो को तम्बाकू की भाति चिलम मे रखकर पीने से बिच्छू का विष शर्तिया उतर जाता है। परीक्षित प्रयोग है।

१५ पीपल वृक्ष की जड की छाल १ तोला, मोरपख ३ माशे दोनो को चिलम मे रखकर धूम्रपान करावे।

१६ एक चिलम मे केवल मोरपख रखकर ऊपर से जलते हुए कोयले या बिना धूये का अङ्गारा रखकर तम्बाकू की तरह पिलाओ, विष शीघ्र उतर जायगा।

* प० जयदेव शर्मा कृत "ऋग्वेद सहिता भाषा भाष्य" द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ४६४

मोरपख को घी मे मिलाकर काटे हुए स्थान पर उसकी धूनी भी दो।

१७. हल्दी, अपामार्ग, कलौंजी और चोक मूल का धूम्रपान कराने से विच्छू का विष शान्त हो जाता है।

१८ जीरे का धूम्रपान कराने से विष शान्त होता है।

२६. सेंधा नमक की एक डली को तीन दिन धूप मे धूपित कर तीन दिन तक छाया मे रखे। फिर सुरमे की तरह पीसकर शीशी मे रखें और दश वाले रोगी के काटे स्थान के विपरीत नेत्र मे एक सलाई भरकर लगावे।

२० तीन माशे सेंधा नमक एक पाव पानी मे घोलकर रोगी के कर्ण और नेत्रो मे डाल दे तथा दश स्थान पर रुई की फुरेरी भिगोकर रख दें, तुरन्त शाति मिलेगी।

२१ दश स्थान पर पत्थर का कोयला घिसकर लगाने से पीडा शान्त हो जाती है।

२२ गोघृत और सेंधा नमक मिलाकर दश स्थान पर लगाने से पीडा शान्त होती है।

२३ तारपीन का तैल पीडित स्थान पर लगाने से विच्छू के काटने से होने वाला दर्द शान्त होता है।

२४ तुलसीपत्र को गोमूत्र अथवा नीबू के रस मे पीसकर दश स्थान पर लगाने से पीडा कम होती है।

२५ एक चौडे मुख की बोतल मे मैथिलेटेड स्प्रिट डाल लें और जो भी विच्छू मिले उस पर लगी मिट्टी को साफ करके उन्हे जीवित ही बोतल मे डालकर वन्द कर दे। विच्छू स्प्रिट मे डालते ही मर जायेंगे। विच्छू के काटे स्थान पर इस स्प्रिट के फाये को लगा देने से दर्द से रोता हुआ व्यक्ति हसने लगता है।

२६ शहद का मोम, अर्क (मदार) और थूहर का दूध, तीनो को समान भाग मिश्रित कर मटर के समान गोलिया बनाकर रख ले। एक गोली को थोडा गर्म कर दश स्थान पर चिपका दे, पीडा नष्ट हो जायेगी।

२७ पीली सखिया, नौसादर और जयपाल समान भाग लेकर नीबू के रस मे खरल करमे गोलिया बनाकर रख लें। गोली को घिसकर दश स्थान पर लगा ऊपर से थोडा सेक कर दे, इससे जलन तक नही रहेगी।

२८ सेधा नमक १ तोला, काली मिर्च १ माशा के साथ १ छटाक घृत मिलाकर सेवन करने मे विच्छू का विष उतर जाता है।

२६ सत्यानाशी के बीजो का तैल दश स्थान पर लगा देने से विष का नाश हो जाता है।

३० बबूल की पत्तियो को मुख बन्द करके चबावे और रोगी के कानो मे २-४ फूक लगावें, लाभ होगा।

३१ एक काले विच्छू का डक भाग काटकर उसे एक शीशी मे रखकर ऊपर से ५० ग्राम तिल का तैल डाल कार्क लगाकर रख दो। दश स्थान को कुरेद कर वहा सींक से २ बूद तैल लगा दो, विष नष्ट हो जायगा।

३२ यदि विच्छू का काटा हुआ व्यक्ति बीस अङ्क उल्टे गिने तो विच्छू का विष उतर जायेगा। रोगी २०, १६, १८, १७, १६, १५, १४, १३, १२, ११, १०, ६, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस तरह गिने।

३३ नीलाथोथा (तूतिया) १ तोला, नौसादर १ तोला, फिटकरी २ तोला, तीनो को एक कटोरी मे पिघलाकर बतासे की तरह टिकिया बना लें। टिकिया को जल मे घिसकर दश स्थान पर लगावें या दियासलाई से आग दिखाकर दश स्थान पर चिपका दे। यह टिकिया कुछ ही मिनटो मे विष को चूस लेती है।

३४ दश स्थान पर लाल मिर्च पानी मे घिसकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

३५ अमलतास के बीज को जल मे घिसकर दश स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

३६ भृङ्गराज (भागरा, भँगरिया) के पत्तो को विच्छू के दश स्थान पर जहा सूजन हो, उतने स्थान पर अच्छी तरह से मसलना चाहिए। इससे पीडा दश स्थान पर ही केन्द्रित हो जावेगी और इसकी लुगदी को दश स्थान पर बाध देने से पीडा कम हो जाती है।

३७ आम की गिरी को जल के साथ पत्थर पर घिस कर लगाने से विच्छू विष की शान्ति होती है।

३८ छोटी इलायची को मुख मे चबाकर रोगी के कान मे फूक मारने से लाभ होता है। यदि इलायची का तैल प्राप्य हो तो दश स्थान पर लगा दे।

३६ अमृतधारा (पिपरमेंट, अजवायन व कपूर का सत् या फूल) का लेप विच्छू दश पर करे, लाभ होगा।

४० पुराने आक (जिस पर फल-फूल लगे हो) की मोटी जड तथा अपामार्ग की जड रोगी के हाथ मे रखवा कर बलपूर्वक मुट्ठी बधवायें, विष उतर जायगा।

४१ आक के पत्तो के रस का नस्य रोगी को दे । छीक आने पर वृश्चिक दंश मे विचित्र लाभ होता है ।

४२ तितली के पत्रो का स्वरस थोडा-२ कई वार पिलाने से विच्छू का विष उतर जाता है । पत्तो का रस भी दंश पर लगाना अत्यन्त आवश्यक है ।

४३ कसौदी का फल भूनकर खिलाने से विच्छू का विष उतर जाता है । कसौदी के वीज पानी मे पीसकर दंश स्थान पर लगाने से भी वृश्चिक दंश नष्ट होता है।

४४ दंश स्थान पर प्याज का रस और छिलका मलने तथा थोडा सा गुड खा लेने से विच्छू का विष उतर जाता है । अनुभूत परीक्षित योग है ।

४५ भाग के वीजो को कूट-पीसकर और मौम मे मिलाकर खिलाने से विच्छू का विष उतर जाता है ।

४४ इन्द्रायण का हरा फल खाने से वृश्चिक विष शान्त हो जाता है।

४४ शालिपर्णी (हिन्दी मे सरिवन, मराठी मे सालवण, गुजराती मे समेरवो, बगला मे शालपानी कहते है) का सुहाता-सुहाता गरम काढा विच्छू के काटे हुए स्थान पर सिंचन करने से विष उतर कर पीडा नष्ट होती है ।

४८ सेधा नमक २ रत्ती १ माशे जल मे घोलकर दो बूद नेत्रो मे टपकाने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

४९ कौच के वीज को छीलकर विच्छू के काटे हुए स्थान पर मलने से विष शीघ्र उतर जाता है।

५० मुश्की घोडे के नाखून को पानी मे घिसकर दंश स्थान पर लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है। मुश्की घोडे का नाखून न मिले तो साधारण घोडे के नाखून से भी काम चल सकता है ।

५१. कली का चूना, नौसादर, सुहागा तीनो समभाग लेकर मलो और विच्छू के काटे हुए रोगी को सुघाओ । कई वार सुघाने से आराम अवश्य होगा ।

तम्बाकू के साथ खाने वाला चूना और नौसादर मिला हाथो से मलकर सुघाने से विष उतर जाता है । इसी से अग्रेजी औषधि 'लिक्वर एमोनियम फोर्ट' वनती है। इसके सुघाने से भी विष उतर जाता है ।

५१ चूहे की मेगनी को पानी के साथ पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

५३ सूखा अमचूर और सूखा लहसुन दोनो को जल मे पीसकर लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

५४ हरताल, हीग, साठी चावल तीनो को जल मे पीस दंश पर लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

५५. नीवू का रस वृश्चिक दंश पर मलने से विष उतर जाता है ।

५६ नागरमोथा को पीसकर तथा पानी मे घोलकर पीने से और दंश स्थान पर उसी का गाढा-२ लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है । परीक्षित प्रयोग है ।

५७ वेर के पत्तो को पानी मे पीसकर टिकिया वना लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

५८ वकरी की लेंडी (मेगनी) पानी के साथ महीन पीस लेप करना वृश्चिक दंश मे लाभकारी है ।

५९ दालचीनी का तैल मलना भी लाभकारी है ।

६० लहसुन को जैतून से तैल मे पीसकर वृश्चिक दंश पर लगाने से विष उतर जाता है।

६१ सत्यानाशी की छाल को पान मे रखकर खाने से वृश्चिक विष नष्ट हो जाता है ।

६२ रविवार के दिन खोदकर लाई गई कपास की जड चवाने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

६३ कपास के पत्ते और राई दोनो को मिला जल के साथ पीसकर दंश स्थान पर लेप करना लाभकर है ।

६४ पीपर और कपास के वीज समभाग ले जल मे पीसकर दंश स्थान पर लेप करना चाहिए ।

६५ ढाक के वीजो को आक के दूध मे पीसकर लेप करने से वृश्चिक विष उतर जाता है ।

६६ सज्जी को महीन पीसकर और शहद मे मिला कर लेप करने से वृश्चिक दंश मे शीघ्र लाभ होता है ।

६७ काजी मे जवाखार और नमक पीसकर मिला दो तथा उसे पुन गरम करके दंश स्थान पर सिंचन करने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

६८ पलाश पापडा को पानी मे पीसकर वृश्चिक दंश पर लगाने से विष उतर जाता है ।

६९ सेधा नमक, हीग, मैनसिल, चमेली के पत्ते और सोठ सवको एकत्र महीन पीसकर छान लो । फिर इस चूर्ण को खरल मे डालकर उपर से गाय के गोवर का रस देकर घोट लो और गोलिया वनाकर रख लो ।

इन गोलियो को जल मे घिसकर वृश्चिक द श के ऊपर लगाने से विष उतर जाता है।

७० हुलहुल (हुड्हुड) के पत्तो का चूर्ण वृश्चिक द श वाले व्यक्ति को सु घाने से तत्काल लाभ होता है।

७१ कुश, कास की जड, कसौंदी के पत्ते इन तीनो वूटियो को मुख मे रखकर चवाओ और जिस व्यक्ति को विच्छू ने डक मारा हो उसके कानो मे फू क दो। इस उपाय के करने से वृश्चिक विष नष्ट हो जाता है।

७२. मोर के पख को घृत मे मिलाकर अग्नि पर डालो और उसका धूम्र वृश्चिक द श पर लगाने मे विष उतर जाता है।

७३. कवूतर की वीट, हरड, तगर व सोठ इनको विजौरे नीवू के रस मे मिलाकर देने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

७४ नीले पुष्प वाले घमिरा के पत्ते मसलकर सु घाने से वृश्चिक विष तत्काल उतर जाता है।

७५. जहरमोहरा को गुलावजल मे घिसकर द श स्थान पर लगाने से वृश्चिक विष, सर्प विष नष्ट होता है।

७६ दशाग औषधि (वच, हीग, वायविडङ्ग, गज-पीपल, सैंधा नमक, पाठा, काली अतीस, सोठ, काली मिर्च, पीपर समभाग) लेकर कूट-पीस कर चूर्ण वना लेना चाहिए। समय पर फाककर ऊपर से जल पीना चाहिए। इससे समस्त विषैले जानवरो का विष नष्ट हो जाता है।

७७ मोरपख, मुर्गे का पख, सैंधा नमक, तैल, घृत सवको मिलाकर इनकी धूनी देने मे वृश्चिक विष उतर जाता है।

७८ हल्दी, सैंधा नमक, सोठ, मिर्च, पीपर, सिरस के फल या फूल इन सवका चूर्ण वना ले। द श स्थान को स्वेदित करके इस चूर्ण को घिसने से विष नष्ट होता है।

७९ द श स्थान पर थोडा सा चूना लगाओ और ऊपर से गन्धक का तेजाव लगा दो, शीघ्र आराम होगा। अनुभूत परीक्षित प्रयोग है।

८० कार्वोलिक एसिड से विच्छू के काटे हुए स्थान को जला दो, विष ऊपर नही चढेगा।

८१ श्याम तुलसी का रस और नमक मिलाकर दो तीन वार लगाने से वृश्चिक विष उतर जाता है।

८२ सोठ, विजौरे का रस, हरताल, सेंधा नमक, कवूतर की वीट सवको वारीक पीसकर द श स्थान पर लेप करने मे विष उतर जाता है।

८२ हरताल, हीग, विजौरे नीवू का रस तीनो को खरल करके गोलिया वना लो। जव किसी को विच्छू डक मारे तव इन गोलियो को पानी के साथ पीसकर द श स्थान पर लेप कर दो और इसी को अजन के समान नेत्रो मे लगा दो, विष नष्ट हो जायगा।

८४ योग चिन्तामणि मे लिखा है - सिन्दूर, मीठा तेलिया, चूक, सुहागा, पारा, निशोथ, सोठ, काली मिर्च, पीपल, पाचो नमक, हल्दी, दारुहल्दी, कमल के पत्ते, वच, फिटकरी, अरण्डी की गिरी, कर्पूर, चीता, मजीठ, नौसा-दर सवको समभाग लेकर महीन पीस लो। फिर इस चूर्ण को गोमूत्र, गुड, आक के दूध और थूहर के दूध मे मिला कर वृश्चिक द श पर लगाओ। यह प्रवल विषनाशक है।

८५ पोदीना और जौ के आटे को तुलसी के जल मे पीसकर लगाने से विष उतर जाता है।

८६. वृश्चिक द श पर तत्काल वर्फ का पानी रखने से दर्द शीघ्र शान्त हो जाता है। इससे विष उतरता नही है, थोडी शान्ति मिल जाती है। वर्फ रखकर उप-र्युक्त कोई औषधि करनी चाहिए।

८७ पुरानी सुपारी वारीक पीस चिलम मे रखकर तम्वाकू के समान धूम्रपान करने से शीघ्र लाभ होता है।

८८ लहसुन के रस मे लौंग को घिसकर लगाने से पीडा और दाह कम होकर वृश्चिक विष उतर जाता है।

८९ श्वेत पुनर्नवा की जड से अल्प विष वाले विच्छू के डक को स्पर्श करने मे विच्छू निर्विष होता है।

९०. नौसादर ५० ग्राम, पोटाश परमेगनेट (पानी मे डालने वाली औषधि) ६ माशे दोनो को मिलाकर खरल करे। इसको थोडी सी लेकर पानी मे घोल द श स्थान पर लगावे और अग्नि से सेक दे।

९१ दियासलाई का मसाला जल मे पीसकर द श स्थान पर लगावे।

९२ नागरमोथा पीना तथा लगाना चाहिए।

९३ फाल्गुन मास मे जव वौर आता है उस समय जिस वौर पर पहली दृष्टि पडे उसको तोडकर दोनो हाथो से भलीभाति मसलना चाहिए जिससे उसका रस

हथेलियो मे अच्छी तरह लग जाय। यदि यह क्रिया रविवार या मगलवार को हो तो लाभप्रद है और एक व- तक इसका प्रभाव रहता है। वृश्चिक द श वाला रोगी आवे तो द श स्थान पर ४-५ मिनट तक अपनी हथेली रखो, विप उतर जायेगा।

९४ श्वेत फिटकरी को कटोरी मे डालकर अग्नि पर पिघला लो और कुछ गाढी होने पर चवन्नी वरावर बनाकर रख लो। इस टिकिया को अग्नि देकर कुछ पिघलाओ और वृश्चिक, मधुमक्खी, ततैया के द श स्थान पर त्रिपका दो, विप उतरने पर टिकिया स्वय ही छूट जावेगी।

९५. गिलोय की जड पुष्य नक्षत्र मे उखाड पीसकर पीने से ६ मास तक सर्प तथा वृश्चिक द श का भय नही रहता है।

९६ शकरकन्द के हरे पत्ते पीसकर द श स्थान पर बाधना चाहिए।

९७. गन्ने के सिरके मे नौसादर घोटकर द श स्थान पर थोडी देर तक मले और पाच-सात पर्त कपडे की पट्टी तर करके चिपका दे।

९८ सिंघिया विष को पीसकर दश स्थान पर लगाना चाहिए।

९९ पवार की जड को जल मे पीसकर लेप करने से विष करगे से विष उतर जाता है।

१०० एक छटाक चकवड की पत्ती पीसकर द श स्थान पर वाध देने से विप उतर जाता है।

१०१ करेले की जड को गोमूत्र के साथ घिसकर लगावें। यदि गोमूत्र उस समय प्राप्त न हो तो जल के साथ घिसकर लगाने से भी वृश्चिक विष नष्ट होता है।

१०२ सोल्यूशन (साइकिल के ट्यूब जोडने वाला) की दो बू द द शित स्थान पर लगाने से उसी समय विप नष्ट होकर पीडा मिट जाती है।

१०३ ग्रामोफोन के टूटे हुए रिकार्ड को जल के साथ घिसकर काटे हुए स्थान पर लगाने से भी वृश्चिक विप उतर जाता है।

१०४ पीडित स्थान पर स्वमूत्र का लेप यथासभव शीघ्र करें।

१०५ ईसरमूल (इसरोल), ईसरौल [मराठी मे सापसण, अग्रेजी मे इण्डियन बर्थ वर्ट) की जड का दशित स्थान पर लेप करना चाहिए। यह कोकेन इन्जेक्शन के समान द शित स्थान को सज्ञाशून्य बना देता है। जड का चूर्ण १/२ ग्राम की मात्रा मे आभ्यन्तर प्रयोग भी करा सकते है।

होम्योपैथिक चिकित्सा—

आर्सेनिक ३० शक्ति की १-२ बू द १०-१५ मिनट के अन्तर से खिला दे, तत्काल लाभ होगा।

एलोपैथिक चिकित्सा—

१ टिंचर आयोडीन का लगाना लाभप्रद है।

२ टिंचर मरक्यूरोक्रोम दश स्थान पर लगाना चाहिए।

३ लाइकर एमोनियम फोर्ट की शीशी का कार्क खोलकर दो-तीन वार सु घाना चाहिए। गर्भवती स्त्री और बच्चो को सु घाना मना है। एक बार कार्क खुल जाने पर औपधि पानी के समान हो जाती है और काम नही करती। इसके स्थान पर नौसादर और चूना को खूब मसल कर सु घावे। ठीक वैसा ही काम करता है।

४ कैम्फर क्लोरल जो कपूर १ औंस और क्लोरल हाइड्रेट को मिलाने से तैलवत् हो जाता है, वृश्चिक दश पर मलने के ५ मिनट मे विष उतर जाता है।

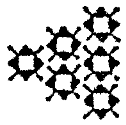
५ एमोनियम कार्वोनेट ५ ड्राम, खडिया मिट्टी ३ ड्राम दोनो को मिलाकर खरल मे महीन पीसकर मजबूत कार्क लगा दे। वृश्चिक द श पर जल के साथ लगावे तो शीघ्र विप उतर जाता है। इसमे ततैया, मधुमक्खी, कानखजूरे के विप को नाश करने की भी शक्ति है।

६ टिंचर कैप्सीकम २ बू द द श स्थान पर लगावे।

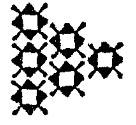
७ स्प्रिट एमोनिया एरोमेटिक ७-८ बू द ताजे जल के साथ रोगी को पिलावे।

८ पोटाशियम परमेगनेट और टार्टेरिक एसिड (नीबू का सत्) दोनो को अलग-२ पीसकर अलग-२ शीशियो मे भरकर रख लो। वृश्चिक द श पर प्रथम पोटाशियम परमेगनेट का थोडा चूर्ण रखकर ऊपर से टार्टेरिक एसिड का चूर्ण डालना चाहिए और बाद मे एक बू द जल डालने से उसमे उफान आकर विप शान्त

—शेपाश पृष्ठ ३२८ पर



विविध शूलहर बनस्पतियां



लेखक—मकनन वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी० एस-ए० एम०
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुज०



शरीर मे विविध स्थान पर विविध प्रकार के शूल होते है। शास्त्रो मे रोगाध्याय मे विविध शूलो की विस्तृत विवेचना मिलती हैं। उसी तरह वनस्पति के वर्णन मे भी विविध शूलो मे प्रयुक्त विविध वनस्पति का वर्णन पाया जाता है। शिर शूल, हृत्पीडा, पार्श्वशूल, कटिग्रह, कटि शूल, नेत्रशूल, उदरशूल, योनिशूल इत्यादि शूल विशेष मे शूल नाशक स्वतन्त्रतया प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियो का वर्णन संहिता ग्रन्थो मे उपलब्ध है। मैंने यहा कुछ विविध शूलहर वनस्पतियो का विवेचन किया है, जो उपयोगी होगा। भावप्रकाश प्रथम खण्ड से सन्दर्भ लेकर वर्णन किया हैं। हो सकता है अन्य वनस्पति भी दु खहर, पीडा हर हो। सामान्यतया देखे तो वातहर वनस्पति पीडा शामक होती है। यहा वातहर गुणयुक्त वनस्पति का नामोल्लेख नही किया है। क्योकि यहा केवल स्थान विशेष—अङ्ग विशेष शूल का तात्पर्य होने से सिर्फ उन शूलहर वनस्पति का नाम-गुण लिखा गया है। विद्वानो का मार्गदर्शन मुझे मान्य होगा।

शूलघ्न बनस्पतियों के नाम—

	वनस्पति	शूल विशेष गुण
१	हरीतकी	शूलघ्नी
२	शुण्ठी	आमवातघ्नी, शूलघ्नी
३	आर्द्रक	,, ,,
४.	पिप्पली	शुलाममारुतान्
५.	मरिच	शूलक्रमीन्
६.	यवानी (अजवायन)	शुक्रशूलहृत्
७	अजमोदा	रुजो हरेत्
८	शतपुष्पा	शूलाक्षिरोगहृत्
९	मिश्रेया-सुवा	योनिशूलनुत्
१०	चतुर्वीज	आध्यमान शूल, अजीर्ण शूल, पार्श्वशूल, कटिव्यथा
११	हिंगु	उदर शूल
१२	वचा	विवन्धाध्मानशूलघ्नी
१३	चोपचीनी	विवन्धध्मानशूलघ्नी,तनुवेदनाम्
१४	हपुपा	शूलहृत्
१५	विडङ्ग	शूलघ्न
१६	तुम्वुरु	शूलारुचि, प्लीहकृच्छ्राणि
१७	आरग्वध	हृद्रोग, उदावर्तशूलनुत्
१८.	इन्द्रयव (कुटजवीज)	शूलजित्
१९	रास्ना	समीरास्त्रवातशूलोदरापहा
२०	पुष्करमूल	विशेषात्पार्श्वशूलनुत्
२१	पाषाण भेद	हन्ति प्लीहशूलव्रणानि
२२	लशुन	हृद्रोग, कुक्षिशूल
२३	चुक्र (चूका)	शूल, आमवातहर, हृत्पीडाहृत्
२४	तगर	शूलहर
२५	गुग्गुल	आमवातहर
२६.	राल	शूलहर
२७	जातीफल	हृद्रुजा
२८	लवग	आध्यमान शूलमाशु विनाशयेत्
२९	एला	शिरोरुक्
३०	केसर	शिरोरुक्
३१	ह्रीवेर	हृद्रोग
३२	शटी-गन्धपलाशी	शूल हर
३३	ताम्बूल	श्रमापहम्
३४	गम्भारी	आमशूलहर
३५	वृहती	शूलहर
३६	कण्टकारी	पार्श्वपीडाहर
३७	एरण्ड	कटीवस्तिशिर पीडाहर,आम मारुतान्

वनस्पति	शूल विशेष गुण
३७ एरण्ड	कटीवस्तिशिर-पीडाहर, आममारुतान्, वस्तिशूलहरम्, गुल्मशूलानिलापहम्
३८ मेहुण्ड (थूहर)	अष्ठीला शूल
३९ कलिहारी	शूलजित्
४०. वासा	तृपार्त्तिहृत्
४१ निम्ब	श्रमहर
४२. शिग्रु	शिरोऽर्तिनुत्
४३. निर्गुण्डी	हन्ति शूलशोथाममारुतान्
४४ अङ्कोल	शूलहर ग्रहनूत
४५ स्वर्णवल्ली	शिर पीडाहर
४६ नल-बरु	हृदय, वस्ति, योनि पीडाहर
४७. दर्भ	वस्तिरुक्हर
४८. रोहिप	शूलघ्न
४९ पाठा	हन्ति शूल
५०. दन्ती	शूलहर
५१ गोरखमुण्डी	गुदार्तिनुत्
५२ अपामार्ग	शूलहर
५३. भृङ्गराज	शिरोर्त्तिनुत्
५४ नागपुष्पी	शूलहर
५५. मेपश्रृङ्गी	अक्षिशूलनुत्
५६ देवदाली फल	शूलघ्न
५७. वेल्लन्तर-गलतोरा	योनिशूलहर
५८ पद्मिनी-कमल	शूलहर
५९. जूई	त्रिरोरोगहर
६० शिवमल्ली-पकुल	योनिशूलहर
३१ कुन्द-डोलर	शिरोरुक्हर
६२ मुचुकुन्द	शिर पीडानाशक
६३ तुलसी	पार्श्वरुक्हर
६४ इगुद	शूलघ्न
६५ शाल्मली	शूलहर
६६. वालविल्व फल	आमशूलघ्नी
६७ विपतिन्दुक	पादव्यथाहरम्
६८ जम्बीर निम्बु	शूलहर, हृत्पीडाहर
६९ निम्बु	उदरग्रहापहम्
७० अम्लवेतस्	हृद्रोगशूलगुल्मघ्नम्
७१. वृक्षाम्ल-कोकम	शूलजित्
७२. यव-जव	उरुस्तम्भहर
७३ माप-उउद	पक्तिशूलानि नाशयेत्
७४ शोभाञ्जन फल	शूलहर

[पृष्ठ ३२६ का शेपाश]

हो जायगा। रुई को पानी मे भिगोकर शीघ्र ही औषधि को पोंछ दो अन्यथा छाला पट जायगा।

९ कास्टिक सोडा (जो साबुन बनाने के काम आता है) ३ ग्राम लेकर एक साफ शीशी मे डाल दो और ऊपर से ३ ग्राम नौसादर भी डाल दो, फिर उनके ऊपर १०-१५ बूद जल की टाल दो। जल डालते ही शीशी से उफान उठ निकलेगा, शीघ्र ही शीशी मे डाट लगा दो, औषधि तैयार है। वृश्चिक दंश वाले रोगी को बार-बार डाट खोलकर सु घाने से थोड़ी देर मे विप उतर जायेगा।

१० ब्लीचिंग पाउडर दंश स्थान पर मलने से विप नष्ट हो जाता है।

११ बेनड्रीन कैपसूल (पार्क डेविस)—१-१ कैपसूल हर ४ घण्टे पर मुख द्वारा दें।

१२. वायकोलेट्स—१-१ गोली हर ३ घण्टे बाद जल से दे।

१४ हिस्टोस्टैब क्रीम दंश स्थान पर मलो।

१५ बेनेड्रील क्रीम को दंश स्थान पर मलो।

१६ न्युपर्केनल (सीबा) ,, ,,

१७ थीफोरिन ,, ,,

१८ अस्वक ,, ,,

१९ अमृताञ्जन ,, ,,

इञ्जेक्शन—

१ मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बडौत का "शूलान्तक" इञ्जेक्शन आशातीत लाभ करता है।

२ रेक्टीफायड स्प्रिट २ बूद व डिस्टिल्ड वाटर (परिश्रुत जल) १६ बूद मिलाकर दंश स्थान के पास सूचीवेध लगावें।

३ इमेटिन हाइड्रोक्लोर को जहा बिच्छू ने डंक मारा हो वहा लगा दे, शीघ्र वेदनाशामक है।

४ नोवोकेन (हैक्स्ट) २ सी सी का इञ्जेक्शन दंशित स्थान के चारो ओर प्रवेश करने से वेदना शान्त होती है।

५ सायनोवेन (गायगी) मासपेशी या नस मे दें। ★

कुछ शूलघ्न वनस्पतियां

वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज आयुर्वेदाचार्य बी० एस० ए० एम०
भारद्वाज औषधालय, स्वामीनारायण मन्दिर, सावर कुण्डला (भावनगर) गुजरात



मैं यहा आपके समक्ष कुछ प्रभावी एव शूलशामक वनस्पतियो का परिचय देना चाहता हूँ। मैने जो वनस्पतियो का यहा चयन किया है वह हमारे आसपास ही मिलती है, उसे गाव मे, घर के आगन मे भी लगा सकते है। यही वनस्पतिया भारत के तमाम प्रदेशो मे लगाई जाती है।

निर्गुण्डी—

नाम–निर्गुण्डी, कुल–निर्गुण्डी-कुल (वर्विनेसी Verbenaceae) पर्याय—ले–वायटेक्स निर्गुण्डो, स०– निर्गुण्डी, हिन्दी–सम्भालू, मेउडी, म –निगड, गु०–नगड, नगोड, व०–निशिन्दा, अ ग्रेजी–फाइव लीव्ड चेस्ट (Fiv·-leaved chaste)।

निर्गुंटी भारतवर्ष काफी पायी जाती है। मैदानी प्रदेश, पहाटी प्रदेश एव वगीचो मे भी पायी जाती है। यह गुल्म जातीय वनस्पति है। इसका पौधा आटी के समान ८-१० फीट ऊचा होता है। पत्र–अरहर के समान कभी खंडित और कभी अखंडित तथा मसृणरोमयुक्त होते है। एक वृन्त पर तीन या पाच पत्रक १-५ इन्च लम्बी और १/३-१ १/३ इन्च चौडे होते हैं। पत्तियों को मसलने से विशिष्ट गन्ध आती है। पुष्प- छोटे, गुच्छेदार और नील वर्ण होते हैं। पु केशर- ४ तथा गर्भाशय २-४ कोष्ठयुक्त होता है। फल–गोलाकार और पकने पर कृष्ण वर्ण होते है।

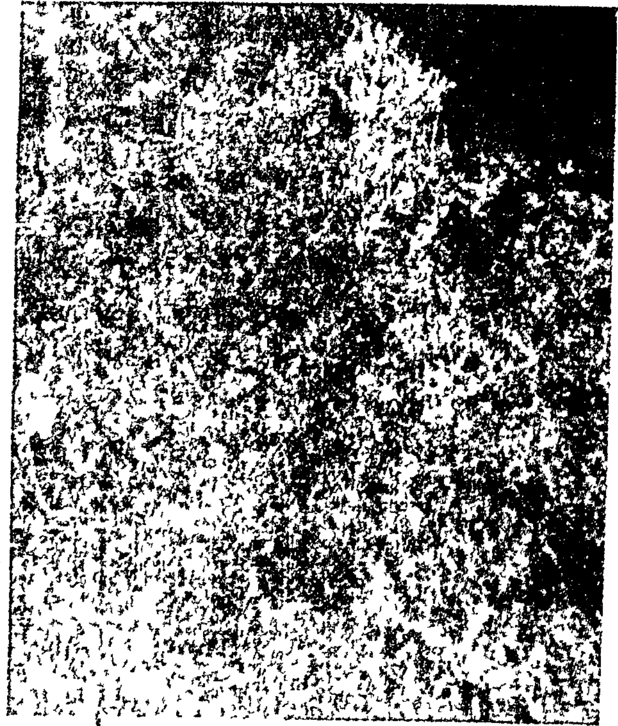
त्वचा—नीलाभ धूसर वर्ण होती है।

जाति—नीलपुष्पी और श्वेतपुष्पी दो जातिया है। नीलपुष्पी को निर्गुण्डी तथा श्वेतपुष्पी को सिन्दुवार कहते है।

रासायनिक सघटन –

पत्र मे सुगन्धित उडनशील तैल और राल होती है। फल मे अम्ल राल, कषाय अम्ल, सेवाम्ल, एक और तत्व और रग होते हैं।

गुण—लघु रूक्ष। विपाक—कटु।



रस—तिक्त, कटु, कषाय। वीर्य – उष्ण।

कर्म—शूल विषयक

दोषकर्म—उष्णवीर्य होने से यह कफवात शामक है।

सास्थानिक कर्म–वाह्य—यह वेदनास्थापन, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, केश्य तथा जन्तुघ्न है।

आभ्यन्तर—नाडी सस्थान—वातनाशक होने से यह वेदना स्थापन एव मेध्य है।

पाचन सस्थान—कटु, तिक्त और उष्ण होते से यह दीपन, आमपाचन, यकृदुत्तेजक और कृमिघ्न हे।

प्रयोग—सस्थानिक प्रयोग–वाह्य—शिर शूल, अण्ड शोथ, सधिशोथ, आमवात आदि शोथवेदनाप्रधान रोगो मे इसके पत्रो को गरम कर वाधते है। उपनाह भी दिया जाता हे। गर्भाशय शोथ,पक्वाशयशूल,वृषण शोथ,गुदशोथ

आदि मे इसके क्वाथ मे कटि स्नान कराते है। कठशूल और मुखपाक मे इसके क्वाथ का गडूष देते है। शुष्कपत्रो के धूम्रपान से शिर शूल तथा प्रतिश्याय शात होता है।

आभ्यन्तर नाडी सस्थान—शिर शूल, ग्रधृसी आदि तथा आमवात सन्धिशोथ आदि वेदना प्रधान रोगो मे इसका प्रयोग होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र, मूल, बीज

विशिष्ट प्रयोग—निर्गुण्डी मूल की त्वचा का चूर्ण अथवा मूल त्वक् का काढा बनाकर घन कर गोली बना कर-गलित कुष्ठ मे देने से आशातीत परिणाम मिलता है।

नोट आमवात, कटिग्रह, शिर शूल, सन्धिशूल इत्यादि वेदना प्रधान व्याधि मे निर्गुण्डी पत्र का वाष्प स्वेद देने से शीघ्र ही वेदना का शमन होता है। अनुभूत हैं। अण्डशोथ मे निर्गुण्डी पत्र स्वरस मे दशागलेप घोट कर लेप किया जाता है। व्रणोपचार मे व्रण शोधन एव रोपण मे निर्गुण्डी तैल का प्रयोग किया जाता है। यह कुष्ठघ्नी वनस्पति है। कर्णपूययुक्त शूल मे निर्गुण्डी तैल गर्मकर डालने से शूल का शमन होता है।

शिग्रु (शोभाञ्जन)

भारत मे शोभाञ्जन सर्वत्र पाया जाता है। सब्जी मण्डी मे शिग्रु का फल (फली) सर्वत्र मिलता है। शिग्रु फली उत्तम प्रकार का शाकाहार है। इसका वृक्ष मध्यम प्रमाण का २०-२५ फीट ऊंचा होता है। छाल और काष्ठ मृदु होता है। पत्र—सयुक्त पक्षाकार, १-२ फुट लम्बा होता है। जिसमे पत्रक ६-८ जोडे आध इञ्च से पौन इञ्च लम्बे, अभिमुख क्रम मे लगे रहते हैं। पुष्प-नीलाभ श्वेत वर्ण के गुच्छो मे निकलते हैं।

फल—६-१८ इञ्च लम्बे, ६ सिराओ से युक्त और धूसर अथवा कृष्णवर्ण होते है। बीज—तीन सिराओ से युक्त और धूसर अथवा कृष्णवर्ण होते है। बीज—तीन शिराओ से युक्त और पक्षसहित और कटु होते हैं, ये श्वेत और मरिच के समान होते है, अत कुछ लोग इन्हे श्वेत मरिच भी कहते है। फरवरी मास मे पुष्प और मार्च-अप्रैल मास मे फल निकलते है। इसकी फलियो का शाक बनाते हैं।

जाति—पुष्प भेद से शास्त्रकारो ने शोभाजन की कई जातिया बतलाई हैं। भाव प्रकाश ने श्वेत और रक्त दो भेद किये है। श्वेत जाति कटु होती है इसलिए उसे कटु शिग्रु और रक्त जाति मधुर होती है इसलिए मधुशिग्रु भी कहते हैं। कटुशिग्रु सर्वत्र सुलभ है, मधुशिग्रु कम मिलता है। राजनिघण्टु ने नील शिग्रु का भी उल्लेख किया है किन्तु यह बहुत कम मिलता है।

कुल—शोभाजन-कुल (मारिङ्गेसी–Moriengaceae).

नाम—लेटिन–मॉरिङ्गाटेरिगोस्पर्मा (Moringa, pterygosperma), स०—शोभाजन, शिग्रु तीक्ष्णगधा अक्षीप, मोचक, हिन्दी सहिजन, मुनगा, व०-शजिना, प०-सोहाजना, मराठी—शेवगा शेगटा, गुज०-सरगवो, सेकटो, अग्रेजी—Horse-Redish tree, Drum-Stick plant)

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, सर। रस–कटु, क्षार। वीर्य–उष्ण। विपाक–कटु।

दोपकर्म—यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण और कटु होने से कफ को तथा उष्ण होने से वात को शात करता है।

सस्थानिक कर्म (वाह्य प्रयोग)— बीजो के चूर्ण का नस्य शिरोविरेचन है। बीजो का तैल वेदनास्थापन और शोथहर है।

पाचन सस्थान–रोचन,दीपन, पाचन, शूलप्रशमन है।

सस्थानिक प्रयोग–वाह्य-व्रणशोथ और विद्रधि पर इसकी त्वचा और पत्र का लेप करते है। बीजो के चूर्ण का नस्य शिर शूल मे देते हैं। सन्धिवात आमवात आदि शोथवेदना-प्रधान विकारो मे इसके बीजो के तेल का अभ्यङ्ग करते है।

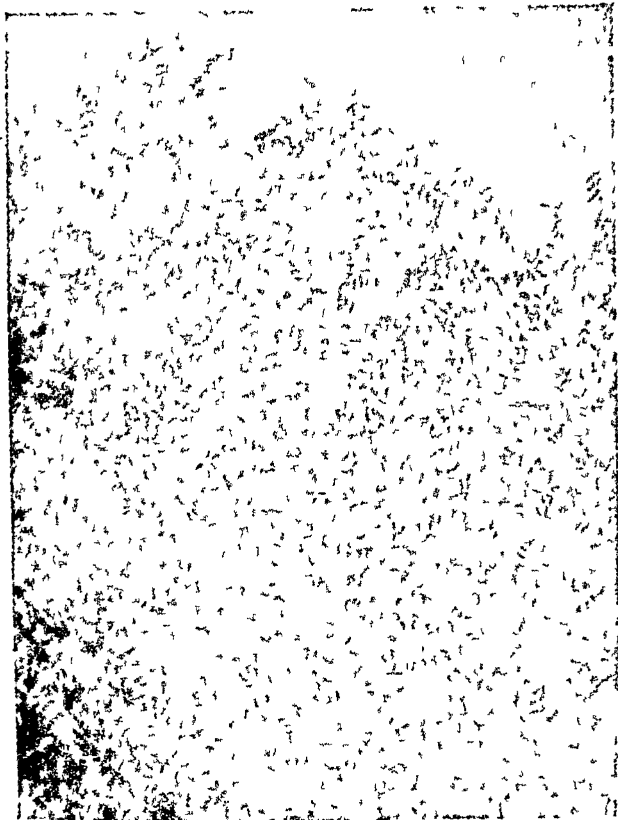
प्रजनन सस्थान–कष्टार्तव, रजोरोध मे इसका प्रयोग लाभ करता है।

गर्भाशय शूल, गर्भाशय शोथ, आमाशय शूल एव शोथ तथा मेदो रोग मे लाभ करता है। समग्र वातप्रधान शूलयुक्त व्याधियो मे इसका प्रयोग लाभदायी है। अर्बुद की ग्रन्थि पर इसकी छाल का लेप लाभप्रद पाया गया है। आम दोष के नाश हेतु शिग्रु उत्तम है। शिर शूल मे इसके बीजो के चूर्ण का नस्य देते हैं, नस्य कर्म से जीर्ण एव नवीन शिर शूल मे आराम मिलता है। नेत्र रोगो मे शिग्रु की छाल का विधिवत् बिन्दु बनाया जाता है, इस नेत्र बिन्दु से नेत्रशूल शात हो जाता है। सशोथ वेदना प्रधान आमवात मे इसकी छाल का लेप करने से शोथ

एव वेदना का तात्कालिक शमन होता है। कष्टपूर्वक मासिक स्राव के साथ अल्प प्रमाण वाले मासिक स्राव मे शिग्रु उत्तम कार्य करता है। इसमे शिग्रु फल का पेय देना चाहिए।

श्योनाक —

श्योनाक वृक्ष है। समग्र भारत मे पाया जाता है, इसका वृक्ष २५-३० फीट ऊचा होता है। पत्र-सयुक्त २-४ फुट लम्बा, पक्षाकार होता है—जिसके अग्रभाग मे एक पत्र होता है। पत्रक–५ इ च लम्बे, ३-४ इ च चौडे, तीक्ष्ण एव तरगित धार के होते है। पुष्पदण्ड-८-१० इञ्च लम्बे विगुल के आकार के होते है जिनके अग्रभाग पर रक्ताभ बैंगनी रङ्ग के पुष्प लगे रहते है। पुष्पदल-मासल होते है और उसकी गन्ध अच्छी नही होती। फल—१-३ फुट लम्बे, २-४ इञ्च चौडे तलवार के सदृश होते है। इनमे बीज चपटे और पखयुक्त लगभग ३ इञ्च लम्बे और २ इञ्च चौडे सेम के बीजो के सदृश होते है। इसके साथ कुछ रुई भी होती है। पुष्प-वर्षाकाल मे आते है तथा शीत काल मे फल पकते है।



जाति—इसकी एक जाति और है जिसका पेड बहुत बडा और पत्ते नीम के समान और दुर्गन्धित होते हैं।

रासायनिक सघटन—

इसकी मूलत्वक् मे 'ओरोक्सिलिन' नामक स्फटिकीय तिक्त ग्लुकोसाइड, एक कटु तत्व, पेक्टिन, वसा, मोम, क्लोरोफील, कषाय द्रव्य और क्रिटिक अम्ल पाये जाते हैं।

गुण—लघु, रूक्ष। रस–तिक्त, कषाय।
विपाक—कटु। वीर्य – शीत।

गुण—शोथहर, पुरीषसग्रहणीय, शीतप्रशमन, अनुवासनोपग, कषायस्कन्ध (च) बृहत् पञ्चमूल, अम्बष्ठादि गण (सु)।

कुल—श्योनाक-कुल - (बिग्नोनिएसी–Bignoniaceae)

नाम—ले०–ओरोक्सिलम इण्डिकम (Oroxylum Indicum), स०–श्योनाक, अरलु, शोषण, कट्वङ्ग, टुण्टुक, शुकनास, दीर्घवृन्त, पृथुशिम्ब, हिन्दी–सोनापाठा, ब०–शोणा, म०–टेटू, गुज०–अरडूसो।

दोषकर्म—यह त्रिदोषशामक है। गुण और रस से यह कफ को तथा वीर्य से पित्त को शात करता है। इन दोषो तथा आमदोष के द्वारा आवृत वात को भी यह शात करता है।

सस्थानिक कर्म—वाह्य–यह शोथहर, व्रणरोपण एव वेदनास्थापन है।

आभ्यन्तर-नाडी सस्थान—यह वातहर होने से वेदना स्थापन है।

रक्तवह सस्थान—यह शोथ को दूर करता है।

दोष प्रयोग - यह त्रिदोषजन्य विकारो मे प्रयुक्त होता है। विशेषत इसका प्रयोग कफपित्त विकारो तथा कफ पित्त एव आम से आवृत वात मे करते है।

सस्थानिक कर्म वाह्य आमवात सन्निवात आदि शोथ वेदनायुक्त विकारो मे इसके क्वाथ से स्नान कराते है। व्रणो मे इसकी छाल का स्वरस देते हैं।

आभ्यन्तर नाडी सस्थान यह वात व्याधि, आमवात-सन्धिवात आदि मे प्रयुक्त होता है।

शोथ वेदना प्रधान अङ्ग पर इसके पत्तो को गर्मकर बाधने से आराम मिलता है। शिर शूल मे दाह हो तब उसी अवस्था मे श्योनाक के पत्ते शिर पर ठण्डा ही

बाधने से दाह एव शिर शूल मे आराम मिलता है। यह ज्वरघ्न भी है, अत ज्वर म देने से ज्वर को शान्त कर अङ्गमर्द को दूर करता है।

तुलसी—

तुलसी का महत्व समग्र भारत मे है, खासकर हिन्दू धर्म मे तुलसी का विशेष महत्व हे। श्रीकृष्ण भगवान के पास तुलसी का स्थान है। तुलसी दैवी वनस्पति है। तुलसी के साथ हिन्दू धर्म की भावना जुडी हुई होने से प्रत्येक हिन्दू के घर मे तुलसी विद्यमान है, और सुवह-शाम तुलसी के कुण्डो व क्यारी पर धूप-दीप होता है। तुलसी पवित्र वनस्पति मानी जाती है, अत तुलसी के काण्डो मे से माला वनाकर अनेक हिन्दू नर-नारी गले मे आदरपूर्वक पहनते है। तुलसी समस्त भारत के घरो और मन्दिरो मे पायी जाती है।

स्वरूप—यह गुल्मजातीय क्षुप १-२ फुट ऊचा होता है। पत्र—लगभग १ इञ्च लम्वे, गोलाई लिए, सुगन्धित होते हैं। पुष्पमजरी—५-६ इञ्च लम्वी होती है। वीज—चपटे, रक्ताभ होते हैं। शीतकाल मे पुष्प और फल आते हे।

जाति—मुख्यत इसके दो भेद होते है—१ श्वेत और २ कृष्ण। श्वेत तुलसी के पत्र और शाखायें श्वेताभ और कृष्ण के कृष्णाभ होते हैं। गुण मे काली तुलसी उत्तम मानी जाती है। इनके अतिरिक्त रामतुलसी और कपूरी तुलसी (जिससे कपूर निकाला जाता है) भी इसके भेद हैं।

रासायनिक सघठन—

इसमे एक पीताभ हरित सुगन्धित तैल पाया जाता है जो कुछ काल रखने से स्फटिकाकार हो जाता है। इसे तुलसी-कपूर (Basil-Camphor) कहते हैं।

गण—सुरसादि (सु०)

कुल—तुलसी-कुल (लैविएटी—Labiatae)

नाम—ले०—ऑसिमम सैक्टम (Ocimum Sanctum) स०—तुलसी, सुरसा, ग्राम्य, सुलभा, वहुमजरी, अपेतराक्षसी, शूलघ्नी, देवदुन्दुभि, हिन्दी—तुलसी, अ ग्रेजी—होली बेसिल (Holy basil), गुज०—तुलसी।

गुण—लघु, रूक्ष। रस—कटु, तिक्त।
विपाक—कटु। वीर्य—उष्ण।

बीज—स्निग्ध, पिच्छिल और शीत हैं।

दोषकर्म—यह कफवात शामक और पित्त वर्धक है।

सस्थानिक कार्य—वाह्य—यह जन्तुघ्न, दुर्गन्धनाशक, उत्तेजक, वातहर और शोथघ्न है।

आभ्यन्तर—पाचनसस्थान—यह दीपन, पाचन, अनुलोमन तथा कृमिघ्न है।

रक्तवह सस्थान—यह शोथहर है।

दोष प्रयोग—यह कफवातविकारो मे प्रयुक्त होती है।

सस्थानिक प्रयोग—वाह्य—जीर्ण व्रण, शोथ, पीडा मे इसका लेप करते हैं।

आभ्यन्तर—पाचन सस्थान—अग्निमाद्य, छर्दि, उदरशूल तथा कृमि मे प्रयुक्त होती है। वीज—पिच्छिल होने से प्रवाहिका मे देते हैं।

श्वसन संस्थान—प्रतिश्याय, कास, श्वास तथा पार्श्वशूल मे उपयोगी है।

पार्श्वरुक्कफवातजित। (भा० प्र०)
पार्श्वशूलविनाशन। (च० सू० २७)
पार्श्वशूलघ्न (सु० सू० ४६)

भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री मोरार जी भाई देसाई की मान्यता है कि प्रत्येक घर मे तुलसी रखने से विषम ज्वर नही होता और तुलसी का स्वरस पीने से अर्बुद मिटाया जाता है। तुलसी स्वरस पीने से कास-श्वास-प्रतिश्याय मिट जाता है और कफ से होने वाला उर शूल, पार्श्वशूल भी मिटता है। कर्णशूल मे तुलसी स्वरस का वू द कानो मे डालने से आराम मिलता है। दन्तकृमिजन्य दन्तशूल मे तुलसी पत्र को चवाने से आराम मिलता है। शिर शूल में तुलसी की चाय पीने से आराम मिलता है। आध्मानजन्य मे तुलसी स्वरस के साथ आर्द्रक रस पीने से आराम मिलता है। उदरशूल मे तुलसी रस देने से उदर शूल शात हो जाता है।

कनेर-करवीर—

गण—शिरोविरेचन द्रव्य (सु०)

कुल—कुटज-कुल (एपोसाइनेसी—Apocynaceae)

नाम—ले०-नेरियम ओडोरम (Nerium odorum) स०—करवीर, अश्वमारक, हिन्दी—कनेर, कनैल, व०—करवी, म०—कण्हेर, गुज०—कणेर, करेण, अ ग्रेजी मे—रोजवेरी स्पर्ज (Rose-berry spurge)

जाति—चार जाति हैं।

१. श्वेत, २ पीत, ३ रक्त और ४ कृष्ण । कृष्ण कनेर दुर्लभ है ।

गुण—(बाह्य) कुष्ठघ्न, व्रण शोधन तथा शोथहर है।

रक्तवहसस्थान—पीत कनेर की हृदय पर क्रिया डिजिटेलिस के समान तथा श्वेत और रक्त कनेर की स्ट्रोफैन्थस के समान होती है। यह हृद्य है और इससे हृदय को शक्ति प्रदान होती है। अधिक मात्रा हृदय के लिए विप समान है । यह अग्निमाद्य, उदर रोग तथा विबन्ध नाशक है । मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी मे उपयुक्त है ।

विपाक्त लक्षण—अधिक मात्रा मे देने से अवसाद, नाडीदौर्वल्य, हृदय तथा श्वासावरोध से मृत्यु होजाती है।

अर्क (मदार)—

गण—भेदनीय, वमनोपग, स्वेदोपग (च), अधोभागहर, अर्कादि (सु०)

कुल—अर्क–कुल (एस्क्लिपिएडेसी-Asclepiadaceae) ।

नाम—ले०–कैलोट्रोपिस प्रोसरा (Calotropis procera), स०—अर्क, तूलफल, क्षीरपर्ण, हिन्दी—अकवन, आक मदार, व०—आकन्द, प०—अक, म०—रुई, गुज०—आकडो, अग्रेजी—मदार (Madar)।

इसका गुल्मजातीय छोटा क्षुप होता है । काड कठिन तथा काण्डत्वक् धूसर और सूत्रमय होती है । पत्र--५-६ इन्च लम्वे, १-३ इन्च चौडे और स्थूल होते हैं। इनका ऊपरी पृष्ठ चिकना किन्तु निचला पृष्ठ रोमश होता है । पुष्पदण्ड – पत्रकोणोद्भूत तथा अनेक शाखायुक्त होता है । जिस पर गुच्छो मे अनेक पुष्प लगते है। पुष्प--वाहर श्वेत और भीतर रक्ताभ वैगनी होते है । फल - लम्वे, टेढे होते है जो सूखने पर फट जाते है और उनके भीतर से सफेद मुलायम रुई निकलती है । वीज-छोटे काले रङ्ग के होते हैं। वसन्त मे पुष्प तथा ग्रीष्म मे फल लगते हैं। किसी-किसी क्षुप पर एक प्रकार का द्रव सचित हो जाता है इसे 'अर्क--शर्करा' कहते हैं ।

जाति—पुष्प के वर्ण भेद से यह दो प्रकार का माना गया है—१ श्वेत, २ रक्त । रक्त जाति को सामान्यत 'अर्क' कहते हैं । श्वेत पुष्प अर्क का विशिष्ट नाम 'अलर्क' दिया गया है । इसे 'मन्दार' भी कहते हैं तथा इसका लै० - नाम कैलोट्रोपिस गिगैण्टिया (C. Gigantia) है । इसमे जिसका क्षुप वडा वृक्षाकार होता है इसे 'राजार्क' कहते हैं । यह सदापुष्प होता है । राजनिघण्टु ने इसकी चार जातियो का उल्लेख किया है—१. अर्क, २. राजार्क, ३ शुक्लार्क, ४ श्वेतमन्दार । यूनानी वैद्यक मे इसकी तीन जातिया स्वीकृत है । यह समस्त भारत की शुष्क और ऊसर भूमि मे उत्पन्न होता है ।

गुण—लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण । रस– कटु, तिक्त।
विपाक—कटु वीर्य--उष्ण

दोषकर्म—यह उष्ण होने से कफवात शामक है। रक्तार्कपुष्प तिक्त-मधुर होने से रस के द्वारा कफ पित्त शामक है ।

सस्थानिक कर्म—वाह्य—यह वेदना स्थापन, शोथहर, व्रण शोधन, कुष्ठघ्न, और जन्तुघ्न है । शोथ--वेदनायुक्त विकारो (श्लीपद, आमवात आदि) मे अर्क पत्र गर्म कर वाधते है तथा उसके स्वरस से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग करते है। इस तैल को कर्ण रोगो (कर्णशूल-वाधिर्य आदि) मे डालते है । ग्रन्थिशोथ, गण्डमाला आदि मे अर्कक्षीर का लेप करते है। दन्तशूल मे अर्कमूल का दातौन करने से दन्त शूल मिट जाता है । अर्कक्षार उदर शूल, श्वासकष्ट मे दिया जाता है । उदरशूल मे अर्क पत्र गर्म कर पेट पर वाधने से शूल का शमन हो जाता है ।

अश्वगन्धा–असगन्ध—

गण—वल्य, वृहणीय, मधुर स्कन्ध ।

कुल—कण्टकारी कुल (सोलैनेसी--Solanaceae)

नाम—ले०--विथैनिया सॉम्निफेरा (Withania Somnifera), स०—अश्वगन्ध, वाराहकर्णी, वलदा, कुष्ठगन्धिनी। हिन्दी मे असगन्ध, व०—अश्वगन्धा, म०—आसध, डोरगुञ्ज, गुज०—आसध, घोडा आहन, घोडा आकुन, अग्रेजी—विण्टरचेरी (Winter cherry) ।

स्वरूप—इसका क्षुप १-५ फुट ऊचा होता है। शाखाये गोलाकार चारो ओर फैली रहती हैं। पत्र--एकान्तर २-४ इन्च लम्वे, गोलाई लिये, श्वेतरोमश होते है। पुष्प--पत्रकोणोद्भूत, पीताभ हरित, चिलम के आकार के गुच्छो मे रहते है । फल--छोटे, गोलाकार, रसभरी के सदृश कवच के भीतर तथा पकने पर लाल हो जाते हैं। वीज-छोटे चिकने और चपटे होते है । मूल--ऊपर से धूसर भीतर श्वेत, अगुली सदृश मोटे तथा १-१॥ फुट तक



लम्वे होते है। कच्चे मूल से अश्व के सदृश गन्ध आती है इसलिये इसे 'अश्वगन्धा' कहते है।

जाति—यह देशभेद से ग्राम्य और वन्य दो प्रकार की होती है। वन्य असगन्ध अवसादक, स्वापजनन और मूत्रल है अत इसका बाह्य प्रयोग ही करते है। आभ्यन्तर के लिए ग्राम्य अश्वगन्धा लेते है।

यह भारत मे सर्वत्र होता है। विशेपकर मालवा मे इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक सघठन—

वन्य जाति के मूल मे 'साम्निफेरीन' Somniferin नामक क्षारतत्व पाया जाता है जिसके कारण इसमे निद्राजनन और अवसादक धर्म है। ग्राम्य जाति मे शर्करा वसा राल तथा कुछ रजक द्रव्य होते है।

गुण—लघु, स्निग्ध। रस--मधुर, कषाय, तिक्त
विपाक—मधुर। वीर्य—उष्ण।

दोषकर्म—यह कफवातशामक है।

सस्थानिक कर्म—वाह्य--यह शोथहर और वेदनास्थापन है।

आभ्यन्तर-नाडी सस्थान—यह नाडी वल्य, मस्तिष्क शामक है।

प्रजनन सस्थान—गर्भाशय शोथहर है।

गलगण्ड, ग्रन्थि शोथ आदि मे इसके पत्र या मूल का लेप करते है। इसके मूल से सिद्ध तैल का अभ्यङ्ग वात व्याधि मे करत है। उदर विकार (शूल विष्टम्भ आदि) मे देते है। समस्त वातव्याधियो की रामवाण दवा है। पक्षाघात, सन्धिशूल, आमवात, अववाहुक, विश्वाची, कटिशूल, सर्वाङ्ग शूल मे मूल का चूर्ण देते है।

सावर शृङ्ग —

सावर, (मृग) आदि का शृङ्ग चिकित्सा मे उपयोगी माना गया है। प्रत्येक वैद्य एव औपधालयो में मृग एव सावर शृङ्ग की भस्म होती ही है। सावर एव मृग शृङ्ग के गुणधर्म समान ही है। यहा सावर शृङ्ग का वर्णन सक्षिप्त मे दे रहा हूँ।

रासायनिक सघटन —

शृङ्ग मे मुख्यतया सुधा का प्रस्फुटक (Calcium phosphate) होता है। अल्प प्रमाण मे कैलशियम कार्वोनेट, मैग्नीशियम कार्वोनेट एव लौह पाये जाते है।

गुणधर्म —

गुण—स्निग्ध। रस —मधुर।
वीर्य—उष्ण। विपाक—मधुर।

—❖—

गृध्रसी-शूल

वैद्य गामाप्रसाद यादव, कापुर वावडी, थाना-७

—

गृध्रसी शूल मे ईट को खूब गर्म करे। फिर ईट को सूती या ऊनी कपडे मे लपेटकर शूल स्थान का सेक करे।

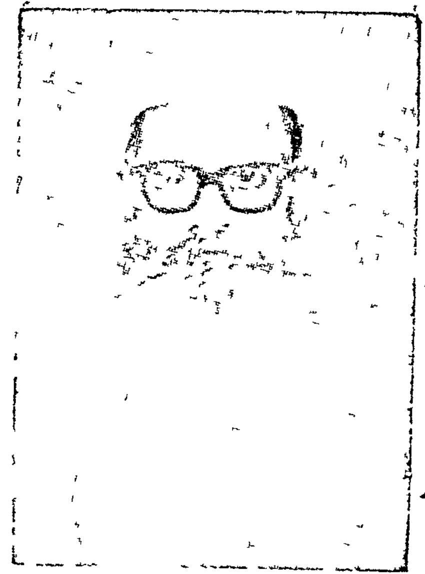
मालिश करने के लिए महानारायण तैल अति उत्तम है। महायोगराज गुग्गुल की २-२ गोली सुबह शाम ले। वमन कराने, वस्तिकर्म से गृध्रसी रोग का नाश होता है। एरण्ड तेल और गोमूत्र मिलाकर १ महीने पीने से गृध्रसी शूलशमन होता है। विडनमक कालानमक बारीक पीस गोमूत्र, एरण्ड तेल मे समभाग मिलाकर पीने से कफ वायु की गृध्रसीशूल का शमन होता है। अडूसा, जमालगोटा की जड, अमलतास की गूदी समभाग लेवे। इनका काढा वना उसमे एरड तेल मिला पीने से विशेष फायदा होता है।

रास्ना, गिलोय, अमलतास की गूदी, देवदारू, गोखरू, एरड, साठी की जड, सोठ सब समभाग मिला काढा बना कर पीना गृध्रसीशूल मे विशेष लाभप्रद है। ✶

उदर शूल में हमारे कुछ अनुभूत सिद्ध प्रयोग

आयुर्वेद वृहस्पति राजवैद्य प० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित
सभापति—अखिल भारतीय आयुर्वेद
चिकित्सा प्रचारक सघ
त्रिवेणीगज (नौबस्ता) लखनऊ





अजीर्णकंटक चूर्ण

सोठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, जीरा सफेद भुना हुआ, जीरा स्याह, असली शुद्ध आवलासार गधक, टाटरी, नवसादर, काला नमक, सेधा नमक, तालावी हीग घी मे भुनी हुई, जवाखार प्रत्येक ५०-५० ग्राम लेकर कूट-छान लें। लहसुन छिला हुआ २०० ग्राम सिल पर पीसकर मिला दें, फिर नीबू के रस मे घोटकर सुखा ले और शीशी मे भरकर रख ले। ३ से ६ माशे तक गुनगुने पानी से सेवन करायें। यह चूर्ण पेट के दर्द को ठीक करता है। अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि को दूर कर पाचन शक्ति की गडवड़ी को नष्ट करता है। भूख वढाता है, अन्न को हजम करता है। यदि भोजन के वाद पेट फूल जाता हो तो इसमे ४ रत्ती शङ्ख भस्म मिलाकर भोजन के वाद देना चाहिए। पेट के दर्द वालो को किसी प्रकार की दाल या दाल के वने पदार्थ वरी, मगौरी, पकौडी आदि का सेवन नही करना चाहिए। घुइया (अरवी), कद्दू, वैगन, कटहल का सेवन वर्जित है।

प्रभाकर चूर्ण

नौसादर हाडी वाला २०० ग्राम, सोडा खाने वाला १०० ग्राम, चौकिया सुहागा भुना हुआ १०० ग्राम, सोठ ५० ग्राम, जवाखार ५० ग्राम, काला नमक ५० ग्राम, वडी इलायची २५ ग्राम, सुखा पोदीना ५० ग्राम, टाटरी २५ ग्राम, सौंफ १०० ग्राम, कालीमिर्च १०० ग्राम सवको कूट-छानकर रख लें। ३ माशे की मात्रा मे ताजे पानी से दें। पेट का दर्द, मन्दाग्नि, अजीर्ण तथा अरुचि रोग मे उत्तम लाभदायक है।

शूलवज्रिणी गुटिका

भुनी हुई हीग १०० ग्राम, कूठ मीठा १०० ग्राम, पोहकर मूल १०० ग्राम सवको कूट-छानकर नीबू के रस मे घोटकर ४-४ रत्ती की गोली वना सुखाकर रख ले। १ से ४ गोली तक ताजे जल के साथ दें। भयकर शूल २-३ वार के सेवन से शान्त हो जाता है। पहली मात्रा ही अपना चमत्कार दिखाती है।

गैसान्तक अवलेह

घीकुवार का रस ५०० ग्राम, नीबू का रस ५०० ग्राम, अदरक का रस ५०० ग्राम, मूली का रस ५०० ग्राम, कलमी शोरा २५० ग्राम, सेंधा नमक २५० ग्राम, जवाखार २५० ग्राम, अजवायन भुनी हुई २०० ग्राम, चन्दसुर बीज धुले हुए २०० ग्राम, कलौंजी धुली हुई २०० ग्राम, मेथी भुनी हुई २०० ग्राम, हीग भुनी हुई २० ग्राम। अजवायन, मेथी, चन्दसुर, हीग, कलौंजी इन सवको थोड़े से देशी घी मे भूने। फिर स्वरसो को छोडकर शेप चीजें कूट-छानकर उक्त रसो मे मिला दें। इस अवलेह को शीशे के जार मे भरकर रख लें। १-१ चम्मच दिन मे ३ वार लें। यह गैस रोगियो के लिए अमृततुल्य काम करता है। पाखाना साफ लाकर अजीर्ण व मन्दाग्नि दूर करता है।

गैसान्तक चूर्ण

मेथी, चन्दसुर, काला जीरा, सफेद जीरा, अजवायन, सौंफ, धनिया, कलौंजी समभाग लेकर थोडा सा देशी घी कढाही मे डालकर भून लें और कूट-छानकर रख लें।

दिन मे ३ वार १-१ चम्मच ताजे जल से लेने से पेट की गैस मे लाभ मिलता है।

उदरभास्कर चूर्ण

सेंधा नमक, काला नमक, सांभर नमक, पांगा नमक, गुडाही नमक, कचिया नमक, खाने वाला सोडा, जवाखार, भुनी हीग प्रत्येक ५०-५० ग्राम, सोंठ, मैदा, भुना चौकिया सुहागा सभी २५-२५ ग्राम और भुनी भांग १०० ग्राम, सबको कूट-पीस छानकर रख ले। ३-३ माशे की मात्रा मे गरम जल के साथ दे। समस्त शूल रोगो, मन्दाग्नि, अजीर्ण आदि उदर रोगो मे लाभकारी व क्षुधावर्धक है।

शूलहर योग

घोडी की लीद का रस २ तोला निचोड कर १ माशा भुनी हीग पीसकर मिला दे और रोगी को पिला दें। इससे भयकर शूल रोग तत्काल शान्त हो जाता है।

द्वितीय शूलहर योग

अर्क क्षार १ माशा, पलाश क्षार २ माशा, काली मिर्च ३ माशा, हीग २ माशा, देशी घी आधी छटाक ले। एक कटोरी मे देशी घी गरम करके उसमे काली मिर्च, हीग पीसकर डालें तथा अर्क क्षार व पलाश क्षार डालकर उतार ले और ३ माशे गुनगुना ही रोगी को पिला दे। दस मिनट मे भयकर शूल शान्त हो जायगा।

शूलहर लेप तथा पेय

एलुवा, हल्दी, फिटकरी, नवसादर, चौकिया सुहागा १-१ तोला लेकर गोमूत्र मे पीस गरम करके नाभि स्थान को छोडकर पेट पर लेप कर दे तो शूल रोग शान्त हो जायगा। अथवा बारहसिगा के सीग को पानी मे घिसे फिर सोठ, पोहकर मूल, कूठ मीठा कूटकर मिला दे। इसे खिलाकर ऊपर से गर्म जल पिलाने से शूल रोग नष्ट होगा।

शूलनाशक गुटिका

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, सेंधा नमक, सज्जी क्षार, यव क्षार, चित्रक, समुद्रफेन, वायविडङ्ग, सोठ, पीपर छोटी, कालीमिर्च प्रत्येक १-१ तोला, शुद्ध कुचला २ तोला। सबको कूट-छानकर जम्बीरी नीबू के रस मे घोटकर २-२ रत्ती की गोली बनाकर सुखाले। १ से २ गोली तक दिन मे ३ बार देने से शूल रोग शान्त होता है और कुछ दिनो तक लेने से हमेशा के लिए रोग से छुटकारा मिल जाता है।

पार्श्वशूलहर योग

महानारायण तैल १ छटांक, नारायण का तैल आधी छटांक, कपूर १ तोला, अफीम ।।। माशा। पहले कपूर और अफीम को खरल में डालकर घोटें, फिर नारायण का तैल डालकर घुटाई करें। इसके बाद महानारायण तैल मिलाकर शीशी में भर लें। इस तैल को गुनगुना करके पसली तथा छाती पर मालिश करने से पसलियों और छाती का दर्द दूर होता है। निमोनिया में उपयोगी है।

शूलनाशक योग

मदार (अकौआ) के नरम फूल ८ तोला, [illegible] हुआ नौसादर, भुना हीग, काला नमक, काली मिर्च प्रत्येक १-१ तोला मिलाकर सिल पर पीस लें और ३-३ माशे की गोली बनाकर सुखा लें। १-२ गोली गरम पानी से देने पर शूल रोग तथा उदर रोगों में लाभदायक है।

दंष्ट्रा शूल चिकित्सा

जब दाढ मे भयंकर शूल हो, सूजन भी आ गई हो, कुछ भी खाना-पीना मुश्किल हो रहा हो, रोगी दर्द के मारे तडफ रहा हो तो १ पोटी लहसुन छीलकर सिल पर पीसे और उस कपडे मे रखकर निचोड ले। इस रस को एक तोला वाली छोटी सी शीशी मे भर ले। रोगी को चारपाई या मेज पर लिटा दे और सिर को चारपाई या मेज से नीचे लटकवा दें। फिर इस लहसुन रस को जिधर की दाढ मे दर्द हो उससे दूसरी तरफ वाली नाक मे एकदम से डाल दें। इतनी जोर से लगेगा कि खोपडी भन्ना जायगी, लेकिन दर्द एकदम गायब हो जायगा। वादी का पानी मुह से और नाक से निकल जायगा। सूजन गायब हो जायेगी। रोता हुआ आने वाला रोगी हसता हुआ वापस जायगा। यह शतशोऽनुभूत योग है।

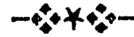
मूत्रकृच्छ्रान्तक

जब बूद-बूद पेशाब आता हो और पेशाब करने मे तीव्र वेदना होती हो तो शीतलचीनी २ तोला, फिटकरी सफेद २ तोला, इलायची छोटी २ तोला, स्वर्ण गैरिक ५ माशा, कलमी शोरा ६ माशा, मिश्री ५ तोला। सबको कूट कपडछन करके रख ले। मात्रा—६ माशा। शीशम की कोमल पत्ती २ तोला पानी मे पीसकर आधा पाव जल, आधा पाव कच्चा दूध और १ छटाक शक्कर मिले

— शेषांश पृष्ठ ३३८ पर

❋ शूलशामक कुछ पेटेंट आयुर्वेदिक औषधियां ❋

वैद्य भानु प्रताप आर मिश्र विवेचक—श्री वाला हनुमान आयु० महाविद्यालय
लोदरा—ता०विजापुर महेसाना (गुजरात)



(१) आर. पायरीन टिकिया—

निर्माता—भारतीय औषधि निर्माणशाला राजकोट।

इसकी प्रत्येक टिकिया मे अश्वगंधा ४० मिग्रा, महा योगराज गुग्गुल १०० मि ग्रा, शंख भस्म ३० मि ग्रा, महारास्नादि एनस २० मि ग्रा, त्रियोदशांग गुग्गुल ५० मि ग्रा समाविष्ट है।

मात्रानुपान—इसे वयस्क को २-२ गोलिया तथा बालक को १-१ गोली पानी, दूध या रोगानुसार अनुपान के साथ दिन मे तीन बार देना चाहिए।

उपयोग—यह गृध्रसी, संधिवात, आमवात, कटिशूल शिर शूल, पृष्ठ शूल इत्यादि वातव्याधि मे अति उपयोगी हैं। जीर्ण स्नायविक शूल एवं जीर्ण संधिशूल मे आर पायरीन टिकिया बहुत ही उपयोगी है।

(२) रूमारील टिकिया—

निर्माता—डूप्लेक्स फार्मा, बम्बई।

इसकी प्रत्येक टिकिया मे महायोगराज गुग्गुल ५० मि ग्रा, महारास्नादि क्वाथ ७५ मि ग्रा सुरजान १० मि ग्रा, नागर, एरण्डमूल, गुडूची, शुद्ध गुग्गुल, वृद्ध दारुक, रास्ना, पुनर्नवा ये सब २५-२५ मि ग्रा, शुद्ध शिलाजीत २० मि ग्रा, शुद्ध विष तिन्दुक २५ मि ग्रा, समीरपन्नगरस १० मि ग्रा समाविष्ट है।

मात्रानुपान—वयस्क को २ से ४ टिकिया एवं बालको को आधी से एक टिकिया दिन मे ३ बार पानी के साथ अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार देनी चाहिए।

उपयोग—गृध्रसी, आमवात, अर्दित, संधिवात, पक्षावात, कटिशूल, पार्श्वशूल इत्यादि वात व्याधियो मे यह विशेष उपयोगी हैं। उपदशजन्य आमवात मे उपयोगी है।

(३) सर्वगुण तेल—

निर्माता—श्री त्रिमूर्ति फार्मेसी, कोटगेट, बीकानेर।

इसमे त्रिफला, निम्ब स्वरस, सम्भालु पत्र स्वरस, शिलारस, राल, गंधा विरोजा, गुग्गुल, कर्पूर, तारपीन तैल, इलायची तैल, नीलगिरी तैल, मोम एवं तैल योग्य मात्रा मे समाविष्ट है।

मात्रा—वाह्य प्रयोगार्थ आवश्यकतानुसार अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार प्रयोग करना चाहिए।

उपयोग—यह औषधि चोट, मोच, शोथ, संधिशूल, विभिन्न प्रकार के व्रणो मे लाभप्रद है। जले, कटे व पुराने से पुराने नाडी व्रण पर इसके प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। कर्णशूल एवं कर्ण पूय स्राव मे भी यह अद्वितीय है।

(४) कर्णशूल नाशक—

निर्माता—रीगल केमिकल वर्क्स, इन्दौर।

इसके प्रत्येक १ मि ली मे दशमूल १ ग्राम, सुदर्शन ०.५ ग्राम, पोस्त के डोडे के छिलके ०.५ ग्राम, राल ०.१२५ ग्राम तथा तिल तेल योग्य मात्रा मे समाविष्ट है।

मात्रा—इसे कर्णपूरणार्थ ५-५ बूंद दिन मे ३ बार अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार कान मे डाले।

उपयोग—यह शूलशामक औषधि है। यह कर्ण के विभिन्न रोग जैसे कर्ण शूल, कर्णस्राव, बाधिर्य, कर्णनाद इत्यादि मे विशेष उपयोगी है।

(५) वातरोगारि कैप्सूल—

निर्माता—निर्मल आयुर्वेद संस्थान, अलीगढ।

इसके प्रत्येक कैप्सूल मे रसराज रस ३० मि ग्रा., बृहत् वात चिन्तामणि रस ३० मि ग्रा, वातगजांकुश रस ११५ मि ग्रा तथा विषमुष्टिका वटी २५० मि.ग्रा. समाविष्ट है।

मात्रानुपान—इसे प्रात काल एक कैप्सूल उष्णोदक या महारास्नादि क्वाथ के साथ अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार देना चाहिए।

उपयोग—यह शोथशामक एवं शूलशामक हैं। आमवात, संधिवात, कटिशूल, गृध्रसी, पक्षाघात, अर्दित अपतन्त्रक, आक्षेपक आदि वातव्याधियो मे यह विशेष उपयोगी है।

(६) रूमासिन कैप्सूल—

निर्माता—आयुलेव फार्मेसी वडोदरा ।

इसके प्रत्येक कैप्सूल मे सिंहनाद गुग्गुल ४० मि ग्रा, योगराज गुग्गुल ४० मि ग्रा., त्रिफला गुग्गुल १०० मि ग्रा, रास्ना पञ्चक क्वाथ द्रव्य १० मि ग्रा, लशुन ८० मि ग्रा, निर्गुण्डी ४० मि ग्रा, चित्रक ४० मि ग्रा तथा कर्पूर १० मि ग्रा समाविष्ट है ।

मात्रानुपान—इसे दो या तीन बार दो कैप्सूल पानी के साथ या चिकित्सक के परामर्श अनुसार देना चाहिए।

उपयोग—यह परम शूलशामक है । यह गृध्रसी आमवात, सधिवात, अपतानक, अर्दित तथा गात्रवाधिर्य मे उपयोगी है । इससे जोडो की पीडा कम होती है । सधियो मे जकडन, सूजन, शोथ आदि मे आराम मिलता है और सधियो मे फिर से हल-चल सम्भव होती है ।

(७) वातरोना टिकिया—

निर्माता—श्री वैद्यनाथ आयु. भवन प्रा लि नागपुर ।

इसमे सुरजान, अश्वगधा, सोठ आदि द्रव्य योग्य मात्रा मे समाविष्ट है ।

मात्रानुपान—इसे वयस्क को १-१ टिकिया दिन मे दो या तीन बार गर्म पानी के साथ अथवा चिकित्सक के परामर्श अनुसार देनी चाहिए ।

उपयोग—यह शूल शामक तथा वातशामक है । इसके सेवन से जोडो का दर्द,आमवात, कटिशूल, गृध्रसी, स्नायु का दर्द आदि दूर होते है । इससे अन्न का पाचन होकर पेट मे गैस नही बनती । बेचैनी, घबराहट, श्वासनली की जलन आदि विकार को भी यह दूर करती हैं ।

(८) रूमालिन्ट प्लस—

निर्माता—आयुलेव फार्मेसी वडोदरा ।

इसमे महानारायण तैल २०० मि ग्रा., रास्ना पचामृत २०० मि ग्रा, गधविरोजा तैल १८० मि ग्रा, कर्पूर ५० मि ग्रा पिपरमेन्ट फूल ४० मि ग्रा, दालचीनी तैल ४० मि ग्रा, जायफल तैल ६० मि ग्रा, नीलगिरी तैल ८० मि ग्रा समाविष्ट हैं ।

उपयोग - यह शूलशामक है । सधिगत वात, आमवात, पक्षाघात, गृध्रसी, अपतानक, हनुस्तम्भ, ग्रीवास्तम्भ आदि वातविकार शमनार्थ इसका वाह्योपचार करना चाहिए । यह स्नायुओ मे मोच, मरोड, लचक, खिच जाना आदि मे उपयोगी है । सर्दी, जुकाम, फ्लु का अङ्गमर्द आदि मे भी यह उत्तम आराम पहुँचाता है ।

(९) रोमा कम्पाउण्ड टिकिया—

निर्माता—पटियाला आयु० फार्मेसी सरहिंद चडीगढ

इसकी प्रत्येक टिकिया मे महायोगराज गुग्गुल, वातगजाकुश रस, कुरगश्रृङ्ग भस्म, अमलतास घन सत्व, सिंहनाद गुग्गुल, किशोर गुग्गुल, गोदन्ती भस्म, महारास्नादि क्वाथ घन प्रत्येक ३०-३० मि ग्रा है ।

मात्रानुपान—इसे २-२ टिकिया दिन मे ३ वार महारास्नादि क्वाथ के साथ लेना चाहिए ।

उपयोग—यह परम शूलनाशक है । यह आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, कोष्ट्रशीर्ष, मन्यास्तम्भ कटिशूल, उरुस्तम्भ आदि वातज विकारो मे उपयोगी है । यह फिरग तथा उपदशजनित सधिशूल तथा सधिशोथ मे उपयोगी है।

[पृष्ठ ३३६ का शेषाश]

घोल के साथ फाक ले । इस प्रकार सुबह शाम सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र २-३ दिन मे ठीक हो जाता है ।

शिवा गुग्गुल (कटिशूल में)

हरड की वकली, वहेडे की वकली, आवले की वकली प्रत्येक १-१ किलो लेकर थोडा कूट ले, फिर इसे ३० किलो पानी मे भिगो दे । दूसरे दिन चूल्हे पर चढाकर पकावे और जब चौथाई शेष रह जाय तो मलकर छान लें । फिर इसमे ४० तोला वढिया चमकदार गुग्गुल डाल कर पका ले । जब गुग्गुल भली प्रकार पिघल जाय और आधा पानी जल जाय तो उतार कर कपडे मे छान ले । इसके वाद एरण्ड तैल (अडी का तैल) डालकर पकावे । जब गाढा हो जाय और अडी का तैल छोडने लगे तो उतार ले । इसमे शुद्ध गन्धक १५ तोला, वायविडङ्ग, कालीमिर्च, छोटी पीपल, सोठ, दन्तीमूल, जटामासी, देवदारु प्रत्येक ४-४ तोला को कूट-छानकर मिला दे और इमामदस्ते और मजवूत कढाही मे रखकर लोहे की मूसली से खूव कूटे । जब सब एकदिल हो जाय तो ४-४ रत्ती की गोली वनाकर सुखा ले । कूटने मे कठिनाई मालूम हो तो पानी के छीटे देकर कूट ले । यह गुग्गुल आमवात, कटिशूल, गृध्रसी, कोष्टुशीर्ष मे अद्वितीय काम करता है । २ से ४ गोली तक दिन मे ३ बार ताजे जल से दे । ❖

अनुभूत चमत्कारी योग--

विविध शूल चिकित्सा

कविराज प० शकरलाल गौड "शम्भुकवि" वैद्यरत्न, साहित्य सम्राट
श्री शकर साहित्य सदन, दूरा २८३११ (आगरा) उ० प्र०



हिन्दी जगत के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार, सुप्रसिद्ध कवि एव विद्वान वैद्य श्री प० शङ्करलाल गौड आयुर्वेद के परम ज्ञाता हे। आपकी अनेको रचनाये अनेको पत्र-पत्रिकाओ मे निरन्तर प्रकाशित होती रहती है। हिन्दी जगत मे आप 'शम्भूकवि' के नाम से जाने जाते है। 'धन्वन्तरि' पर आपका सदैव स्नेह सम्बन्ध रहा है। आपके पास आयुर्वेद के अनेको अनुभव है। उनमे से विविध शूलो पर कुछ शीघ्र फलप्रद प्रयोग यहा आपने देकर देश की जनता को उपकृत किया है। आप ऋषि समान गुणवान होने से विशेष आग्रह से अनुकम्पया लेख भेजा है जो उपयोगी होगा। मैं श्री गौड जी से अपेक्षा रखता हूँ कि इसी तरह भविष्य मे भी आप सर्वाङ्गीण सहायता देंगे।

—वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

१ शिर शूल--त्रिफला ३ तोला, हरिद्रा १ तोला, गुरिच २ तोला, चिरायता १ तोला, नीम की अन्तर छाल लाल रङ्ग की २ तोला, गुड ८ तोला। गुड अलग कर सब कुचल डाले, काढा बनावे, सुबह शाम पिये, सब प्रकार के शिर शूल नष्ट होते है। त्रिदोष सबन वायु को ठीक करता है। गुड पीछे काढा उतार कर १ तोला डाला जाय। यह तीन दिन के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार के योग से शिर शूल अवश्य दूर हो जाता है।

२ जमालगोटा पानी मे घिसकर शिर पर लेप करके थोडी देर वाद ठण्डे पानी से धो डालने से बहुत दिन का सिर दर्द शीघ्र दूर होता है।

३ शकर शिर शूलहर लेप—सत अजवायन ३ माशा, पिपरमेट ६ माशा, बढिया कपूर ६ माशा, मोम १ तोले, गाय का घी ३ तोला—

निर्माण विधि – कपूर, सत अजवायन, पिपरमेट एक शीशी मे डाट (काग) लगाकर धूप मे रख देवे। जब तीनो चीजें गलकर पानी के समान हो जाय तब घी आग मे गर्मकर मोम मिला देवें। जब मोम पिघल जावे तब शीशी वाला मसाला जो पानी हो गया है छोड देवें और पेच वाली शीशियो मे बन्द कर रख देवे। ठण्डी होने पर दवा जम जायेगी। अब इसे लेकर सिर से कनपटी वगैरा जहा दर्द हो मल देवे, दर्द शीघ्र बन्द होता है।

४ सूर्यावर्त—कडवी तोरई को लेकर खूब महीन चूर्ण करें, फिर वही थोडा चूर्ण सावधानी से रोगी की नाक मे डाले। इससे पानी बहकर सूर्यावर्त दर्द की पीड़ा जाती रहेगी।

कर्ण शूल एव कर्णस्राव—

(१) अदरख, लहसुन, मुलैठी, सैंधा नमक, समान भाग लें, कडवे तेल मे पका गुनगुना दोनो कान मे डालने से कान की पीडा जाती रहती है।

(२) सम्भालु के पत्रो के रस मे जरा सी अफीम डाल गर्म कर कान मे डालने से पीडा फौरन ही बन्द होती है।

(३) मदार के पीले पत्तो मे देशी घी चुपडकर सेंधा नमक और समुद्रफेन दोनो महीन पीस उसी घी मे हुए पत्र पर गेर दे, अग्नि मे तपाकर मल दें, रस कान के भीतर डाल दे, शूल फौरन ही दूर होगा।

(४) बबूल के फूल कडवे तेल मे जलाकर डालने से कान का बहना नष्ट हो जाता है।

(५) सज्जी, सौंफ, सौठ, हीग, पीपर, मूली समभाग ले पानी मे पीस लुगदी सी कर सिरका व तेल कड़वा

लेकर पकावे, जब सिरका लुगदी जल जाये तब तेल को शीशी मे बन्दकर रख छोडो। इस तेल को कान मे डालने से कान दर्द कर्णनाद, कम सुनना, कान से मवाद आदि बन्द होते है।

(६) अपामार्ग बूटी का रस पाव भर, मकोय बूटी का रस पाव भर, मीठा तेल आध पाव सबको किसी पात्र मे डालकर पकावे, तेल मात्र रह जाय छानकर शीशी मे रख ले। इससे फोडा फुन्सी, कर्णस्राव, बहरापन आदि रोग नष्ट होते है।

दन्तशूल--

(१) पीले मदार के पत्तो का रस कान मे डालने से दाढ का दर्द शीघ्र नष्ट होता है, पत्तो का रस डालते समय यह ध्यान रहे कि यदि दायी ओर की डाढ मे दर्द है तो वाये कान मे, वायी ओर की दाढ मे दर्द हो तो दाहिने कान मे पत्तो का रस डालना चाहिए।

(२) कपूर ६ माशा, गधक तेजाव १ तोला, पिपरमेट ३ माशा एक शीशी मे मिलाकर मजबूत काग लगाकर रख देवे। जिस डाढ-दात मे दर्द हो उसी पर फुरैरी से लगावे, दर्द नष्ट होता है। इतना ध्यान रहे कि वह मसुढे आदि पर न लगे नही तो वह जगह जल जायेगी।

(३) देशी एमोनिया--नौसादर ६ माशे, चूना कलई ३ माशे, हाथो मे रगड कर सु घाने से दात का दर्द, शिर का दर्द, जुकाम, विच्छू आदि काटे वाले रोते हुए रोगी को हसा देने वाला योग है।

(४) सुपारी की राख, कपूर, दालचीनी, सौठ, लौग, काली मिर्च समान भाग लेकर और सबकी, वजन की बराबर खडिया मिट्टी मिलाकर कूट पीस मजन किया करें। इससे हिलते हुए दात दृढ हो जायेंगे।

पार्श्वशूल--

पार्श्वशूल को साधारण वोलचाल मे पसली का दर्द कहते है। सास लेने मे बडी जोर का दर्द होता है।

(१) फिटकरी, हल्दी, भरभूजे के भार की बालू और सरसो का तेल प्रत्येक १ छटाक ले। ऊपर की दवाये पीस तेल मे मिला दो पोटली बनालो और गरम तवे पर पोटलिया रख के ऊपर आक का पत्ता रख सेक करने से पार्श्वशूल जाता रहता है।

प्लीहाशूल--

एलुवा, हीगतालाव, नौसादर, जवाखार, सज्जीखार, सुहागा चौकिया, पीपर छोटी, कलमी सोरा प्रत्येक १-१ तोला, कसीसहरा ८ तोला सबको चूर्ण कर और नीवू के रस मे घोट ३ दिन वाद छोटे वेर के समान गोली बना ले। दर्द के समय ऊपर से लोहासव व कुमारी आसव पीवे। यह एक अनुभूत योग है।

गुल्मशूल --

धनिया, पोहकर मूल, हीग, जवाखार, अजवायन, सेधा नमक, सोचर नमक, सज्जीखार, हरड, विडङ्ग प्रत्येक १-१ तोला, निशोथ ३ तोला इन सबका वारीक चूर्ण कपड छनकर गरम पानी से ४ माशे चूर्ण पीवे तो गुल्म, अफरा, आमवातशूल तत्काल दूर होता है। ❖

---

* सर्व शूलनाशक चुटकुले *

आयुर्वेद विज्ञान शिरोमणि श्रीमती शशि उमा देवी (महिला चिकित्सक)
आचार्य डा० महेश्वर विज्ञान भवन, मगलगढ (समस्तीपुर) विहार

— ❖ —

शुद्ध कुचला ५० मि ग्रा, अतीस उत्तम १०० मि ग्रा, करज की भुनी मीग ५०० मि ग्रा, सोठ कपडछन चूर्ण ५०० मि ग्रा, त्रिफला चूर्ण १ ग्राम तथा छोटी पीपर २५० मि ग्रा। इन्हे एकत्र खरल मे रखे तथा कुल के भार का सोलहवा भाग फिटकरी भस्म मिलाकर दृढ हाथो से ४ घटा तक घोटे और सुरक्षित रखे।

सेवनविधि--१ से २ ग्राम नीम के क्वाथ १५ मि.लि के साथ प्रात साय।

अपामार्ग क्षार, यवक्षार, फिटकरी भस्म, नौसादर सत्व प्रत्येक १२० मि ग्रा ऐसी एक मात्रा ...से दर्द काल मे दे।

शूलरोगावरोध

वैद्य रत्न द्वारका मिश्र आयुर्वेदाचार्य, सचालक-विहार राज्य वैद्य सेवा सघ
मु० पो०-ओडो, जिला-नवादा (विहार)



वैद्यरत्न श्री द्वारका जी मिश्र विहार राज्य के महान वैद्य हैं। वर्षों से आप 'धन्वन्तरि' को अपनी पत्रिका मानकर सहयोग दे रहे है। आप विहार राज्य वैद्य सेवा संघ के संचालक हैं। नवादा जिला वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष हैं। आपने धन्वन्तरि पूजा पद्धति कथा तथा आयुर्वेद के ऋषि-मुनियो का कार्य क्षेत्र, जन्म स्थान आदि पर खोजपूर्ण साहित्य लिखा है। यदि कोई आयुर्वेदिक प्रकाशन संस्था रचना को प्रकाशित करेंगे तो समस्त वैद्य समाज एव भारतीय समाज पर कृपा होगी। यहा श्री मिश्र जी ने शूल पर ज्ञानवर्धक विवेचन किया है और अन्य लेख दश शूल पर दिया है। मैं आपका ऋणी हू।

— वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज

उदर-पेट मे लगातार पीडा हो, मानो आत बाहर आ रही है, इसे वातजन्य शूल कहा है। इसमे खट्टा सुरापान, दिन मे सोना, सभी प्रकार की दालें (द्विदली अन्न), पिच्छिल चिकनी वस्तु, दही, दूध, शीतल जलपान अन्न, भोजन मना है। आटा सत्तू, साठी, पुरातन अन्न, सेंधा नमक, सौवीर सुरा-गुड़ से वनी शराब, सौंफ, सोठ, हीग, सारस, क्रौच, खरगोश, तीतर का मासरस-यूप दे। सेंक, वमन, उपवास, फलवर्ति, क्षार चूर्ण, वटी के प्रयोग से शूल को नष्ट करें।

सेंक की औषधि (योग प्रतिकार)—

(१) चोकर आटा गेहूँ, प्याज, अजवायन, रसोन, सिन्दुवार के पत्ते, धतूरे के पत्ते कूटकर और तक्र मे मिलाकर पोटली मे रख गर्म करके शूल स्थान पर पक्व तैल या सर्षप तैल लगा १ घण्टा तक रोज सेक करे। यह सेक आत उतरना, एक्सीरा जनित शूल, पेट दर्द, वायु शूल मे आशुफलप्रद है।

(२) मिट्टी को पानी मे घोलकर गर्म करके तथा पेट पर एक कपडा रखकर लेप कर दे या पोटली वनाकर सेक करे।

(३) तिल पीसकर और गर्म करके पेट पर लेप कर दे। मैनफल पीसकर तथा गर्म करके नाभि पर लेप कर दे। तिल तथा गुड को पीसकर उसमे घृत मिलावे और गर्म करके लेप करने का विधान शार्ङ्गधर में कहा है।

(४) सोठ व एरण्ड की जड के काढे मे हीग, काला नमक मिलाकर पीने से शूल नष्ट हो जाता है। यदि पथ्य से रहे तो यह अग्नि को तेज करता है।

(५) सेक—कपास (वागा) के वीज, कुलथी, तिल, यव का आटा, एरण्ड की जड, तिसी, गदहपुरैना की ज़ड सवको काजी (वासी मट्टा, वरावर का पानी, हीग, नमक मिले मिश्रक को काजी कहते है) मे पीसकर पोटली वना सेक करने से चूतड, जघा, पैर, अगुली, एडी, कुहनी, कमर, कन्धा, पेट का दर्द (शूल) शान्त होता है।

(६) शूलान्तक रस—रस सिन्दूर ५ ग्राम, अभ्रक भस्म ४ ग्राम, ताम्र भस्म ६ ग्राम, शुद्ध गन्धक ८ ग्राम, शुद्ध हरताल १ ग्राम, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ ग्राम, नाग भस्म २ ग्राम, वग भस्म २ ग्राम, कलिहारी की जड ४ ग्राम, निशोथ ४ ग्राम को पीसकर भूयी आमले के रस व दन्तीमूल के रस मे ७-७ भावनाए देकर ३-३ ग्राम की गोली वनाकर सेवन करे। सेवन के पहले जुलाब लेकर दही-भात खायें। यह योग रसरत्न समुच्चय का है। इससे समस्त शूल रोग नष्ट होते है।

(७) वडवानल वटी—शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिक, मन.शिल अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक प्रत्येक १-१ ग्राम, अजवायन सबके बराबर ७ ग्राम, इन सबके बराबर सोठ, पीपर, गोल मिर्च १४-१४ ग्राम। प्रथम पारा, गन्धक की कज्जली बना ले। सबको मिला कूट-पीसकर हीग के घोल मे ७ दिन फिर ग्रन्ति मकोय (बडी वन फुटका) के रस मे ७ दिन तक भावनाए दे। बाद मे सम्हालू (सिन्दवार जड), आर्द्रक की ७-७ भावना देकर गोल मिर्च के बराबर गोली बना गर्म जल से सेवन करने से शूल नष्ट होता है। यह योग रसरत्न समुच्चय का है। दूसरे आचार्य के मत से हीग, जीरा, वच दिया जाता है।

वात शूल—

(८) शुद्ध पारा १ ग्राम शुद्ध गन्धक २ ग्राम की कज्जली करके निम्बु रस मे १ दिन ताम्रपत्र (५ ग्राम) सहित घोटें। बाद मे ताम्रपत्र को कपडा पर रख लेप करके सुखा लें। कपडे पर सज्जी क्षार २ ग्राम, सुहागा २ ग्राम रखकर लपेट ले और मिट्टी के गजपुट बनाकर सुखा ले तथा आग पर फूक दे। फूकी हुई भस्म को खरल मे डालकर धतूरे के पत्तो का रस, चित्रक का रस या क्वाथ, आर्द्रक रस मे घोटे। फिर ताम्र भस्म १ ग्राम, सोठ, मिर्च, पीपल ३-३ ग्राम, शुद्ध सिंगिया भस्म ८ ग्राम डालकर पुन घोटे और २-२ ग्राम की गोली बना ले। ये वातशूल को नष्ट करती हैं।

आम शूल—

(९) पेट फूलना, गौरव, वमन, आनाह, देह अकडना, मुह से लार आना आदि को आम शूल कहते है। इस शूल मे शराब देना उत्तम है। आम शूल मे वमन करावें, कफ शूलहर क्रिया करे, अग्निवर्धक मद्य दे।

पित्त शूल—

(१०) सौंफ का रस या क्वाथ मधु या मिश्री मिलाकर पीने से दाह, शूल शान्त होता है। स्वादिष्ट शीतल पदार्थ सेवन करने से पित्त शान्त होता है।

सौफ, धनिया, सुगन्धवाला, कुश की जड, मिश्री को पीसकर पीने से पित्त शान्त होकर शूल नष्ट होता है। शिर शूल मे क्वाथ पीने और माथे पर चन्दन घिसकर लगावे।

कफज शूल—

(११) कटैली फल, अडूसा मूल, असगन्ध, शिलाजीत, शतावर रेडी की जड, यवक्षार, गोखरू का क्वाथ पीने से कफज शूल शान्त होता है।

(१२) सोठ, मिर्च, पीपर, सैंधा नमक, शंख भस्म मिलाकर पीने से सन्निपातज शूल (जिस शूल मे तीनो दोष हो) शान्त होता है।

हृदय शूल—

(१३) सोठ, एरण्ड की जड, दशमूल, हीग, सैंधा नमक, काला नमक, साभर नमक, पोहकर मूल का चूर्ण, सज्जी, यव क्षार मिलाकर जल के साथ देने से हृदय शूल नष्ट होता है। हृदय, कमर, पीठ, उदर, आमाशय का दर्द और गुल्म मे जीरा, सोठ, हीग मिलाकर दे।

केवल हृदय शूल मे कहुआ (अर्जुन वृक्ष) की छाल के क्वाथ मे मधु मिलाकर सुवह, दोपहर, शाम दे।

पार्श्व शूल—

(१४) वायु कफ को पकडकर सुई चुभने जैसा पार्श्व मे दर्द होता है। आध्मान, शूल वेग, श्वास, अरुचि, अनिद्रा पैदा करती है। इसे पार्श्व शूल कहते हैं।

निम्बू का रस, मधु, यव क्षार मिलाकर पिलावे या सहजना के घोल का क्वाथ दे। इससे हृदय शूल, वस्ति शूल नष्ट होता है।

वस्ति शूल—

(१५) आवला, हरड, बहेडा, सोठ, पीपर, मरिच, मोथा, निशोथ प्रत्येक १-१ भाग, शुद्ध गन्धक व शुद्ध पारा की कज्जली ६ रत्ती, वायविडङ्ग २ भाग कूट-पीस कर त्रिफला के क्वाथ की भावना देकर चना के बराबर बनाकर माड के साथ दे। यह पानीय वटी सभी प्रकार के शूलो को नष्ट करती है। भैषज्य रत्नावली का योग है।



विविध शूलों की गृहवस्तु चिकित्सा

श्री लक्ष्मी शंकर त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य ए एम एस १०६/१ गाधीनगर, कानपुर (उ०प्र०)

—✶❖★—

परिवारिक औषधि पेटी —

आकस्मिक पारिवारिक संकट से निपटने के लिए प्रत्येक परिवार मे कुछ आवश्यक औपधियो का सग्रह रखना चाहिए जैसाकि पहले होता था। एक काष्ठ या टीन के छोटे बक्से मे निम्न लिखित वस्तुयें रखनी चाहिए—

१. अस्पताली रुई का छोटा वण्डल।

२. दो या ढाई इञ्च की लिपटी पट्टिया।

३ दो सौ मि ली स्प्रिट।

४. सौ मि ली तारपीन का तेल।

५. एक-एक शीशी अमृतधारा, पुदीना हरा, टिंचर आयोडिन।

६. एक शीशी जवाहर मोहरा।

७ एक-एक शीशी गन्धकवटी, शख वटी, हिंग्वाष्टक चूर्ण, चन्दनादि वटी।

८ अर्क सौंफ, अर्क अजवायन, अर्क सोया, अर्क पुदीना, अर्क गुलाब।

९ सौंठ,अजवाइन,कालानमक, हल्दी २५-२५ ग्राम। ५ ग्राम हींग, जायफल, छोहारा, प्याज, दालचीनी, लौग ५०-५० ग्राम।

१० जन्म घुटी, ग्राइपवाटर, चन्दन का तेल। इस औपधि पेटी के अतिरिक्त घर के पास गेंदा, चमेली, सुद-र्शन, कुकरौंधा, करवीर (कनेर), तलसी, एरण्ड के पौधे भी यथा सम्भव लगाने चाहिए।

गोद के बच्चे का उदर शूल—

पारिवारिक शूल मे गोद के बच्चे का उदर शूल सर्वाधिक सङ्कट का कारण बनता है। बच्चा अखण्ड रोना प्रारम्भ कर देता है फिर न कुछ कहता है और न कुछ सुनता है। घर के लोग यदि अनुभवी हुए तो कुछ अनुमान लगा लेते हैं नही तो सबके सब बच्चे से भी अधिक परेशान होते रहते हैं। ऐसी परिस्थिति मे सबसे पहले उदर शूल का ध्यान रखना चाहिए। बच्चे को सीधा लिटाकर उसके पेट को हथेली से स्पर्श करना चाहिए।यदि पेट मे तनाव और वायु भरी हुई प्रतीत हो तो तुरन्त उदर शूल की चिकित्सा करनी चाहिए। शिशु उदरशूल दो प्रकार का होता है? १. वायु प्रधान, २ पित्त प्रधान। पित्त प्रधान मे हरे पीले दस्त, खट्टी डकार, अरुचि, दूध डालना आदि लक्षण भी होते है। यदि शूल वायु प्रधान है तो एक भगौने मे गुनगुना (थोडा गरम) पानी लेकर उसमे दो चम्मच तारपीन का तेल डालकर कपडा भिगोकर पेट को सेंकना चाहिए अथवा एक कटोरी मे १ चम्मच घी या सरसो का तेल लेकर उसमे चने के बराबर हीग पका लेवें और उस तेल या घी को पेट पर दाहिने से बायी ओर घुमाते हुए लगाना चाहिए। इससे बच्चे के पेट मे भरी वायु निकल जायेगी और शूल ठीक हो जायेगा। साथ ही आयु के अनुसार एक या दो चम्मच ग्राइप वाटर पिलाना चाहिए अथवा एक चम्मच अर्क अजवायन और दो चम्मच अर्क सौंफ मे थोडी सी सोठ घिस कर देनी चाहिए या उक्त दोनो अर्क मे सरसो के बराबर घी मे भुनी हींग मिलाकर पिलाना चाहिए। पित्त प्रधान शूल मे सेंकना ठीक नही है। इसमे ग्राइप वाटर एक या दो चम्मच पिलावें अथवा अर्क अजवाइन अर्क पुदीना मे थोडी सी शख वटी घोलकर देना चाहिए।

मात्रा—(१ साल तक के बच्चे को १/६ रत्ती) अथवा पुदीना के अर्क मे एक रत्ती हिंग्वाष्टक चूर्ण देना चाहिए। पुदीना अजवाइन के अर्क मे थोडी सी सोठ घिस कर दी जा सकती है।

हंसली (गले की हड्डी) हट जाने का शूल—

गोद के बच्चे को होने वाला दूसरा शूल जिसमे उन्हे असह्य पीड़ा होती है हसली का स्थानच्युत हो जाना है। जब बच्चे को गोद मे लेने या उठाने मे असावधानी हो जाती है तब उसके गले की हड्डी अपने स्थान से हट

जाती है तब भी पीडा के कारण अखण्ड रुदन प्रारम्भ कर देता है और जब तक उसे बैंठाल न दिया जाय तब तक शात नही होता है। इसमे घर की या पडौस की बडी बूढी स्त्रिया जिन्हे हसली बैठालने का अनुभव हो उनकी सहायता लेनी चाहिए।

शिरःशूल—

परिवार मे प्राय होने वाला यह एक परिचित शूल है जो छोटे बडे सभी के हो सकता है इसका निर्णायक निदान तो अनुभवी चिकित्सक के द्वारा ही किया जा सकता है। परन्तु सर्दी-गर्मी के आधार पर प्राथमिक चिकित्सा की जानी चाहिए। यदि सर्दी के कारण है तो सरसो के तेल मे बादाम घिसकर माथे पर लगाना चाहिए। बादाम का तेल या देशी घी लगाने से भी आराम मिलता है। यदि गर्मी के कारण है तो चन्दन को पानी मे घिसकर कपूर मिलाकर लगाना चाहिए। दालचीनी, छोटी इलाइची को पानी मे पीसकर माथे पर लगाना चाहिए। मुचकुन्द के फूल पानी मे पीस कर माथे पर लेप करना चाहिए। सूखा आवला पानी मे पीसकर माथे पर लेप करना चाहिये। चमेली के तेल मे कपूर या चन्दन मिला कर लगाना चाहिए।

कर्णशूल और दन्तशूल—

कान के शूल मे सूखे कपडे को अगीठी मे गर्म करके सेंकना चाहिए। सरसो के तेल को गर्म करके गुनगुना-२ कान मे डालना चाहिए। सुदर्शन की पत्ती का स्वरस कान मे डालें अथवा गेंदा की पत्ती का स्वरस भी लाभ करता है। चोये का तेल (इत्र की दुकानो मे मिलता है) भी कर्णशूल मे लाभ करता है। उपर्युक्त चिकित्सा प्राथमिक चिकित्सा तक ही सीमित रखनी चाहिए। फिर किसी योग्य चिकित्सक को दिखाकर निदान कराये।

दात के शूल मे यदि मसूढे मे शोथ हो तो हल्दी और सौंठ को पानी मे उबालकर (२ गाठ हल्दी व १ गाठ सोठ को दो कप पानी मे उबाले। आधा कप रहने पर छान लें) गुनगुना-२ काढा एक बडा चम्मच मुह मे भर लेना चाहिये जिससे शोथ के स्थान पर सेंक पहुँचे। पाच मिनट तक सेंक करें। सरसो के तेल मे हल्दी पकाकर इसी प्रकार मसूढा सेकना चाहिये। बाद मे लौंग को महीन पीस कर इस चूर्ण को भली भाति चारों तरफ लगाना चाहिये। यदि दात खोखला हो तो उसमे भी लौंग का महीन चूर्ण भर लेवें। गूलर, बबूल और नीम की छाल का काढा बनाकर उससे कुल्ला करें (१० गाम तीनो छाले एक कप पानी को चौथाई कप रहने पर छान ले) आयुर्वेद के दशन सस्कार चूर्ण को अगुली मे लगाकर मजन करे। ब्रुश का प्रयोग नही करे।

वक्षशूल—

प्राय सर्दी लग जाने से छोटे बच्चो को और बडो को भी छाती पीडा होने लगती है, श्वास लेने मे भी कष्ट होता है और मन्द ज्वर भी हो जाता है। यह शूल कभी कभी मोच आने या चोट लगने से भी होने लगता है। छोटे बच्चो मे पसली चलने लगती है और खासी भी आने लगती है। ऐसी अवस्था मे घी मे सेंधा नमक घिस कर छाती मे लगा सेकना चाहिये अथवा सरसों के तेल मे तारपीन का तेल मिलाकर लगावे। यदि सिकाई कर दे तो उत्तम है। मोच हो तो हल्दी का लेप लगायें और सेकें। (आवा हल्दी और प्याज बराबर-२ पीस कर गर्म करके सरसो का तेल मिलाकर लेप बनायें। वक्ष का शूल कुछ अन्य गम्भीर कारणो से भी हो सकता है जैसे—फेफडे के रोग हृदय के रोग। यदि शूल फेफडे का प्रतीत हो तो घी मे सेंधा नमक घिस कर या तारपीन का तेल सरसो का तेल मिलाकर मालिस करना और सेकना। यदि शूल हृदय का प्रतीत हो रहा हो तो महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती, जवाहर मोहरा १ रत्ती शहद और अदरख के स्वरस मे मिलाकर देवे।

उदर शूल—

उदर शूल अनेक कारणो से हो सकता है। जैसे—वायु से, पित्त से, अपच से, विरुद्ध भोजन से, अधिक भोजन से, विषाक्त भोजन से, आन्त्र शोथ से, आन्त्र विद्रधि से, आन्त्रपुच्छ शोथ से आन्त्र फंस जाने आदि से (यथा सम्भव निदान निश्चित करके औषधि प्रयोग करना चाहिए। वायु शूल मे जब पेट मे वायु भरी हो, पेट फूला हो, डकारे आ रही हो तब हिंग्वाष्टक चूर्ण, शख वटी, गन्धक वटी, अर्क अजवाइन, काला नमक, हीग, सौंठ, अर्क अजवाइन तथा अर्क सौंफ आदि को आवश्यकता और आयु के अनुसार मात्रा बनाकर पानी से देवे। गर्म पानी

—शेषाश पृष्ठ ३४६ पर देखे।

मस्तिष्क दौर्बल्यजन्य शिरःशूल

वैद्य चैतन्य स्वरूप 'दाधीच' आयु गृह, कोटा (राज०)



मस्तिष्क के बलवर्धन के लिए उचित उपाय करें। यदि सिर दर्द शीत के कारण हो तो रोगी को मुहाती-२ चाय निम्न प्रकार से बनाकर पिलावे—

चाय ३ माशे, जायफल १ माशा, जावित्री १ माशा, दालचीनी १ माशा, मिश्री २ तोला, दूध ५ तोला। आवश्यकतानुसार (यथा प्रमाण) जल मे उबालकर पिलावे। रोगी को उष्ण स्थान मे रखें। यदि वेदना तीव्र हो तो वेदना स्थान (ललाट, कनपटी) पर दालचीनी का तैल फुरैरी से लगावे। खाने को विटामिन बी की १ टेबलेट व लक्ष्मीविलास रस (स्वर्णयुक्त) २२५ मि ग्रा अम्बर चटनी (शीतल प्रसाद एण्ड सन्स) ५ ग्राम या च्यवनप्राश १० ग्राम मे मिलाकर चटावें और ऊपर से एक कप मन्दोष्ण दुग्ध मिश्रीयुक्त पिलावें। यदि कब्ज हो तो उसका निवारण करें। इसके लिए त्रिफलावलेह १० ग्राम रात्रि को सोते समय २५० मि लि उष्ण दुग्ध ठण्डा किया हुआ के साथ दे अथवा यह उपलब्ध न हो सके तो मुनक्का (बीजरहित) दुग्ध से दे।

यदि शिर शूल का कारण उष्णता हो तो रोगी को शीतल स्थान पर रखना चाहिए। सफेद चन्दन ५ माशा, कद्दू के बीज ६ माशा, सूखा धनिया ६ माशा, कपूर १ माशा सबको गुलाब के अर्क मे पीसकर मस्तक पर प्रलेप करें। यदि दर्द तीव्र हो तो केसर २ रत्ती, अफीम ४ रत्ती, खुरासानी अजवायन के बीज ४ रत्ती उपर्युक्त योग मे मिलाकर लगावे अथवा हमदर्द की कुर्स मुसल्लम १ टिकिया पानी मे घिसकर मस्तक व कनपटी पर प्रलेप करे, सद्य दर्द प्रशमित होगा। खाने को प्रवालपिष्टी २५० मि. ग्रा, गिलोयसत्व ५०० मि ग्रा, स्वर्ण सूतशेखर रस १२५ मि ग्रा व सितोपलादि चूर्ण १ ग्राम। इस प्रकार यह एक मात्रा हुई। ऐसी तीन मात्राए प्रतिदिन प्रात, मध्याह्न, साय आवले के मुरब्बे के साथ देकर ऊपर से एक कप मन्दोष्ण दुग्ध मिश्रीयुक्त का पान करे अथवा अभाव मे उपर्युक्त औषधि मलाई के अनुपान से ले। मस्तिष्क दुर्बलता व पित्तजन्य विकार (उष्णता) सद्य शान्त होगे। यदि साथ ही कोष्ठबद्धता, आखो की लाली, पुराना नजला आदि या कोई लक्षण साथ मे हो तो हमदर्द इतरीफल किशनीजी १० ग्राम रात को सोते समय पानी या दुग्ध से दे। यह इतरीफल इन शिकायतो के निवारण के साथ मस्तिष्क का बलवर्धन भी करेगा।



उष्णताजन्य मस्तिष्क दौर्बल्ययुक्त शिर शूल मे निम्न योग भी लाभकारी सिद्ध हुआ है—

सारस्वतारिष्ट न १ (स्वर्णयुक्त) १० से २५ मि लि प्रात -साय भोजनोत्तर (भोजन के आधे घण्टे पश्चात्) समान भाग जल से दे। हमदर्द का खमीरा आबरेशम शीरा उन्नाव वाला ५ ग्राम खिलाकर ऊपर से अर्क गावजबा या शर्बत उन्नाव १० ग्राम खिलावे।

यदि ग्रीष्मऋतु हो तथा प्रसेक न हो तो प्रात -साय शतधौत गोघृत या मक्खन का मस्तिष्क पर अभ्यङ्ग करे। ५ दाने मीठे बादाम की गिरी रात्रि को पानी मे भिगो कर प्रात छील-पीसकर मक्खन तथा मिश्री १-१ तोला मिलाकर चाटने से हर प्रकार का मस्तिष्क दौर्बल्यजन्य शिर शूल शान्त हो जाता है। सुपरीक्षित है।

मदाग्नि वाले मस्तिष्क दुर्बलताजन्य शिर शूल रोगी को बादाम ४-५ नग, कालीमिर्च ४-५ दाने, मुनक्का बीज रहित ४-५ दाने मे एक छोटी इलायची पीसकर तथा मिश्री १ तोला मिलाकर प्रात -साय चटाना लाभकर है।

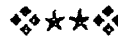
यदि साथ ही किसी उपयुक्त औषधि का सम्मिश्रण योग रोगी की प्रकृति के अनुसार लिया जाय तो अत्यन्त श्रेयस्कर सिद्ध होगा ।

यदि किसी कुटेवादि के फलस्वरूपधातु दौर्बल्यता से उत्पन्न मस्तिष्क दोर्वल्यजन्य शिर शूल का रोगी हो तो नव चन्द्रोदय वटी (निर्मल आयु सस्थान) १ गोली, सूर्यतापी शिलाजीत १ रत्ती महीन पीसकर च्यवनप्राश १ तो० मे मिलाकर दे और ऊपर से मन्दोष्ण मिश्रीयुक्त गोदुग्ध १५० मि लि पीये ।

अथवा चन्द्रप्रभा वटी १ गोली सुबह-शाम सेवन करे अथवा स्वर्णमाक्षिक भस्म १२५ मि ग्रा , रजत भस्म १२५ मि ग्रा प्रात साय एक कप छुहारा वाले मन्दोष्ण दुग्ध (२५० मि, लि दुग्ध मे दो छुहारा डालकर एक कप रहने तक मन्दाग्नि पर उबाले हुए दुग्ध) के साथ प्रतिदिन सेवन करावे । २ माह मे धातुदौर्वल्य व मस्तिष्क दौर्वल्यजन्य शिर शूल छूमन्तर होता नजर आयेगा । ऐसे रोगी को मूसली पाक, अश्वगन्धादि चूर्ण, शतावर्यादि चूर्ण आदि का सेवन कराना भी आशुफलदायी सिद्ध होता है ।

पथ्य—लघु एव शीघ्र पाकी आहार चपाती आदि तथा शाको मे कद्दू, पालक, बथुआ और मूग की दाल देवें । अण्डा यदि रोगी लेता हो तो दूध के साथ देवें । दूध, पके फल, सूखे फल (मेवा), ग्लैक्टिन बिस्कुट आदि का सेवन करावे ।

अपथ्य—रोगी को अनावश्यक चेष्टा करने से सावधान करे । रोगी सामान्य दशा मे दिनचर्या व्यतीत करे । शीतजन्य शिर शूल मे शीतल पदार्थो का सेवन न करावें तथा उष्णताजन्य शिर शूल मे उष्ण पदार्थों का सेवन कतई बन्द करा दें । रोगी के समीप शोरगुल न होने दें । शिर. शूल की अवस्था मे कोई आहार खाने को न देवे । ❖



विविध शूलो की गृहवस्तु चिकित्सा

[पृष्ठ ३४४ का शेषाश]

मे तारपीन का तेल डालकर सेकना चाहिए । पित्तजशूल मे जब खट्टी डकार, जी मिचलाना छाती और गले मे जलन, उल्टी आदि लक्षण हो । तब शख वटी, हिंग्वाष्टक चूर्ण, अर्क अजवाइन, अर्क पुदीना, अर्क सौंफ नीबू, अजवाइन, सोठ, प्याज स्वरस, पुदीना, धनिया की हरी पत्ती के स्वरस का प्रयोग करना चाहिए । अपच के शूल मे हिंग्वाष्टक चूर्ण, शख वटी, गन्धक वटी का प्रयोग करे । खाने को कुछ नही देवे । कुछ अन्तर से थोडा-२ पानी पीने को देवें । विरुद्ध भोजन या अधिक भोजन मे भी शखवटी, गन्धक वटी, अर्क अजवायन, अर्क सौंफ, अर्क पुदीना, सोठ, अजवायन, काला नमक हीग का प्रयोग कराये । विषाक्त भोजन मे पानी पिलाकर उल्टी करावे फिर अर्क अजवायन, सौंफ, पुदीना शख वटी, प्याज का स्वरस प्रयोग करे । आत्र विद्रधि मे अर्क अजवायन, अर्क पुदीना, अर्क सौफ का प्रयोग शख वटी, हिंग्वाष्टक के साथ करना चाहिए ।

गुर्दे का शूल—

पीडा अधिक तीव्र होने पर उल्टी भी होने लगती है। गुर्दे की पीड़ा मे पेट को गरम पानी की थैली या बोतल से सेंकना चाहिए। अर्क अजवाइन, पुदीना मे चन्दन का तेल आठ बूद मिलाकर देना चाहिए । गोक्षुरादि गुग्गुल ४ गोली, चन्दनादि वटी २ गोली पानी अथवा गोखरू के काढे से देनी चाहिए (गोखरू ६ ग्राम पानी १ पाव १/४ रहने पर पिलाना चाहिए) ।

कटि शूल—

ऐसी स्थिति मे महायोगराज गुग्गुल ४ रत्ती, अजवायन का चूर्ण २ ग्राम, सोठ का चूर्ण १ ग्राम मिला कर गुनगुने पानी से देना चाहिए । अथवा अशोकारिष्ट ४ चम्मच, अर्क अजवायन ४ चम्मच मिलाकर देना चाहिए । कटिशूल कभी-कभी मोच से (जिसे चिक जाना कहते हैं) भी होता है तब सेंकने से भी लाभ होता है ।

अर्श शूल—

अर्श के शूल मे हल्दी और तम्बाखू के चूरे को कोयले की आच मे डाल कर उसके धुए से सेकना चाहिए । सूखे कपडे से भी सेक सकते हैं । नीम की पत्ती पीस कर टिकिया बनाकर बाधनी चाहिए। कुकरौंधा की पत्ती पीस कर टिकिया बाधनी चाहिए । घी मे छोटी हर्रं घिसकर अफीम मिलाकर लगाने से पीड़ा कम होती है । ★

तात्कालिक आधुनिक शूल चिकित्सा

डा० बजमोहन वाशिष्ठ ए, एम बी एस, चिकित्सा प्रभारी–राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
मन्नीवाली (श्री गगानगर) राज०

—✶❖✶—



आंत्रशूल—

सर्व प्रथम मूल कारण का निराकरण आवश्यक है। लाक्षणिक लाभार्थ निम्न चिकित्सा से लाभ मिलता है—

बैरागलन इन्जेक्शन ५ शीशी इन्ट्रावीनस धीरे-धीरे लगावे। फोर्टविन और फनार्गन इन्जेक्शन दोनो मिलाकर भी इन्ट्रावीनस या इन्ट्रामस्कुलर लगा सकते हैं। अथवा पैथीडीन इन्जेक्शन पेशीमार्ग से १०० मि ग्रा की मात्रा मे देना लाभदायक पाया जाता है।

छोटे बच्चो मे स्पाजमिडोन पैडियेट्रिक ड्राप्स वयानुसार उचित मात्रा मे पिलाना चाहिए।

उण्डुक पुच्छ शूल—

यह शूल उण्डुक पुच्छ मे उपसर्ग व शोथ होने से उत्पन्न होता है। इसमे पूयोत्पत्ति भी होकर उपसर्ग फैलने का भय रहता है। यह शूल एकाएक नाभि प्रदेश से प्रारम्भ होता है और शीघ्र ही दक्षिण श्रोणि प्रदेश मे पहुँच जाता है। शूल के अतिरिक्त निम्न लक्षणो से इसकी पहिचान हो जाती है—स्थानीय रूप से दाब वेदना, जी मिचलाना व छर्दि, मन्द ज्वर, पल्सरेट बढा हुआ, कब्ज की शिकायत, पेट की उपरस्थि मासपेशियो मे कठोरता, दाए पार्श्व की समोदरिका पेशी मे कठोरता, मैकवर्नी पौयट पर दवाने से विशेष रूप से दर्द होना (इलियक अस्थि के सामने और ऊपर वाले उभार तथा नाभि के बीचोबीच यह स्थान होता है)।

चिकित्सा—साधारण प्रकार के शोथ मे अच्छी सी एन्टीवायोटिक औषध यथा एम्पीसिलिन, पेनिसिलीन, सिफैलेक्सीन उचित मात्रा मे देने के साथ ही बैरालगन इन्जेक्शन शूल शमनार्थ लगाना बडा हितकारी रहता है। शूल शमनार्थ फोर्टविन और फैनर्गन का सूचीवेध भी मिलाकर शिरान्तर्गत देने से तत्काल शूलशमन होता है।

तीव्र अवस्था के शोथ मे ड्रिप मे नोवल्जीन ५ सी-सी इन्जेक्शन देकर शूल शात किया जा सकता है। तत्पश्चात् यथा शीघ्र शल्य चिकित्सा कर देनी चाहिए।

पित्ताश्मज शूल—

पित्ताश्मरी का निदान करते समय पित्ताश्मज शूल का पाया जाना एक महत्वपूर्ण लक्षण है। इसमे अचानक कौडी अथवा दायी अध.पर्शुका क्षेत्र मे बहुत तीव्र प्रकार का शूल उत्पन्न होता है। रोगी को उल्टिया होती है। शूल इतने उग्ररूप से होता है कि ठण्डा पसीना आने लगता है। यह पीडा दाये असफलक अथवा दायें कन्धे की ओर जाती प्रतीत होती हैं। यह लक्षण इसकी विशेषता दर्शाता है। जब अश्मरी सामान्य पित्त वाहिनी से निकलकर ग्रहणी मे आ जाये अथवा पुन पित्त वाहिनी मे लौट जाये तो पीडा एकाएक कुछ समय बाद समाप्त हो सकती है।

चिकित्सा—पित्ताश्मज शूल के समय पैथीडीन १०० मि ग्रा सूचीवेध अन्त पेशी मार्ग से दे। दूसरा सूचिवेध छ घटे बाद दिया जा सकता है।

स्पार्मिडोन सूचीवेध अन्त पेशी मार्ग से १ से २ सी सी प्रत्येक ४ घण्टे पर शूल शमनार्थ दें।

फोर्टविन और फेनार्गन शिरान्तर्गत मिला कर दे सकते हैं।

सक्रमण रोकने और हटाने हेतु विस्तृत क्षेत्र वाली किसी एण्टी बायोटिक का यथा मात्रा प्रयोग किया जाना चाहिए। वमन हेतु शिरान्तर्गत लवण शर्करा ५% देना उचित है।

शूल चिकित्सा के बाद शल्य चिकित्सा द्वारा अश्मरी निस्कासन रोग से मुक्ति दिला देता है।

वृक्कशूल—

अकस्मात् बिना सूचना के उग्ररूप का शूल पीठ के एक ओर से शुरु होकर आगे की ओर बाह्य जननेन्द्रिय एव जाघ के अन्दरूनी भाग मे पहुँचता है। जरा भी हिला डुला जाय तो शूल बढ जाता है। जी मिचलाना और उल्टी होती है। ठण्डे पसीने मे आवृत्त होकर देह ठण्डी पड जाती है। हाथ पैर शूल के तीव्र होने से ठण्डे पड जाते हैं। मूत्र त्याग की इच्छा बार-बार होती है, किंतु हर बार मूत्र प्रवृत्ति थोडी ही होती है। कई बार मूत्र मे रक्त भी मिलता है।

कुछ मिनटो से लेकर शूलावधि कई घण्टो तक रह सकती है। यदि अश्मरी गवीनी से निकल कर मूत्राशय मे चली जाय तो शूल यकायक रुक जाता है। यदि अश्मरी पुन खिसक कर गवीनी मे पहुँच जाय तो पुन शूल आक्रमण कर देता है। वृक्क शूल शान्त होने के कई दिनो बाद भी वृक्कक्षेत्र मे बहुत सवेदनशीलता पाई जाती है। अश्मरी का शतप्रतिशत निदान एक्सरे, पायलोग्राम और सिस्टोस्कोपी द्वारा हो जाता है।

चिकित्सा—इन्जेक्शन पैथीडीन १०० मि ग्रा और इन्जेक्शन एट्रोपीन सल्फेट ० ६ मि ग्रा एक साथ मिला कर अन्त पेशी मार्ग से देना उपयुक्त रहता है। यदि आवश्यक हो तो १ घण्टे बाद पुन देना पडता है।

मूत्रल औषधिया यथा अल्कासोल आदि यथोचित मात्रा मे यथोचित समय तक देनी चाहिए। पेय पदार्थ प्रचुर मात्रा मे देना चाहिए। वमन और उत्क्लेश हेतु स्टेमेटिल का सूचीवेध या गोली देना उत्तम है।

सिस्टोन गोलिया लम्बे समय तक यथानिर्दिष्ट तरीके से देते रहने से छोटी पथरिया कुछ दिनो बाद घुलकर टूटकर मूत्र मार्ग मे बाहर आ जाती हैं। अश्मरी के टुकडे या टुकडा बाहर निकलने पर भी लम्बे समय तक ये गोलिया चलाई जानी चाहिए।

अन्त मे या बडी पथरी होने पर शल्य चिकित्सा ही राहत दिला सकती है।

हृच्छूल (एन्जाइना पैक्टोरिस)—

कुछ अन्तराल पर हृद् प्रदेश मे होने वाला तीव्र शूल हृच्छूल कहलाता है। यह वेदना हृदय प्रदेश से प्रारम्भ होकर बाए कन्धे और बायी भुजा की ओर फैलती प्रतीत होती है। परिश्रम और मानसिक असन्तुलन के बाद प्राय यह वेदना हो जाती है।

हृदय को रक्त ले जाने वाली हृद् धमनियो का मार्ग किन्ही कारणो से धीरे-धीरे तग होजाने से रक्तवहन अच्छी प्रकार से न हो पाने और हृद् धमनियो की तन्त्रिकाओ के अग्र सिरो पर कुछ शूलोत्पादक चयापचयन तत्वो के एकत्रित होकर उन्हे उत्तेजित करने के फलस्वरूप हृद् धमनियो की मासपेशियो मे उद्वेष्टन होने से तीव्र पीडा प्रतीत होती है।

लक्षण व चिह्न—हृदय प्रदेश मे उत्पीडन और बडी तेज सकुचन की अनुभूति का होना पहला लक्षण है।

प्रीकार्डियम से वेदना बाए कन्धे और बायी भुजा की दिशा मे अग्रसर होती प्रतीत होती है।

रोगी को मृत्यु की निकटता का आभास होता है और श्वास क्रिया मन्द हो जाती है।

स्तब्धता के लक्षण यथा शीत प्रस्वेद, बेचैनी और चिन्ता आदि दिखाई देते हैं।

पीडा का समय प्राय ४-५ मिनट होता है। कुछ देर विश्राम करने पर पीडा अधिकतर शात पड जाती है। वेदना के समय पेल्सरेट और सिस्टोलिक रक्त दाब वृद्ध मिलते है। बाह मे पीडा स्थान पर दाब वेदना के कई स्पाट (बिन्दु) या क्षेत्र मिलते है।

हृदय से सम्बन्धित कोई साफ विकार नही मिलता।

चिकित्सा—एन्जार्डसेड टेबलेट वेदना के प्रारम्भ होते ही जीभ के नीचे रखकर चूसते रहने से २-३ मिनट मे शूल शमन हो जाता है। शूलशमन पूर्णरूप से न होने तक प्रत्येक पाच मिनट वाद एक गोली चूसते रहना उचित है। आवश्यकतानुसार कई गोलिया चूसी जा सकती है।

सोरबीट्रेट टेबलेट आधी से एक गोली जीभ के नीचे रख उक्त प्रकार से प्रयोग मे लाई जाती है और प्रत्येक ५ मिनट पर उसी भाति चूसी जा सकती है।

आइसोडिल टेबलेट १ १ की मात्रा मे दिन मे तीन वार पानी के साथ निगलनी पडती है। पेरीट्रेट एस ए. टेबलेट प्रात १ गोली खाली पेट और दूसरी वारह घटे वाद रात्रि मे लेनी चाहिये।

नोट—मायोकार्डियल इन्फार्क्शन मे इन गोलियो का प्रयोग वर्जित है। ग्लूकोमा मे प्रयोग के समय सावधानी और विकृति वढने को दृष्टिगत रखें।

कटिशूल—

कमर मे निम्न कटि वेदना या कटित्रिक प्रदेश मे होने वाला शूल कटिशूल कहलाता है।

कारण—पश्चात् कण्टक के स्नायु मे मोच आ जाने का खास कारण गलत ढङ्ग से खडा होना या वैठना है। भारी भार उठाने या ज्यादा झुकने से भी कटिशूल उत्पन्न हो जाता है।

कटिकशेरुका सन्धि शोथ—कटिशूल का यह आजकल खास कारण माना जाता है। यह प्राय मध्य आयु के स्त्री पुरुष को होता है। इसमे कटि क्षेत्र की कुछ कशेरुकाओ की सन्धियो मे सूजन आजाने से शूल उत्पन्न होता है।

कशेरुका का खिसकना—कटिक्षेत्र की एक या दो कशेरुकाये आगे को खिसक जाती है। अन्तिम कशेरुका मे ऐसा अधिकतर होता है। कशेरुका के निज स्थान से खिसक जाने (हट जाने) से निकटवर्ती तन्त्रिकाओ पर दाव पड कर शूल होता है। प्राय यह पीड़ा जाघो तक प्रतीत होती है। गृध्रसी से सापेक्ष निदान करने मे कशेरुका खिसकने से उत्पन्न शूल का दोनो पैरो की ओर जाना विशेष महत्व रखता है।

पृष्ठ वश का यक्ष्मा—इस स्थान की हड्डियो और जोडो मे यक्ष्मा हो जाने से भी कटिशूल उत्पन्न होता है।

अस्थि सुषिरता—अधिकतर वृद्ध स्त्री-पुरुषो मे कशेरुकाये खोखली हो जाने के कारण थोडे से भार की असह्यता से ही कटिशूल होने लगता है।

अस्थि मृदुता—इसमे अस्थि नरम हो जाने से झुकने आदि मे कटिशूल उत्पन्न होता है। प्राय यह रोग वृद्धावस्था मे होता है। किन्तु यदि युवतियो मे होता है तो इसका कारण गर्भावस्था और स्तन्यकाल होता है।

चिन्ता और अवसाद—युवावस्था मे ये दोनो कारण भी कटिशूल को जन्म देते है। प्राय यौन दुर्वलता के शिकार युवक और प्रदर से पीडित युवतिया इस प्रकार के कटिशूल से आक्रान्त होते है। इसका खास कारण व्याधि के प्रति चिन्ता की अधिकता है। अत यदि इस अवस्था से ग्रसित और चिन्तित युवक-युवतियो को शामक (ट्रेंकुलाइजर्स) औषधिया दी जाये तो यह ठीक होता है।

स्त्री रोग—स्त्री रोगो से ग्रसित स्त्रियो मे सदा पाचवी कटि कशेरुका के नीचे सेक्रम (त्रिकास्थि) पर शूल का होना पाया जाता है।

चिकित्सा—अधिकतर कटिशूल किसी रोग का लक्षण मात्र है। अत कारण का निराकरण (चिकित्सा विशेष) कर यह दूर हो सकता है।

पृष्ठवश के यक्ष्मा का पता लगाकर यक्ष्मानाशक चिकित्सा से तज्जन्य कटिशूल समाप्त किया जासकता है।

रोगी को तख्त पर सुलाना हितावह है। वैठने के लिये जिस कुर्सी का कमर से लगने वाला भाग एकदम सीधा हो उसका उपयोग करना चाहिए। झुकना, भार उठाना वन्द करना चाहिए। तीव्र प्रकार के कटि शूल मे पूर्ण शैय्या विश्राम अपेक्षित है।

शूल स्थान पर किसी भी तरह का उष्ण सेक आवश्यक है।

रोजाना कुछ समय रोगी को पैल्विक ट्रैक्शन (श्रोणिकर्पण) आसन पर रखने की प्रक्रिया अपनानी चाहिये। किसी योग्य विशेषज्ञ के द्वारा निर्दिष्ट विशिष्ट व्यायाम करने चाहिए।

ब्रूफैन टेबलेट—२-२ गोलिया दिन मे तीन बार और आराम आने पर १-१ गोली प्रतिदिन ३ वार देवे।

कैप्सूल इडोसिन १ से २ की मात्रा मे प्रतिदिन दो या तीन बार देने चाहिये।

कॅरिसोमा टेवलेट १-१ की मात्रा मे ३ वार रोज दे।

पश्चात् कटक के स्नायु की मोच से उत्पन्न शूल मे उक्त औषधियो मे से किसी एक औषधि प्रयोग के साथ ही मेडीक्रीम का प्रयोग और गरम सेक करना बहुत उपयुक्त रहता है।

अस्थि सुपिरता और मृदुता मे निम्न चिकित्सा दे– इन्जेक्शन फेयरडीकाल १ से २ सी सी पेशी मार्ग से दे। इन्जेक्शन डेका ड्यूरावोलीन १ सी सी पेशीमार्ग से सप्ताह मे २ वार देना चाहिए।

कैप० ओसीवाइट एक से दो की मात्रा मे दोनो समय भोजनोपरांत देवे।

कैप० वूटाप्रोक्सोवॉन अथवा अन्य शूलनाशक औषधि लाक्षणिक चिकित्सार्थ साथ मे दे सकते है।

चिन्ता और अवसाद से उत्पन्न कटिशूल मे शामक और पीडा नाशक औषधिया ही पर्याप्त है।

स्त्रियो मे प्रदर अथवा अन्य गर्भाशय आदि से सम्बन्धित व्याधियो हेतु सम्वन्धित चिकित्सा के साथ ही शूलघ्न मरहम, उष्णसेक और शूलहर औषधिया प्रयुक्त करनी चाहिये।

शिर.शूल—

वास्तव मे शिर शूल स्वतन्त्र व्याधि न होकर विभिन्न व्याधियो मे पाया जाने वाला एक लक्षण मात्र है। किंतु आज के युग मे अधिकता से पाये जाने से यह एक व्याधि रूप मे देखा जाता है। इनका ज्ञान नितान्त आवश्यक है। शिर शूल के अनेक भेद है–

साधारण प्रकार का शिर शूल—मानसिक कारणो से मस्तिष्क और उसकी कलाओ की रक्त वाहिनियो मे विस्फारण होकर शिर शूल सर्वाधिक रूप से पाया जाता है।

चिकित्सा– इस तरह के शिर शूल मे फिनावार्बिटोन और डायाजीपाम अधिक लाभदायी हैं। एस्प्रिन जैसी शूलहर औषधिया इसमे व्यर्थ हैं। गार्डिनल टेवलेट ३० मि ग्रा की मात्रा मे दिन रात्रि मे दो वार अथवा पैंक्सम टेवलेट ५ मि ग्रा दिन मे २-३ वार देनी चाहिए।

अर्धावभेदक प्रकार का शिर शूल—इसे आधाशीशी, माइग्रेन पर्यायो मे भी पुकारा जाता है। प्राय इस प्रकार का शूल वचपन से शुरू होकर मध्यावस्था आने पर समाप्त हो जाता है। शूलाधिक्यता से उत्क्लेश, छर्दि आदि पाये जा सकते है। कुछ विद्वान इसे आनुवांशिकता से भी सम्वन्धित वताते हैं। यह अधिकतर स्त्रियो मे मिलता है। वैसे पुरुष वर्ग भी इससे वहुत ग्रसित हुए पाया जाता है। इसका आक्रमण कुछ समय के अन्तर पर होता है और रुग्ण पीडा की अधिकता से व्याकुल हो उठता है।

माइग्रेन का आक्रमण होने के समय कैरोटिड धमनियो मे एक खास तरह का स्पन्दन होता हैं। उस समय ये धमनिया क्रमश फैलती और सिकुडती हैं। इससे झटके खाता रक्त मस्तिष्क मे पहुँचता है। तव इस काल मे वड़े उग्र रूप की वेदना होती है।

अर्धावभेदक की चिकित्सा—वेदना के समय अर्गोटामीन टारट्रेट १ मि ग्रा की गोली दुगुनी मात्रा मे अर्थात दो गोलिया दौरा प्रारम्भ होते ही दे देनी चाहिये। आवश्यकता पडने पर प्रति आध घण्टे पर १-२ गोली लाभ होने तक देते रहे। किन्तु २४ घंटे मे ६ मि गा से अधिक नही देनी चाहिये। जी मिचलाने और उल्टी के साथ मे पहली खुराक के साथ स्टेमेटिल ५ से १० मि ग्रा. दे सकते है। दो आक्रमणो के मध्य निम्न चिकित्सा सूत्र को अपनाना चाहिए—

कोडोमोलिण्डौन, गाइनर्जन और स्टेमेटिल–तीनो की १-१ गोली एक साथ दिन मे दो वार एक माह तक देनी चाहिए। यदि लगातार माइग्रेन वना रहे तो इन्जेक्शन गाइनर्जन, इन्जेक्शन स्टिमैटिल और इन्जेक्शन एनाल्जिन क्रमश १-१ और २ मि गा. की मात्रा मे एक साथ मिलाकर पेशी मार्ग से लगाना चाहिये।

ज्वर जन्य शिर शूल—सक्रमण और ज्वर युक्त अवस्थाओ मे कारण का पता लगाकर मुख्य व्याधि की चिकित्सा के साथ ही कोई भी शिरोवेदना नाशक यथा एस्प्रिन, एनाल्जिन आदि औषधि देना उपयुक्त रहता है।

अति रक्तदावजन्य शिर शूल—अति रक्तदाव के कारण प्राय सिर के पीछे वाले भाग मे शूल पाया जाता है। अधिकतर यह शूल दोपहर तक कम हो जाता है। प्राय इस प्रकार के शूल के साथ चक्कर भी आते है।

चिकित्सा —अति रक्तदाव जन्य शिर शूल मे रक्तदाव कम करने वाली चिकित्सा रक्तदाव के सामान्य होते ही शिर शूल स्वत शात हो जाता है।

मधुमेहज शिर शूल—जव इन्सूलिन की अधिकता से रक्त शर्करा कम हो जाती है तो अन्य लक्षणो के साथ शिर- शूल भी पाया जाता है।

चिकित्सा—रुग्ण को चीनी या ग्लूकोज घोल कर पिलाने से शर्करा की मात्रा मे वृद्धि होते ही शिर.शूल तुरन्त ठीक हो जाता है।

तनावजन्य शिर शूल—लगभग ३०% शिर शूल इसी श्रेणी मे आते हैं। इस प्रकार का शूल अधिकतर डर या चिन्ताजन्य होता है। शिरोवल्क (स्काल्प) और गर्दन की मासपेशियो पर लम्बे समय तक खिचाव रहने से भी इस प्रकार का शिर शूल हो सकता है। कई वार सिर की चोट से तनाव उत्पन्न हो कर भी शिर शूल होता है।

इस प्रकार के शिर शूल मे अधिक तीव्रता का अभाव रहता है। इसमे प्रस्पन्दन भी नही पाया जाता। छर्दि और उत्क्लेश नही मिलते। शिरोवल्क (स्काल्प), ललाट और ग्रीवा पर दवाने पर दाव वेदना मिलती हे।

चिकित्सा—एस्प्रिन टेव० इस प्रकार के शिर शूल मे काफी लाभप्रद है। इक्विग्रोम १० मि ग्रा की १-१ गोली दिन मे ३ वार देनी चाहिए।

नेत्र तनावजन्य शिरःशूल—लम्बे समय तक पढाई, लिखाई करने पर भी कई वार सिर मे दर्द होता पाया जाता है। कई वार नेत्रो मे अपवर्तन दोष से भी शिर शूल शुरु हो जाता है। इस प्रकार के दोष मे आखो का दुखना और नेत्र लालिमा पाये जाते है।

चिकित्सा - अधिक देर तक पढना लिखना त्यागकर नेत्र विशेषज्ञ से उपस्थित दोष की चिकित्सा कराने से इस प्रकार होने वाला सिरदर्द स्वयमेव ठीक हो जाता है।

विवर—शिर शूल (साइनस हैडेक)—नासाविवरो मे वारवार प्रतिश्याय के कारण नाक की श्लेश्मकला मे द्वितीय सक्रमण होने से शोथ हो जाता है। इस अवस्था को वायुविवर शोथ (साइन्यूसाइटिस) पुकारते है। सक्रमण के वाद विवरो मे काफी मात्रा मे तरल इकट्ठा होकर निकटस्थ तन्त्रिकाओ पर दवाव डाल कर और उनकी सवेदनशीलता वढाकर विवर शिर शूल को जन्म देता है। इस प्रकार के शिर शूल मे रोगी के नीचे होने (झुकने) सीढिया चढने या उतरने अयवा करवट वदलने से पीडा मे वृद्धि हो जाती है। मध्याह्न मे प्राय शूल वढ जाता है। नेत्र भी भारी रहते है।

चिकित्सा—पहले विवरो की सूजन कम कर एकत्रित तरल को वाहर निकालना चाहिए। एतदर्थ ओरीप्रिम डी एस १-१ गोली की मात्रा मे प्रात साय देना चाहिये। डीक्सीसाइक्लिम या को-ट्राइमोक्साजोल १००-१०० मि ग्रा दिन मे दो वार देना चाहिए। वन्द नासा विवरो को खोलने हेतु म्यूकोरिस-ई ३-४ वू द दिन मे ३-४ वार नासिका मे एक सप्ताह डाले।

शिर शूल हेतु उक्त चिकित्सा के साथ ड्रिस्टान टेव० या विकोरिल टेव० दी जा सकती है।

विवरो के स्राव को पतला कर निकालने हेतु एव सक्रमण को स्थानीय रूप मे आशिक रूप से दूर करने हेतु भाप उठते पानी मे टिंचर वेन्जाइन के या कार्वोल इनहैलैण्ट कैप्सूल डालकर (नासिका द्वारा) भाप लेवे।

विटामिन सी ५०० मि ग्रा १-१ गोली दिन मे दो वार लेनी चाहिये।

मस्तिष्क अर्वुदजन्य शिर शूल—मस्तिष्क मे अर्वुद (ट्यूमर) होने से रोगी रात्रि मे सोते समय शिर.शूल से जाग उठता हे। क्षोभ तथा दूसरे तन्त्रिका तन्त्र से सम्वन्धित लक्षण भी मिल सकते हे। इस व्याधि का निदान कुछ समय वाद हो पाता है।

चिकित्सा—मस्तिष्क अर्वुद का केवल शल्य चिकित्सा ही सहारा हे।

पर्वतारोहणजन्य शिर शूल—पर्वतारोहियो को अधिक ऊचाई पर आक्सीजन की कमी से यह शूल हो जाता है।

चिकित्सा—आक्सीजन देने से त्वरित ठीक हो जाता है।

—०❖०—

शूलहर योग

आचार्य विरिञ्चिलाल शर्मा वैद्य शास्त्री, इस्लामपुर (झुंझुनूं) राजस्थान



(१) यवक्षार १० ग्राम, मधु २० ग्राम, नीबू का रस को मिलाकर इसमे से २-२ चम्मच समान भाग उष्ण जल मिलाकर ३-३ घंटे पर दे।

(२) विष तिन्दुक (कुचला के चावल)—कुचला की टिकिया को गोमूत्र मे ५-६ दिन को भिगो दे। गोमूत्र प्रतिदिन बदलते रहे। बाद मे मुलायम होने पर उसका छिलका छीलकर निकाल दे और बीच मे से जीभ निकाल दे। गर्म पानी से धोकर कैंची से चावल जैसा काटकर सुखा ले।

(३) जामुन का सिरका - पके हुये जामुन लाकर उनको मसलकर रस निकाल ले और छान ले। थोडा सेंधव मिलाकर बोतलो मे भर कर धूप मे १ सप्ताह रख ले, तैयार होने पर १० ग्राम (१-२ चम्मच) पिलायें। शूल के लिए विशेष उपयोगी है।

(४) अमृतधारा—पिपरमेंट, अजवायन का सत्व, कर्पूर—तीनो को बराबर-बराबर मिलाकर रख देने से द्रव हो जायेगा। इसकी १-२ बूंद बतासे मे रखकर देने से उदर शूल ठीक होता है।

(५) यष्ट्यादि चूर्ण—मुलेठी ५ तोले, सनाय ५ तोले, शुद्ध गंधक २॥ तोले, मिश्री १५ तोला—मिलाकर रखे। १ माशे चूर्ण अभयारिष्ट के साथ दे। बद्धकोष्ठता के कारण होने वाले शूल मे अत्युपयोगी है।

(६) हृच्छूल मे—अर्जुन की छाल, बला (खरैंटी), विषाण (मृगश्रृङ्ग भस्म) समान मात्रा मे मिलाकर रखे। ३-३ रत्ती शहद मे ३-४ बार दे।

(७) मूत्राघातजशूल—यवक्षार या शिलाजीत ३ रत्ती अश्वगन्धा क्वाथ के साथ दे। मैं यवक्षार, कलमीशोरा, स्वर्णगैरिक तथा कपूर और इनके बराबर मिश्री मिला कर रखता हूँ और ठण्डे पानी से दिलाता हूँ। तुरन्त ही पेशाब होकर शूल का निवारण होता है।

(८) वृक्कशूल और पित्ताशय शूल मे—शङ्ख भस्म एवं वज्रक्षार सिद्ध औषधि है। शङ्खद्राव, कलमीशोरा, यव-क्षार, फिटकरी, नौसादर आदि का फूला बना ले या अर्क निकाल कर उपयोग मे ले। उत्तम है।

(९) शोथजन्य शूल—पुनर्नवादि मण्डूर तथा यव-क्षार, पुनर्नवादि क्वाथ के साथ दे। आरोग्यवर्धिनी वटी गोमूत्र के साथ दे।

(१०) रक्तविकृतिजन्य शूल—शु० गंधक तथा कर्पूर मिलाकर देने से या अकेले कर्पूर को पान मे डालकर देने से लाभ होता है।

(११) अम्लपित्तजन्य शूल—नीबू के रस मे मिश्री मिलाकर दें।

(१२) शूलवज्रिणी वटी—शुद्ध पारद हिंगुलोत्थ, शुद्ध गंधक आवलासार, लोह भस्म प्रत्येक २-२ ग्राम लेकर कज्जली करलें। शु० सुहागा, घृत मे भुनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, कचूर (शठी), दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, लौंग, अजवायन, जीरा, जायफल, धनिया—प्रत्येक ५-५ ग्राम लेकर सबको मिलाकर खूब घोट के बेर के बराबर गोली बनाले और बकरी के दूध या ठंडे पानी से १ गोली दिन मे तीन बार दे। यह अनेकश: अनुभूत है। मानसिक शूल मे भी उपयोगी है।

(१३) चन्द्रप्रभावटी—यह शास्त्रीय योग मूत्रकृच्छ्र तथा धातु स्राव के कारण उत्पन्न शिर शूल मे उपयोगी पाया गया है।

(१४) स्वर्ण वङ्ग क्षार—स्वर्ण वङ्ग बन जाने पर उसका क्षार बच रहता है। इसको स्वर्णवङ्गक्षार कहते है। इसे ३-३ रत्ती की मात्रा मे उचित अनुपान के साथ देना चाहिए। उदरशूल, आध्मान मे उपयोगी है।



* वृक्कशूल नाशक अनुभूत योग *

वैद्य मोहरसिंह आर्य वैद्य वाचस्पति, मिसरी (भिवानी) हरियाणा



१. वृक्कशूलान्तक लेह—यव क्षार, लोटा सज्जी, सुहागा, नवसादर, सेंधा लवण, साभर लवण, हीरा हींग, कलमी शोरा प्रत्येक समभाग लेकर अलग-२ पीस वस्त्रपूत चूर्ण बना ले। तत्पश्चात् सबको एकत्र खरल करे। तत्पश्चात् थोडा सा उत्तम सिरका मिलाकर लेह बना ले।

मात्रा—३ ग्राम। १५-१५ मिनट बाद ३ बार दे।

गुण-कर्म—प्रथम मात्रा से ही शूल शमन हो जावेगा, अन्यथा दूसरी और तीसरी मात्रा से तो निश्चय ही शूल नष्ट हो जायेगा।

शूल शान्त होने के उपरान्त हजरुलयहूद भस्म २५० मि ग्रा. की मात्रा मे निहारमुख एक मास तक देते रहे तो फिर कभी भी शूल का दौरा नही पडेगा।

विशेष—इस प्रयोग से वृक्क शूल तो ४५ मिनट मे ही दूर हो जाता है। १-१॥ मास तक इस प्रयोग का सेवन कराने से अश्मरी चाहे वृक्क मे हो या मूत्राशय मे, निकल जाती है। विश्वास कीजिये, इस प्रयोग की करामात से एक ७५ वर्षीय वृद्ध की ऊटनी की मेगनी के समान पथरी निकली। गुदा तथा अण्डकोष के मध्य मे सीवन को फाडकर यह पथरी निकली थी। इस व्रण से भी मूत्र निकलने लगा तो टाके लगाकर व्रण को ठीक किया। रोगी को यह रोग फिर कभी नही हुआ। एक ३५ वर्ष के युवक की लिंगेन्द्रिय मार्ग से चने के समान तीव्र वेदना के साथ पथरी निकली। ऐसे पचासो तथा वृक्क शूल के सहस्रों रोगी इससे ठीक किये है।

२ अहिफेनासव (भै र)—उदर शूल किसी भी प्रकार का हो, किसी भी कारण से हो, इसके सेवन से दूर हो जाता है।

मात्रा—५ से १५ बूंद तक

अनुपान—३-३ घण्टे के अन्तर से दिन मे ३-४ बार अर्क इलायची, अर्क पोदीना अथवा सौंफ के अर्क से दे।

गुण— उदर शूल मे यह योग तत्काल लाभ के लिए उत्तम है।



३. सरल चुटकला—जगली कबूतर की बीटो का श्वेत भाग एकत्र कर सूक्ष्म पीस लें। १ ग्राम की मात्रा मे गर्म पानी के साथ दे। प्राय एक ही मात्रा से शूल शमन हो जाता है, अन्यथा दूसरी मात्रा दे सकते हैं।

४. वर्षा ऋतु मे कनखजूरा लेकर उसको सुखा लें और सूखने के बाद उसे पीस ले।

मात्रा—५०० मि ग्रा से १ ग्राम तक।

अनुपान एव उपयोग—गुड मे रखकर खिलाने से वृक्क शूल का तत्काल शमन हो जाता है।

५. सुकुमारकुमार घृतम् (भै र)—इस घृत के सेवन से शतप्रतिशत रोगी ठीक हुए हैं। इस घृत से वृक्क शूल शर्तिया नष्ट हो जाता है। एक मास तक इसका सेवन कराने से जीवन मे फिर कभी भी दर्द नही होगा। यदि अश्मरी हो तो इसके साथ योग संख्या १ को भी सेवन करायें। ●●

* शूलनाशक चुटकुले *

डा० राजेश कुमार शास्त्री, नगोई बैमा (बिलासपुर) म० प्र०



१. अपराजिता मूल क्वाथ को मिश्री, घी और शहद के साथ दें। या

२ सोंठ, तिल, गुड से सिद्ध दूध पीने से ५ दिनो मे पक्ति शूल नष्ट होता है।

३. घोंघे की भस्म गरम पानी के साथ या मण्डूर भस्म गोमूत्र के साथ लेने से पक्ति शूल नष्ट होता है।

४. घोंघे की भस्म, त्र्यूषण चूर्ण, पच लवण, लौह भस्म सब समभाग लेकर बकरी के मूत्र के साथ घोटकर लेने से परिणाम शूल नष्ट होता है।

५ इन्द्रायण मूल चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण ३-३ ग्राम गर्म पानी के साथ लेने पर शूल नष्ट होते हैं।

६. सैंधव या सौवर्चल नमक काजी के साथ लेने से सद्य शूलहर होता है।

७ सेंधा नमक ५ ग्राम, घी २० ग्राम के साथ सेवनीय है।

८ अग्निमुख रस वातशूल नाशक है।

९ मदनफल को पीसकर नाभि मे लगाने से शूल नष्ट होता है।

१०. विरेचन के बाद हरीतकी चूर्ण गुड तथा घी मिलाकर या आमलकी चूर्ण चाटने से पैत्तिक शूल नष्ट होता है।

११ बिजौरे नीबू की जड १० ग्राम पीसकर घी के साथ सेवन करने से वातिक शूल नष्ट होता है।

१२. पिपरमैट सत ६० मि ग्रा बतासे या पानी के साथ लेने से परम लाभ होता है।

१३ अमृतधारा ५ बूद से शूल शान्त होगा।

१४ सोडा-बाई कार्ब या सज्जी क्षार आधा ग्राम ५० मि लि जल मिलाकर दे।

१५ शुण्ठी चूर्ण १-१॥ ग्राम मे काला नमक मिला कर उष्णोदक के साथ देने पर मार्फिया इन्जेक्शन की तरह फायदा पहुँचाता है।

१६ सोडा-बाईकार्ब ३-४ रत्ती उष्णोदक के साथ देना लाभदायक है।

१७ जामुन का सिरका पानी के साथ देना शूल रोग मे लाभकारक है।

१८ शूलाद्रिभजन चूर्ण—काली मिर्च, नृसार, अजवायन, सोंफ प्रत्येक समभाग के चूर्ण मे से १-३ ग्राम की मात्रा मे निम्बू स्वरस या उष्णोदक के साथ देना शूल मे उपयोगी है।

१९ शूलवज्रिणी वटी—नन्द-मन्द शूल मे उपयोगी होती है।

२० सामुद्रादि चूर्ण—परिणाम शूल के लिए उत्तम परीक्षित औषधि है।

२१ शिग्रु क्षार पाचन चूर्ण—२-४ ग्राम भोजन से पहले सुखोष्ण जल के साथ लेने मे शूल रोग मे बहुत लाभ होता है। परीक्षित औषधि है।

२२ शान्तिवर्द्धक चूर्ण—सामान्य शूल के लिए उपयोगी औषधि है।

२३ त्रिफला चूर्ण को राई चूर्ण, मधु और घी के साथ चाटने से सभी शूल शान्त होते है।

२४ नारिकेल क्षार—सभी शूलो को नाश करने वाली औषधि है।

२५ अन्नद्रव शूल मे—आमलकी चूर्ण, लौह भस्म, मुलहठी चूर्ण मधु के साथ देने से लाभ होता है। वैसे परिणाम शूल की तरह ही अन्नद्रव शूल की चिकित्सा करनी चाहिए।

शूल रोगी के लिए अपथ्य—

व्यायाम, व्यवाय, मद्य, लवण, कटु रस वाले भोजन, वेगावरोध, शोक, क्रोध, द्विदल वाले धान्य यथा—चना, मटर, अरहर आदि शूल रोगी के लिए अपथ्यकर होते है।



शूलघ्न होमियो औषधियां

होमियो रत्न डा० बनारसीदास दीक्षित एच एम डी. एस
दीक्षित मेडीकल स्टोर्स, रक्सौल (चम्पारण)

वयोवृद्ध श्री दीक्षित जी 'धन्वन्तरि' के विद्वान लेखक तथा होमियोपैथी के अपने क्षेत्र के अनुभवी विख्यात चिकित्सक हैं। आप अत्यन्त मृदुभाषी, सौम्य स्वभाव तथा आकर्षक व्यक्तित्व से युक्त हैं। लगभग १५-२० वर्ष पूर्व आपसे कई बार साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त हुआ है। कतिपय पारिवारिक कठिनाइयो मे उलझे रहने के कारण पर्याप्त समय से आपका लेख नहीं मिल सका, लेकिन अब आपने पुन. अपने लेख भेजने रहने का आश्वासन दिया है। श्री दीक्षित जी ने पर्याप्त समय तक 'धन्वन्तरि' मे होमियोपैथिक स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी लिखी थी, जिसे पाठक अत्यन्त रुचिपूर्वक पढ़ते थे। होमियोपैथिक चिकित्सा पर आधारित आपकी क्रमश. लेखमाला भी पाठकों को अत्यन्त प्रिय थी। आशा है कि अब आपके लेख प्रकाशनार्थ निरन्तर प्राप्त होते रहेंगे। —दाऊदयाल गर्ग

होमियोपैथिक सिद्धान्त—

होमियोपैथिक मे रोग की चिकित्सा नही होती है। रोगी की चिकित्सा करना ही होमियोपैथिक का मूल उद्देश्य है। शूल एक रोग का लक्षण मात्र है, जो कि रोगी के अन्य लक्षणों के साथ उसे भी सयुक्त करके दवा निर्वाचन की जाती है। वैसे तो लक्षण सादृश्य होने पर सभी दवाइया समान रूप से गुणकारी है, फिर भी बहुत सी दवाइया ऐसी हैं जो कि विशेष-२ अङ्गो पर शूल मे लाभप्रद है। आप यह न समझ ले कि मै जिन दवाइयो का विवरण दे रहा हूँ उनके अलावा अन्य दवाइयो का प्रयोग नही हो सकता। हमे तो रोगी के विशेष लक्षणो के अनुसार दवा निर्वाचन करनी है। यदि उसमे शूल का लक्षण नही भी है तो वह रोगी की प्रकृति मे सुधार के साथ ही शूल को भी ठीक करेगी।

उदाहरण न १—सवत् २०३२ मे मेरे पास लायन्स क्लब होमियोपैथिक चिकित्सालय मे एक रोगी आया। नाम—जीतबहादुर, उम्र—४५ वर्ष, २ साल से उदर शूल से पीडित था। अनेको चिकित्सा हुई पर लाभ नही हुआ। लक्षण निम्न प्रकार हैं—

पेट का दर्द गर्म पेय पीने से उपशम होता है। प्राय. पेट दर्द १२ बजे से २ बजे के बीच मे होता है। कभी रात मे तथा कभी दिन में भी होता है। उस समय गर्म चाय या पानी पीना पडता है, उससे आराम मिलता है। बेचैनी बहुत रहती है, ऐसा जान पडता है कि अवश्य मर जाऊगा। ठण्डा पानी पीने पर वमन होती है, प्यास बार-बार लगती है पर पानी थोडा-२ पीता हूँ। सर्दी बर्दास्त नही होती, गर्म जगह मे रहने पर आराम मिलता है। ४ साल पूर्व हाथ पर एक्जिमा हुआ था, उस पर विषाक्त मलहम लगाने पर वह ठीक हो गया। उसके ठीक होने के १ साल बाद से ही पेट मे दर्द आरम्भ हो गया है।

उपरोक्त रोगी का विवरण देखने पर सभी लक्षण आर्सेनिक एल्ब के प्रतीत होते थे। अत मैंने सर्वप्रथम उसे नक्सवोमिका २०० शक्ति मे दो मात्रा रात्रि को सोते समय खाने को दी और ७ दिन बाद बुलाया। ७ दिन बाद प्रात खाली पेट आर्सेनिक एल्ब I M की १ मात्रा देकर १५ दिन बाद बुलाया। १५ दिन बाद रोगी मे कोई परिवर्तन न देखकर काफी सोच-विचार कर आर्सेनिक एल्ब १०००० शक्ति की २ मात्रा शक्ति परिवर्तित क्रम स १-१ घण्टा पर देकर २० दिन बाद खबर देने को कह दिया। १० दिन बाद ही रोगी आया, उसके हाथ पर वही एक्जिमा था, जो पहले हुआ था तथा उदर शूल

समाप्त था, साथ ही रोगी को मृत्यु का भय, बेचैनी, शीत का लगना भी समाप्त हो चुका था। उस रोगी के एक्जिमा को पूर्ण आरोग्य करने मे १ साल का समय लगा।

नोट—एक्जिमा को बाहरी प्रयोग से दबाने के कारण उदर शूल हुआ था। रोगी के सभी लक्षण आर्सेनिक के होने के कारण आर्सेनिक देना पडा, जबकि आर्सेनिक मे उदर शूल का उल्लेख नही है। परन्तु यह रोगी की दवा थी, अत रोगी मे परिवर्तन के साथ रोग भी ठीक हो गया। अत मेरा पाठको से निवेदन है कि होमियोपैथी मे सफलता प्राप्त करनी हो तो मेटेरिया मेडिका मे रोगी के विशेष लक्षणो को न भूले।

उदाहरण न २—शिवनाथ शर्मा, उम्र-२५ साल, ३ साल से सिर दर्द से बेचैन था। अनेको एलोपैथिक टेबलेट खाई पर क्षणिक उपशम के सिवाय कुछ लाभ नही हुआ। लक्षण निम्न प्रकार से हैं—

(१) स्कूल मे पढते समय प्रतिवर्ष चेचक के टीके लगे थे, वह कई बार नही फूले थे।

(२) शरीर मे जहा-तहा मस्से है, जो फूलगोभी की तरह हैं।

(३) आख बन्द करने पर सिर मे चक्कर आता है।

(४) पिता को बवासीर, माता को गठिया है।

उक्त ४ लक्षणो मे सिर दर्द के बारे मे कोई लक्षण उल्लेख नही किया। रोगी के सिर दर्द (स्नायु शूल) का कारण वेक्सीन था। रोगी मे साईकोसिस दोष वशगत था, अत थूजा १०००० शक्ति की ३ मात्रा देने पर सिर दर्द और मस्से दोनो ठीक हो गये तथा रोगी का स्वास्थ्य पहले से बहुत ही अच्छा हो गया। यहा पर शूल का कारण वेक्सीन और साईकोसिस दोष था। थूजा एण्टी वैक्सीन और एण्टी साईकोसिस दवा है, अत रोगी रोग से मुक्त हो गया। स्थानाभाव के कारण हम ज्यादा उदाहरण नहीं दे रहे है।

(१) आर्निका मोन्ट—चोट लगने के कारण शरीर पर नीला दाग तथा दर्द मे लाभदायक है। इसको सेवन कराने के साथ बाहरी प्रयोग भी किया जाता है। परन्तु ध्यान रखे कि यह दवा मांसपेशियो के दर्द और चोट मे निश्चित लाभप्रद है।

अधिक परिश्रम करने के कारण पूरे शरीर मे दर्द होने पर एक खुराक आर्निका देने पर रोगी दूसरे दिन फिर काम करने योग्य हो जाता है।

सावधान—आर्निका के सेवनकाल मे शराब पीना हानिकारक है। पागल कुत्ता या क्रोधित जन्तु के डक मारने पर यह कभी भी नही देनी चाहिए। इससे बहुत हानि होती है। याद रखे! इसका बाहरी प्रयोग करते समय गरम नही करना चाहिए। कट जाने पर या खुले घाव पर इसका प्रयोग न करे।

आर्निका प्रत्येक घर मे रखने योग्य दवा है। चोट लगकर खून जमने मे तथा दर्द दूर करने मे यह अति लाभप्रद दवा है। पुरानी चोट के बाद कोई बीमारी आरम्भ होने का इतिहास मिलने पर सर्वप्रथम उसकी दवा आर्निका होगी। ऐसी जगह उच्च शक्ति का प्रयोग करे।

(२) ऐक्टीया रेसिमोसा—रज स्राव के समय वेदना, विशेष लक्षण यह है कि जितना रज स्राव होता है, दर्द उतना ही बढता है।

(३) एकोनाइट नेपलस—प्रधान लक्षण-सूखी ठड लगकर स्नायु शूल का दर्द चाहे वह दात मे हो या सिर मे, छाती मे, आख मे कही भी हो, उसके साथ ही इस दवा के चरित्रगत लक्षणो का होना अनिवार्य है, जैसे-तेज ज्वर, बेचैनी, प्यास, मृत्युभय। यह रोगी की आरभिक अवस्था मे लाभप्रद है। इसमे बेलाडोना या ब्रायोनिया के लक्षण आ सकते हैं।

(४) इस्क्यूलस हिपो—बवासीर के मस्से मलद्वार मे जैसे काटे या काच के टुकडे चुभ रहे हो, साथ ही कमर मे भयानक दर्द। मस्सो से रक्तस्राव नही होता, जिसे साधारण भाषा मे बादी बवासीर कहते है।

(५) एपिस मेल—जलन और डक मारने की तरह दर्द, साथ मे सूजन, ठड से उपशम गर्मी से वृद्धि। इस प्रकार का दर्द शरीर के किसी भी अङ्ग मे हो, एपिस को सर्वप्रथम याद करना चाहिए।

(६) बेलाडोना—यह प्रदाहिक अवस्था की प्रथम अवस्था की दवा है और इस दवाका प्रयोग नई बीमारियो मे बराबर ही होता है। इसके प्रधान लक्षण है-लाली, गर्मी, जलन और सूजन। दर्द का एकाएक पैदा होना

और गायव भी अचानक होना। जैसे फोडा निकलने के समय वह जगह लाल होती है, वहा स्पर्श करने पर गर्मी मालूम होती है, भयकर दर्द जलन की तरह। यह प्रदाहिक अवस्था की प्रथम अवस्था है। इसी प्रकार सिर दर्द, गला दर्द, आतों के दर्द मे वेलाडोना का प्रयोग होता हैं। कभी-कभी इस प्रकार के लक्षणो के साथ तेज ज्वर भी रहता है।

(७) वार्वेरिस वल्गेरिस— किडनी मे दर्द जो कि किडनी से मूत्रनली तक फैल जाता है। उसके साथ ही गुर्दे मे वुदवुदा की तरह अनुभव होता है। कमर मे दर्द, मूत्र पथरी तथा पित्त पथरी के दर्द मे भी यह दवा लाभप्रद है। इसका प्रयोग कष्टार्तव मे भी होता है।

(८) कोलोफाईलम — इस दवा की प्रधान क्रिया जरायु पर होती है। ऋतुस्राव के समय कमर से नीचे दर्द-वेदना होती है। यह दर्द रुक-रुक कर होता है। अत यह दवा कष्टार्तव मे अति लाभप्रद है।

प्रसव के समय जरायु का मुह कडा रहता है आक्षेपिक वेदना रुक-रुक कर होती है। दर्द के कारण रुग्णा वेचैन हो जाती है। उस समय इसकी निम्न शक्ति का प्रयोग १-१ घण्टा पर करने से प्रसव हो जाता है। प्रसव के समय कोलोफाईलम की २-३ मात्रा देते ही प्रसव हो जाता है।

प्रसव के कुछ दिनो पूर्व अनेक स्त्रियो को वेदना होने लगती है। यदि वह वेदना प्रसव होने की है तो इस दवा से वढकर प्रसव हो जायगा और यदि झूठी वेदना होगी तो वेदना रुक जायगी। ८वे या ९वे महीने मे ७-७ दिन पर एक खुराक देने से प्रसव के समय अधिक कष्ट नही होता और प्रसव अच्छी प्रकार हो जाता है।

(९) व्रायोनिया—इसकी प्रधान क्रिया श्लैष्मिक झिल्ली पर होती है। व्रायोनिया का दर्द सुई चुभने की तरह होता है। हिलने-डुलने पर दर्द ज्यादा होता है। प्यास अधिक, पाखाना सूखा हुआ रहता है। यह दर्द दात मे, प्लूरिसी मे, न्यूमोनिया किसी भी रोग मे हो सकता है।

(१०) कैन्थारिस—किडनी और मूत्रनली पर इसकी प्रधान क्रिया होती है। मूत्र नली मे जलन की तरह दर्द रुक-रुक कर पेशाव होता है। यह दर्द जलन की तरह पेशाव करने के पूर्व तथा पेशाव करते समय और वाद मे होता है। जल जाने पर इसके मदर टिंचर का वाहरी प्रयोग भी होता है।

गनोरिया की प्रथम अवस्था मे यह दवा पेशाव के कष्ट को दूर करने मे अति उत्तम है। मैं गनोरिया के रोगियो को पेशाव मे जलन-दर्द रहने पर कैन्थारिस ३० शक्ति का प्रयोग ३-३ घटे पर करता हूँ।

(११) कोलोसिन्थ—यह आयुर्वेद की चिरपरिचित दवा इन्द्रायण है। अभी भी इन्द्रायण के फल मे अजवायन, मेथी, नमक भरकर चूर्ण तैयार करते हैं। इस चूर्ण का प्रयोग उदर शूल मे सफलता के साथ करते हैं। होमियोपैथिक मे कोलोसिन्थ उदर शूल की प्रसिद्ध दवा तो है ही, लक्षण सादृश्य होने पर यह अन्य यन्त्रो के स्नायु शूल मे भी लाभप्रद है।

शूल रोग मे इसका प्रधान लक्षण है–दवाने पर आराम मिलना। अत पेट दर्द के समय रोगी पेट को दवाकर वैठता है। साइटिका मे भी दवाने से रोगी को आराम मिलता है। डिम्वाशय के दर्द मे रोगिणी दर्द के स्थान को दवाकर वैठती है, उससे आराम मिलता है।

पेट दर्द के समय मैं ६ या ३० शक्ति का प्रयोग करता हूँ तथा साईटिका मे रोगियो को १००० शक्ति देता हूँ। लक्षण सादृश्य होने पर कोलोसिन्थ की क्रिया वहुत जल्द होती है। यह एक स्वल्प क्रियाशील दवा है।

(१२) कैमोमिला—यह दवा वच्चो का मित्र है। स्नायुविक वेदना मे इसका प्रयोग सफलता के साथ होता है। इसके मानसिक लक्षण ही प्रधान हैं। वच्चा चिड़चिडा क्रोधी होता है, हर समय रोता रहता है। एक चीज मागता है, देने पर उसे फैंक देता है और दूसरी मागता है तथा देने पर उसे भी फैंक देता है। रोता है, मा को मारता है, मा नही समझ पाती कि वच्चा क्या चाहता है। परन्तु एक चतुर होमियोपैथ जान जाता है कि यह वच्चा सिर्फ एक खुराक कैमोमिला चाहता है। यह एक स्वाभाविक उत्तेजना मात्र है। दर्द वात का हो या दात का, कान का, प्रसव का कम हो या ज्यादा रोगी उसे सहन नही कर सकता। रोता है, वेचैन हो जाता है, साधारण दर्द से भी वहुत रोता-चिल्लाता है, साथ ही क्रोध करता है और चिडचिडा हो जाता है। सो नही

सकता है, जरा सी आवाज भी उसे सहन नही होती। किसी भी अङ्ग मे दर्द हो, यदि कैमोमिला के मानसिक लक्षण हैं तो इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसका दर्द गर्मी से, रात मे, क्रोध करने से बढता है।

(१३) सीना—बच्चो के उदर शूल का कारण यदि कृमि हो तो सीना का प्रयोग अवश्य करे।

(१४) ग्लोनाइन—सिर मे भयकर दर्द, दर्द गर्दन के पीछे से आरम्भ होकर पूरे सिर मे फैल जाता है। रक्त बहुत तेजी से सिर मे सचालित होता है। सिर की, गर्दन की और कनपटी की शिराए फूल जाती है। इस प्रकार का दर्द प्राय धूप या लू लगने से होता है।

अनेक स्त्रियो को ऋतुस्राव बन्द होकर इस प्रकार का दर्द होते देखा है। यह दवा बढे हुए रक्तचाप को तुरन्त कम कर देती है। इस दवा की क्रिया ज्यादा समय तक नही रहती।

डा० नैश का कहना है कि यदि किसी होमियोपैथिक सूक्ष्म मात्रा पर विश्वास न हो तो उसकी जीभ पर इस की २× शक्ति डाल दो, देखते-देखते ही उसे भयानक सिर दर्द होकर वह बेहोश हो जायगा। लू लगने पर मै इस दवा का प्रयोग करके कभी भी असफल नही रहा हूँ। गर्मी के मौसम मे यह दवा रखनी चाहिए।

(१५) लीडम पैलस्टर—इसका प्रयोग गठिया, वात, नोकदार चीज जैसे काटा आदि के चुभने पर एव विषाक्त कीडो के काटने पर होता है। वात और गठिया मे इसके प्रयोग का लक्षण है—दर्द या रोग निम्नाङ्ग से आरम्भ होकर ऊपर की ओर चढता है और ठडे प्रयोग से दर्द कम होता है। चूहा, बिच्छू, बर्र, भौंरा, मच्छर आदि के काटने पर लीडम से बहुत लाभ होता है।

(१६) मग्नेसिया फास—यह स्नायुविक वेदना की अति उपकारी दवा है। इसका प्रयोग होमियोपैथिक और बायोकैमिक दोनो मे ही दर्द निवारक के रूप मे होता है। बायोकैमिक की १२ दवाइयो मे यही प्रधान वेदना नाशक दवा है। इसका प्रयोग अन्य दवाओ के साथ भी करते है, जबकि वेदना लक्षण साथ मे हो।

स्नायु शूल, कटि वेदना, ऋतु शूल, किसी भी अङ्ग में दर्द हो और गर्म प्रयोग से आराम मिले तो मग्नेसिया फास देना चाहिए। बायोकैमिक मे इसकी ३× शक्ति का प्रयोग गर्म जल से किया जाता है।

(१७) मेलीलोटस—इसका प्रयोग भी सिर दर्द मे ग्लोनाइन बेलाडोना की तरह होता है। भयकर सिर दर्द होता है किन्तु नाक से रक्तस्राव होने पर दर्द शान्त हो जाता है।

(१८) नेट्रम म्यूर—यह लक्षण सादृश्य होने पर पुराने सिर दर्द मे भी लाभप्रद है। ब्रह्मतालु मे भयकर दर्द कभी-२ यह प्रात नीद से उठते ही प्रारम्भ हो जाता है। रोगी को प्यास अधिक रहती है। यह दर्द सामने और कनपटियो मे भी होता है। जब सिर दर्द आरम्भ होता है तो रोगी की दृष्टि धु धली हो जाती है। स्त्रियो को ऋतु के बाद सिर दर्द की शिकायत बढ जाती है। छात्र-छात्राओ के सिर दर्द मे भी यह लाभप्रद है। सूर्य की किरणो के साथ सिर दर्द बढता है।

प्रधान लक्षण—रोगी दुबला-पतला रहता है, गर्मी बिल्कुल ही सहन नही होती है। नमक ज्यादा खाने की इच्छा रहती है, कब्ज रहती है, मल सूखा कडा होता है। धूप से सभी प्रकार के रोग बढते है।

(१९) रसटक्स—यह वात रोग की प्रधान दवा है। वात, सन्धिवात, साइटिका (गृध्रसी), कटिवात, स्नायु शूल आदि मे लाभप्रद है। जहा पानी मे भीगकर अथवा नमी वाली जगह मे रहने के कारण रोग होवे और सचालन से दर्द मे उपशम होवे, शान्त स्थिर भाव से रहने पर दर्द बढता हो, दबाने पर और गरम सेक से उपशम होने पर यह दवा लाभप्रद है। पानी मे भीगने के कारण ज्वर होवे और उसके साथ ही रोगी के पूरे शरीर मे दर्द होने पर रोगी बेचैन होता है, छटपटाता है, वहा रसटक्स का प्रयोग करने पर ज्वर और दर्द दोनो मे लाभ होगा।

लक्षणो के सादृश्य होने पर मैं प्राय साइटिका में इस दवा की उच्च शक्ति का प्रयोग करता हूँ। मोच आने पर या वजनदार चीज उठाने पर कमर मे दर्द (चमक) होने पर रसटक्स उच्च शक्ति मे लाभदायक है।

(२०) रूटा—इस दवा का भी चोट लगने पर या गीली-ठडी के कारण दर्द होने पर प्रयोग होता है। परन्तु रूटा का दर्द हड्डी मे होता है। आर्निका जैसे मासपेशियो की चोट मे प्रयोग होती है, उसी प्रकार रूटा अस्थि की

चोट की दवा है। नाक मे चोट आने से भयकर दर्द मे हाईपेरिकम का प्रयोग होता है। नोकदार सुई या काटा चुभने पर लीडम लाभप्रद है। तेज धार वाली चीज से कटने पर स्टेफी सेग्रीपा देनी चाहिए।

नोट—चोट लगने या कटने-छिलने पर १-२ खुराक लीडम और हाईपेरिकम पर्याय क्रम से देने पर टिटेनस होने का भय नही रहता। अत उपरोक्त ४-५ दवा प्रत्येक घर मे रखनी चाहिए तथा साधारण तौर पर इसके प्रयोग के बारे मे भी जानकारी रखनी चाहिए।

(२१) सेंगुनेरिया कैनाडेन्सिस—यह आधाशीशी की उत्तम दवा है। सूर्योदय के समय से सिर का दर्द आरभ होकर दोपहर तक बहुत बढ जाता है। फिर दिन के ३-४ बजे से धीरे-धीरे कम होना आरभ होता है। सूर्यास्त के समय दर्द नही रहता। दर्द कम होने पर रोगी को नीद आती है और नीद से जगने पर दर्द बिल्कुल ही नही रहता। किसी-किसी रोगी को पेशाब बहुत होता है और उसके बाद दर्द कम हो जाता है। दर्द गर्दन के पिछले भाग से आरभ होकर आख पर आकर रुक जाता है। रोशनी, धूप सहन नही होती, मिचली और वमन भी हो जाती है। प्रधान लक्षण है कि दर्द दाहिने तरफ ही होता है। इसे याद रखना चाहिए।

(२२) स्पाईजेलिया—स्पाईजेलिया का सिर दर्द बाई तरफ होता है। और सभी लक्षण प्राय सेंगूनेरिया की भाति है। बाये तरफ के चेहरे के स्नायु शूल मे भी इस दवा का प्रयोग होता है।

(२३) स्टेनम मेट—स्टेनम मे शूल या दर्द कोलोसिन्थ की तरह दबाने पर कम होता है। शूल के नये रोग मे कोलोसिन्थ देना चाहिए परन्तु जहा दर्द पुराना होवे वहा स्टेनम लाभ करती है। रोगी दु खी और आशाशून्य रहता है।

ऊपर हमने कुछ दवाइयो के खास-खास प्रयोग लिखे है। हर दवा के उसी प्रयोग को लिखा गया है, जिसमे उसका अधिक प्रयोग होता है। वैसे एक ही दवा लक्षण सादृश्य होने पर कई रोगो मे प्रयुक्त होती है। हमने बहुत ही सक्षेप मे लिखे है। जो लिखे है उन रोगो मे आप प्रयोग करके अवश्य लाभ उठावे।

नोट—विशेष किसी प्रकार की शका का समाधान या अन्य जानकारी के लिये मेरे पते पर जवाबी कार्ड भेजकर पूछ सकते हैं।



✻ शूल रोग की चिकित्सा ✻

वैद्य सत्यनारायण पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य- गिरारी (शहडोल) म० प्र०



वमन लङ्घन स्वेद पाचन फलवर्तय । क्षाराश्चचूर्णानि गुटिका शस्यन्ते शूल शान्तये ॥

वमन, लङ्घन, स्वेदन, पाचन, फलवर्ति, क्षार, चूर्ण तथा गुटिका द्वारा शूल शान्त होता है। वातजन्य शूल मे स्नेहन तथा स्वेदन उपचारो को करना उत्तम है।

पानी मे मिट्टी को घोलकर पकावे। जब मिट्टी गाढी हो जावे तो कपडे मे मिट्टी रखकर पोटली बना उपयुक्त स्वेदन करने से वात शूल नष्ट हो जाता है।

तिलो को पीसकर गुटिका बनाकर पेट पर घुमाने से महादारुण शूल भी नष्ट हो जाता है।

सोठ, एरण्ड मूल का क्वाथ बनाकर हीग तथा काला नमक मिलाकर पीने से शूल तत्काल नष्ट होता है।

अजवायन, हीग, सेधा नमक, जवाखार, काला नमक तथा हरड, इन सबके चूर्ण को सुरामण्ड के साथ पीने से वात शूल नष्ट हो जाता है।

सेंधा नमक, विड नमक, काला नमक, सोठ, पीपर, पीपरामूल, चीता तथा हीग-इन सबके चूर्ण उष्ण जल के साथ पीने से कफज शूल नष्ट होता है।

आम शूल मे आम दोष को दूर करने वाले सम्पूर्ण द्रव्यो का सेवन हितकर है। मन्द हुई अग्नि को बढ़ावें। बेल की जड, एरण्ड जड, चित्रक, सोठ, हीग, सेधानमक सबका चूर्ण सेवन करने से शूल नष्ट होता है।

* शूल और मेरा अनुभव *

वैद्य विश्वम्भर दयाल गोयल वी ए,
१३९-वी नादान महल रोड, लखनऊ



मानव शरीर मे पीडा की मात्रा जब असहनीय हो जाती है तब शूल की सज्ञा दी जाती है। किसी भी दशा मे विशेषकर शिर शूल या उदर शूल या वृक्क शूल मे रोगी को जलविहीन मछली की तरह तडफते देखना तो प्राय हर वैद्य का अनुभव होगा। उसका उपचार कर शान्ति देना ही वैद्य का वैद्यत्व हे। इस सम्वन्ध मे निम्न प्रकार अनुभव देखे—

१ शिर.शूल(माइग्रेन)मे जे जे डीशेन की अमिग्लिया ४-४ ग्रेन (२-२ रत्ती) दिन मे कई वार १ से ४ घण्टे पर सेवन करे। मैंने इसे होम्योपैथी आधार पर ३x से ३०X तक गुणकारी पाया हे।

इसी प्रकार फीनोकैल्सीन भी लाभ करती है। एक दूसरे के वाद या मिलाकर भी लेना चाहिए। ३X तथा ३०X मे शक्ति वढ जाती है।

विपम ज्वर, विस्फोटक ज्वर (शीतला, खसरा, मन्थर ज्वर आदि उद्‌भेदजन्य विकार) मे फीनोकैल्शियम तथा विटासिन (पहिले इसका नाम वाइटल इसैंस था) मिलाकर दे। ३X से ३०X शक्ति मे भी शीघ्र लाभप्रद होती है, तद्‌जन्य शूल हरनी है।

२ फोडा, फुसी मे मवाद वनते ही पीडा एव शूल की दशा मे ललाई होने पर होम्योपैथी का वेलाडोना २००, पीलापन मे मर्कसोल २००, डीसेन का रास्जेण्ट मूल, ३X तथा ३०X शक्ति मे भी एक-दो वार देना चाहिए। फूटकर मवाद (पीप) वहने मे रास्जेण्ट की एव होम्योपैथी की हिपर सल्फर ३X मवाद निचोडकर शुद्ध कर देती है। इसे अनुभव करके ही जाना जासकता है।

३. उदर पीडा एव उदर शूल होने पर डीशेन की चिनियमको तथा विटासिन मिलाकर वने इस मिश्रण की ३X से ३०X की शक्ति देने से मन्त्रसम कार्य करती हे। इसी प्रकार चिनियमको + विटासन + हार्मोपिरीन + सेप्टो का समभाग मिश्रण १ से ४ ग्रेन तक सेवन करने या ३X से ३०X तक घोल वनाकर सेवन करने चमत्कारी लाभ दिखाता है। (सेप्टो जर्म पहले आत था परन्तु अव पिछले २० वर्ष से गैस्ट्रोमोन ४ भाग मैथीलियोड १ भाग का मिश्रण काम मे लेता हूँ)।

इसी प्रकार उदर शूल के चिरकष्ट मे चिनियमको + हेमोप्लैक्स + कोमीन + सेप्टोजर्म + विटासन + गेरू का वनाया मिश्रण १ से ४ ग्रेन की मात्रा मे एव ३X मे भी चमत्कारी लाभ पाता रहा हूँ। (गेरू मे अर्द्ध भाग शक्कर और अर्द्ध भाग गुड घोटकर "गेरूनादा योग" वनाया जाता हे)। आजकल डीशेन की यह औषधि वन्द है। इसी प्रकार "क्रोमीन" भी नहीं आ रही है।

यदि वायु या गैस भरने से शूल नाभि के ऊपरी भाग मे हो तो होमियोपैथी की कार्वोवेज ३० और निम्न तलपेट मे हो तो लाइकोपोड २०० या सम्पूर्ण उदर मे शूल होने पर चाइना ३० भी मन्त्रसम काम करते देखा हे।

४ मार की, गिरने की या घूसे की चोट के दर्द मे आर्निका ३० (पुरानी पीडा मे २०० शक्ति) एव इमली, भिलावा (विना मोंघा) खूब कूटकर ३x से ३०X तक शक्ति मे सेवन भी अतीव गुणकारी हे।

५ उदर शूल किसी भी स्थान पर हो, डीसेन की चिनियमको + विटासन + सेप्टो + हार्मोपिरीन मिश्रण एव ३x से ३०X तक तुरन्त कारगर योग वन जाता है।

६ नेत्रशूल मे डीशेन का चिनियमको वार-वार दे। पहिले एक औषधि सुरग सल्फास आती थी, अत चिनियमको + सुरग सल्फास + रासजेन्ट का मिश्रण ३X से ३०X शक्ति मे नेत्र के अनेक कष्टो मे लाभप्रद हे। एक साथ अनेक व्यक्तियो को एपीडेमिक रूप मे वगला देश की वीमारी मे इस योग को और होमियोपैथी की अर्जेण्टम नाइट २०० के आन्तरिक सेवन से तथा वाह्य रूप मे सहजनपत्र स्वरस एव मधु का सेवन कराकर मै अनेको व्यक्तियो का प्रीतिभाजन वन चुका हूँ।

७ विच्छू डक के शूल मे आर्सेनिक अल्व ३० आश्चर्यजनक लाभ करती है। केवल ४ गोली दे।

८ स्त्रियो के रज स्राव के समय शूल के वाईवर्नम औपुलस २०० की ४ गोली खाने से लाभ होता है। ❖

धन्वन्तरि

का आगामी विशेषाङ्क

उदर रोग चिकित्सा [सन् १९८९]

❊ की प्रस्तावित विषय सूची ❊

—विशेष सम्पादक—
वैद्य श्री हरिमोहन शर्मा भिषगाचार्य
४०५४ जौहरी बाजार, जयपुर

रचना शारीर खण्ड

(१) उदर क्या है अङ्ग विशेष या मध्यकाय
(२) उदर, महास्रोतस तथा पाचन सस्थान की अभिन्नता
(३) उदर गुहा के विभिन्न अवयवो की रचना

[क] अन्न प्रणाली [ख] आमाशय [ग] लघ्वन्त्र
[घ] वृहदन्त्र [ङ] पक्वाशय [च] यकृत्
[छ] प्लीहा [ज] अग्न्याशय [झ] आन्त्र पुच्छ
[ञ] महास्रोतस [ट] मुख एव गला

क्रिया शारीर खण्ड

★ आहार गुण एव युक्ताहार ★ जठराग्नि का प्राधान्य
★ रसो की पाञ्चभौतिकता
★ मधुर रस, अम्ल रस, लवण रस, कटु रस, कषाय रस तिक्त रस के कार्य व लाभ एव हानि
★ अन्नरस तथा उससे धातु-उपधातुओ की पुष्टि
★ आहार परिपाक कैसे होता है ?
★ भुक्तान्न और अवस्थापाक

—भोजन विधि तथा प्रक्रिया—

★ रस, रस क्षय तथा दुष्टि
★ आमाशयिक अम्ल निर्माण व कार्य
★ आमरस व धात्वग्निया, आम पाचन की महत्ता
★ आहारजन्यमल ★ पित्त-निर्माण व कार्य
★ कफ-निर्माण व कार्य ★ वात-निर्माण व कार्य
★ इन्शुलीन-निर्माण व कार्य
★ लघ्वन्त्र व वृहदन्त्र के कृमि

निदान-चिकित्सा खण्ड

सर्वसर, तुण्डिकेरी शोथ, स्वरभग, विदारी, गलायु, अधिजिह्विका, गलगण्ड, वैरस्य, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार, अन्त्रपुच्छ प्रदाह, अन्त्रवृद्धि, अम्लपित्त, अरोचक, आध्मान, आनाह, आमाशय उदावर्त, कृमि, गुल्म, ग्रहणी, प्रवाहिका, पांडु, पित्तवृद्धि, प्लीहावृद्धि, बद्धकोष्ठ, भस्मक, मेदोवृद्धि, यकृतवृद्धि, छर्दि, विशूचिका, शूल, वातोदर, कफोदर, यकृद्दाल्युदर, जलोदर, पित्ताश्मरी, अर्श, भगदर, परिकर्तिका, गुदभ्रंश, आमशूल परिणामशूल, अन्नद्रव शूल, पित्ताशयशूल, तृष्णा, दाह, आमाशयशूल, महास्रोतस के कर्कस्फोट, आन्त्रिक ज्वर, लघ्वान्त्रिक ज्वर एव अन्य वे रोग जिनका नाम इस सूची मे अङ्कित नही हो पाया।

विभिन्न सिद्धौषधियां—

महास्रोतस के रोगो मे उपयोगी विभिन्न आसव, अरिष्ट, रस, भस्म, अवलेह, चूर्ण, वटी, खरलीय रसायन, क्वाथ, प्रवाही, शार्कर, मुरब्बे, अर्क, स्वरस आदि।

पथ्य-अपथ्य-फल-फूल शाक, अन्न, आमिष, निरामिष खाद्य द्रव्य, क्रिया व्यायाम तथा महानसिक द्रव्य विभिन्न मसाले, दूध, दही, तक्र, काजी, चटनिया आदि।

उदर रोगो पर चल रहे अनुसधान कार्यो की सक्षिप्त रिपोर्ट, शोध ग्रन्थो की सिनाप्सिस आदि। ★★

मुद्रक—मीरा प्रिंटिंग प्रेस के आदेश से प्रतिभा प्रिन्टर्स अलीगढ मे मुद्रित